श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित

समयसार

पर

समय देशना

भाग – 2

देशनाकार - आचार्य विशुद्धसागर

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित
समयसार (समयपाहुड)
पर

समय देशना

भाग-2

(गाथा 16 से 38)

देशनाकार

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

प्रकाशक

श्रमण संस्कृति सेवा समिति

पूज्यश्री के साहित्य प्रकाशन हेतु कटिबद्ध संस्था

संपर्क : 94253-21151, 98262-10189

❖ मूलकृति - **'समय पाहुड' आचार्यश्री कुन्दकुन्द कृत**

❖ प्रस्तुत कृति - **''समय देशना'' भाग-2**
(सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार की गाथा 16 से 38 तक शिवपुरी (म.प्र.) में, सन् 2009 में किए गए टीकात्मक प्रवचन)

❖ **देशनाकार** - **दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनिराज**

❖ संपादक - डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फर नगर

❖ प्रस्तुति - इंजी. जिनेन्द्र जैन, भोपाल

❖ संस्करण - चतुर्थ / सन् - 2018 / 1100 प्रतियाँ

❖ न्यौछावर - रु. 200/- (पुनः प्रकाशन हेतु)

❖ पुण्यार्जक - कमलकुमार कपिलकुमार अग्रवाल
छावनी मंडी, इन्दौर (म.प्र.)
मो. : 9425316858

❖ प्राप्ति स्थान -
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ वेब लॉग-इन - www.shramansanskriti.com

❖ मुद्रक - विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

आद्य मिताक्षर

आत्मप्रवाद पूर्व की अध्यात्मविद्या के राजहंस, आत्मविद्याप्रवीण, निर्विकल्प वीतराग समाधि के साधक, शुद्धोपयोगी श्रमण, श्रमण शिरोमणी, आगम अध्यात्म के सेतु, सिद्धान्त पारंगत आचार्यवर श्री कुंदकुंददेव हुए जिन्होंने समय-समय पर भव्य प्राणियों के हितार्थ अमृतज्ञान-वर्षा कर महनीय उपकार किया। आपने करणानुयोग में षट्खण्डागम ग्रंथ पर ''परिकर्म'' नामक विशाल टीका लिखी पर आज वह विलुप्त हो चुकी है। चरणानुयोग में मूलाचार, अष्टपाहुड, रयणसार ग्रंथ लिखे, द्रव्यानुयोग में पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार जैसे महान ग्रंथ लिखे। कहा जाता है कि आपने लगभग ८४ पाहुड ग्रंथ लिखे पर वर्तमान में कतिपय ही उपलब्ध हैं, बहुशः समाप्त हो चुके।

आपकी समस्त कृतियों में समयसार ग्रंथ ने समस्त दर्शनों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। यही कारण है कि वर्तमान में प्राय: सभी दर्शन तथा उसके मान्य विद्वानों ने मात्र समादर ही नहीं अपितु उसका प्रचार-प्रसार भी किया है। फिर भी समयसार वीतराग निर्विकल्प समाधि स्वरूप शुद्धोपयोग का ही अपर नाम है और उसके मुख्य पात्र एकमात्र निर्ग्रंथ दिगंबर मुनि ही मान्य किये गए हैं, उनमें भी वे ही जो अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती हैं, निम्न गुणस्थानवर्ती नहीं, क्योंकि उनके वीतराग निश्चय चारित्र का अभाव है। प्रश्न हो सकता है कि चारित्रघाती चारित्र मोहनीय संबंधी अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में कुछ अंश में तो वीतरागता संभव है तो उसे भी उतने अंश में वीतराग चारित्र मानना चाहिए?

उत्तर-नहीं! क्योंकि अनंतानुबंधी के अभाव से सराग चारित्र होता है, न कि वीतराग चारित्र। तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक ग्रंथों में चारित्र के सराग और वीतराग ये दो भेद माने गए हैं। और वीतराग चारित्र का साधक सराग चारित्र है। यथा-वीतराग चारित्रस्य साधक सरागचारित्र (द्र.सं. ४५/१९५) आगम भाषा में वीतराग चारित्र का कथन दो प्रकार से प्राप्त होता है- एक प्रारंभ की अपेक्षा से, दूसरा पूर्णता की अपेक्षा से।

प्रारंभ की अपेक्षा से- चारित्रमोहनीय की सर्वघाती प्रकृति अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान रूप १२ प्रकृतियों के निषेकों का उदयाभावी क्षय और आगमीकाल में उदय आने वाली उन्हीं प्रकृतियों का सदवस्था रूप उपशम तथा देशघाती संज्वलन कषाय के मंदोदय से वीतराग क्षायोपशमिक चारित्र होता है (स.सि. २/५/१५७/८)। जो मात्र अप्रमत्त गुणस्थान में होता है। इसके आगे श्रेणी प्रारंभ होती है- उपशम व क्षपक। इस ऊर्ध्वं गुणस्थानानां चतुर्णांद्विश्रेण्यौ भवतः उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी चेति। (रा.वा.९/१/१८/५९०) जब जीव उपशम श्रेणी पर चढ़ता है तो औपशमिक चारित्र आठवे गुणस्थान से प्रारंभ हो क्रमशः बढ़ता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान में पूर्ण होता है इसलिए इस गुणस्थान का पूर्ण नाम

'वीतराग उपशांत मोह जिन' अर्थात् जिनका मोह पूर्णत: उपशांत हो चुका है वे वीतराग उपशांत मोह जिन हैं। तथा इसी प्रकार से जो मुनि क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं तब क्षायिक चारित्र आठवें गुणस्थान से प्रारंभ होकर बारहवें गुणस्थान में पूर्ण होता है इसलिये इस गुणस्थान का पूर्ण नाम ''क्षीणकषाय वीतराग'' (ष.खं. १/१,१/सू-९-२२/१६२) अथवा वीतराग क्षीणमोहजिन है अर्थात् जिनका मोह पूर्णत: क्षीण अर्थात् क्षय/नष्ट हो गया वे वीतराग क्षायिक चारित्र के धारी वीतराग क्षीणमोह जिन'' हैं। आचार्य वीरसेन जी ने धवला जी में चारित्र मोह के पूर्णत: उपशम या क्षय होने पर ही वीतराग संज्ञा को स्वीकार करते हुए (ध.पु.१३/५,४,२६) मात्र ११ से १४ वें गुणस्थान तक के जीवों को ही 'वीतराग' माना है बाकी के नीचे के गुणस्थानवर्तियों को सराग माना है। यह आचार्यों की विवक्षा भेद है जो सर्वमान्य होती है किंतु ऐसी विवक्षा सातवें गुणस्थान से नीचे कदापि नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इसके नीचे छट्ठे गुणस्थान में देशघाती संज्वलन का तीव्रोदय होता है जिसे देशघाती होने से सकल चारित्र तो हो जाता है किन्तु संज्वलन के तीव्रोदय से सराग ही सकल चारित्र होता है जो कि उक्त गुणस्थानवर्ती मुनि को २८ मूलगुणों के पालन विषयक विकल्पों को उत्पन्न करता है। (द्र.सं.टी.१३/३४/६) इसी प्रकार पंचम गुणस्थानवर्ती के वीतराग सकल चारित्र का पूर्णत: घात करनेवाली सर्वघाती (द्र.सं.टी.३४/९९/४) प्रत्याख्यान कषाय का उदय पाया जाता है जिससे वीतराग चारित्र तो किंचित मात्र भी नहीं होता अपितु यह प्रकृति देशचारित्र का घात नहीं करती अत: सराग रूप देश चारित्र पाया जाता है।

प्रश्न: देशचारित्र या छटवें गुणस्थानवर्ती के चारित्र को क्षायोपशमिक चारित्र माना गया है अत: वहाँ भी सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयाभावी क्षय या सदवस्था रूप उपशम से तो उतने अंश में वीतराग चारित्र होना चाहिए ?

उत्तर: नहीं, पाँचवें गुणस्थानवर्ती तथा छटवें गुणस्थानवर्ती मुनि के तत् तत् गुणस्थान को पूर्णत: घात करने वाली सर्वघाती अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यान व अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान का उदयाभावी क्षय या सदवस्था रूप उपशम होने पर भी तथा देशघाती संज्वलन के तीव्रोदय से (स.सि. २/५/१५७/८) क्षायोपशमिक सराग चारित्र उत्पन्न होता है न कि वीतराग। इसे समयसार जी की तात्पर्य वृत्ति में इस प्रकार से कहा है कि-

चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सराग सम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरितिहेतु:। ... पंचम गुणस्थानयोग्य देशचारित्राविनाभावी सराग सम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति... षष्ठ गुणस्थान रूप सरागचारित्राविनाभावि सराग सम्यक्त्वस्यान्यथानुपत्तेरिति हेतु: .... अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती वीतराग चारित्राविनाभूत वीतराग सम्यक्त्वस्यान्यथा नुपपत्ते...। (गा. १७७-१७८, पृ. २४८)

चौथे, पाँचवे, छट्टे गुणस्थानवर्ती के क्रमशः अनंतानुबंधी, अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यान, तथा अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व कषायाभाव होने पर भी अन्यथानुपपत्ति हेतु रूप न्याय से सराग सम्यक्त्व ही पाया जाता है वीतराग नहीं, तो यहाँ आंशिक वीतराग चारित्र कैसे संभव है ? अर्थात् असंभव है, किंतु अप्रमत्त गुणस्थान में पाया जा सकता है।

प्रश्न - हम उसे पूर्ण वीतरागी नहीं मान रहे हैं मात्र अनंतानुबंधी राग के अभावजन्य अंश में ही वीतराग और अप्रत्याख्यानादि के उदय से सराग मान रहे हैं।

उत्तर - इस प्रश्न के समाधान को समयसारजी में ही पुनः देखें, वहाँ कहा गया है कि - रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः। तर्हि चतुर्थ पंचम गुणस्थानवर्तित तीर्थंकर कुमार भरत सगर राम पाण्डवादयः सम्यग्दृष्टियो न भवन्ति ? इति। तन्ना मिथ्यादृष्यापेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बंधाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। (स.सा.ता. वृ.गा. २०१-२०२)

रागी सम्यग्दृष्टि नहीं होता है ऐसा आपने कहा है तो चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती (गृहस्थावस्था में) तीर्थंकर, भरत, सगर, राम पाण्डवादि सम्यग्दृष्टि नहीं कहलायेंगे ?

उत्तर - ऐसा नहीं, किंतु मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा तैतालीस (४३) प्रकृतियों के बंध का अभाव होने से वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं।

उक्त वाक्य को पढ़कर हमें ध्यान रखना चाहिए कि उक्त ४३ प्रकृतियों के अभाव हो जाने पर भी आचार्यगण उसे सराग ही मानते हैं, वीतराग नहीं। तो फिर यदि हम उसे वीतराग मानेंगे तो आगम व जिज्ञासा का लोप होगा फिर जिन व आगम की आज्ञा का लोप करने वाला सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकेगा ? एक मंद मिथ्यात्वी भी ऐसा करने का साहस नहीं करता। फिर भी दुस्साहस पूर्वक कोई उसे आंशिक वीतराग चारित्र माने, ये सम्यग्दृष्टि जीवों को कैसे संभव होगा ? हाँ, ये तो संभव है कि जितनी कषाय का अभाव हुआ है उससे बंध नहीं होगा किंतु वह सब वीतराग चारित्र नहीं है, इस प्रकार यदि सम्यग्दृष्टि होगा तो निश्चित ही वह, अवश्य ही उक्त आगम के प्रमाण को देखकर अपनी धारणा को नियम से बदलेगा अन्यथा वह आगम वाक्य को भी देखकर अपनी धारणा को नहीं बदलता है तो वह उसी समय से मिथ्यादृष्टि ही है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि कहा भी है कि-

प्रश्न - मिथ्यादृष्टि भी शुभ क्रियाएँ करता है और सम्यग्दृष्टि भी, तो दोनों के चारित्र में क्या अंतर रहा ?

उत्तर - मिथ्यादृष्टि का चारित्र मिथ्या-चारित्र कहलायेगा, उसे सराग चारित्र नहीं कहा जा सकता

तथा सम्यग्दृष्टि का चारित्र सराग चारित्र कहलाएगा, उसे मिथ्याचारित्र नहीं कह सकते।

प्रश्न - बाह्य दृष्टि से ही सम्यग्दृष्टि के चारित्र को सराग चारित्र कहा है या अंतरंग दृष्टि से?

उत्तर - करणानुयोग अंतरंग भावों की प्रधानता से ही वर्णन करता है अत: देशव्रती या महाव्रती के अंतरंग भाव ही सम्यक् और रागसहित है अतः उसे सराग माना गया है।

प्रश्न - अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में उसे आंशिक वीतराग चारित्र मानने में क्या दोष है?

उत्तर - फिर तो अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कषाय को एकदेश घात करनेवाली मानना पड़ेगा। पर आगम इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता। विशेष-हमारे द्वारा लिखित शुद्धोपयोग, सम्यग्दर्शन तथा आध्यात्मिक शंका-समाधान पुस्तक देखना चाहिए।

अत: ध्यान रखिये-आगम को मत मोड़िये, क्योंकि आगम को मोड़ोगे तो मिथ्यात्व का दोष लगेगा और अनंतानुबंधी कषाय का पोषण होगा इसलिये स्वयं अपने मिथ्याज्ञानभिमान को बदलिये/तोड़िये, इसके टूटने से पारमार्थिक क्षति नहीं किंतु लाभ ही लाभ होगा और सम्यक् रत्नत्रय के लाभपूर्वक निर्वाण लाभ भी हो सकेगा।

आज अनेकानेक विद्वान तथा त्यागी-व्रती, मुनि भी गहन आगमावगाहन किये बिना दिग्भ्रमित हो रहे हैं, वर्तमान में उनके भ्रम को मिटाना ही सबसे बड़ा उपकार है। क्योंकि ग्रंथराज श्री जयधवलाजी पु.३ गाथा २२ पृष्ठ ७३८ में कहा है कि-

सग सग विसेस पच्चएहि विणा उक्कस्स संकिलेसमेत्तेण चेव सव्व पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो। ... के विसेस पच्चया? जिण पडिमालय संघाइरिय पवयण पडिऊलदादओ असंखेज्जलोगमेत्ता।

(ज.ध.३गा.२२, पृ.७३८)

अपने-अपने स्थितिबंध के विशेष कारणों को छोड़कर केवल उत्कृष्ट संक्लेश से सभी प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति का बंध नहीं होता है, अर्थात् उत्कृष्ट संक्लेश के साथ विशेष प्रत्ययों का होना अनिवार्य है।

प्रश्न - वे विशेष प्रत्यय कौन से हैं?

उत्तर - जिनप्रतिमा, जिनालय, संघ, आचार्य और प्रवचन के प्रतिकूल चलना आदि असंख्यात लोकप्रमाण विशेष प्रत्यय हैं।

अत: भो मनीषियों! उक्त आगम वाक्यों को पढ़िये और अपनी भवस्थिति को मत बढ़ाइए, सावधान होइए, अनंतानुबंधी के अभाव में आंशिक वीतराग चारित्र होने की मान्यता को बदलिये।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने अवश्य ही उक्त बातों का ध्यान रखा है और लोगों के भ्रम को दूर किया है। भवभीरु श्रमण का यही लक्षण है। उन्होंने 'समय देशना, भाग-२' का प्रणयन कर प्रशंसनीय कार्य किया है। वे यथायोग्य प्रकाश में आज्ञा व सुझाव लेते हैं, यह और भी अधिक प्रसन्नता का विषय है। इस हेतु मेरा उन्हें शुभाशीष।

ॐ नम:

प.पू. राष्ट्रसंत, गणाचार्य विराग सागरजी महाराज.

समय देशना - एक विहंगम दृष्टि

वर्तमान के विज्ञान प्रधान, भौतिकता प्रधान काल में भी हमारे पुण्य शुभ योग से हमको अध्यात्म की अक्षुण्ण, अजस्त्र धारा आचार्य भगवन कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थराज समयसार के रूप में उपलब्ध है। इस ग्रंथराज का अध्ययन करके असंख्य जीवों ने अपना कल्याण किया है और भविष्य में करते रहेंगे।

इस महान ग्रंथ पर लगभग हजार वर्ष पश्चात् आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने आत्मख्याति (अध्यात्म अमृत कलश) नामक टीका करके इसके गूढ़ रहस्यों को, आचार्य भगवन कुन्दकुन्द की आंतरिक भावनाओं को प्रकट किया है जो वास्तव में मंदिर पर लगे हुये कलश के समान है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने कलश के रूप में लिखा उसको गुणस्थान के परिपेक्ष्य में घटित नहीं किया। आचार्य जयसेन स्वामी ने समयसार की टीका करके जन-जन के लिये अत्यंत सरल ग्राही बना दिया विशेष रूप से वीतराग, निर्विकल्प समाधि में स्थित साधुओं के लिये उन्होंने गुणस्थान की परिपाटी के परिपेक्ष्य को भी ध्यान रखा।

वर्तमान में सामान्य जन न तो प्राकृत, और न संस्कृत के ज्ञाता हैं। कुछ वर्षों से सामान्य जन के मन में यह भावना, विचार बैठा दिया गया कि यह ग्रंथराज मात्र साधुओं के लिये हैं अन्य के लिये नहीं। यह कथन अंशत: सत्य है क्योंकि इस ग्रंथराज में गृहस्थी बढ़ाने/संसार बढ़ाने के साधनों का कथन नहीं। इस ग्रंथ में संसार संकुचित करने, आत्मा के एकत्व-विभक्त स्वरूप को जानने, आत्मानंद का अनुभव करने का कथन है। इस भ्रमपूर्वक प्रचार के कारण सामान्य जन इस ग्रंथराज के पठन-पाठन से विलग हो गये एवं कुछ विद्वत्जन न्याय, दर्शन, नीति, नय, तर्क शास्त्र का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण एकान्त पक्ष से इसका कथन करते रहे और सामान्य जन भ्रमित होता रहा तथा समाज में एकान्त पक्ष के कथन के कारण विद्वेष, फूट की भावना प्रकट होने लगी। समाज में स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि एक निश्चय नय वाले एक व्यवहार नय वाले कहलाने लग गये, जो कि आपस में एक-दूसरे को देखना, सुनना पसंद नहीं करने लगे।

वर्तमान में हम सबका परम पुण्योदय है कि परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्धसागरजी महाराज ने इस महान ग्रंथराज समयसार पर विस्तार से प्रवचन करके जन सामान्य के लिये अत्यन्त सरल, गाह्य बना दिया है। इस प्रवचन में इष्टोपदेश, तत्वसार स्वरूप संबोधन, आलाप पद्धति, पंचास्तिकाय, तत्वार्थ सूत्र, वृहद् द्रव्य संग्रह, पुरुषार्थ सिद्धियुपाय, आप्तमीमांसा, राजवर्तिक, परीक्षामुखसूत्र, सर्वार्थसिद्धि आदि अनेक न्याय, दर्शन, नीति शास्त्रों के उदाहरण देकर विषय को प्रमाणित किया है। समय देशना के माध्यम से जन सामान्य में सहज दशा, क्रमबद्धपर्याय, काल लब्धि आदि में जो संशय, भ्रम फैला

है उसका निराकरण करने का प्रयास किया गया है। समय देशना में सभी श्रोताओं के लिये 'ज्ञानी' शब्द का उपयोग किया है। यह 'ज्ञानी' शब्द गुणस्थान की अपेक्षा से तथा अन्य अचार्यों के ज्ञानी शब्द की परिभाषा के आधार पर नहीं किया गया है। ज्ञानी शब्द का प्रयोग सामान्य श्रोता/जन के उत्साह वर्द्धन के लिये किया गया है जिससे कि वह भी यथाशक्ति अपने क्षयोपशम को बढ़ाकर आत्म कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त हो सके। अपने सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति क्रोध में हो, विसंवाद करने को तत्पर हो उसे जैसे ही सामने वाला उसको ज्ञानी शब्द से संबोधित करता है कुछ क्षण के लिये वह ठिठक जाता है तथा भावों में कुछ परिवर्तन अवश्य होता है।'

आचार्य श्री के प्रवचनांश समय देशना को पढ़ने पर लगता है कि वे स्वयं समझ होकर अत्यन्त करूणा भाव से, आत्मीय संबोधन भैया से संबोधित कर हम जिस अवस्था में हैं, जितनी हमारी शक्ति, योग्यता है उसी के अनुसार आत्म कल्याण के मार्ग पर लगाने का प्रयास कर रहे हैं। इसको एक उदाहरण से समझ सकते हैं वे लिखते हैं कि यदि तुममें मुनि बनने, संयम धारण करने की शक्ति नहीं है तो त्यागियों, व्रतियों की सेवा करके अपना मोक्ष मार्ग प्रशस्त कर सकते हो।

उन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया है वे वाक्य सूत्र वाक्य हो गये हैं उन सूत्र वाक्यों में गंभीर रहस्य, अनुभवन, गागर में सागर समाया हुआ है। कुछ सूत्र वाक्य प्रस्तुत हैं-

दृष्टि दिखती है, वस्तु होती हैं; नय वस्तु नहीं है नय दृष्टि है।

समयसार तो शुद्धात्मा है उसे लिखा नहीं लखा जाता है।

जो वस्तु का स्वरूप है, इसका नाम धर्म है। धर्म धर्मी से कभी भिन्न नहीं होता जो तटस्थ होता है, वही शान्त होता है।

जहाँ निज शरीर का राग अब्रह्म का कारण बनता है वहाँ पर शरीरों के राग से ब्रह्म कैसे पायेगा?

कण-कण स्वतंत्र है
भेद रत्नत्रय साधन है अभेद रत्नत्रय साध्य है।
जो है सो है
तन का धर्म बहुत सरल है पर मन का धर्म बहुत कठिन है।
जैन शासन आवेग का मार्ग नहीं है, ये विवेक का मार्ग है।

समय-समय होता नहीं, समय के बिना समय होता नहीं। समय ही समय है, समय के लिये समय चाहिये।

न निश्चय जानने से मोक्ष मिलेगा न व्यवहार जानने से मोक्ष मिलेगा। जो निश्चय और व्यवहार को जानकर माध्यस्थ भाव को प्राप्त कर अभेद भेद में लीन होता है वहाँ मोक्षमार्गी है।

बद्ध अवस्था में निर्बद्ध को निहारने वाले जीव कम हैं। समयसार ग्रंथ का राग भी समयसार नहीं दिला पायेगा तो पर-समयों का राग समयसार कैसे दिला पायेगा?

बंध को बन्द करना है तो प्रमाद को बन्द करो।

जो स्वयं को ज्ञानी कहता है, वह ज्ञानी होता नहीं यह पर सत्य है। द्रव्य से रहित पर्याय और पर्याय से रहित द्रव्य होता नहीं है। जब मोह रोग तेरा नहीं है तो मोह के साधन तेरे कैसे आदि यह सूत्र वाक्य समयदेशना के कुछ पृष्ठ मात्र से उद्धरित किये गये है यदि समस्त पृष्ठों से उद्धरण लिये जाये तो एक सूत्र ग्रंथ तैयार हो जायेगा।

समयदेशना का पठन करने पर पाते हैं कि आचार्य श्री ने विषयों को इस प्रकार सरलतम विधि से स्पष्ट किया है कि जन-जन इसका लाभ ले सकें।

विशुद्ध ज्ञान, विशुद्ध चिन्तन
विशुद्ध मनन, विशुद्ध वचन
विशुद्ध कथन, विशुद्ध धारणा
विशुद्ध ध्यान, विशुद्ध आचरण
विशुद्ध चारित्र, विशुद्ध स्वभाव
विशुद्ध क्रिया, विशुद्ध विचार
विशुद्ध व्यवहार, विशुद्ध संयम
विशुद्ध तप, विशुद्ध शील .... धारक
ऐसे विशुद्ध सागर के चरणों में बारम्बार नमन

जीवन में जो कुछ जाना, सीखा, पाया सब गुरुदेव की महती कृपा से पाया। गुरु चरणों में त्रिकाल नमोस्तु करते हुए इस भावना के साथ ''नमोस्तु शासन जयवन्त हो''

गुरु चरणानुरागी

- इंजी. दिनेश जैन (भिलाई)

सम्पादकीय

अध्यात्मविद्या के पुरस्कर्ता आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव की कृतियों में ''समय पाहुड़'' अप्रतिम कृति है। इसमें अध्यात्म का विशेष रूप से निरूपण है। आत्मरसी तत्त्वविद्या पिपासुजन इस ग्रन्थराज को जीवन के लिये उपादेय भूत स्वीकार करते हैं।

नन्दिसंघ की पट्टावलियों के आधार पर आचार्य कुन्दकुन्द विक्रम की पहली शताब्दी के विद्वान थे। इसके अतिरिक्त अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि कुन्दकुन्द प्रथम शताब्दी के आचार्य थे। परवर्ती आचार्यों ने कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों की अनेक गाथाओं के उद्धरण का आश्रय लिया है।

पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृति टीका में श्री जयसेनाचार्य ने कुन्दकुन्द स्वामी के गुरु का नाम कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव लिखा है और नन्दिसंघ की पट्टावली में उन्हें जिनचन्द्र का शिष्य बतलाया गया है।

भगवत् कुंदकुंदाचार्य की उक्त समयसार कृति पर आचार्य श्री विशुद्धसागरजी ने अध्यात्म मूलक प्रवचन किये हैं उक्त प्रवचनों का संग्रह समय-देशना के नाम से आप सब सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का यत्न इस प्रकाशन के माध्यम से किया जा रहा है ये प्रवचन अध्यात्म मूलक हैं चूंकि आचार्य कुन्दकुन्द स्वयं अध्यात्म के मूल पुरस्कर्ता आचार्य हैं अत: आचार्य विशुद्धसागर ने भी अध्यात्म के रस में ही परोसने का काम किया है। यह प्रवचन अनेक खण्ड़ों में प्रकाशित हो रहे हैं। दूसरे खण्ड के रूप में यह प्रकाशन आपके सम्मुख आ रहा है। इसमें गाथा १६ से ३८वीं गाथा में शुद्ध आत्मस्वरूप की चर्चा पर प्रवचनों की 'इति' की है। यह प्रवचन एक ओर पौराणिक प्रसंगों से जोड़ते हैं दूसरी ओर सिद्धान्तों से, तीसरी ओर व्यवहार धर्म से और अन्तत: ले जाते हैं शुद्ध द्रव्याधिक नय से अध्यात्म की ओर।

सर्वकर्म विमुक्त शुद्धात्मा के प्रतिपादन करने के लिए आचार्य कुन्दकुन्द देव ने निश्चयनय परक दृष्टि का आश्रय प्रधानता से लिया किन्तु व्यवहार दृष्टि की उपेक्षा नहीं की है। समयसार में आत्मतत्व की विवेचना निश्चय की प्रधानता से करते हुए बीच-बीच में विषय को समझाने के लिए व्यवहारदृष्टि को स्वीकार किया गया है।

समयसार में सर्वत्र ही विषयवस्तु का निरूपण यथोचित नय के माध्यम से किया है। समयसार के प्रारम्भ में ही कुन्दकुन्दाचार्य व्यवहार नय की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- जिस प्रकार म्लेच्छ जन को म्लेच्छ भाषा के बिना वस्तु का स्वरूप ग्रहण नहीं कराया जा सकता है उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश शक्य नहीं है।

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसण म सक्कं ॥ ८ ॥ समयसार॥

व्यवहार का आश्रय विषय वस्तु के प्रतिपादन के लिए आवश्यक होता है तो आत्मा के अनुभव

और लीनता के लिये निश्चयालम्बन अति आवश्यक होता है। निश्चय ही शुद्धनय है। इस शुद्धनय के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं- जो नय आत्मा को बन्ध रहित, परस्पर्श से रहित, चंचलता से रहित, विक्षोभ से रहित तथा अन्य पदार्थ के संयोग से रहित देखता और जानता है वह शुद्धनय का स्वरूप है।

कुन्दकुन्दाचार्य स्वसमय एवं परसमय के मध्य अन्तर को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं- जो जीव निजात्म के स्वरूप में ही नियत है। उसमें ही परिणमन करता है। निज द्रव्य से भिन्न समस्त पर द्रव्यों का ज्ञाता, दृष्टा मात्र है। वह जीव स्वसमय है और निश्चय से पुद्गलादि समस्त अजीव द्रव्यों को हेय तथा निज से सर्वथा भिन्न पर द्रव्य रूप मानता और जानता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान को प्राप्त हुआ जीव सम्यग्चारित्र का आचरण करता हुआ रत्नत्रयरूपी मार्ग से मोक्ष की प्राप्ति करता है। इस दार्शनिक विषय वस्तु को संसारी जीवों के लिए सुग्राहय बनाने के लिए कुन्दाकुन्दाचार्य ने अर्थ, तत्वार्थ एवं पदार्थों का निरूपण किया है। उनके इस निरूपण में भी इस बात की महत्ता है।

समयसार में भेदविज्ञान की छटा सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होती है। जीवाजीवाधिकार में विशेष रूप से भेद विज्ञान का प्रतिपादन किया है।

कुल मिलाकर समय-देशना का यह दूसरा भाग अध्यात्म रसिकों के लिये परम प्रिय है वह इसलिए क्योंकि यह मिथ्यात्व में डूबे जीव को व्यवहार धर्म के माध्यम से उठाकर आत्मरस की निश्चयनय की सरिता में बहाते हुए पर आत्मस्वरूप में रमण कराने की आधार भित्ति जैसा लगता है। कई बार ऐसा भी लगता है कि संसार समुद्र में कितने ही डूबे क्यों न हो पर एक बार जरूर अध्यात्म की ओर ले जाने का यत्न करता है इसलिए आइये समय-देशना के इस भाग के माध्यम से अध्यात्म के सरस सरोवर में डुबकी लगाइये।

समय देशना के सम्पादन के लिए ग्रंथ की आद्यन्त वाचना की गई। आचार्य श्री से स्थान-स्थान पर विचार विमर्श कर उनके विचारों को सुरक्षित रखने का पूरा प्रयास किया गया है। इसमें जो कुछ भी भूल हुई है वह हमारी तरफ से है त्रुटियों के लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

समय-देशना के वाचन के अवसर पर प्रो. वृषभप्रसाद जैन लखनऊ, डॉ. जय कुमार जैन मुज्जफरनगर, डॉ. शीतलचन्द जैन जयपुर, इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन भोपाल, इंजी. दिनेश जैन भिलाई की प्रशंसनीय भूमिका रही है। इन सब के साथ मुझे भी आचार्य श्री का मंगल आशीर्वाद मिले यही कामना है।

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
अध्यक्ष अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि परिषद्

मण्डी आनन्दगन्ज
बड़ौत (उ.प्र.) २५०६११
मो.: ०९८३७०४३२२

अनुक्रमणिका

विषय	*पृष्ठ क्रमांक*
दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मरुप ही हैं	1
दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण	11
आत्मा कब-तक अज्ञानी रहता है	36
ज्ञानी और अज्ञानी का चिह्न	95
आचार्य अज्ञानी को समझाते हैं	137
अज्ञानी की आशंका	165
उत्तर	174
दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मरुप ही हैं	200
निश्चय स्तुति	208
प्रव्याख्यान का स्वरूप	252
दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण	274
निर्ममत्व का स्वरूप	293

प्राथमिक मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥
अविरल शब्दघनौघा प्रक्षालित सकलभूतल कलंका।
मुनिभि रूपासित तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्॥
अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानांजन शलाकाया।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्य गुरवे नमः। सकल कलुष विध्वंसकं श्रेयसां परिवर्धकं, धर्म सम्बन्धकं भव्य जीवमनः प्रतिबोध कारकमिदं शास्त्रं श्री समयसार नामधेयं, अस्यू मूल ग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्त्तारः श्री गणधर देवाः, प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारमासाद्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचितं आचार्यश्री विशुद्धसागरेण विरचिता एषः समयदेशना नाम ग्रन्थः

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥
सर्वमंगल मांगल्यं सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधान सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

वंदित सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवली भणियं ॥ १स.सा.॥

॥ दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मरुप ही हैं।

उत्थानिका - दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधनभाव है, यही गाथा में कहते हैं।

गाथा - दंसणणाचरित्ताणि सेवदिव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥16 ॥

संस्कृत छाया - **दर्शनज्ञानचरित्राणि सेणितव्यानि साधुना नित्यम्।**
तानि पुनर्जानीहि श्रीण्यप्यात्मानमेव निश्चयतः ॥

अन्वयार्थ : **(साधुना)** साधुपुरुषों को **(दर्शनज्ञानचारित्राणि)** दर्शन, ज्ञान और चारित्र **(नित्यम्)** निरन्तर **(सेवितव्यानि)** सेवन करने योग्य हैं **(पुनः)** और **(तानि त्रीणि अपि)** वे तीन हैं तो भी **(निश्चयतः)** निश्चय से **(आत्मानम् एव)** एव आत्मा ही **(जानीहि)** जानो।

समय देशना

आचार्यभगवान कुंदकुंद स्वामी ने समय पाहुड़ ग्रन्थ में आत्मा के शुद्ध स्वरूप का व्याख्यान किया है।

अशुद्ध जीव की दशा का व्याख्यान और सिद्ध स्वभाव का व्याख्यान आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जीवकाण्ड में किया वह सौपाधिक दशा का व्याख्यान है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने समयसार ग्रंथ में जो व्याख्यान किया है वह आत्मा के निरुपाधिक दशा का व्याख्यान है। यह वह अलौकिक ग्रन्थ है जिस ग्रन्थ में वह आत्मा को ही निर्बन्ध कहा गया हो। जब-तक निर्बंधता का ज्ञान नहीं होगा, तब-तक बंध्य को निर्बंध्य करने का पुरुषार्थ नहीं होगा।

यह है द्रव्यदृष्टि। द्रव्यार्थिक नय से जैसे बीज में किसान वृक्ष को जानता है। बहुत निर्मल भाव से समझना.......द्रव्य दृष्टि के अभाव में जगत का कोई कार्य नहीं हो सकता। आश्चर्य यह है कि समझदार जीव एक किसान से भी अज्ञानी हो गये क्या?

ऐसा कौन-सा कृषक होगा जिसे बीज में फसल नहीं दिखे? तो बीज क्यों बोयेंगे? जैसे कि किसान ने बीज में वृक्ष को देखा। बीज से वृक्ष को निकालने की क्रिया का अभाव तो नहीं है। आप खेत की

मेढ़ पर चलते लोग देख रहे थे कि किसान भोजन कर रहा है। वह हल को चलाता हुआ मुख में ग्रास रख रहा है, पर आपको दिख रहा है कि भोजन कर रहा किसान। खेत में कोई दिखाई नहीं दे रहा है, पर हल चलाते रोटी खाते उस किसान को खेत में लहलहाती फसल दिखती है और उसे घर में रखे बोरे दिखते हैं, यही द्रव्य दृष्टि है। इसी प्रकार से अशुद्ध आत्मा में बंध्य आत्मा के निर्ग्रन्थ दशा का ज्ञान हो जाता है। ये द्रव्य दृष्टि का नाम है। पुरुषार्थ उसे प्रकट करता है। यह चरित्र है समझ में आ रहा है। हे माँ! गेहूँ में रोटी थी कि नहीं? गेहूँ में रोटी न होती तो आटा क्यों मढ़ता? जो-जो आप बनाती हैं वो-वो आपको पहले दिखता है। भैया! रोटी होती है, कि पराठे होते हैं, कि पूड़ी होती है? बड़े सँभलकर समझना। जो बनाना चाहती हैं, वो कार्य सामने दिखता है। क्यों माँ! आपकी दृष्टि में वस्तु आती है कि नहीं आती? आटा वही है। रोटी बनाना चाहे तो रोटी दिखती है, पराठे बनाना चाहें तो पराठे। आत्मा वही है, तू चाहे नारकी बना ले तू चाहे देव बनाले। हे ज्ञानी! मनुष्य तू चाहे तो इसमें से भगवान बना ले।

दृष्टि दिखती है, वस्तु होती है।

नय वस्तु नहीं है, नय दृष्टि है। इतना ख्याल रखना। आप समयसार की कक्षा में हो। दृष्टि से वस्तु को जाना जाता है, परन्तु दृष्टि वस्तु नहीं है। नय नय है, नय कथनशैली है। कथन तो कथन है, कथन कथ्य नहीं है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी उस परम सत्ता का कथन कर रहे हैं जिसे जीव समझ नहीं पा रहा है और समझने वाली आत्माओं! तुम जिससे समझ रहे हो, उसे समझ लेना, ये ही समयसार है। ये ही समयसार ज्ञानी! आत्मा से समझना है कि ज्ञान से समझना है? उस समझनेवाले को समझ ले, यही तो समयसार है। समझनेवाले को नहीं समझा तो तुमने कुछ भी नहीं समझा आत्मा से समझ लेना, और उसे ही समझ लेना, यही तो समयसार है। ये अध्यात्म विद्या की अलौकिक भाषा है। अब समझिये, समय वालों को समझ लेना, यही समयसार है।

समयसार को क्यों सुनता चाहते हैं? इस ग्रंथ में पर की बात नहीं है। भैया! भोजन करते-करते थक सकते हैं, पानी पीते-पीते थक सकते हैं, लेकिन आत्मख्याति सुनते-सुनते थकते नहीं है। इसीलिये आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने इसका नाम आत्मख्याति टीका रखा। अपनी बात से कोई थकता नहीं है। ये समयसार आत्मा की अनुभूति की बात करता है। ये स्वानुभूति की चर्चा है। जबलपुर की वाचना में 15 गाथा हुई। 16 वें तीर्थंकर की चरण निष्श्रा में 16वीं गाथा का नियोग है। सोलहकारण भावना भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

कुंदकुंद स्वामी ने समयसार नहीं लिखा, समय-पाहुड़ लिखा है। यह प्राकृत ग्रन्थ है। समयसार

तो शुद्धात्मा है। उसे लिखा नहीं जाता, लखा जाता है। उस समयसार शुद्धात्मा को लखने के लिये 'समय पाहुड़' लिखा है। आत्मब्रह्मा की सिद्धि परभावों से संभव नहीं है। परभावों से निज भावों को लिखा है। भिन्न करके देखना, यही आत्मोपलब्धि का साधन है। इसलिए जो जीव ये मानते हैं कि समयसार ग्रन्थ को पढ़ने से भटकाव होता है, असत्य है। समयसार जैसे ग्रन्थ से भटकाव होने लगा तो संसार ही कैसे चलेगा? जो समयसार ग्रन्थ के गूढ रहस्यों को समझता नहीं है, वह भटकता है।

समयसार ग्रंथ तो भगवान-आत्मा का कथन है। ये भूल तो माँ की है। अज्ञानी माँ जिसने कि गेहूँ में आटे को जान लिया, रोटी को जान लिया और कहने लगे बेटा! इसमें रोटी है। रोटी है तो, लेकिन प्रकट करना पड़ेगा। दुग्ध में घृत है इसका ज्ञान हो, तो भी निकालोगे कैसे? ज्ञान मात्र से दुग्ध में घृत निकल आयेगा क्या?

ऐसे-ही इस बध्य आत्मा में शुद्धात्मा विराजी है। लेकिन फिर भी आश्चर्य तो देखो, पानी कहता है कि तुम बांध तो बनाओगे, पर मुझे नहीं रोक पाओगे। मैं इतना पतला हूँ कि कहीं-न-कहीं से निकल जाऊँगा। जब भी कथन होता है तो ऊँचे का ही होता है, नीचे का नहीं होता। इतना कठोर करने के बाद भी पानी के परिणाम नीचे चले जाते हैं। जब नीचा है कथन कर देंगे तो अंदर कैसे जाओगे? ये परिणामों की दशा है।

पानी ऊपर ले जाने के लिये मशीन लगानी पड़ती है, पर नीचे ले जाने के लिये कुछ भी नहीं लगाना पड़ता, वह स्वतः जाता है। नाली में बह जाता है। भोगों की नाली में तू सहज बह जाता है, पर निज ध्रुव स्वरूप की प्राप्ति के लिये गुरुरूपी मशीन लगानी पड़ती है। अपने विवेक से पूछो, नीचे परिणाम जाते मालूम पड़ता है क्या? भैया! कितनी मायाचारी? घर से बोलकर आया कि मंदिर जा रहा हूँ। हे ज्ञानी! मंदिर आते समय तूने दूसरे को देख लिया तो तून परिवार के साथ छल किया, अपने साथ छल किया। तू ये बोलकर तो आया ही नहीं था कि किसी और को भी देखूँगा।

छल किया कि नहीं किया? घर बोलकर आया कि मैं समयसार सुनने जा रहा हूँ और वहाँ जाकर दो बातें कर लीं, तो छल किया कि नहीं? उतनी स्थिरता मन में आएगी, तब कहीं समयसार के नजदीक पहुँच पाओगे। विचार कर पाओगे। शब्द समयसार सुनाया जा सकता है, शुद्ध समयसार सुनाया नहीं जा सकता, वह तो अनुभव किया जाता है। पानी का स्वाद कैसा होता है? ज्ञानी! धन्य हो, पानी पी जाते हो और पानी का स्वाद और मुख से नहीं बता पर रहे। अहो ज्ञानी! जब तू पानी के स्वाद को नहीं बता सकता, तो धीरे-से कहेगा पीकर देख लो।

जो तू पानी के स्वाद को नहीं बता सकता तो अन्न के स्वाद को कैसे बता सकता है? ये अनुभव

का विषय है, ये व्याख्यान का विषय नहीं है। यहां जो अनुभूति ले रहे हैं, उसे बता सकते हो क्या? वेदन का वेदण ही होता है, उसका व्याख्यान नहीं होता। व्याख्यान शब्दों का होता है। व्याख्यायें तो ज्ञानियों! अलौकिकता है। समझते जाओ और अनुभूति लेते जाना। यदि कुंदकुंद स्वामी अपनी लेखनी नहीं चलाते तो मुमुक्षु! अलौकिक विद्या का ह्रास हो जाता। ये सारे जगत में की भाषाओं से हटकर भाषा का प्रयोग हो रहा है। और ऐसा अनुभव में आता है कि और-भी कुछ है।

ऐसा महसूस नहीं होता क्या कि ये जगत की भाषायें जहाँ विराम ले लेती हैं, वहां अध्यात्म की भाषा प्रारम्भ होती है? जब-तक जगत की भाषायें चलेंगी, तब-तक अध्यात्म की भाषाएँ नहीं चलेंगी। यहां जगत की भाषाओं का विनाश होता है, वहां भगवान-आत्मा का प्रकटन होता है। भेद दृष्टि व्यवहार नय, अभेद दृष्टि निश्चय नय और दोनों दृष्टियों एक ही वस्तु में युगपत् होती हैं। मुमुक्षु! हाथ कहा तो एक है, अंगुलियाँ 5 हैं। भेद भी है, अभेद भी है। एक भी है, अनेक भी है। एक ही अन्य अनेक रुप भी है, एक भी द्रव्य सम-रूप भी है।

आत्मा एकात्मा है, आत्मा अनेकात्मा है। धर्म एकात्मा है, धर्म अनेकात्मा है। धर्म जिसे आप लोग कहते हैं उसकी बात नहीं कर रहे हैं। जैन धर्म, वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म इन सबको भूल जाइये। जो वस्तु का स्वरूप है, इसका नाम धर्म है। धर्म धर्मी से कभी भिन्न नहीं होता। लोक में कहा जाता है वे सम्प्रदाय हैं, वे धर्म नहीं है। अग्नि का धर्म उष्णता है, पानी का धर्म शीतलता है। धर्म कभी धर्मी से भिन्न नहीं होता। जिस कुल में जन्म ले लिया, उस संप्रदाय को मान लिया। धर्म समझे ही नहीं। जिस कुल में जन्म लेता है, उसे ही श्रेष्ठ कहता है। वह श्रेष्ठ नहीं है, वस्तुस्वरूप को जानने से श्रेष्ठ होता है। ये बहने वाली वस्तु नहीं है, ये तटस्थ रहने वाली वस्तु है। ये बहने वाली नदी नहीं है, ये तटस्थ रहने वाली नदी है। कहाँ बैठे हो? नदी के तट पर जो नदी में ही कूद जाये, वह स्वयं बह जाये। ज्ञानी क्या कर रहा है, बता पायेगा क्या? बह चुका वह क्या बता पायेगा? क्योंकि वह स्वयं बह गया। तटस्थ शब्द क्या कहता है? जैसे नदी के तट पर बैठा मनुष्य भूत को भी जानता है, वर्तमान को भी जानता है, भविष्य को भी जानता है। जो प्रकार सम्यग्दृष्टि मनुष्य तत्त्व को तट पर बैठकर सुनता है, वह बहता नहीं। निश्चय और व्यवहार दो नदियाँ बह रही हैं, इनमें बह ना जाना। किसमें क्या आ रहा है? देखना। तटस्थ क्या कहता है? देखो, जानो। ज्ञाता, दृष्टा। बहना मत। जितने सम्प्रदाओं का जन्म हुआ है, सब बहने वालों से हुआ है। जितने एकान्त मत चले हैं, एकान्तवादी चले हैं, सब बहने वाले चले हैं। तटस्थ होता है, वही शान्त होता है। उभयनय को जानकर मध्यस्थ हो जाता है, वही जीव जिनेन्द्र की देशना को सुनने का पात्र होता है। और एक नय को लेकर बह जाता है, वह अर्हंत की देशना को सुनने का पात्र ही नहीं है। ऐसा आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने कहा है। गाथा-क्या कह रही है, ध्यान दो। आप सुनते जाना। जहां विषय लगे वहां

लगाना, जहां न लगे वह मत लगाना। ऐसे ज्ञानी मत बन जाना क्योंकि ये संभल कर कहना पड़ता है क्योंकि ये महान ग्रंथ है विघ्न न हो जाये।

आप खनियांधाना से शिवपुरी आ रहे थे। पत्थर से ठोकर लगी, आपके पैर में लग गई। शिवपुरी के डॉक्टर से मिले। आपसे डॉक्टर कहता है ज्ञानी! ये डिटोल ले जाओ और ये पट्टी ले जाओ, जहां लगे लगा लेना। ये ज्ञानीजीव मुमुक्षुजीव है। समझदार ज्ञानी है। उसने जाकर डिटोल को पानी में डाला और रूई से पत्थर को पानी से धोया। 8 दिन बाद पुनः जाकर डॉक्टर से कहा भैया! ये पैर तो ठीक ही नहीं हुआ। सूजकर मोटा हो गया है। 'अच्छा, निकालो पट्टी। डॉक्टर ने कहा दादा! दवाई कहाँ लगाई? क्या? आपने कहा था कि जहां लगे वहां लगा लेना। तो आपने कहां लगाई? जिस पत्थर से लगी थी, वहां लगा दी। हे ज्ञानी! पत्थर में नहीं लगानी थी, पैर में लगानी थी। कहाँ लगाई थी? वैसे-ही तुम तत्त्व को जहाँ लगाना चाहिए था वहां लगाना, अपने मन से मत लगाना और दोष डॉक्टर को दो। ये ग्रंथ का दोष है। लगाने वाले का दोष है। समयसार जैसे महानग्रंथ ने अब तक किसी को भ्रमित नहीं किया। जो समयसार को नहीं लगा पा रहे थे, उन्होंने भ्रमित किया है। इसलिये,

'दंसण णाण चरित्ताणी....' गाथा कह रही है दर्शन-ज्ञान-चारित्र। अहो! कैसे आप कहते हो कि ज्ञानी समयसार को न समझने से संयम से हटते हैं। कुंदकुंद स्वामी स्वयं कह रहे हैं। स्वयं निर्ग्रंथ मुनि थे कि नहीं थे? यानि अगर आचार्य को संयम स्वीकार नहीं होता तो मुनिराज कैसे बनते? आचार्य कुंदकुंद स्वामी गृहस्थ नहीं थे, वे आचार्य थे, निर्ग्रंथ मुनि थे। सेवदिव्वाणि साहुणा णिच्चं।

साधुपुरुषों को दर्शन-ज्ञान-चारित्र का नित्य ही सेवन करना चाहिए। अब कोई जीव ये समझ बैठे कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करना चाहिए, उतना शब्द सीख लिया। इस सूत्र पढ़ने मात्र से ज्ञानी हो गया। जिसने ऐसा सूत्र पढ़ लिया, उसने तथ्य को जान लिया। क्यों माँ! हलुआ कहने से हलुआ बन ग्या क्या? कहने मात्र से समयसार नहीं....। आपको सामग्री भी चाहिए, प्रक्रिया भी चाहिए। इसी प्रकार से दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहने और समझने मात्र से रत्नत्रय नहीं आता। तत्त्वार्थ श्रद्धान, आत्मश्रद्धान, देवशास्त्र-गुरु का श्रद्धान ये दर्शन है। तत्त्वों को यथार्थभूत जानना, ये ज्ञान है। विषयों से निवृत्ति, स्वरूप में प्रवृत्ति, इसका नाम चारित्र है। ये तीनों की जब-तक एकता नहीं है, तब-तक मोक्षमार्ग नहीं है। हे साधु! शुद्ध तत्त्व को सुनकर प्रमादी मत हो जाना। जिस मछली को स्थल ही मृत्यु का साधन हो, इस मछली को अग्नि का अंगार कैसे बचा पायेगा? जिस योगी को शुभ उपयोग ही जलाता हो, उस योगी को अशुभ उपयोग कैसे भायेगा? समझ में आया।

जहां निज शरीर का राग अब्रह्म का कारण बनता हो, वहां पर-शरीरों के राग से ब्रह्म कैसे

पायेगा? अब सुनियें समयसार। क्यों ज्ञानियों! अपने शरीर के राग में तुमने रत्नत्रय धर्म छोड़ा है कि पर के शरीर के राग में तुमने रत्नत्रय धर्म छोड़ा है? अपने शरीर के राग में तुमने गृहस्थी बसाई है कि पर के शरीर के राग में तुमने गृहस्थी बसाई है? पर के शरीर के राग में तुम इतने लीन हो गये कि मर भी नहीं पा रहे हो। क्यों डॉक्टर साहब! जो तेरे बेटी की मां है तून उसे पत्नि बनाया है, ज्ञानियों! उसी राग से तू भगवान को देख लेता तो यहाँ क्यों बैठा होता? जितने राग से तूने किसी की कन्या को पत्नि बनाया है, दोष कन्या का अपना नहीं है, दोष दृष्टि का है। बहुत दिन बीत गये पर को दोष देते-देते, परन्तु दोष पर की पर्याय का नहीं है, दोष तेरे परिणामों का है। तेरे परिणाम पर की पर्याय को देखने गये ही क्यों? ये ही समयसार है।

चारित्र को गौण करके जो समयसार का व्याख्यान हो रहा था, जीव स्वच्छंदी हो गया। समयसार जैसे आलौकिक ग्रंथ ने चारित्र को गौण नहीं किया, अभाव नहीं किया, क्योंकि उसकी प्राप्ति का साध्य तो संयम ही है। यथार्थ बोलिये।

जिस दिन आपके हृदय के कालुष परिणाम होते हैं उस दिन शान्ति मिलती है क्या? शान्तता का होना ही तो स्वरुप-लीनता की ओर जाने का लक्ष्य है।

जो विषय यहीं जलाता हो, वो विषय वहाँ क्या बचायेगा? इसलिये भगवान कुंदकुंद स्वामी संकेत नहीं, आदेश कर रहे हैं। सेविदव्वाणि साहूणा णिच्चं।

साधुओं के लिए नित्य ही सम्यग्दर्शन- ज्ञान-चारित्र का पालन करना चाहिए। भेदाभेद पालन करना चाहिए। रत्नत्रय की मृदुल चर्या नहीं चलेगी। मठ मंदिरों से दूर रहना पड़ेगा। ईंट-चूने से दूर रहना पड़ेगा। जगत की संस्थाओं से साधु को दूर रहना पड़ेगा, क्योंकि आत्मा की साधना करना है। ये साधु मार्ग है। ये भिन्न मार्ग नहीं है, अभिन्न मार्ग है। ये राग दशा का मार्ग नहीं है, ये वीतराग दशा का मार्ग है।

इन ईंट-चूने में भवन तो बन जायेगााा, पर आत्म-भवन नहीं बनेगा, नीचे गिर जायेगा। रत्नत्रय की साधना भवनों से नहीं होती। भव से होती-होती तो ज्ञानियो हजारों आचार्य भगवान तीर्थंकर भवनों से साधना नहीं कर पाते, क्योंकि वहां भवन तो थे ही नहीं। जैसे ये गृहस्थ अपने घर की धसकती एक ईंट देखता है तो तुरन्त है। क्योंकि एक ईंट धसक गई तो पूरा भवन नीचे गिर जायेगा। अहो ज्ञानियों यहां साधुओं से कह रहे हैं-भगवन्! अपने परिणामों में भी एक ईंट भी खिसक न पाये। एक ईंट खिसक गई तो पूरा भवन नीचे आ जायेगा। चारित्र घिसका है, परिणाम घिसका है। पूरे जीवन में गाड़ी स्टार्ट चाबी से करते हैं तो बार-बार क्या घुमाते हैं? दिशा देने के लिए या बैलेन्स बनाने के लिए? दिशा देने के लिए।

हे ज्ञानी! चाबी एक बार लगाते हैं लेकिन कितना सँभालना पड़ता है। ऐसे-ही मुनि तो एक बार बना जाता है, पर पर्याय को 24 घण्टे सँभालना पड़ता है। तुम्हारा वाहन गिर जाये तो हाथ पैर ही टूटेगा, लेकिन ये वाहन गिर गया तो मोक्षमार्ग टूट जायेगा। भैया! यही मार्ग है। सत्यार्थ मार्ग तो यही है, विपरीत मार्ग अनेक हैं, सो आप जानते हैं।

व्यवहार दृष्टि से ऊपर की लाइन में कह दिया, अब नीचे के लाइन में क्या कह रहे हैं? ध्यान दो, वो तीन (दर्शन, ज्ञान, चारित्र) व्यवहार दृष्टि से हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों किसमें हैं? ज्ञान तो आत्मा में है, दर्शन तो आत्मा में है, चारित्र आत्मा में है। इसलिये ये क्या है? ये पाँचों अंगुलियाँ किसमें हैं? हाथ में। इसलिए हाथ ही अंगुली है, अंगुली ही हाथ है। दर्शन आत्मा में है, ज्ञान आत्मा में है, चारित्र आत्मा में है, इसलिए तीनों आत्मा ही हैं, अभेद दृष्टि। और भेद से अंगुली 5 हैं।..... इसलिए तीनों को जानो।

अप्पाणं चैव.....आत्मा ही जाना। किससे? णिच्छयदो.....निश्चय नय से। कैसे कहते हो समयसार समझ में नहीं आता? कितने अच्छे से सुन रहे हो। न कोई हिल रहा है न डुल रहा है। जब श्रावक बनके इतने अच्छे से सुन रहे हो, बड़ा अच्छा होता ये सब पिच्छी-कमण्डल लेकर सुनते। बड़ा अच्छा लगता। वो दिन भी विचार करो। गुरुमुख से जब मुनि बनकर सुनते आर्यिका बनकर सुनते..... अरे भैया! विचार तो करो, जाता क्या है? अमृतचंद्र स्वामी की टीका देखो। ये नैव हि भावेन आत्मा साध्यः।

जो आत्मा को भावे, वही साध्य है। यहां दो बातों की चर्चा चल रही है। साध्य साधन। भेद रत्नत्रय साधन है, अभेद रत्नत्रय साध्य है। सत्यता से है कि जितनी भी चर्चायें हैं शुद्ध सात्विक रूप भगवती-आत्मा की प्राप्ति के लिए हैं साधन है। और इस जीव ने परमानंद शालिनी चैतन्य मालिनी भगवती आत्मा को जाना ही नहीं है। ये आत्मा तो टंकोत्कीर्ण परमज्ञायकस्वभावी है। जैसे टंकी से पत्थर को क्या कर दिया? अब कितने भी तूफान चलें, वो समाप्त नहीं होंगे। ऐसे-ही परमपारणामिक भाव उद्घाटित हो गये आत्मा में अब वह आत्मा पुनः संसार में नहीं आयेगी।

'साध्यः साधनं च स्यात्तेनैवायं.....।' वह तीनों हो, नित्य ही उपास्यभूत हैं। 'इति स्वयमाकूय....।' ऐसा धारण करे, ऐसी प्राप्ति करें। ऐसा चिन्तन करें। परन्तु 'परेषां व्यवहारेण साधुना.....।'

व्यवहारनय से साधुपुरुषों को दर्शन, ज्ञान, चारित्र से उपदेश करो, वही सार्थकभूत है, वही उपासनीय है। बिना व्यवहारनय के निश्चय रत्नत्रय नहीं होता। ध्यान रखना। एक साधन है, एक साध्य है। जिसका प्रयोजन निश्चय रत्नत्रय है और जिसका फल निश्चय रत्नत्रय है, वह व्यवहार रत्नत्रय का भेष हो तो सकता है, पर व्यवहार रत्नत्रय नहीं हो सकता। बहुत कठिन है?

तन का धर्म बहुत सरल है, मन का धर्म बहुत कठिन है। तन के त्यागियों! करोड़ों-करोड़ों वर्ष बीत जाते हैं। हृदय से पूछा त्याग कितना है? ये भावावेश का मार्ग नहीं है, ये भावों का मार्ग है। ज्ञानियों! प्रत्येक जैनी की चर्या जैनशासन है। ये आवेग का मार्ग नहीं है, ये विवेक का मार्ग है। समझ में आ रहा है? आवेग में सब काम बिगड़ते हैं। इसलिए नित्य ही उपासना करनी चाहिए। इसलिए प्रतिपाद्यते..तानि .....वे तीनों हो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। परमार्थ हे ज्ञानी! निश्चयनय से आत्मा तो आत्मा ही है। श्रद्धान जिसमें है? ज्ञान क्रियायें किसमें हैं? प्रवृत्ति किसमें है? चर्या किसमें है? इसलिए अखण्ड ध्रुव आत्मा ही रत्नत्रय धर्म है। निश्चय से स्व श्रद्धा, स्वज्ञान, स्व चारित्र यही अभिन्न रत्नत्रय है।

अंतरंग व बहिरंग क्रियाओं का जहां निरोध हो गया है, वही निश्चय चारित्र है। परन्तु बहिरंग में अशुभ की निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति। ज्ञान चारित्र वो चारित्र है, क्योंकि इस सरस तत्त्व को सुनते-सुनते शांत हो जाता है, फिर वो भूल जाता है कि मैं क्या हूँ? वहीं लगता है मैं ऐसा ही हूँ।

वही ज्ञानी पाँचों इन्द्रियों का भोगी निश्चय चारित्र में लीन कैसे हो जायेगा? जब-तक पाँच पापों का त्याग नहीं करोगे, जब-तक पाँच व्रतों को धारण नहीं करोगे, तब-तक मनीषियों! वीतराग चारित्र को प्राप्त नहीं होगा। ये चतुर्थ गुणस्थान में लगाने का विषय नहीं है, ये 6वें गुणस्थान से प्रारंभ होगा। 18 हजार शील की पूर्णता कहां होगी? 14वें गुणस्थान में।

इसलिए आप मन में ही सोचिये। ऐसे कठिन विषय को हमें क्यों सुना रहे हो? उसका भी समाधान है। ज्ञानी! इतना गहरा सुनते जाओ-सुनते जाओ, तब मालूम चलेगा जैन तत्त्व कितना गहरा है?

जो अपने आप में सोचा रहे हैं मैं धर्मात्मा हूँ, तुम्हें मालूम चल जाये कि मैं कितना धर्मात्मा हूँ। अभी तो नजदीक भी नहीं है, छाया भी नहीं पड़ी। भैया! नदी के किनारे से निकलो तब दूर से शीतलता होनी चाहिए। अभी तो दूर की हवा की शीतलता है, तो अंदर कितना शीतल होगा? जब इसकी वायु इतनी शीतल है, तो इसका अंतरंग कितना शीतल होगा? हम तो आनंद ले रहे हैं, आपकी आप जानो, आपको थोड़े-ही सुना रहे हैं। उस परम तत्त्व को हम सुन रहे हैं। भगवान-आत्मा की साक्षात् देशना कुंदकुंद स्वामी के माध्यम से साक्षात् सुन रहे हैं।

ये भी उपदेश है। न हलन है न चलन है न कथन है, न कोई पुराण है, न कथा है, तब भी आपका समय हो गया। अहो मुमुक्षु! जब तत्त्व की चर्चा करते-करते एक घंटा हो गया... तब आप निर्णय कर लेना सर्वार्थसिद्धी के देव 33 सागर तत्त्व की चर्चा कैसे करते है? ऐसे-ही 33 सागर पूरे होते होंगे।

किचिंत विसंवाद हो जाये तो कैसा लगता है? हे भगवान! कब यहां से चला जाऊँ। 'दोष-वादे च मौनम्', दोष आने पर मौन ले लेना और तत्त्व की चर्चा हो तो मुखर हो जाना।

इतना समझते जाना कि समझ में नहीं आ रहा है। यदि इतना भी समझ लिया तो कभी अगली पर्याय में समझ लेना। इतना तो आनंद आ रहा है सुनने में, शांति मिल रही है।

शरीर की चर्या तो विश्व ने आँखों से देखी है, पर भावों का धर्म तो समयसार में लिखा है। शरीर का धर्म तो सबको दिखता है।

मोह का नाश तो शरीर के धर्म से नहीं होगा। भव का नाश तो परिणामों के धर्म से होगा। शरीर का धर्म स्वर्ग तो दे सकता है, पर मोक्ष तभी जाओगे जब शरीर के धर्म के साथ-साथ भावों का धर्म होगा। ऐसा भी मत समझना कि भावों का धर्म हो जायेगा। शरीर का धर्म नहीं होगा। शरीर का धर्म भी करना पड़ेगा। यही निश्चय व्यवहार है। इसलिए निश्चय से वस्तु अन्तरभाव...

उस वस्तु में अन्य वस्तु का अभाव है। आचार्य-भगवान ने तो गाथा में बोल दिया, पर अमृतचन्द्र स्वामी सरल भाषा में समझा रहे हैं।

वस्त्वन्तराभावाद् यथा देवदत्तस्य कस्यविद् ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं.....

एक कोई देवदत्त नाम का पुरुष है, दृष्टांत दे रहे हैं। उस रूप ज्ञान है, श्रद्धान भी करता है आचरण भी करता है। ये किसमें हैं? देवदत्तस्य, देवदत्त में। ज्ञानी! कितने विषय हो गयें? ये तीनों किसमें हैं? देवसन में। वैसे ही ज्ञान भी आत्मा, दर्शन भी आत्मा, चारित्र भी आत्मा। अभेद दृष्टि। कहने से भेद है, वस्तु एक है। दर्शन ज्ञान चारित्र ये भिन्न-भिन्न वस्तु है कि एक में है? एक में है। इसी प्रकार से ज्ञानियों! दर्शन, ज्ञान, चारित्र एक में है।

'स्वभावानतिक्रमा' स्वभाव को न छोड़ते हुए। देवदत्त एक ही है, अन्य नहीं है। तथा आत्मस्वभाव का अतिक्रमण न करते हुए। इसलिए आत्मा एक एवोपास्यए। इसलिए आत्मा ही उपास्य है। इति स्वयमेव प्रद्योतते ये परम निश्चय का कथन हुआ। अहम् एको खलु शुद्धो..... एक मैं ही हूँ, शुद्ध हूँ। बस, ज्ञानियों! एक कलश को पढ़ लो। फिर अन्तरंग में चिन्तन करना। जब समयसार पढ़कर जाओ तो पता है ज्ञानियों! कैसा लगता है?

1 घन्टे पढ़ने जाओ तो 3 घन्टे घर में बैठकर सोचना, चिन्तन करना कि मैं किससे हूँ, किसका हूँ, किसके लिए?

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

जो भी आत्मा है, वह परभाव से अत्यन्त भिन्न है। ज्ञानी जो मंदिर में बैठा हुआ है और घर पर कोई टक्कर माद दे, सच बताना भैया! हृदय कैसा कहेगा? न मकान की दीवाल शरीर थी, न आत्मा

थी। अत्यन्त भिन्न, अत्यंताभाव।

धिक्कार हो तेरी राग की दशा को। '**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**' यहां बोलने की आवश्यकता नहीं। जब कोई तेरे मकान की दीवाल गिरा दे, तब वहां खड़े होकर कहना। तब लगता है हां समयसार है। ज्ञानी! आज भोजन की थाली पर बैठना, और जब पत्नी नमक न डाले तो कहना धिक्कार हो नमक के टुकड़े पर।

धिक्कार हो। तू तीनलोक का नाथ, भगवत्स्वरूप है, नमक की डली मांगने बैठा? अरे ज्ञानी! इतनी पर्याय तो निकल गई नमक खाते-खाते। एक दिन तू न खाये तो क्या हो जाये? अब सोचिये। कैसे सोचिये?

आत्मं.........दर्शन ज्ञान चारित्रै....

दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनों एक आत्मा में एकत्वभूत हैं। इसलिये मेचक (एक अवस्था रूप) है और अमेचक (अनेक अवस्था रूप) है। प्रमाणतः........ एषां प्रमाण से जानना चाहिए। आत्मा अनेक अवस्था में है, एक अवस्था में है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रधान अपेक्षा आत्मा नानत्वरूप है। और एक ध्रुव अखण्ड चेतनत्व की अपेक्षा एकरूप है। इसलिए आत्मा एकरूप है ध्यान दो...

नाना ज्ञानस्वभावत्वा देका ऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैक-स्वभावत्वा-देकानेकात्मको भवेत्॥6॥

ये आत्मा नाना दर्शन-ज्ञान स्वभाव की अपेक्षा से नानात्व रूप है और चेतनत्व की अपेक्षा एकत्वभूत भी है। आत्मा एकरूप भी है और अनेकरूप भी है।

स्त्री कहती है मेरे पति हैं, बेटा कहता है मेरा पिता है, भगनी कहती है मेरा भाई है, माँ कहती है मेरा बेटा है; परंतु व्यक्ति एक है।

संबंधों की अपेक्षा से नानात्वभूत है और द्रव्यत्व की अपेक्षा से एकत्वभूत है। जैसे महामंत्र की आराधना करते हैं, वैसे-ही जाप कर लेना कि मेरी आत्मा का स्वभाव परभाव से अत्यन्त भिन्न है। एकमात्र एकत्वरूप चिदात्मस्वभावी मेरी आत्मा का स्वभाव है। अखण्ड स्वभावी आत्मा का परम भाव है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

॥ दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण ।

उत्थानिका - आगे इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्त द्वारा व्यक्त करते हैं।

गाथा - जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥17॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥18॥ (युगलम्)

संस्कृत छाया - **यथा नाम कोऽपि पुरुषो राजानं ज्ञात्वा श्रद्दधाति।
ततस्तमनुचरति पुनर्द्धर्थार्थिकः प्रयत्नेन॥
एवं हि जीवराजो ज्ञातत्यस्तथैव श्रद्धातत्वः।
अनुचरित पुनः स चैव तु मोक्षकामने॥**

अन्वयार्थ : **(यथा नाम)** जैसे **(कोऽपि)** कोई **(अर्थाथिकः पुरुषः)** धन को चाहने वाला पुरुष **(राजानाम्)** राजा को **(ज्ञात्वा)** जानकर **(श्रद्धाधाति)** श्रद्धान करता है **(ततः)** उसके बाद **(तं)** उसकी **(प्रत्यनेन अनुचरति)** अच्छी तरह सेवा करता है **(एवं हि)** इसी तरह (मोक्षकामने) मोक्ष को चाहने वाला **(जीवराजः)** जीवरूप राजा को **(ज्ञातव्यः)** जाने **(पुनः च)** और फिर **(तथैव)** उसी तरह **(श्रद्धातत्यः)** श्रद्धान करे **(तु च स एव)** उसके बाद **(अनुचरितव्यः)** उसका अनुचरण करे और तन्मय हो जाये।

''समय देशना''

आचार्य-भगवान कुंदकुंद स्वामी ने ग्रन्थराज समयसार में अलौकिक सूत्र प्रदान किए। द्रव्य की त्रैकालिक द्रव्यता का जो व्याख्यान इस द्रव्यानुयोग के महान् ग्रंथ में है, वह अन्यत्र नहीं है। अपने आप में छहों द्रव्य स्वतंत्र हैं, कोई द्रव्य परतंत्र नहीं है। अहो जीव! तेरा जीवत्वभाव स्वतंत्र है, स्वछंद नहीं है, परंतु आज रागादिक भाव करके स्वच्छंद हो रहा हैं। लेकिन, विश्वास रखना, रागादि भाव कर लेगा, फिर भी परतंत्र ही रहेगा। कभी भी जीवत्व भाव पुद्गलत्व को प्राप्त नहीं होता है, इस दृष्टि से जीव त्रैकालिक स्वतंत्र है।

जब-तक असमान-जाति-पर्यायों में भटक रहा है, तब-तक परतंत्र है। असमान-जाति-पर्याय, समान-जाति-पर्याय तो पर्यायें हैं। एक निज ज्ञान-चैतन्यस्वभाव ध्रुव आत्मद्रव्य है।

ज्ञान-दर्शन आदि समान-जाति गुण-पर्याय है, स्वभाव-पर्याय है और द्रव्यत्व है। नोकर्म वर्गणाएँ आदि यह जीव की असमान-जाति पर्याय है। असमान जाति पर्याय त्रैकालिक नहीं रहेगी, नियम से विनाश होगा। असमान जाति पर्याय को त्रैकालिक रखने का सौभाग्य मात्र अभव्य को ही प्राप्त होता है। भव्य तो असमान-जाति पर्याय का विनाश करके मुक्त-अवस्था को प्राप्त कर लेता है। अहो आश्चर्य! मेरा स्वभाव त्रैकालिक था, उससे तो जीव दूर हो गया है और जो कभी विनशेगा, उससे राग कर रहा है।

'समयसार' जब भी पढ़ना, ध्यान रखना, जो मैं अनुभव कर रहा हूँ, उसे परिपूर्ण रूप से कह नहीं पा रहा हूँ। बद्ध को बद्ध कहने वाले, बद्ध को बद्ध स्वीकार करने वाले, बद्ध में लीन होने वाले अधिक हैं, परंतु बद्ध अवस्था में निर्बद्ध को निहारने वाले जीव कम हैं। बद्ध में भी निर्बद्ध को देखिए।

पुनः ध्यान दो। ज्ञानी! दूध में शक्कर घुली हुई है। शक्कर, शक्कर है; दुग्ध, दुग्ध है। दोनों घुले होने पर भी दोनों एक नहीं हैं। जीव मोहवश कहता है कि दूध मीठा है। ज्ञानी! दूध मीठा है, कि शक्कर मीठी है? बस, अब समझ में आ रहा है समयसार। मुमुक्षु! पर को निज कहते-कहते अनंत पर्यायें निकल गई तेरी। यह छोटा-सा बालक बैठा सुन रहा है। बताओ, ज्ञानी! दूध मीठा होता है या शक्कर मीठी है?

माँ से कहता है, दूध फीका क्यों दिया? बेटा! दूध फीका ही था, तू भूल गया। दूध को मीठा कहते-कहते समय कितना निकल गया। आज तक दूध के स्वाद को चखा ही नहीं।

सोपाधिक दशा में पूरी जीवनलीला समाप्त कर ली और शुद्ध दूध के माधुर्य को चख भी नहीं पाये। बूरा डालते हो। दूध में बूरा न मिले तो दूध को बुरा कहते हो। ज्ञानी! विभाव भाव की अनुभूति लेते हुए तुम शुद्धात्मा की अनुभूति को समझ ही नहीं पाये। बूरे की अपेक्षा से फीका है, पर दूध तो मीठा ही है।

भोगियों की अपेक्षा से योग फीका है, परंतु योग तो मीठा ही है। देखो स्वाध्याय हो रहा है, पंखा भी नहीं चलाने दे रहे हैं। भोग की दृष्टि से फीका है, परंतु योग की दृष्टि से ज्ञानी! यह फीका नहीं, नीका है। दुग्ध में शक्कर निरुपाधिक भाव नहीं, सोपाधिक भाव है। दुग्ध का मधुर रूप निरुपाधिक है। वही स्वाभाविक है। दूध में जो मीठा है, वह अस्वाभाविक है, असहज है, सोपाधिक अवस्था है।

अशरीरी सिद्ध पर्याय निरुपाधिक है। पर-उपाधि से रहित होने से निरुपाधिक है।

ज्ञानी! कभी-कभी दूध जलाता भी है। ''दूध'' जलाता है क्या? यदि दूध जलाता होता तो फिर दूध को कोई निकाल ही नहीं पाता। फिर तो दुग्धपान से पेट जल जाए। परंतु अग्नि पर रखा दूध जलाता भी है। सत्य बताना, दूध जला रहा था कि दुग्ध में सोपाधिक अग्नि का सद्भाव जला रहा था?

ज्ञानी! अग्नि को बुझाओ या न बुझाओ, दूध को अग्नि पर से हटा लो, तो दूध अपने स्वभाव में आ जायेगा। दूध जला रहा था, तो दूध को फेंक देना चाहिए न? अरे! दूध को फेंक देता तो पीयेगा क्या? ज्ञानी! दूध नहीं, सौपाधिक दशा जला रही है। ज्ञानी! प्रत्येक जीव भगवान् है, सौपाधिक-दशा कषाई है, वह जला रही है। कषाय हट जाए, तो भगवान् बन जाए। ज्ञानी! याद रखना, जो कषाई है वही तो भावी भगवान् है। अच्छा, असिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है कि सिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है? न्याय की भाषा बोलिए।

जो आज कषायी या विसंवादी दिख रहे हैं, तो उनसे घृणा नहीं करना, क्योंकि ये ही भविष्य के पूज्य भगवान् बनेंगे। न मानो तो मारीचि से पूछो। जो पूर्व में मिथ्यादृष्टि था, आज वही महावीर है।

यह है सामान्य दृष्टि। हे माँ! दूध गर्म है, तो दूध को फूँकना नहीं। तूने फूँकने के साथ कितना सारा थूक डाल दिया। अशुद्ध कर दिया। ज्ञानी! तुझे भूख लगी थी, तूने पत्नी से खीर बनवाई, खीर गर्म थी, तो तू गुस्सा करने लगा। मुमुक्षु! तू थोड़ा रुक जाता, माला फेर लेता। गर्म खीर तो सोपाधिक थी, तू गर्म क्यों हो रहा है?

जो बातें यहाँ समयसार में सुन रहे हो, ये बातें घर का समयसार बनकर समझ में आ जाएँ तो घर-घर में लड़ाई, झगड़ा बंद हो जाए। जब व्यवहार-समयसार नहीं है, तो निश्चय-समयसार कैसा? जिसका व्यवहार में साम्यभाव नहीं, तो निश्चय साम्यभाव होगा क्या? 'समयसार' की अनुभूति लेना हो, तो घर में साम्यभाव से रहो। थाली में नमक नहीं हो तो तू लाल मत होना। यहाँ आपको लगाना चाहिए वस्तुस्वरूप।

धिक्कार हो। 'पर के राग में मिर्च में चरपरापन कम है, चेहरे पर ज्यादा है। आप की भाषा जानता हूँ। ज्ञानी! कहते हो कि संसार में रहना है तो संसार-जैसा करना तो पड़ेगा। तो विश्वास रखो, संसार में संसारी बनकर रहोगे, तो नरक में भी जाना पड़ेगा।

जो संसार में असंसारी बनकर रहता है, वह संसार से उठकर साधना करता है, तो वह अशरीरी बन जाता है। 'महाराज! बनना तो साधु है, पर पूर्व के संस्कार हैं।' ज्ञानी! संस्कार हटाने का नाम साधु

है या संस्कार पाने का नाम साधु है? तू ऐसा कह रहा कि पूर्व के संस्कार हैं, मतलब तू अपनी प्रवृत्ति में संतुष्ट है; अब तू तो आगे नहीं बढ़ सकता। संतुष्ट नहीं होना है, इसे हेय दृष्टि से देखना है। हे खोटे संस्कारो! पानी का कलश गिर जाए, चोट लग जाए, तो क्या बोलते हो? कलश जमीन पर गिरा, पिचक गया, तो ठीक करते हो या फेक देते हो या कि उठाते हो और ठीक करते हो? संतुष्ट नहीं होना चाहिए, हटाना चाहिए। भगवान से बोल रहे हो, हमसे बोल रहे हो कि अपने-आप से बोल रहे हो, किससे बोल रहे हो?? सारी दुनिया निराली है, घर में झगड़ा करते हो, मंदिर में भगवान् से क्षमा मांगते हो। ज्ञानी! भगवान् को नहीं पीटा, भैया को पीटा, तो भैया से क्षमा माँगो। वह भाई भी तो भगवानात्मा है।

यह कागजों का समयसार काम में नहीं आएगा। यह द्रव्य-श्रुत है, भावश्रुत का साधन मात्र है। भावों की विशुद्धि ही काम आएगी।

आज से घर-घर में, घट-घट में समयसार देखना प्रारंभ कर दो। समयसार सुन रहे हो तो, हे बहू! घर जाकर सास के पैर छू लेना, और हे सास! घर जाकर बहू के पैर छू लेना, प्यार से बोल लेना। द्रव्यदृष्टि से किसमें भेद है? सब जीवद्रव्य हैं। क्या पता किसकी यात्रा पहले निकल पाए। ज्ञानी! शरीर का धुँआ निकले, उससे पहले कषाय का धुँआ निकाल देना। समयसार पढ़ रहे हो, तो घरों मे ंअंतर आ रहा है क्या? घर-घर में आवाज कैसी आ रही है, जरा घूम आना। रास्ते से जाते हो और घंटी की आवाज सुनायी दे तो समझ जाते हो कि मंदिर है। जब किसी मकान के पास से गुजरो और लड़ाई की आवाजें सुनाई दें, तो समझना नारकियों का स्थान है और जिस घर के बाहर से गुजरो और शब्द सुनाई दें, '**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**' समझना मुमुक्षु का घर है। लेकिन वह आवाज कहीं णमोकार की मशीन की तरह न हो कि मशीन चालू कर दी और लड़ते रहे। ज्ञानी! मशीन नहीं, मन की आवाज से मोक्षमार्ग बनता है।

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥17॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥18॥

आचार्य भगवान् समझा रहे हैं- मुमुक्षुओं! परमशुद्ध तत्त्व को समझना है तो पृथकत्ववाद पर दृष्टिपात करो। सबसे कठिन साधना शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं नहीं है। शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, नित्योहं, निरंजनोऽहं यह चिंतन सरल है। तो फिर कठिन क्या है? पृथकत्वस्वरूपोऽहं, निजभावस्वरूपोऽहम् परभाव भिन्नोऽहम्।

ज्ञानी! एक लाख की गड्डी लाया था घर, पत्नी को दी, पत्नी ने अलमारी में रख दी। बेटे ने खेलते-खेलते चूल्हे में फेंक दी। उस समय परिणाम क्या होते हैं? ज्ञानी! शब्दों का धर्म भिन्न है एवं वस्तु का धर्म भिन्न है। देखो, मैं और मेरे में और नोटों में अत्यंताभाव है। नोटों के जलने से मैं, मेरी आत्मा नहीं झुलसती है। जलते नोटों को देखकर मेरे हृदय में समता का पानी बरसे, तब समझना कि तू भिन्न-स्वभाव को समझ चुका है। पृथकत्व भाव है तो समयसार समझ चुका है। ज्ञानी! निज भाव में जीन के लिए समयसार है।

आप यहाँ निकालकर आते हो तो मैं चाहता हूँ कि आपके समय का सदुपयोग हो। जगत से तो अनंतबार परिचय किया, आज निज से परिचय कर लो, इसलिए समयसार है। मन में कुछ गूँज रहा है कि नहीं? पृथकत्वोऽहम् के चिंतन के साथ आठ-आठ, दस-दस भव तीर्थंकरों को साधना में लग गए।

ज्ञानी! जगत् को अपना बना लेना कठिन नहीं है, यह तो राग है; परन्तु जगत में अपने बनकर रहना कठिन है। तुम भटक जाते हो। समयसार ग्रंथ का राग भी समयसार नहीं दिला पायेगा तो परसमयों का राग समयसार कैसे दिला पायेगा?

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥ 150 स.सा.॥

राग बंध कराता है, वीतरागता की सम्पत्ति ही राग से छुड़ा पायेगी, ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। इतना तो समझ में आ रहा है कि हाय-हाय! यह क्या किया? कैसे चलेंगे घर जाकर काम करने में हाथ? क्योंकि जो-जो काम हैं, सब बंध के ही कार्य हैं।

हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओगे, तो कर्मों से मुक्त हो जाओगे। यह अप्रमत्त दशा की दिशा है। बंध को बंद करना है, तो प्रमाद को बंद करो। सम्यक्त्वाचरण/संयमाचरण नहीं होगा तो स्वरूपाचरण कैसे होगा? मुझसे नहीं पूछना, स्वयं से पूछना मेरी प्रवृत्ति क्या है? शांति जो यहाँ मिल रही है, कहीं नहीं मिल सकती। तुम द्रव्य से बड़े-बड़े मंदिर बनवा सकते हो परंतु शांति नहीं बनवा सकते। शांति को खरीदा नहीं जाता, वह तो स्वतः प्राप्त होती है। प्रभु! ऐसे-ही सुनते-सुनते सुनना बंद हो जाए, तो क्या कहना। ऐसी भावना बना लेना कि ऐसा भी दिन आ जाए जब साक्षात् जिनबिम्ब विराजे हों, निर्ग्रंथ गुरु विराजमान हों, समयसार ग्रंथ का श्रवण कर रहा होऊँ और प्राण निकल जाएँ, तो परंपरया निर्वाण प्राप्त करेगा।

कोई-न-कोई तो वस्तु है, जो शांत कर देती है, वह वस्तु ही स्ववस्तु है। सबसे कठिन भिन्नत्व/

पृथकत्व-भाव है। सबके बीच में रहकर भी पृथकत्व भाव का चिंतन करना। निज की स्वतंत्रता का ज्ञान हो जायेगा तो सारा संसार दिख जाएगा, तो मृतक भी दिख जाए तो भी आँसू नहीं आयेगा। आँसू वही बहाता है, जिसे भिन्नत्व का ज्ञान नहीं है।

ज्ञानी! कण-कण स्वतंत्र है, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। तुम्हारा राग परतंत्र किए है। यह साधना करो आज। वे परम दिगम्बर तपोधन, दीक्षा के बाद, क्या करते हैं? गृहस्थ तो गृहस्थी में रमा रहता है, सबसे बड़ी साधना कोई है, ज्ञानी! मुनि बनना कठिन नहीं है, एक घण्टे में मुनि बना जाता है। केशलौंच किए, वस्त्र उतारे, पिच्छि ली और बन गए मुनि। परंतु मुनि एक घण्टे के लिए नहीं, जीवनपर्यंत के लिए बना जाता है। दीक्षा लेकर मुनि क्या करते होंगे?

आपने लकड़ी का कीड़ा देखा है, गेहूँ का घुन देखा है? गेहूँ, ऊपर से चमक रहा होता है, परन्तु अंदर से खोखला हो जाता है। घुन गेहूँ को खोखला कर देता है। वैसे-ही मुनि/दिगम्बर तपोधन बाहर से बाहरी से संसारी जीवों के बीच में रहते दिखते हैं, परंतु अंदर से कर्मों को काट रहे है, कर्मों को खोखला कर रहे हैं। यह अंदर की साधना है। बाहर की साधना दिखती है, चाक्षुष है; अंदर की साधना दिखती नहीं है, अचाक्षुष है।

भीतर की साधना कठिन है। मंदिर बनवाने के भाव आयें तो ज्ञानी! जितने निर्माण आदि कार्य करवाने हैं, अभी करवा लेना, मंदिर/मठ बनवा लेना; परंतु जिन-मुद्रा धारण करके यह सब मत करना। किसी सेठ के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाना। यह भिखारी का वेश नहीं है। श्रमण संस्कृति में भिखारी नहीं होते। जैन संस्कृति में साधु एक कटोरा तक नहीं रखते, सिंहवृत्ति से निकलते हैं। ज्ञानी! इस पर्याय को ईंट-चूने में व्यर्थ मत करना। सोचता था कि साधु बनकर मंदिर बनवाऊँगा। अरे ज्ञानी! मंदिर बनवाकर साधु बनेगा तो तीव्र पुण्य का बंध करेगा। साधु बनकर मंदिर बनवाने में लग गए तो अशुभ आस्रव होगा। जिनशासन अद्‌भूत है।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं- जैसे कोई पुरुष, राजा को, जानता है। अरे भाई! भीख भी माँगने जाओ तो भिखारी के घर में जाओगे क्या? 'भिखारी' भिखारी के घर में भीख माँगने नहीं जाता है। अज्ञानी लोग जो जगत में स्वयंभू के नाम से भटक रहे हैं, दस्सी, पंजी, सवा रुपैया माँग रहे हैं, उनसे तुम भीख माँग रहे हो।

जिसका स्वयं का हाथ हिल रहा है, उस डॉक्टर से कहना मेरा इलाज कर दो, वो क्या इलाज करेगा? जो स्वयं संसार में भटक रहा है, वस्त्र आदि से अलंकृत है, रागी है, वह तुम्हें भगवान् क्या बना पायेगा? वह स्वयं तो भिखारी है। जगत् में भटक मत जाना।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।

अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

व्यवहारनय से केवल चार शरण हैं। निश्चय से केवल एक निज शुद्धात्मा ही शरण है। तो आज से कहीं नहीं जाओगे। जिसको मरने से ड़र लगता है, वही मिथ्यात्व की पूजा करता है। एक निर्णय हो जाए 'होता स्वयं जगत परिणामं'। कठिन लग रहा है क्या? यही तो सरल है। निज का निर्णय करते हुए समयसार समझिए। जो निज निर्णय के बिना तत्त्व-के उपदेश कर रहा है या सुन रहा है, वह पढ़कर अलमारी में बंद करके काम में लग जाता है। यह धर्म नहीं। जिनवाणी पढ़कर मनमानी नहीं करना। निज में लीन होना ही धर्म है।

ज्ञानी! शरीर तो अपने-आप ही बदल जायेगा, परिणति को बदलो।

जैसे कोई पुरुष पहले राजा को जानता है, फिर श्रद्धान करता है कि यह राजा है, फिर उसके अनुकूल आचरण करता है। राजा से श्री चाहिए तो राजा के अनुकूल चलना पड़ता है।

कहना क्या चाह रहे हैं आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी? कि यदि राजा से कुछ पाना है तो राजा के अनुकूल आचरण करना है, उसी प्रकार यह जीव राजा है। कौन जीव? मेरी आत्मा जो बोल रही है, उसे जान लो, तो बोलना बंद हो जाए। मैं सिर्फ मैं हूँ। यह दादा, पिता, पत्नी, पति सब शुद्ध नाटक है। शुद्ध पागलपन है।

न शिष्यो-गुरुर्नापि, हीनं न दीनम्।
चिदानंदरूपं नमो वीतरागम्॥

न शिष्य है, न गुरु है, न हीन है, न दीन है। एक चिदानंद स्वरूप ही वीतराग स्वरूप है। इस भूमिका को प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है।

ज्ञानी! शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि डालो, द्रव्य की स्वतंत्रता पर दृष्टि डालो, तो काम बन जाए। राग की धारा बह रही है। ज्ञानी! बगल में जो बैठा है वह सगा है, पीछे कोई अन्य है। जैसे अन्य, अन्य है, वैसे सगा भी अन्य है। जैसे पड़ौसी तेरे साथ नहीं जायेगा, पुत्र भी तेरे साथ नहीं जायेगा। पड़ौसी आग नहीं लगायेगा। पुत्र तो सिर पर लाठी मारके आग लगा देगा। इतने वृद्ध लोग विराजे हैं, एक बालक भी बैठा है, वह कितना भाग्यवान् है। तुम 80 वर्ष में सुन रहे हो, वह 11-12 वर्ष की उम्र में तत्त्वनिर्णय करने बैठा है। बैटा! निर्णय करना तो पक्का निर्णय करना। पिता या दादा की तरह नहीं। यह तो राग को बढ़ाते

हैं। कहीं लाना ही बंद कर दें, तब भी कोई बात नहीं, घर में रहना और तत्त्व समझना।

अहो! इस प्रकार जीव राजा को जानना चाहिए, उसका श्रद्धान करना, उसका अनुकरण करना चाहिए। जीवद्रव्य को जानो और तदनुकूल आचरण करो। ज्ञानी! इसके लिए रत्नत्रय चाहिए। रत्नत्रय के बिना जीव-राजा से भेंट नहीं हो सकती। किसलिए? मोक्ष की कामना से वह जीव-राजा की भक्ति करता है, द्रव्य पाने के लिए तुम जीव राजा का अनुशरण करो, ताकि मोक्ष-सम्पदा प्राप्त हो सके। सत्य है, शरीर की साधना स्वर्ग तो दिला सकती है, परंतु मोक्ष नहीं दिला सकती। मोक्ष तभी होगा, जब वाह्य के साथ भीतर की साधना होगी। स्थानांतरण करने से मोक्ष नहीं मिलता। नगर को छोड़ जंगल में जाकर कुटिया बनाकर रहने लगा तो, ज्ञानी! स्थानांतरण हुआ है, भवांतरण कहाँ हुआ है? मुनि बनकर भी कहे कि अमुकसागर ऐसे, अमुकसागर वैसे, उन्होंने ऐसा बोला, तो साधु बना क्यों? मंदिर आकरके तूने माली-पुजारी को देखा, तो भगवान से बड़े माली-पुजारी थे क्या? क्या देखा? मंदिर के बोर्ड पर लिखा अमुक व्यक्ति मर गए। जो दर्शन करने आया, पढ़ा, तो डिब्बी वहीं छोड़ दी। पहले दर्शन कर आते तो अच्छा था। ये मृतक का कोई रिश्तेदार था, तो वहीं रोने लगा। वह जीव भक्ति करने आया था और बिना मन के सिर पटकके चला गया। बोर्ड पर यह नहीं लिखना चाहिए। यहाँ घर की नहीं, पूरे देश की यही व्यवस्था है; परन्तु सब अव्यवस्था ही है। अब कितना मन लगेगा उसका दर्शन में? धीरे-से सिर पटक कर चला गया। महाकवि धनन्जय कुमार, धन्य है वह जीव। भक्ति करते हुए समाचार मिला कि पुत्र को सर्प ने डस लिया, तो विचार करता है कि काम-पुरुषार्थ का फल तो चला गया। धर्म-पुरुषार्थ को क्यों छोड़े? बेटे को कालिया नाग ने डस लिया, पत्नी के खबर भिजवाने पर जब धनन्जय नहीं आए, तो पुत्र को लाकर उनके समक्ष रख दिया। धनन्जय कहते हैं- हे भगवन्! मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस, मेरी भक्ति की लाल रखलो। गंधोदक का छींटा लगाया, बेटा उठकर खड़ा हो गया।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः।

विष निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

जिनेश्वर का स्तवन करने मात्र से विघ्न, प्रलय, शाकिनी, डाकिनी, भूत भग जाते हैं। विष निर्विष हो जाता है, पढ़ने से न? तो फिर क्यों भटकते हो?

मन बनाकर बैठना। समयसार में प्रवेश हो या न हो, समयसार की चर्चा में प्रवेश तो है ज्ञानी! जब-तक अनुभूति नहीं ले रहा है, तब-तक सम्यक्त्व नहीं हो रहा है। अनुभूति के बिना स्वाद कैसा, और फिर स्वाद के बिना आनंद कैसा? कोई बालक मुख में कच्चा आम दबाकर जा रहा है, देखकर तुम्हारा मुख खट्टा हो रहा है। दूसरे के मुख की खटाई देखकर मुख खट्टा होने लगता है।

ज्ञानी! साधु को देखकर साधु बनने के भाव नहीं हुए तो क्या भाव हुए? तो आनंद कहाँ है? सत्य यही है कि परभावों से रिक्त होकर साधना है, तो साधु से बड़ा आनंद नहीं है। परभावों में लिप्त होकर साधना की, तो साधु से बड़ा कहीं कोई दुःखी नहीं है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्य भगवान कुंदकुंद स्वामी ने ग्रन्थराज समयसार में अलौकिक सूत्र प्रदान किए हैं कि दृष्टि जब-तक परदृष्टि है। परा-दृष्टि अर्थात् द्रव्यदृष्टि। पर्यायदृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि। जितना समय जीव ने पर्याय को दिया है, उतना समय यदि द्रव्य को दे देता, तो असमान-जाति पर्यायों का समापन हो जाता। क्या करें? समझ में आना भिन्न विषय है, ज्ञान होना भिन्न विषय है और अनुभूति में आना भिन्न विषय है।

एक ज्ञान वह है जो जानकर जाना जा रहा है और एक ज्ञान वह ज्ञान है जो अनुभव करके जाना जा रहा है। सत्यार्थ- ज्ञान अनुभव-ज्ञान है, अर्थात् जाननभूत ज्ञान। शेष ज्ञान 'जानकारी' है। जब-तक परज्ञेय के लिए स्थान है, तब-तक संपूर्ण ज्ञान तो अज्ञान है। यह समयसार है, ध्यान रखना।

शुद्ध-ज्ञान तो मात्र उतना है, जितने ज्ञान में मात्र ज्ञाता ही ज्ञेय है। जब ज्ञान में पर-ज्ञेय हो, तो वह अशुद्ध ज्ञान है, मिश्रधारा है। महाराज! ऐसा भी होता है क्या? ज्ञानी! ऐसा ही होता है। तभी भगवत् दशा को प्राप्त होता है। आत्माज्ञान उतना है, जितने ज्ञान में पर-ज्ञेय-भाव का अभाव है। पुनः ध्यान दीजिए- शुद्ध दाल का स्वाद तूने चखा है क्या? इतना तू महान आज तक नहीं हो पाया, इतना ज्ञानी नहीं हो पाया कि शुद्ध दाल का स्वाद चख लिया हो। ज्ञानी! दाल स्वादिष्ट है या बघार से स्वादिष्ट हुई है, कि नमक-मिर्च पड़ी है इसलिए स्वादिष्ट हुई है? ये परद्रव्यों के संयोग-भाव को न समझ करके, तू दाल का स्वाद कह रहा है।

यही है तत्त्व की भूल। यदि आप मेरे शब्दों को सुनकर आनंदित हो रहे, और ऐसा कहो कि महाराज! समयसार का क्या आनंद आ रहा है। अहो ज्ञानी! यह तो तू विशुद्धसागर के मुख से निकली शब्द-वर्गणाओं को सुनकर आनंद ले रहा है। शुद्ध समयसार सुनने का नहीं, समयसार तो स्वानुभूति का विषय है। यह जो मैं कह रहा हूँ, तो वह शब्दसमूह को समेटकर है। आत्मब्रह्मा स्वात्मानुभूति है। पुनः वापस आइए- शुद्ध दाल का स्वाद कैसा होता है? क्यों माताओं! आप तो बनाती हो, आपने चखा? एक-भी मुमुक्षु नहीं कह रहा कि शुद्ध दाल का स्वाद चखा है। समझो, ज्ञानी! जो-जो दाल तुम्हें परोसी जाती है, वह अशुद्ध करके परोसी जाती है। जितनी अधिक अशुद्ध होगी, उतनी ही अधिक अच्छी लगेगी। यही राग की दशा है। जितनी परज्ञेयों में तेरी दृष्टि जाती है, उतना तू स्वयं को ज्ञानी मानता है। परंतु शुद्ध ज्ञान उतना ही है, जहाँ निज ज्ञेय निज ज्ञाता भाव है। मैं ही प्रमाता, मैं ही प्रमेय, मैं ही प्रमाण, मैं ही प्रमाण, मैं ही प्रमिति। जहाँ इस भेद का अभाव है, वहीं शुद्ध ज्ञान है।

ज्ञानी! सँभलकर सुनो। समयसार पचाना पड़ेगा। यदि तेरे ज्ञान में नारी आ रही है, तो वह तो अशुद्ध ज्ञान है ही, परन्तु द्रव्यानुयोग कह रहा है कि यदि परमात्मा आ रहे हैं, तो वह भी अशुद्ध ज्ञान है। यह क्या कह दिया? अब यदि व्यवहार से कथन नहीं किया, तो तुम छटपटा जाओगे। ज्ञान में नारी आ रही है, तो अशुभोपयोग है और यदि ज्ञान में भगवान् आ रहे हैं तो शुभोपयोग है। परंतु शुद्धोपयोग नहीं है। अन्यथा फिर लोग कहेंगे कि नारी को भगायें क्यों? ज्ञान में स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद झलक रहा है, तो वह परद्रव्य है, अशुभ ज्ञान है, अज्ञान है। ज्ञान में यदि मात्र पुरुष झलक रहा है, तो वह शुद्ध ज्ञान है, वह आत्मज्ञान है। कौन पुरुष? ज्ञानी! मैं इन पुरुषों की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं उस पुरुष की बात कर रहा हूँ, जो आत्मरूप है।

अस्ति-पुरुष-चिदात्मा, विवर्जित स्पर्श-रसगंधवर्णैः।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित जो चेतना आत्मा है, उसको पुरुष समझना चाहिए। अस्थि मज्जा आदि से युक्त यह पुरुषभेद है। यदि 'पुरुष' में रम जाए, तो वेद में दृष्टि ही न जाए। तुम वेद में रम रहे हो, तो वेदना हो रही है। मुझे नहीं देखो; जो देखनहार है, उसे देखो। मुझे मत देखो। मुझे मत सुनो; उसे सुनो जो सुननहार है। उसे ही ज्ञान का विषय बनाइये। शुद्ध ज्ञान उतना मात्र है, जिसमें पर-ज्ञेय का किंचित् भी स्थान नहीं है। मैं आपकी भाषा में बोलता हूँ।

जिसके मन में मन का भी विकल्प न रहे, वह आत्म मन है। जिनेन्द्र के चरणों में बैठे-बैठे, जिनेन्द्र को निहारना बंद हो जाए, वह आत्मज्ञान है। चिंतन ही चित्त में न रहे, चिंतन ही चित्त से चला जाए, इसका नाम आत्मज्ञान है। जब चिंतन की ही चिता जल जाए, वह आत्मज्ञान है। जब-तक चिंतन है, तब-तक राग-द्वेष है। बुद्धिपूर्वक चिंतन करना तो राग-द्वेष को बढ़ाना है। शुद्ध समयसागर का व्याख्यान बहुत कठिन है। यह तो व्याख्यान है, व्याख्येय तो इन सबसे शुन्य है। वही परम व्याख्येय है, जो किसी के व्याख्यान में न आए। व्याख्याता व्याख्येय का व्याख्यान न करके, व्याख्याता ही व्याख्येय में लीन हो जाए, वह परमतत्त्व है। जो इन नयनों से दिखायी नहीं दे रहा है, परंतु अनुभव में आ रहा है, जो जगत से भिन्न है, वह चित्-ज्योति है। 'सर्व भावांतरच्छिदे', वह आत्मद्रव्य है। छह द्रव्यों में जो परम उपादेयभूत है, वह आत्मद्रव्य है जो कि त्रैकालिक स्वतंत्र है, परंतु परभावों में लिप्तता के कारण परतंत्र है। अपने स्वभाव में जीव परतंत्र कब हुआ? यही तो भूल चल रही है। व्यवहाराभावी वाले आत्मा की स्वतंत्रता को नहीं मानते और निश्चयाभासी वाले परतंत्रता को नहीं मानते।

'अनादि संबंधे च' सूत्र कह रहा है कि तू परतंत्र है। लेकिन सोने की डली को मल में फैंक दो, उस पर कीचड़ जम चुकी है। आँखें कहेंगी कि सोना मैला है। ज्ञानी! सोना मैला है कि मल मैला है?

मल का मैलापन सोने पर है, तो व्यवहार से कहते हैं कि सोना मैला है; परंतु सोना नहीं, मल मैला है।

ज्ञानी! आप कौन-सा पानी पीते हो? नाली का पानी तो नहीं पीते?

कोई नाली का पानी कह रहा है, कोई मटके का पानी कह रहा है, कोई फ्रिज का पानी कह रहा है; परन्तु वस्तुतः पानी किसी का था ही नहीं। पर के द्रव्य को लेकर अपना कह रहा है। कुँए से निकले पानी को अपना कह रहा है। अपने घर के घट के संयोग से पानी को अपना कह रहा है। ऐसे-ही पानी मैला नहीं है, मल के मैलेपन से पानी मैला है। ज्ञानी! फिटकरी डाल दो, फिल्टर कर दो। ज्ञानी! कौन-सा पानी पी रहे हो? घर-घर की नाली से नालों में जा रहा है, नालों से नदी में जा रहा है, पुनः घर के नलों में आ रहा है। द्रव्य तो त्रैकालिक है। जितना है, उतना ही है। अधिक कहाँ से आए? किसी परिवार के एक सदस्य की मृत्यु हो गई, तो उसका अन्यत्र जन्म हो गया। किसी घर में एक सदस्य घट गया, तो कहीं-और एक सदस्य बढ़ गया। विश्व में कोई बढ़ा-घटी नहीं है। जीवों की रचना नहीं हुई है, स्थानांतरण हुआ है। अनादिकाल से एक भी सदस्य घटा-बढ़ा नहीं है। इतना हो सकता है कि निगोद में थे, तो अब त्रस हो गए या सिद्धशिला पर पहुँच गए हैं। उतने ही हैं। अज्ञानी रोते हैं। ज्ञानीजीव तत्त्व जानता है, वह रोता नहीं है।

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो यति सहेतुकम्॥ 59 आ.मी.॥

आचार्य समन्तभद्र स्वामी 'देवागम स्तोत्र' में कह रहे हैं कि एक राजकुमारी है, एक राजपुत्र है। राजपुत्र चाहता है कि स्वर्ण का मुकुट बने, परन्तु राजकुमारी चाहती है कि कलश बने। कन्या चाहती है कलश। पुत्र चाहता है मुकुट। स्वर्णकलश मिटाकर मुकुट बनाया तो कन्या उदास है और पुत्र खुश है कि मुकुट बन गया। सम्राट शांत बैठा है, क्योंकि कन्या मेरी है, पुत्र भी मेरा है। चाहे कलश बने चाहे मुकुट बने, सोना मेरे घर का है। तत्त्वज्ञानी-जीव के लिए चाहे परिजन ऊपर जाए, चाहे नीचे जाए, वह मस्त होकर निहारता है। जीवद्रव्य कहीं जाता नहीं है। यदि इतना धैर्य है, तो समयसार सुनना। नौजवान बेटे का देहांत हो जाए और पिता निज को निहार रहा हो, तो समझना तेरा पाण्डित्य सत्य है। क्योंकि पर्याय यहीं पड़ी है, द्रव्य चला गया है। वह द्रव्य कभी नष्ट होता नहीं। हाँ, राग की पुष्टि नहीं हो पाई।

मैं जानता हूँ कि मेरी बातें आपको इस भवन तक ही अच्छी लगती हैं। घर जाओगे कहोगे व्यवहारिकता से शून्य हो जायेगा। व्यावहारिकता को शून्य करना ही समयसार है। परंतु साधना को शून्य करना समयसार नहीं है। यह व्यावहारिकता लोकाचार है, लोकोत्तराचार नहीं है। ज्ञानी! लोकाचार में क्या नहीं होता। समझो और सँभलो। बिल्ली को कब तक टोकनी में दबाते रहोगे? अरे ज्ञानी! तेरी शादी

हो रही थी, पत्नी घर आती है तो सब देखती है। तुम्हें लगता है कि कुछ नहीं देखती, पर वह घूँघट उठा-उठा कर अपने नए परिवार के रीति-रिवाजों आदि को देखती है। हुआ क्या कि जिस दिन वह आई थी, घर में बहुत सारी मिठाई बनी थी और एक बिल्ली परेशान कर रही थी, तो माँ ने बिल्ली पर एक टोकरी ढाँक दी थी। पत्नी जो देख रही थी, उसने सोचा कि यह कोई क्रिया है भूरी बिल्ली को टोकरी में दबाना। कालांतर में जब बेटे की शादी होती है तो पति से कहती है- 'ए-ए! सुनो। बेटे की शादी की विधि पूरी नहीं हुई। जब मैं शादी होकर आई थी तब तुम्हारी माँ ने बिल्ली टोकरी में दबाई थी। जाओ, बिल्ली लेकर आओ। ज्ञानी! सत्य बताओ कि बिल्ली को क्यों दबाया था?

कारणवश दबाया थाा। आज हम कई क्रियायें ऐसे ही करते हैं, अकारण ही, क्योंकि दादा करते थे। अरे ज्ञानी! खोज तो करो कि बिल्ली दबाई क्यों? लोकाचार में कई बातें ऐसी हैं जिनका लोकव्यवहार भी नहीं है। अमृतचंद्राचार्य से पूछ लो-है भगवान्! आप क्या कहना चाह रहे हो?

ज्ञानी! पर-ज्ञेयों से निज-ज्ञान को खींच लो। फिर जैसे राजा का ज्ञान किया उसी प्रकार आत्म-राजा को देखकर आचरण करो।

कैसे? जैसे कोई पुरुष अर्थ का अर्थी। अर्थ का अर्थी अर्थात् पैसे को चाहने वाला। इस विषय को ज्यादा अच्छे से आप ही बता सकते। मुझे क्या मालूम कि कैसे कमाया जाता है? मैंने तो कभी कमाया नहीं। पर इनको देखकर लगता है कि बहुत श्रम करन पड़ता है। माँ जो कभी आपने बेटे को नयनों से दूर नहीं करती, कहती है कि महाराज मत बन, मैं क्या करूँगी? और विदेश भेज देती है पैसे कमाने के लिए । अर्थ के अर्थी जो नहीं करना, वह भी कर लेते हैं। नाच-गाना करने लगे, कुल-परंपरा को भूल जाते हैं। जो हमारे वंश के काम नहीं हैं, वह भी करता है। ज्ञानी! ब्यूटीपार्लर जैनियों का काम नहीं है। जहाँ जिस कुल में आहार दिए जाते हैं, जिनेन्द्र का अभिषेक किया जाता है, वहाँ बाल नहीं बनाये जाते।

कभी ऐसे सलाह मत देना। जिनके घर में ब्यूटीपार्लर है, आज ही हटा देना। बात गहरी है। द्रव्यानुयोग है। करणानुयोग पर दृष्टि डालो। प्रत्येक कर्म का नोकर्म होता है। पुरुष यदि स्त्रियों की तरह झगड़े, बाल आदि बढ़ाये, स्त्रियों के समान प्रवृत्ति करे, तो समझना कि स्त्रीवेद का नोकर्म है, उसकी स्त्री बनने की तैयारी है। म्लेच्छों के कार्य जब कोई आर्य करे, तो समझना कि म्लेच्छ बनने की तैयारी है। कितने पुण्य से उत्तम कुल मिला और तू खोटा कार्य करता है। क्या मुझे अपना कुल अच्छा नहीं लगा? बेटा-बेटी अन्यत्र शादी कर रहे हैं। माता-पिता को पुत्र-पुत्रियाँ को समझाना चाहिए, संस्कार देने चाहिए कि यह जैनकुल उत्तम कुल है। आज वे अलग-अलग कुलों में शादी कर रहे हैं, कुलरक्षा नहीं

हो रही है। ज्ञानी! व्यवहार समयसार ही नहीं बचेगा, तो निश्चय समयसार कहाँ से लाओगे? आज यह सब देखकर लगता है कि कहाँ जायेंगे आप?

जैसे अर्थ का लोलुपी प्रयत्नपूर्वक सबसे पहले राजा को जानता है, फिर श्रद्धान करता है, फिर उसके अनुसार आचरण करता है। जब-तक वह राजानुकूल प्रवृत्ति नहीं करता, तब-तक धन नहीं मिलता। वैसे-ही यदि आत्म-राजा को जाना/श्रद्धान किया, परंतु आत्मराजा के अनुसार प्रवृत्ति नहीं करोगे, आचरण नहीं करोगे, तो मुक्तिवधू के वल्लभ नहीं बन सकते।

ज्ञानी! सबसे पहले आत्मा को जानना चााहिए। परम पुण्य अहोभाग्य है आपका, जो ऐसे कुल में जन्में हो जहाँ आत्मा की चर्चा सुन रहे हो। कहीं ऐसे कुल में जन्मे होते कि घास लादे-लादे सारा जीवन निकल गया होता। धन्य है वह जीव, जो प्रातः उठते ही जिनेन्द्र का अभिषेक-पूजन करता है, गुरुओं को आहार देता है। और उनसे पूछना जो प्रातः उठते ही छुरी उठाते हैं जीवों को काटने के लिए। ज्ञानियो! मेरा तो सभी से यह कहना है कि, पेट भरने को भोजन मिल रहा है तो ज्यादा हाय-हाय मत करना। जन्म लेना कोई कठिन कार्य नहीं है, परन्तु शांति से अंतिम श्वांस ले लेना कठिन है। शांति से अंतिम श्वांस ले लेना। सत्य समझना, मैं जीने के लिए मुनि नहीं बना, मुनि बने-बने अंतिम श्वांस निकल जाए, इसलिए मुनि बना हूँ। आज जिनवाणी इसलिए सुन रहे हैं कि अंतिम श्वांस निकलते-निकलते मेरी जिनवाणी मेरे अंदर से निकलने लगे। कितना गहरा लिखा है। लगता है कि आचार्य अमृतचंद्रस्वामी टीकामय हो गए होंगे। कुंदकुंद स्वामी उनके चारों ओर घूम रहे होंगे। टीका करना ज्यादा कठिन है।

लिखना सरल है, ज्ञानी! लखना कठिन है। जब काययोग, मनयोग, वचनयोग तीनों ही तत्त्वमय होते हैं, तब लखा जाता है, इसलिए स्वाध्याय को परम तप कहा है। तप अर्थात् तीनों योगों को सँभालना। स्वाध्याय में तीनों योग स्थिर रहते हैं। सबसे चलायमान होती हैं यह आँखें। स्वाध्याय काल में आँखें शब्दों पर हैं, मन ज्ञान पर है, काय स्थिर है, अतः यही परम तप है। शेष तप मिनटों तक ही हो सकते हैं, पर यह तप ऐसा तप है जो कई घंटों तक हो सकता है।

तो, प्रथम आत्मा को जानना चाहिए, फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए और फिर उसी आत्मा का अनुशरण करना चाहिए। ज्ञानी! दर्शनशास्त्र के अध्ययन के बिना द्रव्यानुयोग नहीं पढ़ना चाहिए।

तथानुपपत्ति-अन्यथानुपपत्ति। यदि ऐसा है, तो ऐसा है; ऐसा नहीं है, तो ऐसा नहीं है। रत्नत्रय है, तो मोक्ष की सिद्धि है; रत्नत्रय नहीं, तो मोक्ष नहीं। (तथानुपपत्ति रत्नत्रय), (अन्यथानुपपत्ति रत्नत्रय का अभाव)।

ज्ञानी! शिवपुरी में बंध्या माँ का बालक रो रहा था, तो इस ज्ञानी ने उसे चुप कराने के लिए

खिलौना बनाया। उसने कछुए की पीठ के बालों की रस्सी बनाकर, उसमें आकाश के फूलों को पिरोकर, खरगोश की सींग में लगाकर दे दिए। समझ में आ गया न? नहीं, महाराज! शुरू से ही गड़बड़ है। ज्ञानी! जो रत्नत्रय के बिना मोक्ष जाना चाहते हैं, तो शुरूआत ही गड़बड़ है। आत्मा का पहले ज्ञान करो, फिर श्रद्धान करो, फिर तद्नुरूप अनुसरण करो, यह रत्नत्रय है। इसके सद्भाव में मोक्ष मिलेगा और इसके अभाव में नहीं मिलेगा। उसी आत्मा में भगवानात्मा का अनुभव करते हुए, अपने भावों का संकर (मिश्रण) होने पर भी। देखो, ज्ञान में कितने विकल्प आते हैं? संसारी वस्तुओं में कम, परन्तु परिणामों में कितना मिश्रण है? सत्य बताना। आपने चूर्ण बनाया, त्रिफला बनाया, उसमें तीनों का स्वाद है। त्रिफला संज्ञा एक है, परन्तु स्वाद भिन्न है। यह स्थूल द्रव्य था। पूजन करने आए, प्रतिमा दिखने के साथ-साथ एक भिन्न पुजारी दिख गया, तो शुद्ध परमात्मा को नहीं देख सका। धिक्कार है जो कि तू शुद्ध भक्ति भी नहीं कर सका, भक्ति के कितने त्रिफला बनाए। शुद्ध व्यवहार भक्ति नहीं, तो शुद्ध अद्वैत निश्चय भक्ति कैसे? माँ गेहूँ बीनती है ना? क्या करें, जन्म से असत्य कूट-कूट कर भरा है। धन्य है व्यवहार। क्या कहते हो? गेहूँ फेंक रहे हो, कंकड़ रख रहे हो, फिर भी कहते हो गेहूँ बीन रहे हो। फिर पिसाने क्या जाओगे? आटा। धन्य है, गेहूँ बीनकर आटा पिसाने जाओगे। एक दृष्टि से वह भी सत्य है। उपचार है। व्यवहार कथन है। समयसार यानि कि बीनो। जो परिणामों की परभावों में गति चल रही है, उसे निज भावों में बीन कर लाओ, यह समयसार है। बीनो। स्वयं को वापस लाओ। काली कोठरी में काली पट्टी आँखों पर बांध कर कैद कर दिया, फिर भी अपनी प्रिया का चेहरा दिखाई दे रहा था। इस काले संसार में नेत्र बंद करके भी अपने प्रिय भगवान्-आत्मा दिखने लग जाएँ, इसका नाम समयसार है।

पुरूषार्थ करना चाहिए। कहने में मुझे संकोच नहीं लगता, तुम तो गृहस्थ हो, परंतु त्यागियों को पुरूषार्थ करना चाहिए। सर्प को जब-तक प्रवेश करने के लिए बिल नहीं मिलता तो फन पटकता है इधर-उधर, यहाँ-वहाँ। अहो ज्ञानियो! जब-तक जीव वीतराग स्वभाव के बिल में प्रवेश नहीं करता, तो इस संस्था, उस संस्था में सिर पटकता रहता है। ज्ञानी! हमारे भाव हमारे लिए सहकारी हैं कि पर के लिए? पर का अशुभ भाव मेरे स्वभाव में अकिंचित्कर है, मेरे शुद्ध भाव भी पर के लिए अकिंचित्कर हैं। पर की गाली मेरे लिए अकिंचितकर है, जब-तक स्वीकार नहीं की। यदि गाली सुनकर बुरा मान रहे हो, तो कितने सम्मान से तुमने ली है, धन्य हो तेरे लिये। वस्तुस्वरूप कहाँ गया?

कितना सुन्दर शब्द-'संकर'

इस सूत्र पर हजार प्रश्न बनाए जा सकते हैं, परन्तु पहले हंस बनना पड़ेगा। हंस नीर क्षीर में से क्षीर को ग्रहण कर लेता है। मुमुक्षु ही आत्मा में भगवान्-आत्मा को देखता है। भगवान् के चरणों में आता

है। (यह मैं हूँ) यह शब्द मत पकड़ना। आज के सम्यग्दृष्टि कैसे हैं? एक कागज लाओ, उस पर लिखो 'जीवतत्त्व'। कागज पर लिखे जीवतत्त्व को जीवतत्त्व मानता है, और घर में पत्नी को लात मारता है। पत्नी को पैर मारा है तो तेरे सम्यग्दर्शन में दोष लगा है। महाराज! क्या घर में जीने दोगे? नहीं जीने दूंगा। घर में नहीं, निज में जीने के लिए समयसार है। कभी चर्चा करूँगा। ज्ञानी! कागज पर लिखे जीवतत्त्व पर श्रद्धान करना है, कि ये जो सब बैठे हैं उन पर श्रद्धान करना है? इस पुद्गल पर नहीं, अंदर बैठे भगवान्-आत्मा पर। मैं हूँ, ऐसा संज्ञान करके, इस प्रकार जो प्रतीति है, लक्षण है, प्रत्यासति है, उसका श्रद्धान करना, कि ऐसा मैं हूँ। जीवन निकल जाता है, परंतु 'मैं' को नहीं जान पाता है। मैं को जानने का समय ही नहीं है। साधन के मार्ग में आकर भी तू-तू, मैं-मैं नहीं छोड़ी। महान ज्ञानी आचार्य शांतिसागर महाराज जब अपनी समाधि के अंतिम समय में थे तो बहुत से विद्वान् पहुँचे, कहा-'आपका अंतिम संदेश चाहते हैं।' उन्होंने कितनी अच्छी बात कही-'मैंने अपना सारा जीवन समाज को दिया, अब अंतिमसमय निज को देना चाहता हूँ।

जीवो चरित्त-दंसण॥ 2 स.सा.॥

निज दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होना ही स्वसमय है, पौद्गालिक भवनों में स्थित होना पर समय है।

संपूर्ण परपदार्थो से विभेद करके, निःशंकित हो, स्व में स्थित होता है। मैं हूँ कैसा? पर-पदार्थों से अत्यंत भिन्न हूँ। ज्ञानी! सबके बीच रहना, परंतु निज सत्ता को सबके साथ मिश्रित मत करना। तू, तू है, कि तेरी माता 'तू' है? पिता तू है, कि तू, 'तू' है? ज्ञानी! सबकी आत्मा स्वतंत्र है। तू माता-पिता का द्रव्य है। इतना ज्ञान, श्रद्धान, अनुचरण हो जाए कि कौन किसका? स्वार्थ के जनक-जननी हैं, मेरा स्वभाव तो स्वतंत्र है। न तू पिता का है, न होगा, न था। पिता तेरा है- यह त्रैकालिक परदृष्टि है। मैं 'मैं' हूँ, मैं 'मैं' था, मैं 'मैं' रहूँगा। न पर का था, न हूँ, न रहूँगा। यह त्रैकालिक दृष्टि है, यह सम्यग्दृष्टि है। इस विद्या को जन-जन तक पहुँचाना चाहिए। देश में शारीरिक नहीं, मानसिक रोगियों की संख्या अधिक है। पिता के सिर में दर्द प्रारंभ हो जाए तो बेटे की भूख समाप्त हो जाती है क्योंकि द्रव्य की स्वतंत्रता का भान नहीं है। यदि कोई अहित भी कर रहा है तो वो भी सत्य है। यदि मेरी असाता का उदय न होता, तो यह न होता। आप घरों में ताले क्यों लगाते हो? चोरों के लिए या घर के लोगों के लिए?

ज्ञानियो! आत्मा त्रैकालिक ध्रौव्य है, यह बात भोपाल को भी मालूम होती है। विश्व में प्रसिद्ध है कि सबसे बड़ा अज्ञानी होता है गोपाल। जीवन में कुछ नहीं कर पाए तो डण्डा ले लो और पशु चराओ। पर वह गोपाल भी आत्मा को जानता है। पर जानने मात्र से काम बनने वाला नहीं है। स्वयं अनुभूयमान

होने पर भी, आत्मा की अनुभूति से भिन्न होकर, अनादि बंध के वश होकर, पर में सम/एकत्व का अध्यवसाय करने से विमूढ़ होकर आत्मज्ञान नहीं होता। क्या हुआ? महाराज! सारा स्वाद चला गया। बाल-गोपाल आत्मा को जानते हुए भी आत्मा को पुद्गल से भिन्न नहीं कर सका। परद्रव्य में समभाव रखने वाले मूढ़। ज्ञानी! घर की व्यवस्था बनाकर आए हो, इसलिए यहाँ शांति से बैठे हो। यदि अभीजेब में रखे फोन की घंटी बज जाए कि दुकान में आग लग गई है, तो क्या समयसार में मन लगेगा? कहोगे 'महाराज'! बाद में सुन लेंगे समयसार, हम जा रहे हैं'। पता चल गया कि तू यहाँ था, कि राग व्यवस्थित था इसलिए शांत बैठा था।

ज्ञानियों! वैराग्य बहुत कठिन है। व्यवस्थित राग में आनंद लूट रहे हो और नाम 'वैरागी' है। कहता है- यह हमारे, हम इनके। घर-गृहस्थी का त्याग कर दिया, साधु बन गया।

शिष्यों के प्रति राग है, तो वह भी व्यवस्थित राग ही है। संघ में रहो, परंतु संग बनाकर मत रहो। नहीं समझे? संघ और संग में एक अक्षर का फर्क है। चतुर्विध संघ में रहना, पर संग मत बना लेना। संघ यानि संघ, संग यानि परिग्रह। गौतम स्वामी पूछते हैं, हे वर्द्धमान! मुझे कैवल्य क्यों नहीं हो रहा है? गौतम! तुम्हें महावीर से राग है, महावीर का राग तुम्हें केवली नहीं बनने दे रहा है। ज्ञानी! जब तीर्थंकर का राग कैवल्य नहीं होने दे रहा है, तो तन-धन का राग केवली कैसे बनायेगा?

ज्ञान हुआ, श्रद्धान हुआ, पर आत्मानुभूति करने का ज्ञान नहीं किया, पदार्थों का ज्ञान किया क्यों?

धम्मं भोग णिमित्तं

धर्म को भोग के निमित्त से कर रहा है, कर्मक्षय के लिए नहीं कर रहा है।

मुनिराज भगवान के चरणों में बैठे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं- मेरी ख्याति फैल जाए। तो, ज्ञानी! तू कर्म माँग रहा है। जो जीव आत्मानुभूति से रहित ज्ञान और श्रद्धान करता है, तो ऐसे जानना जैसे गधे के सींग। उस आत्मानुभूति रहित जीव का ज्ञान और श्रद्धान गधे के सींग के समान है। उसका श्रद्धान, श्रद्धान नहीं है। इसलिए निःशंक होकर, आत्मा में स्थिर होकरके नहीं ठहरता है, तो आत्मा की सिद्धि नहीं होती है। आत्मा का ज्ञान करके, श्रद्धान करके, अनुभूति लेते हो तो मोक्ष हो जाता है। अनुभूति-रहित है, तो मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। समयसार ग्रंथ में 'आत्मानुभूति' ही मूल विषय है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्

आत्मास्वभावं परभाव भिन्नम् ।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्य-भगवान कुंदकुंद स्वामी ने ग्रन्थराज समयसार में अलौकिक सूत्र प्रदान किए। अध्यात्म के अनुपम अलौकिक रहस्यों को उद्घाटित किया है। यह अद्भूत ग्रंथ अशरीरिता को प्रकट कराने वाला ग्रंथ है। निर्ग्रंथता को उद्घाटित कराने वाला ग्रंथ है। मुनिराज कैसे बनते हैं- यह 'मूलाचार' बताता है। मुनि-स्वभाव कैसा होता है, यह 'समयसार' बताता है। शरीर के मुनि कैसे बनते हैं, यह मूलाचार बताता है। अनुभव के मुनि कैसे बनते हैं, यह समयसार बताता है। रत्नत्रय से मंडित आत्मा ही समयसार है। रत्नत्रय से मंडित समयसार की उपासना ही श्रावकाचार है। यह श्रमणाचार, मात्र तन से श्रम करने का नाम नहीं है। चैतन्य को भगवत्ता की ओर ले लाए, वह श्रमणासार है।

दृष्टि में पहले ज्ञान का उपयोग होना चाहिए। आत्मा को जानें, देखें, आचरण। इन तीनों अवस्थाओं को स्वानुभूति के अभाव में करता है तो उसका मोक्षमार्ग गधे के सींग के समान है। यदि वह स्वानुभूति से रहित है, तो **'खर-सिंग-वत्'।**

यहाँ प्रश्न उठ सकता है- आत्मा को जान रहा है, अनुभव कर रह है, तो अनुभूति कहाँ छूट गई? ज्ञानी! बहुत बड़ा रहस्य छूट गया है। मस्तिष्क को स्थिर कर लीजिए। यह विषय चाक्षुष नहीं है। ज्ञान में भी ज्ञान को पकड़ना है। समयसार में आगे अभव्य की दशा का वर्णन करेंगे।

समस्त संसार, श्रद्धान कर रहा है, प्रतीति कर रहा है, स्पर्श कर रहा है। किसका? धर्म का। क्यों? वक्ता व्याख्यान कर रहा है, व्याख्यान को सुनने वाले श्रोता हैं और स्वात्मानुभूति की ओर व्याख्याता का लक्ष्य है। यदि यह लक्ष्य है कि मेरे बारे में कोई क्या सोच रहा है? तो, ज्ञानी! तेरी दृष्टि स्वप्रंशसा की है, स्वात्मानुभूति की नहीं है। एक ज्ञानी भगवान् की भक्ति तन्मय होकर कर रहा है कि कहीं लय न टूट जाए, तो उसकी चिन्मय पर दृष्टि ही नहीं है। दृष्टि संगीत पर है, लेकिन जिसके गीत गा रहा है, उस पर दृष्टि नहीं है। क्योंकि जितना अच्छा गाऊँगा, उतना पैसा मिलेगा। योग भक्ति में है,

परंतु उपयोग पैसे में है। वहाँ उपयोग की धारा क्या थी? ज्ञानी! यह समयसार है; जैसा है, वैसा है। श्रुत आराधना में यदि दृष्टि अन्यत्र गई, तो भक्ति का फल 'गौण' है, विपरीत-फल 'प्रधान' है।

जो सुबह सबसे पहले मंदिर के दरवाजे खोलता है, परंतु भगवान् की वंदना भाग्य में नहीं लिखी। कोई आँखों से निहारे तो यही कहे कि कितनी अच्छी सेवा-भक्ति कर रहा है। पुजारी पूजन, अभिषेक आदि सब कर रहा है परंतु दृष्टि द्रव्य पर है, द्रव्य पर दृष्टि है तो वह आत्मदृष्टि नहीं है। जहाँ द्रव्य (धन) प्रधान दृष्टि है, वहाँ आत्मदृष्टि कहाँ?

याद रखना, क्रिया दिख रही है। धर्म क्यों कर रहा है? भोग के निमित्त से। ध्यान रखना, दिगम्बर मुद्रा धारण करके ही उत्कृष्ट पद प्राप्त किया जा सकता है। दिगम्बर मुद्रा धरे बिना यह पद प्राप्त नहीं किया जा सकता। मुनिराज ही इतना पुण्य संचय करते हैं कि चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि पद प्राप्त कर सकें। ग्रैवेयक की यात्रा करने वाला वह मिथ्यादृष्टि जीव, द्रव्यलिंगी मुनि बनकर ग्रैवेयक तक चला जाता है और वहाँ तक भव्य श्रावक भी नहीं जा पाता। क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रावक यदि निर्दोष चर्या का पालन करे तो 16वें स्वर्ग तक ही जा पाता है जबकि प्रथम-गुणस्थानवर्ती द्रव्यलिंगी मुनि साधना कर ग्रैवेयक तक चला जाता है। लेकिन फिर वहाँ से कहाँ जाता है?

''तह तें चय थावर तन धरें''

मनीषियो! ध्येय भिन्न है, ज्ञेय भिन्न है। ज्ञेय के अनुसार ज्ञाता का परिणमन नहीं होता, ध्येय के अनुसार ध्याता (ज्ञाता) का परिणमन होता है। ज्ञानी! आपके बगल में यह आशीष बैठा है। एक इसे विद्वान् रूप में जान रहा है। आशीष को आपने और सुनील ने दोनों ने देखा है। एक इसके बगल में इसलिए बैठा है कि इसकी जेब में कुछ है, दूसरा इसलिए बैठा है कि ज्ञानी-जीव है, अतः इसके साथ बैठते हैं। ज्ञेय एक था, पर ध्येय भिन्न था। बताओ, बंध ज्ञेय से होगा या ध्येय से होगा?

प्रकाश भैया सब्जी मण्डी जाकर लौकी खरीदता है, सुरेश भी लौकी खरीदता है। देखने वाले दोनों को देख रहे थे कि दोनों लौकी खरीद रहे हैं परंतु ज्ञेय से ज्ञाता के ध्येय का ज्ञान नहीं कर लेना। वहीं पालक भी रखी थी। प्रकाश भैया की इच्छा थी पालक खाने की, परंतु जेब में नोट 50 का है और परिवार में चालीस लोग हैं, इसलिये सोचा कि लौकी बना लेंगे, पानी डाल देंगे, काम चल जायेगा। दूसरा ज्ञानी कहता है, लौकी और भाजी दोनों रखी है। अरे! यदि भाजी लेकर जाता हूँ तो एक-एक पत्ते के तोड़ने में एक-एक जीव का घात होगा। जिससे अनंत जीवों का घात होगा। इसलिये एक लौकी ले जाता हूँ। दोनों ने लौकी खरीदी, लेकिन एक बंधक है, दूसरा निर्बन्धक हैं; क्योंकि एक के मन में लोभ था, दृष्टि में धन द्रव्य था कि लौकी सस्ती है। दूसरे की दृष्टि में चैतन्य था। दोनों के ध्येय अलग थे।

''सम्यग्दृष्टि नियतं भवति ज्ञानवैराग्यशक्तिः।'' सम्यग्दृष्टि जीव में ज्ञान और वैराग्य शक्ति नियम से होती है, अन्य के ज्ञान-वैराग्य शक्ति नहीं होती है। लौकी में कम जीव हैं, पालक में अधिक है, यह ज्ञानशक्ति है और लौकी ही लेकर जायेगा, यह वैराग्यशक्ति है। कैसे कहते हो धर्म नहीं कर सकता?

प्रतिक्षण ज्ञान-वैराग्य शक्ति का चिंतन करो। मंदिर पास है, पैदल ही जाऊँगा और यदि थोड़ा दूर है तो साइकिल से चला जाऊँगा। जल्दी आने के पीछे, उन लाशों पर भी ध्यान दो। विदेशों से तेल लाने

के लिए कितने पशुओं का वध होता है। ज्ञानी! माँस वहाँ जाता है, वहाँ से तेल आता है। त्यागी-व्रती तो गाड़ियों का उपयोग कम ही किया करें। ज्ञानी! यह शब्द निकाल दो कि हमारे अकेले से क्या होता है। आप अनुमोदक हो कि नहीं? समयसार सुनकर यदि आचरण में चरणानुयोग आ गया, तो सुन्दर पालन करेगा। यह भावों की अनुभूति करने के बद का संयम है।

उसका धर्म कर्मक्षय के लिए नहीं है। आज से दृष्टि बदल लेना। धर्म कर रहे हो, गुरुओं की सेवा कर रहे हो, भगवान् की भक्ति कर रहे हो, तो दृष्टि बदल लेना कि मुझे आत्मकल्याण हेतु जिनेन्द्र देव की सेवा करना है। ज्ञानी! सिर्फ भाषा नहीं बदलना, भाव भी बदलना। जो कार्य कर्त्तव्यभाव से कर रहे हो, उसे कर्त्तव्य भाव से करो और जिसे कर्त्तव्य भाव से कर रहे हो उसे धर्म भाव से करो। कर्त्तव्य, यानि ड्यूटी। भैया! सत्य बताना, जब आप ड्यूटी पर जाते हो तो क्या प्रतिदिन प्रतिक्षण नई उमंग लेकर जाते हो, कि यह सोचते हो कि आज न जाना पड़े? ज्ञानी! किंकर से कूकर श्रेष्ठ है। किंकर को स्वामी के अनुकूल ही कार्य करना पड़ता है। भगवान का कल्याणक है, पूजन करने के भाव हैं, पर ड्यूटी करने जाना है तो जल्दी चले जाते हैं। जिसे आप कर्त्तव्यभाव कहते हो, वह पराधीन है। तीर्थंकर भगवान की पूजा करना, आराधना करना, गुरुओं की सेवा करना ड्यूटी भरी नहीं जाती, वह तो होती है। नीर में शीतलता कहीं से लाना नहीं पड़ती, होती है। जीवन में, ज्ञानियो! निज कल्याण की भावना रखना।

भावना यह रखना कि मैं अपना कल्याण कर रहा हूँ। पंडितो, विद्वानो! ऐसा विचार मत करना कि हम जिनशासन की प्रभावना कर रहे हैं जो समाज का कार्य कर रहे हैं। क्या जिनशासन तेरा नहीं है? यदि समाज का मानकर कर रहा है, तो धर्म नहीं कर रहा है। ऐसा विचार करना कि धर्म मेरा है। यदि मेरे साथ ही दूसरे का भी कल्याण हो जाए, तो अच्छा है। धर्म को धर्म मानकर करेगा, धर्म में चलेगा, तो वह तुझे ऊपर ले जायेगा। धर्म को एहसान मान कर करेगा, तो धर्म तुमको नीचे ले जाएगा। ज्ञानी! तू धर्म के काम से, मंदिर के काम से ग्वालियर गया। तूने वहाँ नाश्ता भी किया तो खर्चा मंदिर के खाते में डाल दिया। वहाँ तूने मंदिर का कार्य किया, साथ में कोई अपना कार्य भी किया, परंतु खर्चा मंदिर के खाते में। ज्ञानी! अगर तू ग्वालियर न जाता तो क्या उपवास करता? क्या घर का पैसा बचाता? घर के काम से तुझे जाना था, मैनेजर ने कहा कि मंदिर का काम है तो मुस्कान छूट गई। ज्ञानी! तूने पान भी खाया तो खर्चा मंदिर के हिसाब में डाला, साबुन खरीदा तो खर्चा मंदिर के खाते में। घर में होते, तो कैसे करते? तुम्हें जो पैसे दिए गए थे, वे मंदिर की गोलक के थे। निर्माल्य का धन खाकर कहाँ जायेगा?

व्याख्यायें तो धर्म की यही हैं, आप जो भी समझो। न्यायशास्त्रों में लिखा है कि वचन नहीं कहते, शब्द नहीं कहते कि मेरा कार्य यह है। रागियों ने अपने अनुसार अर्थ निकाल लिए। 'प्रमेयकमलमार्तण्ड'

एवं 'प्रमेय रत्नमाला' में लिखा है, त्यागी-जीवन में प्रधान बनाना तो न्याय को प्रधान बनाना। न्याय को बनाना मीमांसा का आधार। आर्यिका ज्ञानमति माताजी वर्तमान में एक महान ज्ञानवान् आर्यिका हैं। उनको न्यायशास्त्र पढ़ाने वाले आचार्य महावीरकीर्ति थे। माताजी ने अष्टसहस्री ग्रंथ का अध्ययन आचार्य महावीरकीर्ति से किया और उन्होंने इसे छुपाया नहीं, सहज स्वीकार किया। श्रवणबेलगोल के चारूकीर्ति भट्टारक ने बताया था कि पहली बार किसी साधु का कमण्डल पकड़ा तो आचार्य महावीरकीर्ति का पकड़ा था। वे बता रहे थे कि आचार्य महाराज, एक बार हमारे गाँव बरांग आए थे तो इंग्लिश में बोल रहे थे। बस, इतनी-सी बात से वे प्रभावित हो गए।

ज्ञानी! जो धर्म को कर्त्तव्य मानकर करेगा, वह धर्म से दूर रहेगा। धर्म तो धर्म है। जो धर्म को धर्म मानकर करेगा, वह कभी अहसान नहीं बताएगा। ज्ञानी! आपने प्रतिमा धारण की तो वह समाज के कल्याण के लिए, कि अपने कल्याण के लिए? और समाज आपके बैठने की अच्छी व्यवस्था नहीं कर पाई, पाटे नहीं लगा पाई, आप त्यागी थे, सबसे बाद में आयेंगे आप, सबसे आगे बैठेंगे आप, आप आते हो और चटाई उठाकर अलग रख देते हो, लोगों के ध्यान में विघ्न डालते हो।

कोई तुम्हें आगे नहीं बिठाल पाया तो, ज्ञानी! आगे बैठने के लिए त्यागी बने थे, कि आत्म-कल्याण के लिए?

त्यागियो! हमारा त्याग ऐसा हो कि लोग प्रभावित हों, दूर न भागें। मातायें! आप घर में सोला करती हो, बच्चों को दूर-दूर भगाती हो, और यदि बच्चे ने छू लिया तो तूने बच्चे को चाँटे मार दिए। अरे! बेटे ने तो वस्त्रों का सोला बिगाड़ा था, तूने अपने ही अंदर का सोला बिगाड़ लिया। यह सब अज्ञानमयी संयम का परिणाम है। वहाँ अपने परिणामों को संक्लेशित होने से बचाना था।

अज्ञानता में धारण किए गए चारित्र ने अनेक श्रद्धावन्तों की श्रद्धा को अश्रद्धा में बदल दिया। व्यवस्था करना समाज का कर्त्तव्य है। हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम अपना साम्यभाव न खो दें। आज साम्यभाव का अभाव हो रहा है। थर्मामीटर देखा आपने? काँच पर नंबर ऊपर-नीचे नहीं होते, पारा धातु ऊपर-नीचे होती है। मनीषियो! यह मुद्रा काँच है, गुणस्थान पारा है। तापमान बढ़ेगा तो पारा ऊपर जायेगा, तापमान गिरेग तो पारा नीचे चला जायेगा। फिर स्थिति कैसी होगी? जैसी धोबी के गधे की होती है; न घर का, न घाट का।

ज्ञानी! साम्यभाव ही धर्म है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी को सुन लो कि, प्रभु! आप किसे धर्म कहते हो? '**चारित्तं खलु धम्मो**' निश्चय से चारित्र ही धर्म है। मोह व क्षोभ से रहित जो आत्मा का साम्य-परिणाम है,वह धर्म है। कष्ट/उपसर्ग कर्मजन्य है, साम्यभाव आत्मजन्य है।

कष्ट में साम्यभाव रखना, यह आत्मजन्य है। हे मुमुक्षु! बर्फ के भवन के निकट से गुजरने पर तूने शीतलता अनुभव की, कि यहाँ बर्फ रखी है। सरलस्वभावी के नजदीक से निकलो तो समता महसूस होती है। और वक्र-स्वभावी के चेहरे से वक्रता टपकती है। ज्ञान करके श्रद्धान करना, फिर आचरण करना। क्या कहा था? आत्म राजा को जानो, उसका श्रद्धान करो, फिर अनुचरण करो, तब मिलेगा मुक्ति-धन। अब समझो, यह क्या है? पेन है या लेखनी है? ज्ञानी! पुद्‌गल-द्रव्य है, ऐसा कहो। सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान-वैराग्य-शक्ति से युक्त होता है, वह हिंसक शब्द नहीं बोलता। हमारी माँ सब्जी काटती नहीं है, सब्जी बनाती है। आप दुकान बंद नहीं करते, बढ़ाते हो। दीप बुझाते नहीं, बढ़ाते हो। सम्यग्दृष्टि अहिंसक शब्दों का प्रयोग करता है। विद्वान् के शब्द विद्वत्तापूर्ण होते हैं। आप महाराज के पास आओगे तो वे ऐसा नहीं कहेंगे कि पत्नी से ऐसा कह देना। वे कहेंगे, कि बेटे की माँ से कह देना। माँ शब्द में ऋजुता रहेगी। यह लेखनी है। आपने जाना और जानकर छोड़ दिया।

अब स्थिर हो जाओ। ज्ञान करके, फिर श्रद्धान करके, अब आचरण क्रिया प्रारंभ कर दो। यह लेखनी है, आपने जान लिया; पर विश्वास रखो, वेदन नहीं किया, सिर्फ जान लिया है। ज्ञान का ज्ञान में वेदन नहीं किया है। लेखनी को देखकर उसे ज्ञान का विषय बनाइये।

ज्ञानी! सामायिक क्यों नहीं हो रही है? क्योंकि जगत को जानने का विषय बना रहा है। निज ज्ञान को अनुभूति में ले जायेगा, तो नरक नहीं जा सकता। ज्ञान को प्रयोग में ले जाने का नाम आचरण है। आत्मा को जान रहा हूँ कि आत्मा है, फिर भी आत्मा, आत्मा को नहीं जान रही है। ज्ञान को बाह्य ज्ञेयों में ले गए, उसे भावों का ज्ञेय नहीं बनाया। अपने आपको जानने का, अपने बारे में जानने का प्रयत्न नहीं किया। वर्षों तक स्वाध्याय किया, भक्ति की, तीर्थयात्राएँ की। कभी विचार किया कि अपने ज्ञान से अपने ज्ञाता को जानूँ? 'मैं हूँ,' यह प्रश्न करो अपने अंदर में। 'ज्ञान' शब्द बोल रहा है कि वह (ज्ञान) आत्मा का गुण है। तूने आत्मा के गुण से बाह्य को जाना, आत्मा को नहीं जाना, इसीलिए स्वात्मानुभूति को नहीं जाना। एक स्थूल उदाहरण है। एक व्यक्ति को नेता बना दिया गया। उसने सम्पूर्ण नगर को सजाया, परंतु स्वघर पर दृष्टि नहीं गई। अपना घर टूटा-फूटा है। क्यों? नगर पर ध्यान देगा तो जनता पुनः चुन लेगी। तू नेता ने क्या किया? शरीर को सजाता रहा और कर्म-प्रजा तुझे चुनती रही, तू आत्मभवन को नहीं सुधार पाया। ज्ञाता निज ज्ञान से, आत्मा को नहीं जान पा रहा है। ज्ञानी! स्वसंवेदन करो। ये पिच्छि मेरे हाथ में है। कमण्डलु को उठाता हूँ तो मार्जन करके उठाता हूँ, मार्जन करके रखता हूँ। करना क्यों है? जीव का वध न हो, इसलिए। अथवा आत्मा के बंध न हो, इसलिए। जीव का वध न हो, यह दयाभाव था; जबकि आत्मा के बंध न हो, यह चारित्र भाव था। उठाकर मार्जन कर लिया, दया थी, कदाचित् प्रभावना का लक्षण भी हो सकता है। परंतु आत्मा में विचार करता है, कि यदि मेरी

रक्षा हो जाए तो सारे जगत की रक्षा हो जाए। सच्चा जैनी किसी जीव की रक्षा नहीं करता। सच्चा ज्ञानी स्वयं की रक्षा करता है तो उससे सारे जगत की रक्षा हो जाती है। कैसे? जिसे भव से भय होगा, उसे कर्मबंध से भय होगा, उसे कर्मबंध के कारणों से भय होगा। वह देख-देखकर चलेगा। सत्यता यही है। जीवरक्षा की, परंतु यथार्थ में अपनी ही रक्षा की। समय चाहिए समझने के लिए। आत्मद्रव्य को समझने हेतु समय चाहिए। सब समझ आता है।

ज्ञानी! जहाँ सारे धर्म समाप्त होते हैं, वहाँ से जैनधर्म प्रारंभ होता है। ये ज्ञानी सोच रहा था, कि मैं रात्रिभोजन नहीं करता, तो मैं धर्मात्मा हो गया। जब धर्म की व्याख्या सुनो तो पता चले, कितने धर्मात्मा हो। रात्रि में भोजन बनवा लिया, जल्दी बना दो मुझे जाना है। ज्ञानी! दिन में बना रात में खाना हिंसकवृत्ति है और रात में बना दिन में खाना भी हिंसकवृत्ति है। ऐसा नहीं करना। मुनिराज आ गए तो 4-5 बजे सुबह से नहीं बनाने लग जाना। सूर्योदय के पश्चात ही बनाना। और ये हैण्डपम्प आदि का पानी नहीं दे देना कि सोले में लाए हैं। बिलछानी कहाँ डाली? कभी मुनिराज को जीवों का कचूमर मत पिला देना। कुँए का पानी ही पिलाना। अपने ज्ञान-वैराग्य को स्वसंवेदन का विषय बनाकर चलिए। यदि ऐसा नहीं करते हो, तो गधे के सींगवत् है। घबराना नहीं। स्वर्ग तो चले जाओगे, परंतु मोक्ष जाने के लिए ऐसा ही करना पड़ेगा। क्यों, ऐसा तो नहीं सोच रहे कि अब मुनि नहीं बनना? मुनि बनना बहुत कठिन है ज्ञानी।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्'

इस शब्द का राग भी राग है। इस शब्द के राग में लड़ रहा था। आप कहोगे-'महाराज! कहीं का रहने दोगे?' कहीं का नहीं रहने दूँगा। रहना है तो सिद्ध बनकर रहो। मुमुक्षुओ! यथार्थ मानकर चलना। व्यवहार-धर्म कितना मान रहे हो? आप सोचो और निश्चय-धर्म कितना मान रहे हो? आप देखो।

निश्चय-धर्म के उपदेश को व्यवहार का लोप नहीं मान लेना और निर्दोष व्यवहार पालन कर इति मत मान लेना, आगे निश्चय है। यदि 28 मूलगुण पालन में ही निर्मलता नहीं है, तो निश्चय चारित्र कैसे आएगा? यदि दोनों पैरों में से एक में काँटा लग जाए तो जब-तक काँटा रहेगा तब-तक वह मार्ग पर समपाद बनाकर नहीं चल सकता। ज्ञानी! विषय-कषाय का काँटा लगा है, तो स्वात्मानुभूति के मार्ग पर नहीं चल सकता।

यदि छुप कर भी दोष किए, तो भाव-विशुद्धि नहीं रहती, टीस लगी रहती है। भाव-शुद्धि नहीं, तो द्रव्यशुद्धि कितनी भी हो, शत प्रतिशत भी हो, तब भी द्रव्यक्रिया तो क्रिया मात्र है। भावव्रती ही व्रती है, द्रव्यव्रती की सिद्धि नहीं होती।

विषय-कषाय में भ्रमण कर रहा है, मन-हस्ति हाथ में नहीं आ रहा है, तो भटक रहा है। आप धर्म की चर्चा में धर्म मान रहे हो और भटक रहे हो। विद्वान् की धारण होती है,

'यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः'॥ 38 क.मं.॥

जो क्रिया भावशून्य है, वह प्रतिफलित नहीं होती। माँ पराठे बनाना जानती है। पराठे में मोयन नहीं लगायेगी तो पराठा जल जायेगा। आयुर्वेद के शब्दों में भावना दी जाती है, पराठे में मोयन नहीं लगायेगी तो पराठा जल जायेगा। आयुर्वेद के शब्दों में भावना दी जाती है, पराठे के बीच में घी लगा दिया जाता है। साधना के मार्ग में स्वसंवेदन का मोयन नहीं लगा, तो क्रिया शून्य है। व्यवहार कहता है कि आज से जीते-जीते जियो। घर जाकर दर्पण में देखना कि मैं कैसा था, मैं कैसा हो चुका हूँ। ज्ञानी! तुम आज तक मरते-मरते जी रहे हो। अब से जीते-जीते जीना प्रारंभ कर दो।'पता नहीं, महाराज! ऐसा कैसे हो गया? ज्ञानी! आनंद में डूब जाओ। इस धरती पर धरती के देवता विराजते हैं।

जो अनन्य चैतन्य-चिंतन आत्मा का है, उसमें सतत् लीन होकर रहो।

कौन? मैं। कैसा आत्मा? वह जो कभी भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यचारित्र से पतित नहीं होता। जिसकी आत्मज्योति नित्य उदीयमान है, ऐसा-ही जीव आत्मसिद्धि को प्राप्त होगा।

'नहीं हो सकती, नहीं हो सकती,' आचार्य महाराज दो बार जोर देकर कह रहे हैं। क्या कह रहे हैं? जो रत्नत्रय से शून्य है, उसको साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती। साध्य की सिद्धि उसको होगी जिसकी आत्मा रत्नत्रय से पवित्र होगी।

ज्ञानी! साध्य की सिद्धि चाहिए तो रत्नत्रय की सिद्धि करनी पड़ेगी भाव से। आचार्यों की बड़ी पैनी दृष्टि होती है। रत्नत्रय का कथन कर दिया। लेकिन ज्ञान का ज्ञान कैसा? आत्मा और ज्ञान का तादात्म्य है, फिर भी कह रहे हो, तो ज्ञान का ज्ञान कैसे संभव है? अलग से क्यों कह रहे हो? आत्मा तो तादात्म्य होने पर भी। ज्ञानी! हाथ पर पेड़ा रखा है। दिख रहा है। ज्ञान परिपूर्ण है। परंतु फिर भी शंका है कि खाऊँगा तो क्या होगा? किसी ने यह दिया कि स्वास्थ्य ठीक होगा। ज्ञान पहले भी था, पर अंतर हो गया।

तादात्म्य ज्ञान होने पर भी उनमें परिणति नहीं है। यह ज्ञान षट्खण्डागम की भाषा है। एक द्रव्यश्रुतागम है, एक भावश्रुतगम है। भावश्रुतामान ही आत्मानुभूति है।

अरिहंत स्वरूप के व्याख्यान की, स्वरूप अनुभूति कोई भी कर सकता है, परंतु स्वभाव की अनुभूति भगवान ही कर सकते हैं।

रत्नत्रय की भावानुभूति भावश्रुतधारी ही कर सकता है। मुनि बनना है तो इसे मस्तिष्क का विषय बनाना है। मुनि इसे मस्तिष्क का विषय बनायेगा तो संयम से च्युत नहीं हो सकता। आप यहाँ समयसार सुन रहे हैं। आप अपना मस्तिष्क सुनने में लगाने के कारण उसे दूर नहीं ले जा रहे हो। ध्यान रखो। मुनि का मतलब पिच्छि-कमण्डलु लेना नहीं है। ऐसे मुनि नहीं बन सकते। समझो! जो मैं अनुभव कर रहा हूँ, वह बता नहीं सकता। ज्ञानी! आपने पानी पिया? कैसा लगा? शीतल, ठण्डा या निर्मल? अरे! कुछ तो कहो।

भगवानात्मा! जब नीर के निर्मल स्वरूप का व्याख्यान नहीं कर पा रहे हो, तो स्वात्मानुभूति का व्याख्यान कैसे करोगे? एक क्षण को भावलिंगी बनकर देख लो, स्वयं पता चल जायेगा। स्वयं जानकर एवं दूसरे के द्वारा जानकर ज्ञान उत्पन्न होता है। उस कारण से पहले जो था वह अज्ञान था। वह आत्मा अबुद्ध है, प्रबुद्ध नहीं है। कब प्रबुद्ध होगी? तो उसके लिए पुरुषार्थ करिए। जब प्रबुद्ध बनेगी, तभी रत्नत्रय धारण कर लेगा। कहता है कि काललब्धि कब आयेगी? अरे! यह ज्ञानी बनारस से आ गया विद्वान् बनकर, परन्तु इसने झूठ बोलना नहीं छोड़ा। ज्ञानी! तू पंचेन्द्रिय है न, संज्ञी है न, कर्मभूमिया जीव है न, जाग रहा है न? यही तो प्रथम काललब्धि है। यह आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में कहा है। अब कहो कि तेरे पुरुषार्थ का दोष है। घर जाकर विचार करना की आप लौकी खरीदोगे या पालक। **'सम्यग्दृष्टि नियते भवति ज्ञान-वैराग्यशक्तिः'।**

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

॥ आत्मा कब-तक अज्ञानी रहता है ॥

उत्थानिका - आगे फिर पूछते हैं कि आत्मा कितने समय तक अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) रहता है।

गाथा - **कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।**
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताप॥ 19॥

छाया - **कर्मणि नोकर्मणि चाहमित्यहकं च कर्म नोकर्म।**
यावदेशा खलु बुद्धिप्रतिबुद्धो भवति तावत्॥

अन्वयार्थ - (**यावत्**) जब-तक इस आत्मा के (**कर्मणि**) ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भावकर्म (**वा**) और (**नोकर्मणि**) शरीर आदि नोकर्म में (**अहं कर्म नोकर्म**) मैं कर्म नोकर्म हूँ (**अहकं इति च**) और ये कर्म नोकर्म मेरे हैं (**एषा खुल**) ऐसी निश्चय (**मतिः**) बुद्धि है (**तावत्**) तब-तक (**अप्रतिबुद्धः**) यह आत्मा अप्रतिबुद्ध (**अज्ञानी**) (**भवति**) है।

समय देशना

आचार्य-भगवान् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रन्थराज समयसार में वस्तुस्वरूप का व्याख्यान करते हुए बताया है- जो सत्यार्थभूत अवस्था है, उसे प्रतिबुद्ध जीव ही जान सकता है। अप्रतिबुद्ध को उसका भान ही कहाँ? प्रतिबुद्ध कौन है और अप्रतिबुद्ध कौन है- इसका वर्णन इस 19वीं गाथा में है। जैसे कोई राजा की खोज करता है, और राजा को पहचानता है, जानता है, श्रद्धान करता है, अनुचरण करता है, उसी प्रकार जीव-राजा के विषय में कहा है। आचार्य जयसेन महाराज ने उसका विशद् वर्णन किया है। यहाँ दो गाथाओं के माध्यम से भेदाभेद का कथन किया है। अमृतचन्द्र स्वामी ने उभय नय और करणानुयोग को लेकर व्याख्यान किया है।

रत्नत्रय दो प्रकार का होता है- भेद रत्नत्रय अभेद रत्नत्रय। ज्ञानियो! भ्रम को निकाल देना कि अभेद रत्नत्रय पहले होता है, भेद रत्नत्रय बाद में होता है। भेद से अभेद की ओर प्रवेश ही उत्कृष्ट मार्ग है, जो ऊपर उठाता है। और अभेद से भेद की ओर जाना पतित मार्ग है। वीतराग चारित्र के अविनाभूत वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव ही, भेदाभेद रत्नत्रय से युक्त होकर, निज आत्मतत्त्व की विशुद्धि को प्राप्त

होता है। भेद रत्नत्रय के अभाव में अभेद रत्नत्रय की सिद्धि सम्भव नहीं है। ज्ञानी! पहले निश्चय की प्राप्ति करोगे, फिर व्यवहार की। यदि पहले निश्चय की प्राप्ति कर लोगे, फिर व्यवहार की आवश्यकता क्यों?

ज्ञानी! बादाम का बाहर का छिलका पहले हटाते हो या अंदर की लालिमा पहले हटाते हो? यदि अंदर की लालिमा पहले हटा ही दी, तो फिर बाहर का छिलका हटाने की आवश्यकता ही क्या है?

इसी प्रकार, ज्ञानी! सचित्त परिग्रह, अचत्ति परिग्रह, मिश्र परिग्रह, ऐसा तीन प्रकार का परिग्रह होता है। गृहस्थ-अपेक्षा स्त्री, पुरुष, पुत्र, मित्र आदि सचित्त परिग्रह है। धन, मकान, वस्त्राभूषण आदि अचित्त परिग्रह है। स्वर्ण आभूषण आदि से मंडित नारी मिश्र परिग्रह है।

यदि तीन परिग्रह से युक्त हैं तो आत्मा के सत्यार्थ स्वरूप तक नहीं पहुँच सकते हैं निर्ग्रंथ तपोधन की अपेक्षा भी परिग्रह तीन प्रकार का है। क्योंकि विषय को उभय रूप समझना है। हे आचार्य परमेष्ठि! क्या आप भी परिग्रह से युक्त हैं? शिष्य-शिष्याएँ आदि सचित्त परिग्रह है। पिच्छि-कमण्डलु आदि अचित्त परिग्रह है। पिच्छि-कमण्डलु युक्त शिष्य मिश्र परिग्रह हैं। यदि इनमें भी आसक्ति है, तो निर्वाण नहीं हो सकता है। इस सिंहासन से निर्वाण नहीं मिलता। निर्वाण मार्ग में सिंहासन लग जाए तो विकल्प नहीं; परंतु यदि सिंहासन के लिए निर्वाण मार्ग में आए, तो निर्वाण सम्भव नहीं।

भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ) में कहा-

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्तोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम्॥ 23॥

जब यह संस्तर आसन आदि समाधि का साधन नहीं है, तो सिद्धि का साधन कैसे हो सकता है? निर्वाण उसका होता है, जिसका पण्डित-पण्डित मरण होता है। पण्डित-पंण्डित मरण उसका ही होता है जिसका पूर्व में पण्डित मरण हुआ हो। पण्डित मरण हुआ तो फिर 2-3 भव शेष रहेगा। भावना भाना-मरण हो तो सल्लेखना के साथ हो। जीवन की आराधना का फल सल्लेखना है। वह सल्लेखना कब होगी? जब भेदाभेद की आराधना करोगे। पहले निश्चय, फिर व्यवहार होगा, ये मिथ्याधारणा। ये विपर्यास, दिगम्बर आम्नाय में, कहाँ से आई? यह विकल्प दिगम्बर आम्नाय में कहाँ से प्रवेश कर गया? वह श्वेतपट्ट आम्नाय से प्रारंभ हुआ। 'कल्पसूत्र' में एक कथन आता है-

माँ मरुदेवी राजभवन में बैठी है। भरत को देखकर दादी माँ अपने चहेते से कहती है-तू राजमुख भोग रहा है और मेरा बेटा ऋषभ जंगलों में भटक रहा है। भरत कहता है नहीं, दादी माँ! हमारे पिता

जंगलों में नहीं भटक रहे हैं, वे तो कैलाश पर्वत पर विराजमान हैं, वहाँ समवसरण में विराजमान हैं। माँ मरुदेवी कहती है- क्या मुझे नहीं ले जायेगा? 'हाँ, कल ही ले जाऊँगा।' वह दूसरे दिन हाथी पर ले जाता है और कैलाश पर्वत का पहुँचते ही समवसरण को देखकर माँ को कैवल्य प्रकट हो गया। तो माँ मरुदेवी चिंतन करती है कि अब मुझे जैनेश्वरी दीक्षा ले लेनी चाहिए और वह हाथी पर बैठे-बैठे केशलौंच प्रारंभ कर देती हैं। एक बात ध्यान दो- नारीपर्याय में केवल्यज्ञान होगा, गृहस्थ अवस्था में हाथी पर बैठे-बैठे केवल्य हो गया, फिर दीक्षा लेने का चिंतन किया।

केवली ने चिंतन किया अर्थात् केवली का मन भी हो गया। केवलज्ञान हो गया, तो फिर दीक्षा की क्या आवश्यकता है? कैवल्य के लिए तो दीक्षा लेना पड़ती है। ज्ञानी! यह तत्त्व का विपर्यास है। और यह दिगम्बर आम्नाय में भी प्रवेश कर गया कि पहले निश्चय होता है, फिर व्यवहार होता है। ज्ञानी! भेद-रत्नत्रय अर्थात् व्यवहार रत्नत्रय। अभेद-रत्नत्रय अर्थात् निश्चय रत्नत्रय। अभेद की प्राप्ति के लिए भेद की आराधना करनी पड़ती है। दूध तपाते हो आप। दूध तपाने के लिए बर्तन तपाते हो, कि बर्तन तपाने के लिए बर्तन तपाते हो। मुमुक्षुओ! तपाना क्या चाहते हो? बर्तन या दूध? दूध तपाना चाहते हो, तो बर्तन हटा देना, तो मालूम होगा कि दूध तो तपेगा नहीं, अग्नि को और मिटा देगा। ज्ञानी! बिना पात्र तपाये दूध तपता नहीं है। पात्र को तपाने तपाया नहीं जाता। बिना भेद रत्नत्रय अभेद रत्नत्रय होता नहीं है।

आचार्य समन्तभद्र को समझिए। कुंदकुंद स्वामी को समझना है तो समन्तभद्र के चरणों में बैठना पड़ेगा।

बाह्यं तपः परम-दुश्चरमाचरंस्त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुष-द्वयमुत्तरस्मिन्,
ध्यान-द्वये ववर्शतिशेऽतिशयोपपन्ने ॥83 स्व. स्तो.॥

आपने बहिरंग दुस्तर तप तपा है, क्यों? वह अंतरंग तप की वृद्धि के लिए तपा है। बहिरंग तप की सिद्धि के लिए अंतरंग तप नहीं तपा जाता। बिना बहिरंग तप के अंतरंग तप नहीं होता। धान के छिलकों को हटाये बिना अंदर की लालिमा हटती नहीं है। ज्ञानियो! बहुत अलौकिक बात निकल गई। अंतरंग तप, बहिरंग तप। वस्त्र उतारना अर्थात् ऊपरी छिलका हटाना है। अभी मद नहीं गया, अभी मादकता है। धान्य के बीच की लालिमा नहीं हटाओगे तो स्वच्छ चावल प्राप्त नहीं हो सकता है। योगी! तूने वस्त्र रूपी छिलके तो उतार दिए, लेकिन वासनाएँ नहीं उतरेंगी तो शुद्ध चमकता चैतन्य प्रकट नहीं

होगा। हाँ, वस्त्र उतारना आवश्यक है, पर केंचुली निकालने से सर्प निर्विष नहीं होता। जहर की थैली नहीं निकली तो विषधर ही है। किसी के विचार आ रहे हैं कि मुनि बन जाऊँ। मुनि बन जाना, पर राग-द्वेष के जहर की थैली निकाल देना। अंतरंग में साधना की सिद्धि के भाव नहीं, तो कल्याण छूट गया, उभय लोक भ्रष्ट हो गया। पुनः-पुनः करुणाबुद्धि से समझना। मोक्षमार्ग में लगना है तो कषाय को कहीं टाँगा कर आना। टाँग कर ही नहीं, गाड़ कर आना। टँगी होगी तो दूसरा ले लेगा। कषाय को स्थान नहीं है। विश्वास रखना-हाथ की पिच्छियाँ छूट जाती हैं। क्यों? बहिरंग कारण कुछ भी हो, अंतरंग कारण पकड़िये क्या है? चारित्रमोहनीय कर्म के आस्रव के कारण क्या हैं?-

'कषायोदयातीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य' ॥ त.सू. ॥

त्यागियों से मेरा कहना है कि चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव कषाय की तीव्रता से होता है। तनक-तनक में आँख लाल करना, कषाय करना, मान करना संयम से दूर हटा देगा। शरीर सुखाने के पूर्व कषाय सुखा देना। तन सुखाने में देर नहीं लगती। दो-चार दिन भोजन नहीं दो तो शरीर सूख जायेगा। त्यागियो! कषाय सुखाओ।

तन सुखाने के लिए पंचकाल में नहीं आए, कषाय नहीं सूख पाई इसलिए पंचमकाल में आए हैं। पुनः यदि कषायें हरी रही तो छटा काल दूर नहीं है। याद रखना-संयम के पालन के निमित्त भी कषाय नहीं करना। 'क्या मतलब हुआ?' ज्ञानी! तू बाहर से शिवपुरी आ रहा था, तेरा नियम था कि हाथ की चक्की का भोजन करूँगा। तूने बता दिया की तेरा ऐसा-ऐसा नियम है। सहज है कि नियम है तो बोलना तो पड़ेगा। तू आया और कदाचित् तेरी व्यवस्था नहीं हो पाई, तो क्रोधित होने की आवश्यकता नहीं है। यह विकृत होने की अवस्था नहीं थी। संयमी जीव के लिए संयम सुकृत था। आटा-आटे के लिए था कि पेट भरने के लिए था?

तेरा पहला संयम था उपशम भाव। लेकिन ये अज्ञानी मुमुक्षु समझते नहीं हैं। यह नहीं कि अब व्यवस्था नहीं बन पाई तो उपशम भाव कहके उसे चक्की का आटा खिला दिया। व्यवस्था नहीं है कहोगे क्या? व्यवस्था नहीं है तो विकल्प मत करो, भात बना लीजिए। संयम पला, कषाय नहीं पली। पेट पालने के लिये अनेक व्यवस्था थी, कषाय पालने के लिये एक चक्की थी। विश्वास मानिए, दूसरे दिन वह कहीं से भी ढूँढ़कर हाथ की चक्की का आटा लाएगा। मुझे विश्वास है- श्रावक स्वयं पालन न करे, पर साधु की चर्या का पालन हर हाल में करवायेगा। एक दिन नमक का त्याग था। चौके में पहुँचे, हर वस्तु में नमक मिला हुआ था। ब्रह्मचारी भैया धीरे-से गए चौके में और देखकर आ गए, धीरे-से आकर कान में बोले-महाराज! सबमें नमक है, उठ चलो। मैंने सोचा-ज्ञानी! लेने के लिए नहीं आए, मिल जाए

तो ठीक, एक नमक के लिए उठकर नहीं जाऊँगा। बड़ा शहर है, 25-25 चौके लगते है। लोग इंतजार करते हैं कि मेरा नंबर कब आएगा। आज जिसे मौका मिला है, उन्हें दुःखी नहीं करूँगा। वो तो पहले ही दुःखी है कि महाराज आए और हर चीज में नमक है। अरे ज्ञानी! दूध था ना? दूध में रोटी डाल दीजिए, हो गए आहार। यदि उठकर चले जाते, तो कहीं रास्ते में अंतराय का कोई निमित्त मिल जाता तो दोनों से गए। ज्ञानी! धैर्य चाहिए। उपशम भाव।

अभेद रत्नत्रय तो अंतरंग की साधना है। भेद-रत्नत्रय पालन करो, तो अभेद मिल जाए। हे मुमुक्षु! नमक न आए थाली में तो थाली मत फेंकना। फेंक भी दी और घर में कोई परिचित आ जाए, उसे मालूम हो जाए कि भोजन नहीं किया और वह पूछ बैठे, बहू ने धीरे-से कह दिया-'जरा थाली में नमक नहीं रख पाए थे।' तो वह क्या कहेगा? 'अरे! धिक्कार हो, जो तनक-से नमक के पीछे भूखे रह गए।' यह तो उपलक्षण मात्र है। माँ बेटे से कह गई- बेटे! ध्यान रखना, कौआ दही न बिगाड़ जाए। बिल्ली आई और खा गई। 'माँ! आपने तो कौआ से रक्षा करने को कहा था।' बेटा! भोले मत बनो। यह कबूतर/कौआ तो उपलक्षण मात्र था, सबसे रक्षा करनी थी। जिन-जिन भावों से, जिन-जिन निमित्तों से असंयम भाव होता है, उनसे आत्म-दही की रक्षा करना।

'भेदाभेद रत्नत्रय'

निश्चय व निर्णय में भ्रम कहाँ? निर्णय को निश्चय मान लिया है। ज्ञानी! तुझे शिविर लगाना था, तो कहता है कि निश्चय कर लिया है शिवपुरी में शिविर लगाना है। यह निश्चय नहीं है, यह व्यवहार की भाषा है। यह निश्चय नहीं, तेरा निर्णय है। शिविर प्रारंभ, यह निश्चय है। निर्णय तो कार्य के पूर्व में लिया जाता है। निश्चय समय के साथ में होता है। मंदिर जाना है, घर से तूने यह निर्णय किया। ध्यान निर्णय का होता है, निश्चय का ध्यान नहीं होता है। मुझे जिनालय जाकर समयसार की वाचना सुनना है। चिंतन में आ रहा था, कि नहीं? अब सुन रहे हो तो आना-आना सोच रहे हैं, कि अनुभूति ले रहे हो? यह निश्चय है। निर्णय तो अनुभूति के पूर्व की भूमिका है।

'निश्चय' अनुभूति है- यह भ्रम है। निश्चय को जाना ही नहीं है। निर्णय को निश्चय मान रहा है। नैगम-नय से कहता तो मान भी लेते। इसीलिए कहते हैं कि आलापपद्धति आदि नय व न्यायग्रंथों का अध्ययन आवश्यक है। समस्त नयों में नैगम-नय का सबसे विशद् वर्णन है। यह अनिष्पन्न को भी निष्पन्न अर्थ में कहता है। माँ चावल धो रही थी, एक व्यक्ति ने पूछा- माँ! क्या कर रही हो? कहती है कि भात बना रही हूँ।

यह ज्ञानी इंदौर में बैग में कपड़े रख रहा था। किसी ने पूछा कि क्या कर रहे हो? शिवपुरी जा

रहा हूँ। भोपाल में था, पूछा- क्या कर रहे हो? शिवपुरी जा रहा हूँ। ज्ञानी! नैगम नय है, इस नय से कहोगे तो चल जायेगा। बिना नय लगाए कहोगे तो

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत॥ 108 आ.मी.॥

एकांत नया मिथ्या- बिना अपेक्षा कथन तो मिथ्या है।

सापेक्ष वस्तु- सापेक्ष नय ही सम्यक् है।

मिथ्यात्व का समूह मिथ्यात्व ही है। उससे अर्थ-व्यवस्था नहीं बनती है। जो-जो एकांत नय हैं, सब मिथ्या हैं।

जो अर्थ- क्रिया- कारत्व भाव है, उसका अध्ययन एकान्त नय से नहीं होता है। बेटा! तू पुत्र ही है न? तू पुत्र ही है तो यह दादा जी तुझे क्या कहेंगे? मामा कहेंगे क्या? भैया का बालक क्या कहेगा? ज्ञानी! जब लोक का धर्म नहीं चलता एकांत से, तो सिद्धांत को कैसे कहोगे एकांत से? आज से क्या कहोगे कोई पूछेगा कि क्या तुम पुत्र हो? नहीं, मैं पुत्र 'ही' नहीं, पुत्र 'भी' हूँ। क्योंकि शेष धर्म भी मेरे अंदर हैं। ज्ञानी! कौआ कैसा होता है? काला 'ही' होता है कि काला 'भी' होता है। ऐ एकांती! कौआ का ऊपर का रंग काला है कि हड्डियाँ भी काली हैं? ज्ञानी! कौआ नीला, पीला, लाल, सफेद भी है। कौआ पित्त अपेक्षा पीला है, रक्त की अपेक्षा से लाल है, हड्डियों की अपेक्षा से सफेद है, नस-जाल अपेक्षा नीला है। कौआ काला भी है।

इतना समझ कर जाएँ तो विश्व से विसंवाद समाप्त हो जायेंगे। यह अनेकांत घर-घर में लगना चाहिए।

'स्यात् पदाङ्के.....'

जो कथन स्यात् पद से अंकित होता है, जिनवचनों में रमण करता है, उसका मोह का वमन हो जाता है। झगड़ा इसीलिए होता है कि अनेकांत का प्रयोग नहीं करते। पिता ने कहा लौकी खाना है, तूने कहा गिलकी बनना चाहिए। झगड़ने लगा। अरे! पिता एवं पुत्र दोनों जीवद्रव्य हैं, बनाने वाला समझदार होना चाहिए। बेटा! सुबह लौकी बना लेती हूँ, शाम को गिलकी बना दूँगी। समाज, देश, राष्ट्र टूटते का कारण स्याद्वाद का बोध नहीं होना है।

एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥ 225 पु.सि.॥

गोपिका क्या करती है? एक हाथ से खींचती है, दूसरे को छोड़ती है। तुम खींच कर रखो, तो निकालो मक्खन? चाहे मोक्षमार्ग हो, चाहे संसार मार्ग, सभी जगह अनेकांत लगाना पड़ता है। आगम अविसंवादी होता है। विसंवाद अनागम में एकांत में हाता है। सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि आँखों की दृष्टि से श्रेष्ठ होती है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि नयदृष्टि होती है। यदि नयदृष्टि से शून्य हो गया, तो मोक्षमार्ग अवरुद्ध हो गया। ज्ञानी! दो दृष्टि से रहित मत हो जाना। एक निश्चय दृष्टि, दूसरी व्यवहार दृष्टि। एक अभेद, दूसरा भेद रत्नत्रय। जो एक-एक को लेकर चल रहा है, उसे मालूम है कि मैं गलत हूँ। सप्तव्यसनी से पूछना, वह हृदय से यही कहेगा कि मैं तो लिप्त हूँ परन्तु तुम कभी मत करना। यदि जैनधर्म का सच्चा अनुयायी है, तो वह यही कहेगा, कि भूल मेरी थी, वस्तुस्वरूप उभयरूप है। क्या करें, भूल हो गई। बुन्देलखण्ड में एक कहावत है, गिरे-पड़े कोई चिंता नहीं है, 'चिंता है कोऊ का कैहे'। इसके पीछे सब नाश कर बैठा।

ज्ञानी! जबलपुर से बिहार हुआ 1999 में। एक दादा छतरपुर से आए विहार करवाने। उनके 2-4 दिन में ही फोले आ गए। बच्चों को तो आनंद आता है, पूछा-दादाजी! काय आ गए। अरे भैया! मीटिंग लगी थी कि कौन जायेगा विहार करवाने, तो हमसे कह आई- हम चले जेहें। कह आई तो आना पड़ा। आप लोग तो नहीं सोच रहे कि क्या पता था कि इतनी दोपहर में बैठना पड़ेगा और वाचना करा ली। ज्ञानी! असत्य पर चलने वाला भी सत्य को जानता है, पर सत्य की अनुभूति नहीं ले पाता। यदि सत्य को नहीं जानता, तो असत्य की पुष्टि करता क्या? ज्ञानी! आपकी तो शादी हो गई है न? तो शादी को जानते हो न? तो क्या ब्रह्मचर्य व्रत को नहीं जानते? अब्रह्म पर जीनेवाला भी ब्रह्म को जानता है। असत्य पर चलने वाला भी सत्य को जानता है। कषाय के उद्रेक में असत्य छूटता नहीं है, पर सत्य जानता है। आपको लगता होगा कि महाराज! ऐसे बैठे रहते हो, बच्चों के सामने बच्चे बनकर, वृद्धों के साथ वृद्ध।

'नाऽहम् बालो न वृद्धोऽहम्'

यह पुद्‌गल की अवस्थाएँ हैं। भगवान्-आत्माओ! मैं क्या राग-द्वेष करूँ? ज्ञानी! बड़प्पन निहार सको तो कषाय की मंदता में निहारो। कषाय की मंदता निहारोगे कैसे? जिसके चेहरे पर 24 घण्टे मुस्कुराहट है, प्रशस्त भाव है। बिना निर्मलता के चेहरे पर प्रमुदित भाव नहीं आता और बिना प्रमुदित भाव के समाधिकरण नहीं होता। चेहरे पर बिना मायाचारी के प्रमुदित मन है, तो समाधि अच्छी होगी। ज्ञानियो! जन्म की तैयारी करनी पड़ती है या मरण की? तुम्हारे हाथ में जन्म की तैयारी है या मरण की? जन्म कितने अच्छे से होता है, ये माँ जाने। मेरे हाथ में ताकत है कि अच्छे से मरण कर लूँ तो जन्म न

लेना पड़े। सभी दर्शनों में मरण की कला यदि कोई सिखाता है तो जैनदर्शन ही सिखाता है। यदि एक बार मृत्युमहोत्सव मन जाए, तो फिर जन्मकल्याणक मन जायेगा। तत्त्वदृष्टि बनाकर ऐसा व्याख्या करना की श्रोता को सोचना पड़ जाए कि मेरे हृदय की बात क्या है?

भेदाभेद रत्नत्रय की भावना, दृष्टांत और दृष्टांत के द्वारा कहते हैं। जयसेन महाराज की टीका है, वे कह रहे हैं- निश्चय से किसी पुरुष ने राजा को जाना, कैसे जाना? एक/छत्र है, दो चंवर है, हो गए राजा। सामान्य राजा के ऊपर एक छत्र होता है और दो चंवर होते हैं।

तीनलोक के नाथ के ऊपर 3 छत्र होते हैं, 64 चंवर होते हैं। छत्र व चंवर राजा, महाराजा, चक्रवर्ती के ऊपर होते हैं। छत्र व चंवर मुनियों के ऊपर नहीं लगाये जाते। ये इनसे रहित होते हैं। मुनियों का तो काष्ठासन होता है। शास्त्रीय भाषा में कहें तो वीतराग-आसन होता है। मैं क्यों कह रहा हूँ? क्योंकि आजकल परंपरा चल रही है। रानी चेलना ने एक क्षण में परीक्षा कर ली थी। ज्ञानी लोग एक क्षण में परीक्षा कर लेते हैं। मार्ग में आ रहे थे, धूप से छाँव में गए परन्तु मार्जन नहीं किया। पंचमकाल में सम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्दृष्टि नामधारी में अंतर है। सम्यग्दृष्टि छिपाता है, मिथ्यादृष्टि छपाता है और कहता है कि सुधार कर रहा हूँ। यह शुद्ध मिथ्यादृष्टि है, उपगूहन अंग नहीं है। समझो। तुम धर्म-प्रभावना नहीं कर रहे हो, इतिहास बिगाड़ रहे हो। समाज के द्रव्य को गड्ढे में डाल रहे हो। उस द्रव्य से समयसार छपवाते तो पुण्य प्राप्त होगा, अनेक लोग समयसार पढ़ते। तुमने ऐसी पत्रिका आदि छपवाई जिसमें साधक की आलोचना लिखी, तो लोगों के परिणाम खराब हो गए, तो तुम्हारा द्रव्य कहाँ गया? प्रतिज्ञा कर लो कि ऐसी पत्र-पत्रिकाओं के लिए दान नहीं देंगे जिनमें धर्म धर्मात्मा की आलोचना होगी। इन लोगों ने धर्म को अखाड़ा बना लिया है। स्वयं जब समीप होते हैं तो साथ-साथ बैठकर भोजन करते हैं और दूर जाते हैं तो एक दूसरे की बुराई करते हैं। स्वयं निकट रहते हैं, छापते हैं ताकि समाज में बिखराव हो। नहीं, ज्ञानी! अभेद की ओर चलना है। अभी तक धर्म के मर्म को समझा नहीं है। ज्ञानी! जितनी देर कागज पर अशुभ लिखने में लेखनी चलायेगा तो अशुभ बंध होगा।

नीच गोत्र के आस्रव के कारण क्या हैं?

परात्मनिंदा प्रशंसा सदसद् गुणोच्छाद्नोद्भावने च नीचर्गोत्रस्य। (त. सू.)

तू कैसा सम्यग्दृष्टि है? वे मिथ्यादृष्टि यह सब करें,तो उचित है; परंतु तुम क्यों ऐसा कर रहे हो? कोई निंदा करे, तो पूछना 'नीच गोत्र के आस्रव के कारण क्या हैं?' आप ऐसे आगम पढ़ते नहीं हो। एकांगी कहकर हटा देते हो, कि समयसार नहीं सुनना। वह आत्मा का ग्रंथ है। आत्मा के ही ग्रंथ को सुनना है। अन्यथा परमात्मा बनोगे कैसे? सुनो-

आदहिदं कादव्वं जदि सक्क द् परहिदं च कादव्वं।
आदहिद परहिदादो आदहिदं सुट्ठु कादव्वं॥

उत्कृष्ट तो यही है कि आत्महित करना चाहिए। समर्थ है, तो परहित भी करना चाहिए। दोनों में श्रेष्ठ तो आत्महित ही है। ध्यान रखना- किसी के सिर में दर्द है, तो दबाना चाहिए, दवाई देना चाहिए। कि बैठ कर रोना चाहिए? तू ही रोने लग गया तो, तेरा सिरदर्द होने लगा तो दोनों की सेवा कौन करेगा? जैनधर्म दया की बात तो करता है, तुरंत अविवेकी नहीं है। दया करना, रोने मत बैठ जाना। असाता का आस्रव मत करना। कोई जा रहा है, प्राण जा रहे हैं, तब णमोकार सुनाओ। गहरे रहस्य हैं।

जब इतने गहरे में उतर जाओगे, तब कहीं भेद आयेगा। जब भेद में उतर जाओगे तो किंचित अभेद आयेगा।

'फल-फल-फल, रस-रस-रस, सत्-सत्-सत्'

इस शब्द-ध्यान से कल्याण होनेवाला नहीं है। एक अनार में कितना रस? ज्ञानी! जितना बड़ा अनार होता है, क्या उतना ही रस निकलता है? फिर छिलका कहाँ जायेगा? 100 ग्राम का अनार में अनार का रस कितना निकलता है? चलो 50 ग्राम ही मान लो। आपके कहे अनुसार मान लेते हैं। अब सत् निकालिए, कितना निकलेगा? 5 ग्राम आएगा। जो शक्ति फल में है, उससे ज्यादा रस में, उससे ज्यादा सत् में। ज्ञानी! जब तू 80 वर्ष तक साधना करेगा अच्छे से तो घंटे सामायिक करेगा, गम्भीर तत्त्व निर्णय करके बैठेगा, तब कहीं एक दो पल के लिए शुद्धोपयोग में जायेगा। बाहुबली भगवान 1 वर्ष तक शुद्धोपयोग में थे क्या? शुभ-शुद्ध, शुभ-शुद्ध, ऊपर-नीचे होते रहे।

सबसे शुद्ध सत् है।

वह धर्म की पराकाष्ठा है, आत्मानुभूति है। आप समय ही नहीं देते। समय है ही नहीं आपके पास। परभावों से विराम लेना पड़ेगा, फिर स्वरूप में खड़ा होना पड़ेगा। छत्र-चंवर आदि चिह्नों से राजा को जानता है कि यह राजा है। तब उस राजा का आश्रय करके उसकी आराधना करता है, क्योंकि अर्थ का प्रयोजन है। मतलब अभी इन ज्ञानियों को आत्म-राजा से कुछ चाहिए नहीं है। कौन जाएगा? जिसे राजा से प्रयोजन है। काम हो तो कितना प्रयत्न करते हो। लोकाचार के लिए कितना प्रयत्न करना पड़ेगा? सभी कार्यों को छोड़ना पड़ता है। शिव-अर्थी के लिए संसार के कार्यों को छोड़ना पड़ेगा। शेष अर्थ छोड़ना ही पड़ेगा। अपभ्रंश भाषा के महान आचार्य जो इन्दु देव स्वामी परमात्म प्रकश ग्रंथ मतें कह रहे हैं-

जिसके नयनों में मृगनयनी निवास कर रही हो उसके ब्रह्म का वास कैसे? हे नर! एक म्यान में दो तलवारें नहीं होती हैं। ब्रह्मभाव व भोग भाव एकसाथ नहीं होते। ज्ञानी! यहीं है, कहीं नहीं है। जैसा ब्रह्म शिवालय में है, वैसा ही तेरे अंदर भी है।

अब्रह्मभावरहितोऽहम्, ब्रह्मानंदस्वरूपोऽहम्,
परमानंदस्वरूपोऽहम्, ज्ञानानंदस्वरूपोऽहम्।

मैं अब्रह्मभाव से रहित हूँ, मैं ब्रह्मानंदस्वरूप हूँ। परमानंदस्वरूप हूँ, ज्ञानानंदस्वरूप हूँ।

भावनात्मक ब्रह्मभाव ही नहीं है, तो ब्रह्मलीन भाव कैसे हो? मैंने कहा-ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम्-परिवर्तित तो मैं देख रहा हूँ, कि चेहरों में परिवर्तन हुआ है, वातावरण बदला है। यदि शब्दों से वातावरण बदलता नहीं होता तो समरभूति में शंखनाद क्यों होता, सेनापति का ओजस्वी भाषण क्यों होता? आत्मबलियों के लिए ब्रह्मानंद का नाद परमब्रह्म की ओर ले जाता है। शब्दशक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। सारा जगत घूम रहा है इसके पीछे। आपकी जेबों में रखी यह डिबिया क्या कर रही है? हम मुस्कुरा लेते हैं, रो लेते हैं। द्रव्य दिखता नहीं। धन्य हो तेरे लिए।

हे जिनेन्द्रदेव! आपका शब्दब्रह्म, आपकी वाणी सर्वांग से खिरती है। तब होते हैं सर्प-नेवला, गाय-सिंह, मूषक-बिल्ली एक-साथ। यह शब्दब्रह्म की महिमा है।

यह शब्दब्रह्म वहीं से उद्घाटित होता है। आपके शिवपुरी में तालाब है। आप वहाँ जाना, परन्तु पानी छूना नहीं, अंगुली नहीं डालना, केवल समीप से गुजरना, तो शीतलता अनुभव होगी। शीतल पानी से टकराया समीर भी शीतल हो जाता है। वहीं ईंट के भट्टे के पास से गुजरो तो तपन लगती है। योगियों के पास बैठो तो शीतलता मिलती है, कषायी के पास बैठो तो तपन मिलती है।

धन्य है। कितनी पर्याय बदल गई, परन्तु पर्यायी नहीं बदला। अब दृष्टांत है, पहले दृष्टांत था। शुद्ध जीवराज को मस्ती में बैठे-बैठे जानना चाहते हो, तो शुद्ध जीवराज को कैसे जानोगे?

निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान के बिना शुद्ध जीवराज के दर्शन नहीं होते हैं। कथन कैसे चल रहा है? जैसे झलक रहा है। यह हमारे परमपूज्य आचार्यों की गंभीर शैली है। मात्र 'आत्मा' शब्द पर इतना विशाल ग्रंथ लिखने की सामर्थ्य किसी में है क्या? किसके लिए लिखा? वह है जीव-राजा। ऐसा नित्य-आनंदस्वभावी, रागादि रहित यह शुद्ध आत्मा है। ऐसा निश्चय करना चाहिए। रागादिक रहित अवस्था प्राप्त किए बिना शुद्ध-अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। आपने मिठाई बनाई? ज्ञानी! पानी में मल हो तो फिटकरी डालते हो, शक्कर में मल हो तो दूध डालते हो। दूध समल ही नहीं था, क्षारीय भी था।

मिठाई बनाते समय मल हटाना है तो दूध की छींटे डालते हो। मधुर आत्मव्यवहार के छीटों से शुद्ध आत्मतत्त्व की मिठाई बन जाती है। दूध में क्षारीयपन भी है।

आत्मा के मल को संयम से धोया जाता है। निर्विकल्प, समाधि अनुभव करने योग्य है। पुनः वही आत्मा, यही दृष्टांत है। यहाँ ऐसा समझना, भेदाभेद रत्नत्रय के द्वारा परमात्मा का चिंतन करना चाहिए।

इस प्रकार शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के विकल्पजालों से रहित होकर भेदाभेद रत्नत्रय का कथन करनेवाली दो गाथाओं का वर्णन तीन चरणों में समाप्त हुआ।

कोई स्वयं के द्वारा बोध को प्राप्त होता है और कोई दूसरे के द्वारा प्रतिबोध को प्राप्त होता है। तब वह अप्रतिबुद्ध से प्रतिबुद्ध हो जाता है। ये 19वीं गाथा 'समयसार' में प्रवेश है। आज जितना ताम-झाम, जितना विपर्यास है, वह इस गाथा के नासमझने के कारण है। जीव उलझा हुआ है। जीव कब-तक अप्रतिबुद्ध/अज्ञानी रहता है?

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥ 19 स.सा.॥

आचार्य महाराज क्या-क्या लिख गए? कभी-कभी कंठ भी भर आता है। कभी शरीर रोमांच से भर जाता है। इतने तन्मय होकर इतना विशद् वही लिख सकता है, जिसका चारित्र विशद् होगा। निर्मल मति के बिना लेखनी विशुद्ध चलती नहीं।

हे मुमुक्षु! जामन भी खट्टा है, नींबू भी खट्टा है, लेकिन दोनों में अंतर है। एक दूध को जमा देता है, दूसरा फाड़ देता है। लेखनी से ऐसा भी लिख सकता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी पढ़ेगी और ऐसा भी लिख सकता है कि पीढ़ियाँ नष्ट हो जायेंगी। हे जामन! तू तो जमा रहा है, जबकि नींबू फाड़ रहा है। दूध में नींबू डाला, छेना बन गया, दूध फट गया, अब अन्य कुछ नहीं बन सकता। दही से घी बन सकता है, मक्खन बन सकता है, तक्र (मट्ठा) बन सकता है। 'कल्याणकारक' जैन आयुर्वेद शास्त्र है। उसमें वर्णन है। 8 प्रकार का मट्ठा होता है। अद्भुत गंभीर चर्चा है। कुंदकुंद स्वामी ने अपनी बुद्धि को नींबू नहीं बनाया, उन्होंने अपनी प्रज्ञा को जामन वाला बनाया है, जो सारे जगत को स्थिर कर देती है। लिखना तो ऐसा लिखना कि टूटे हृदय जुड़ जायें, संयम से गिरते लोग स्थिर हो जायें। ज्ञानी! विधिरूप में लिखिए। क्षारीय को कोई पसंद नहीं करता, स्थिर करने वाले को सब पसंद करते हैं।

ज्ञानियों! देश पर आक्रमण हुए, प्राकृतिक आपदायें आई, परंतु यह समयसार बचा रहा। महान वस्तु की रक्षा प्रकृति स्वयं करती है। भोपाल में एक अजैन प्रोफेसर आए, कुछ देर देखते रहे, फिर पूछते

हैं- 'महाराज! आपके पास कुछ भी नहीं है क्या? न चिलम है, न भांग है।' फिर कहते हैं, 'यही कारण है कि श्रमण संस्कृति पूज्य हो रही है।' फिर सामने रखा 'समयसार' ग्रंथ देखते हैं, कहने लगे मैंने भी 'समयसार' की प्राकृत भाषा में परीक्षा दी है। अध्यात्म का सिरमौर ग्रंथ कोई है तो वह 'समयसार' ग्रंथ है। अध्यात्म की पूर्णता तभी होगी, जब समयसार का अध्ययन कर लेगा।

ऐसी अलौकिक लेखनी है आचार्य कुंदकुंद स्वामी की। समयसार ग्रंथ पर 1000 वर्ष तक किसी ने कुछ नहीं लिखा। आचार्य अमृतचंद्र की दृष्टि पड़ी, उन्होंने समयसार पर टीका लिखी। उस टीका पर टीका लिखी आचार्य जयसेन स्वामी ने। उस पर आज के विद्वानों ने टीकायें की। टीका जैसी की थी, वैसी रहती तो विवाद नहीं होता। ज्ञानी! जब भी कहो, आगम की कहो। भले आप लोग कहो कि यह आत्मा की बात है लेकिन यथार्थ यह है कि राग, कर्म, नोकर्म सता रहे हैं। जब तू जन्मा था तब मेरा नाम क्या था? यह तेरी माँ भी नही जानती थी, पिता भी नहीं जानते थे। धन्य हो, पिता के द्वारा आरोपित संज्ञा को प्राप्त कर तू संज्ञान को प्राप्त होता है। मैं जीवतत्त्व की, आत्मतत्त्व की चर्चा कर रहा हूँ। यदि मैं ऐसा कहने लग जाऊँ कि मैं विशुद्धसागर ऐसा कह रहा हूँ। ऐसा विचार करतो हो तो, महाराज! तुम नोकर्म को बुला रहे हो। तुझे जानने वाले कहाँ से आ गए? ज्ञानी! तू तो अशरीरी भगवत्-स्वरूपी है। नाम तो नोकर्म का भेद है। धन्य हो, तू नोकर्म के राग में कितने कर्म कर रहा है। पेपर में आपका नाम छप गया तो पर्याय की पर्याय पर खुश हो रहा है। ज्ञानी! जान लो कि भूल कहाँ-कहाँ कर रहे हो।

यह 'विशुद्धसागर' संज्ञा मेरी नहीं है, यह तो आचार्य विरागसागर ने दी है। उससे पहले यशोधरसागर था। पूर्व में जनक, जननी ने भी एक नाम दिया था। मेरा कोई नाम होता तो तीन तो मैंने स्वयं बदलते देखे हैं। तुम्हारी निंदा-प्रशंसा मेरी नहीं है, इसलिए मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ।

जो मेरा रूप दिखाई दे रहा है, वह जाननेवाला नहीं है और जो जाननेवाला है, वह दिखाई नहीं देता है। जिसे देख रहे हो, वह मैं नहीं हूँ और मुझे देखने की तुममें सामर्थ्य नहीं है। अब मैं किससे बात करूँ? आज घर जाकर चिंतन करना है। जिसकी राख होना है, उसका राग सबको सता रहा है। राख से ही राग करना था, तो संसार की राख को घर में रखना था।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वाम जी जय।

आचार्य भगवान् कुंदकुंद स्वामी अध्यात्म के इस महान ग्रंथ 'समयसार' जी की 19वीं गाथा में प्रतिबुद्ध और अप्रतिब ुद्ध जीव की व्याख्या कर रहे हैं। यह अनुपम दशा जीव की है कि जहाँ पहुँचता है, वहीं राग को प्राप्त हो जाता है। अशुभ अवस्था में भी राग को प्राप्त हो रहा है। आनंदित होता है।

हे ज्ञानी! एक-एक क्षण की शुद्ध अवस्था का ध्यान कर, लेकिन कहना यही कि परम आनंद, परमसुख शुद्ध अवस्था में नहीं, सिद्ध अवस्था में है। शुद्ध उपयोग की दशा जब-तक है, तब-तक संसार है। भावमोक्ष तभी होगा, जब शुद्धोपयोग का भी अभाव हो जायेगा। एक से तीसरे गुणस्थान तक तारतम्य से (घटता हुआ) अशुभ उपयोग होता है। चौथे गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक तारतम्य से (बढ़ता हुआ) शुभोपयोग होता है। सातवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक तारतम्य से शुद्धोपयोग होता है। 13-14 वां गुणस्थान शुद्धोपयोग का फल है, सिद्ध अवस्था है। जब-तक मन की धारा है, तब-तक उपयोग की धारा है। जहाँ मन का अभाव है, वहाँ उपयोग का अभाव है। 12वें गुणस्थान तक मन है, तो उपयोग भी है। 13वें गुणस्थान में भाव-मन का अभाव है। तो मन संबंधी विकल्प भी समाप्त। 13वें-14वें गुणस्थान में उपचार ध्यान है। ज्ञान की एकाग्रता का नाम ध्यान है। जहाँ ध्यान पूरा हो चुका, वहाँ ध्यान उपचार से है। यह सब संसार में दिख रही आत्मा ही परम तत्त्व को प्राप्त करती है। पैरों के नीचे रुँदती मिट्टी को देखा। मिट्टी को मिटते भी देखा। तब इतनी सुन्दर नहीं थी, जब रुँद रही थी। रुँदती मिट्टी देखकर सब मुस्कुरा रहे थे। वह चाक पर रखी और कलश बन गयी। जब घट बनकर आता है तो उसका जल ग्रीष्मकाल में कितना सुहावना लगता है। जो निगोदिया था। त्रस आदि पर्याय में रुंद रहा था, वह आज सिद्ध बनकर सिद्धालय में जगत के शीश पर विराजमान है। किसी को हीन मत समझो। पर्याय को देखकर पर्यायी को अशुभ मत मानिए। मिट्टी की पर्याय ही कलश बनी है। निगोदिया भी एक पर्याय थी, वह जीव भी सिद्ध बनता है। हे ज्ञानी! कहाँ विवादों में पड़े हो कि मैं अमुक हूँ, मैं अमुक हूँ? जब-तक अमुक-अमुक का विकल्प है, तब-तक विकारी ही है। जो अपने ज्ञान/विवेक को रत्नत्रय में न ले जाकर प्रपंचों में पड़ा है, वह जीव की प्रज्ञा का व्यभिचार है। आत्मद्रव्य को छोड़कर जितने भी द्रव्य हैं, पर-द्रव्य हैं। ज्ञानी! निज स्त्री को छोड़कर जगत में जितनी स्त्रियाँ हैं, पर-स्त्री पर दृष्टि जाती है तो व्यभिचारी कहलाता है। एक आत्मरमणी ही मेरी रमणी है इसे छोड़कर शेष पर-द्रव्यों पर दृष्टि फेंकता है, तो व्यभिचारी है।

उपयोग त्रैकालिक होता है?

उपयोग का अभाव नहीं। परिणतिजन्य उपयोग 12वें गुणस्थान तक है। लक्षणरूप उपयोग जीव का स्वभाव है, त्रैकालिक है। इसलिए उपयोग को भी तीन तरह लगाना चाहिए।

(1) शुभ-अशुभ उपयोग जो है, वह परिणतिरूप उपयोग है।

(2) भावेन्द्रिय आदि जन्य उपयोग लब्धिरूप उपयोग है, जो बारहवें गुणस्थान तक रहता है।

(3) लक्षणरूप उपयोग जीव का त्रैकालिक उपयोग है, ध्रौव्य है। जहाँ-जहाँ उपयोग है, वहाँ-वहाँ जीवद्रव्य है। जहाँ-जहाँ जीवद्रव्य नहीं है, वहाँ-वहाँ उपयोग नहीं है। अन्वय-व्यतिरेक है। व्याप्ति घटित करना चाहिये। जब परिणकत विकृत होती है, तब जीव का उपयोग विकृत होता है।

सुबह स्वरूप-अस्तित्व की चर्चा की थी। अब सादृश अस्तित्व को कहते हैं। जिस दिन सादृश अस्तित्व चिंतन में आ जाएगा, सारा भेदभाव समाप्त हो जाएगा। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं शुद्र हूँ- यह चतुःवर्ण आत्मा का स्वभाव नहीं हैं। यह कर्मजन्य कार्यजन्य है। आत्मस्वभाव नहीं है। कर्म/कार्य के पीछे उसमें विराजी भगवती आत्मा में भेद कर रहा है। जैसा ज्ञान-दर्शन तेरी आत्मा में है, वैसा ही निगोदिया में है। जिसकी छाया में बैठते हो, उस वृक्ष से पूछना- कल तू भी दूसरे की छाया में था। तत्त्व के लिए मनुष्य ही नहीं, जगत् के प्रत्येक द्रव्य से बात कर सकते हैं। वृक्ष से पूछ लेना- हे भटकती-भगवानाआत्मा! कैसा कर्म किया कि कर्म व कर्मफल चेतना को भोग रहा है। उसे वचन वर्गणाएँ प्राप्त नहीं, तब ही वह कह देगा स्पर्शन इन्द्रिय के राग में इत्र, सेंट आदि लगाया था। शीतलता के लिए कूलर में पानी भरकर ठण्डी को महसूस किया था। पानी के छींटें मारता था गलियों में, और पानी छानता भी नहीं था। कर्म का ऐसा आस्रव किया कि धूप में तपना पड़ रहा है, ठण्डियों में ठिठुरना पड़ रहा है, वर्षा में भींगना पड़ रहा है। यदि यह सत्य है तो ध्यान दो, तुम किस गति में जाने लायक हो। यहाँ लाग-लपेट नहीं चलती- जो है, सो कहो। ज्ञानी! मौसम बदलना संभव नहीं है, अपने भावों की परिणति को बदलना संभव है। परिणामों के मौसम को बदलने का प्रयास करो। मुमुक्षु! सिर पर सिगड़ी रखी जा रही थी, वह तपन कहाँ गई? रख भी कौन रहा था? श्वसुर। क्या कह रहा था? मुनि बनना था तो मेरी कन्या से संबंध क्यों किया? मुक्ति-वधू का वरण करने जा रहे थे। हे श्वसुर! तू क्या नया करने जा रहा है? जिसे तू जला रहा है, वह जलना ही था, मेरी आत्मा तो ध्रुवधाम स्वभावी है। जैसी तपन उन्हें लग रही थी, आज तपन ऐसी तो नहीं है शिवसुरी में।

मुझे तो ऐसा मौसम देखना है, हे प्रभु! गजकुमार मुनि से पूछो। कोई बचाने नहीं पहुँचा। हे कर्म! तेरी महिमा विचित्र है। कोई काम नहीं आते और कैवल्य हो गया, तो आ गए। सुनो प्रतिबुद्ध व अप्रतिबुद्ध की चर्चा। शास्त्र पढ़नेवाला शास्त्रपाठी हो सकता है परन्तु ज्ञानी नहीं हो सकता।

अन्यथा वेदपाण्डित्यं, शास्त्रपाण्डित्य च अन्यथा।

वेदों के पाण्डित्य में, शास्त्रों में पाण्डित्य में, आत्मा के पाण्डित्य में विभेद है। वह पाण्डित्य ही पाण्डित्य है जो कष्टों को ही कष्टों में डाल दे, स्वयं कष्ट में न आए। वह आत्म पाण्डित्य है। अपने आप को कष्ट में कभी नहीं स्वीकारना। विश्व में कष्ट तो दिए जा सकते हैं, लेकिन दुःखी नहीं किया जा सकता। कष्ट देना पर-सापेक्षता है, दुःखी होना स्वसापेक्षता है। कष्ट निमित्ताधीन हो सकते हैं, परन्तु दुःखी होना अथवा न होना स्वाधीन है, आत्माधीन है। कष्टों को, निमित्तों आदि को छोड़ देना चाहिए। खुशी मनाना चाहिए। ऋण लिया था, तो चुकाने में आनंद आता है कि नहीं? वह ईमानदार है, तो चुकाने में प्रसन्न होता है। तपोधन कष्ट आने पर प्रसन्न होते हैं, अच्छा हुआ जो ऋण से मुक्त हो गए। घर में कष्ट आ जाए, ज्ञानियो! तो प्रसन्न होना, मुख बनाकर नहीं बैठना। अच्छा हुआ, निकल जायेगा। परम योगियों का चिंतन करना। घानी में पेला गया, लोहे के तप्त आभूषण पहना दिए। तुम्हें कौन-सा कष्ट है? इसे सामायिक का विषय बनाना। कोई व्यथा नहीं है, आँखें बंद कर बैठ जाना। पाँच पाण्डव सोच रहे थे- जलनेलायक ही तो जल रहा है। जो जलनेलायक नहीं है, वह तो अंदर चमक रहा है। ईंधन जल रहा है, कोयला जल रहा है, तेल जल रहा है। सुनार से पूछना, अग्नि के बीच में क्या है? बीच में सोना है, जो चमकता है। देह के बीच में विराजा भावी भगवान्-आत्मा है। तन जलता रहे परन्तु अंदर आत्मा चमकती रहे, इसका नाम ध्रुवधाम ज्ञायकस्वभाव है, 'समयसार' प्रारंभ हो रहा है। यदि ऐसा चिंतन नहीं है तो पर्यायों के साधु तो हो, परन्तु परिणामों के साधु नहीं हो। यह व्याख्यान पर्याय के साधु का नहीं, परिणामों के साधु का है। प्रतिबुद्ध वही है, जो पर्याय के साथ परिणामों का साधु है। अप्रतिबुद्ध वही है, जो पर्याय का तो साधु है, परंतु परिणामों से शून्य हैं। सुनो श्रावको! साधु के लिए यह कह रहे हैं तो तुम्हारी क्या दशा है? 24 घण्टे क्या-क्या करते हो। शब्द को पुनः दोहरा लीजिए। यदि कर्मबंध होता है, सत्य है और एक समय में सिद्धों के अनंतवे भाग, अभव्यों के अनन्त गुणे कर्मबंध होता है। एक बार पलकों के ऊपर-नीचे होने में जितना समय लगता है, उनते समय में असंख्यात कर्मों का बंध कर लेता है। यदि निर्बन्ध दशा का चिंतन नहीं है तो निर्बन्ध दशा मौन है।

निर्बन्ध से निर्बन्ध नहीं, बंध से निर्बन्ध होता है। यदि बंधा नहीं स्वीकारोगे, तो निर्बन्ध कैसे होओगे? स्वभाव निर्बन्ध है, परंतु विभाव के कारण बंध है। यह निश्चय व व्यवहार की व्याख्या है। यदि

जिनवाणी का अनेकांत से ऐसा व्याख्यान हो तो समस्त समाज तत्त्व की अनुभूति ले, एक हो जाए। तत्त्व का यदि ऐसे नय-विवक्षा से कथन नहीं करोगे, तो एकांत होगा।

एकांतनया मिथ्या।

भले आप पूजा करते हो, अभिषेक करते हो, इससे आप स्वयं को सम्यग्दृष्टि मानते हो, लेकिन यदि तत्त्व पर एकांतदृष्टि है, तो जिनवाणी कहेगी कि मिथ्यादृष्टि ही है। सम्पूर्ण श्रुत को तुम जान नहीं पाओगे, सम्पूर्ण श्रुत को मान सकते हो। वर्तमान में सम्पूर्ण श्रुत नहीं जान सकते। सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत को नहीं जाननेवाले का मोक्ष संभव है। पाँच समिति सह तीन गुप्ति प्रमाण अर्थात् अष्ट प्रवचन मातृका का ज्ञाता मोक्ष जा सकता है, परंतु श्रद्धान सम्पूर्ण श्रुत का करना पड़ेगा। सम्पूर्ण श्रुत को नहीं- माननेवाला मोक्ष नहीं जा सकता। द्रव्यश्रुत की कमी से मोक्ष में बाधा नहीं है, भावश्रुत की कमी से मोक्ष नहीं होता है।

इस टीका में जयसेन स्वामी अभूतपूर्व व्याख्या कर रहे हैं। 'कम्मे-णोकम्मे', कर्म और नोकर्म। ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ। मैं गोरा हूँ, मैं काला हूँ, मैं साँवला हूँ। एक हर्ष को प्राप्त हो रहा है, एक विषाद को प्राप्त हो रहा है। हे मूढ़! नोकर्म की अवस्था को देखकर आत्मधर्म मान बिलख रहा है। आत्मधर्म पर दृष्टि डालो। माताओ! गोरे को देख खुश हुई, गंदगी देखकर तूने नाक सिकोड़ी। क्या देखा? नोकर्म को देखकर आत्मधर्म को खो डाला। इतना ही नहीं किया, गृहस्थी से चलते-चलते भगवान के पास भी पहुँच गए, उन्हें भी कहने लगा, दो गोरे दो साँवरे। परमेश्वर को भी देखा तो नोकर्म से देखा, आत्मधर्म से नहीं देखा। यह पर्यायदृष्टि है, व्यवहारदृष्टि है, निश्चयदृष्टि नहीं है। उमास्वामी ने दो नीले की, दो लाल की वंदना नहीं की, उन्होंने की

'वन्दे तद्गुण लब्धये'- हे जिनेश्वर! जो गुण हैं, उनकी वंदना है।

पर्याय की नहीं, पर्यायी की वंदना की है। क्या करें, व्यवहार में पर्याय के बिना पर्यायी को जाना नहीं जाता। इसलिए पर्याय की वंदना कर लेते हैं, परंतु ध्रुव सत्य है- वंदना तो पर्याय की नहीं है, पर्यायी की है।

मलरहिओ णाणमओ, णिवसई सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो॥ 26 त.सा.॥

मल से रहित ज्ञानमयी जैसा सिद्धालय में निवास कर रहा है, वैसा ही परमब्रह्म इस निज देह में देख। कैसा? जैसा सिद्धालय में है। अब नहीं कहना 'दो गोरे दो साँवरे'। क्या कहोगे-

न कृष्णं, न शुक्लं, न हीनं, न दीनं, चिदानंद रूपं नमो वीतरागं।

मेरा परमेश्वर न गोरा है, न काला है। यह तो नोकर्म का पिण्ड है। मेरा परमेश्वर तो वही '**चिदानंद रूपं नमो वीतराग**' उन्हें नमस्कार हो। यह निश्चयनय की स्तुति है। जब निश्चयनय के व्याख्यान में इतना आनंद है, तो निश्चय स्वरूप में कितना आनंद होगा? एक दिन के लिए तो बनकर देखो। सारा विश्व कर्म व नोकर्म से पीड़ित है और अपनी भूल भी तो नहीं मान रहा है- यही उसकी बड़ी भूल है। तू यही समझता है, मैं युवा हूँ। तन के युवा होने से कुछ नहीं होता, संयम युवा हो जाए, और वासनाएँ बूढ़ी हो जायें, मन थकने लग जाए, बस, भगवान बनने की यही कला है। इस देश में जितने ज्ञानी/मनीषी हैं, सबको समझना चाहिए कि शास्त्रों का पाण्डित्य और आत्मा का पाण्डित्य क्या है? अर्थदृष्टि ने परमार्थ (आत्म) दृष्टि खो डाली। ज्ञानी! धन से धर्म का संबंध नहीं है। यदि धन से धर्म होने लग जाएगा, तो मुनिधर्म का अभाव हो जाएगा। एक सज्जन आए- 'महाराज! आप इतना गहरा कहाँ से सोचते हो?' जहाँ का हूँ, वहीं से सोचता हूँ। ज्ञानी! धन से धर्म हो जाएगा तो मुनिधर्म का विनाश हो जाएगा, क्योंकि उनके पास धन होता नहीं, तो फिर उनके धर्म होगा नहीं।

ज्ञानियों! आकिंचन्य धर्म है, धन धर्म नहीं है। परम आकिंचन्य धर्म है। आचार्यभगवान् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि सम्पूर्ण निधियों का देव तू है। जगत के पिण्ड़ों को धर्म कैसे कहें? निश्चय धर्म अथवा व्यवहार धर्म के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। क्रियाओं के लिए, दिखावे के लिए धन की आवश्यकता है। '**णमो अरिहंताणं**' कहने में कौन-सा धन खर्च होता है?

परमानंद स्वरूपोऽहम्, सहजानंद स्वरूपोऽहम्, ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम् में लीन होने के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। इसलिए भ्रम निकाल दो। जैनदर्शन स्वच्छ दर्शन है, इसमें धन की आवश्यकता नहीं है। जो दिखाई दे रहा है, वह साधन है, सामाजिक व्यवस्था है। आत्म-व्यवस्था तो स्वतंत्र है, पर संबंध की आवश्यकता नहीं। इतर (अन्य) संस्कृति में साधु बनता है तो उसे जुटाना पड़ता है। सब भेष छोड़ दो, यथाजात में आ जाओ, तो हो गए साधु। साधु बनने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। जो इकट्ठा किया है, उसे हटा दो। जब जन्मे थे, कपड़े लेकर जन्मे थे क्या? कोई कपड़े नहीं थे। ऐसे ही बने रहते तो आज संस्कार हो जाते, तुम साधु बन जाते।

जिनसेन स्वामी ने जन्म से शरीर पर कभी एक धागा भी नहीं डाला। जैसे थे, वैसे ही रहे। 8 वर्ष एक अन्तर्मुहूर्त में गुरुदेव ने संस्कार कर दिए। यथाजात स्वरूपोऽहम्। जैसा जिनेन्द्र का स्वरूप है, वैसा होना चाहता हूँ।

निश्चय से जिसकी बुद्धि ऐसी है कि ये कर्म व नोकर्म मेरे हैं, वह अप्रतिबुद्ध है। जो कह रहे हैं कि मैं ज्ञानी हूँ, मेरा क्षयोपशम बढ़िया है, उन्हें 19वीं गाथा पढ़ना चाहिए। क्षयोपशम भी नोकर्म है। जो स्वयं को ज्ञानी कहता है, वह ज्ञानी होता नहीं, यही परम सत्य है। परमज्ञानी तो केवली भगवंत हैं। वे कहते नहीं हैं कि मैं ज्ञानी हूँ। तुम ज्ञानी होते नहीं। अरे! यह सुनकर विद्वान् का अनादर मत कर देना। पर सत्य यही है। वह क्षयोपशम है, क्षायिक भाव नहीं है। अब समझ में आ रहा है कि लोग 'समयसार' से क्यों डरते हैं। महाराज! करते-धरते दिखाई नहीं देता, पर अनुभव में सब आता है कि सत्य यही है।

यह आत्मलोक की चर्चा है, बाह्य लोक की चर्चा नहीं है। हे मुमुक्षु! चारों अनुयोगों का अध्ययन करो। जो ज्ञान में आनंद है, वह कहीं नहीं है। मखमली कीड़ा देखा आपने, बरसात में होता है, कितना सुन्दर होता है। पूछो कि सुन्दरता मिल कैसे गई? वह कहेगा मैंने मन बिगाड़ कर तन से सुन्दर साधना की मायाचारी के साथ, तो मन बन गया कीड़ा, तन बन गया सुन्दर कीड़ा। बहिरंग की चमक बहिरंग की है। साधना उतनी ही है, जितनी अंतरंग में है। आपको नहीं सुना रहा, स्वयं को सुना रहा हूँ।

24 घण्टे साधना की, हाय-हाय करते रहे। तो समय गया, जीवन गया, बर्बाद हो गया। दूध तपाया कभी? मधुर दूध तपाया कि ऐसे ही तपाया, हण्डी में तपाया या बटलोई में? मटके में दूध तपाया कभी? मटके के दूध की सुगंध, मटके के दूध का स्वाद जो होता है वह तपेली में तपाये दूधमें नहीं दिखता। जितनी मलाई मटके के दूध में बनती है, तपेली के दूध में नहीं होती। मतलब की बात करें। क्या करूँ, आचार्यों ने दृष्टांत ऐसे दिए कि बाल-गोपाल भी समझ लें। जैसे कि हण्डी का दूध सुगंधित होता है, सुवासित होता है। तपता हुआ दूध तप ही रहा था, कि बन भी रहा था? जो तप लेता है, वह बन जाता है। ऐसा तपा कि मावा/खोया बन गया। जो परभावों को खो चुका, तो बन गया खोया। जितना पानी था, उड़ गया, बन गया खोया।

ज्ञानी! तपोगे नहीं, परभावों को खोओगे नहीं, तो शुद्धात्मा बनोगे कैसे? खो जाओ। यह मटका छोटा है, यह मटका बड़ा है, जबकि मटके ने कभी नहीं कहा कि मैं छोटा, मैं बड़ा। तुमने ही संज्ञानी होकर तुमने ही संज्ञाएँ दी हैं। वह तो मिट्टी है। मिट्टी मिटते-मिटते भी नहीं मिटी, इसी का नाम मिट्टी है। नहीं मिटती तो लौंदे से मटका बना कैसे? लौंदे की पर्याय मिटी, तो घट की पर्याय बनी। किसकी पर्याय थी? किसमें थी? पर्यायी से पर्याय को अलग कर दो तो द्रव्य शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है। यही विसंवाद है, यही तत्त्व की भूल है कि द्रव्य से पर्याय को भिन्न मान रहा है।

पज्जयविजुलुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समया परूविंति ॥12 पं.॥

द्रव्य से रहित पर्याय और पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता है। दोनों अनन्यभूत हैं। ऐसा तीर्थंकर ने कहा है। मिट्टी मिटी, कि नहीं मिटी? जो पर्याय है, वह पर्याय क विकार है, कि द्रव्य का विकार है? आम द्रव्य है, पीली पर्याय है, मीठा गुण है। ऐसा करो, ज्ञानियो! आम की पीली पर्याय अलग कर दो, मीठा गुण अलग कर दो, आम द्रव्य चाहिए मुझे। नहीं दे पाओगे। 'तत्त्वार्थ सूत्र' में आचार्य उमास्वामी से पूछ लो।

'गुण-पर्ययवद् द्रव्यम्।' (त.सू.)

गुण और पर्याय से युक्त जो है, वह द्रव्य है। पुनः आइए। मिट्टी मिटी की नहीं? नहीं मिटती तो खदान से घर में कैसे आई? मिट गई होती तो मिट्टी कहते कैसे? पर्याय से मिटी है, द्रव्य की ध्रुवत्व के कारण मिटी नहीं है।

उत्पाद्-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्। सत् द्रव्य लक्षणम्। (त.सू.)

जिसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य चलता रहता है, वह सत् है। सत् ही द्रव्य का लक्षण है। ज्ञानी! तेरी दाढ़ी-मूछ कब आई? तारीख चाहिए। अच्छा, बनाई कब थी? 8-10 दिन पहले। तो फिर वापस कब आई; कौन से दिन? घबराओ मत, समयसार है। इन्हें ऐसे-ही समझाना पड़ता है। 8 दिन पहले जब बना रहा था, तब नए बाल भी आ रहे थे। तू स्थूल पर्याय को बता पाता है, सूक्ष्म को नहीं बता पाता है। जिस क्षण शिशु था, तो छोटा बालक ही युवा हुआ है, वह ही वृद्ध हुआ है, बदला नहीं है पर्याय के परिणमन होने पर भी। द्रव्य परिणामी भी है, अपरिणामी भी है। निज स्वभाव में परिणमन करता है तो परिणामी है, पर द्रव्यों में परिणामी नहीं करता है तो अपरिणामी है। द्रव्य त्रैकालिक परिणामी है, द्रव्य त्रिकाल अपरिणामी भी है। स्यात् परिणामी, स्यात् अपरिणामी। पंचास्तिकाय व प्रवचनसार में तत्त्व की गहराई से व्याख्या है। आचार्य कुंदकुंद मे पाँचों परमागम अत्यंत सूक्ष्म हैं। मनीषियों! ध्यान रखना। समझ न आए तो विकल्प नहीं, आज्ञा-सम्यक्त्व पहला है।

'सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं'

अर्हत् कथित तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म हैं। वे सरलता से समझ में नहीं आते, अतः इन्हें अर्हंत की आज्ञा मानकर ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि निर्बाध हैं। ऐसा क्यों? ऐसा क्यों, शंका नहीं होती, जिज्ञासा होती है। आज के लोग पण्डिताई दिखाना चाहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव को शंका नहीं होती, वह तो जिज्ञासा प्रकट करता है- 'भगवन्! समझ में नहीं आया, प्रज्ञा कम है। हे गुरुवर! पुनः समझना चाहता हूँ।' कैसे कहता है? 'भो स्वामी! मेरे क्षयोपशम की न्यूनता है, जिनेन्द्र की वाणी तो सत्य ही प्ररूपणा करती है,

मेरी ही समझ में नहीं आया। पुनः जानना चाहता हूँ।' ऐसा नहीं कि पत्थर पटक दिया। मुख तो मुख ही है। मीठे वचन बोलो भईया। यहाँ ही नहीं, घर में भी। प्रिय वचन बोलने से संसार के लोग संतुष्ट होते हैं। वचनों में क्या दरिद्रता। इसलिए सबको 'ज्ञानी' बोलना चाहिए। घट के भेद को देखकर भेद (राग-द्वेष) कर रहा है। मोह कर्म अंतरंग में, नोकर्म आदि बहिरंग में। कहता है- ससुराल में अनादर हो गया, मुझे पूछा नहीं। अरे ज्ञानी! जिसने अनादर किया है, उससे तू मिला ही नहीं। तन-मन न होता, राग-द्वेष न होता, तो अनादर कौन कराता? कहता है कि सम्मान चाहिए, माला चाहिए। ज्ञानी! जो माला होगी, पुद्गल डालेगा पुद्गल, जिस पर डलेगी वह भी होगा पुद्गल। भव का अभिनंदन करना है, कि आत्मा का अभिनंदन करना है? भावाभिनंदन करना चाहते हो तो आत्मा की उपेक्षा करो। बड़े-बड़े अभिनंदनपत्र छप गए, पर आत्मा भटक रही है। महान आचार्य कुंदकुंद स्वामी का अभिनंदन ग्रंथ नहीं छपा, परन्तु आज अभिनंदनग्रंथ छप रहे हैं। ज्ञानी! उस द्रव्य से समयसार छपवा देते तो पुण्यास्रव होता। समन्तभद्र-जैसे योगी कह रहे हैं- 'कोई योगी, गमक, मंत्रवादी, तंत्रवादी, किसी का लाल आकर मेरे से शास्त्रार्थ करे।' आचार्य समंतभद्र स्वामी सिंह-से गरजते थे। हमारा अहोभाग्य है जो उनकी वाणी आज हमारे हाथ में आ गई।

ज्ञानी! इस शरीरादि के माध्यम से आत्मा का तिरस्कार ही होता है। कर्म, मोह आदि के उदय में अंतरंग एवं नोकर्मादि बहिरंग कारण हैं, जिसके कारण आत्मा का अपमान होता है। किसका अपमान? जो जल रहा था, उसका सम्मान? जिस दिन शरीर को भिन्न मान लेता, तो भगवान बनने चल देता। आज भाषा बदल गई- 'महाराज! हम अहंकार नहीं करते, कषाय नहीं करते, घमण्ड भी नहीं करते; परन्तु स्वाभिमान तो चाहिए, स्वाभिमान को ठेस लगती है।' यह क्या बला है? यह मीठा जहर अभिमान ही है। कोई नई बला नहीं है। तुम स्वामी कब थे जो स्वाभिमान जा रहा है? चाहे मिठाई कहो, चाहे गुरयाई कहो, गन्ने का परिणमन है। कितने अच्छे-अच्छे शब्दों में बातें करता है। मिश्री कह रहा है, शर्करा कह रहा है, खाण्ड कह रहा है। किसके रूप हैं? गन्ने से सब बने हैं। मान, स्वाभिमान किसके रूप हैं? मान-कषाय हैं, मान ही है। पूछो, कषाय चार होती हैं तो स्वाभिमान को किसमें ड़ालोगे? मान कषाय से बंध होगा की नहीं? मैं नहीं जानना चाहता, कि तुम क्या करते हो। मैं चाहता हूँ कि जान लो वस्तुस्वरूप क्या है? मान ऐसा होता है कि पुष्टि नहीं हो तो क्रोध आता है, फिर मायाचारी करता है और फिर लोभ करता है, यहाँ तक कि स्वयं में रोने लगता है। न मारा, न पीटा, फिर भी रो रहा था, मान से मर गया।

आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी आत्मा को स्फटिक के तुल्य देखना चाहते हैं। जिसमें न मान है, न लोभ है, न अन्य कोई कषाय है। आत्मा के सामने जैसे कषाय आयेगी, आत्मा वैसी ही दिखेगी।

मूड़बिद्री में स्फटिक मणि की विशाल प्रतिमाएँ हैं। पुजारी दर्शन करवाता है तो प्रत्येक प्रतिमा के पीछे दीप जलाता जाता है। इस प्रकार पुद्गल परिणमन से, वस्तुभेद से, जितने काल तक पर-द्रव्य की अनुभूति जब-तक लेता है, तब-तक, उतने काल तक आत्मा अप्रतिबुद्ध ही है, अज्ञानी है। समयसार का ज्ञानी कौन है? जो कर्म-नोकर्म में राग नहीं करता है। जिसका राग स्वानुभूति में रहता है, वह ही ज्ञानी है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज समयसार की 19वीं कारिका की प्ररूपणा में आलौकिक सूत्र प्रदान किया। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने टीका में विशद् व्याख्यान किया। इस आत्मा का यदि किसी ने अपमान किया है, अनादर किया है, तो जगत के अन्य किसी जीव ने नहीं, अन्य किसी द्रव्य ने नहीं किया, कर्म-नोकर्म के प्रति राग की दृष्टि ने आत्मा का महान अपमान किया है। तिलक के पीछे तिलक मिट गए। नाक के पीछे नाक लटक गई है, माथे पर तिलक लगाने के चक्कर में रत्नत्रय का तिलक मिटा दिया, लंबी नाक करने के पीछे हाथी की नाक लगवा बैठा। एक नोकर्म की पूजा के पीछे हाथी की पर्याय का नोकर्म मिल गया। नोकर्म तो नोकर्म था, कर्म तो कर्म था; दोनों पौद्गलिक हैं। कार्माण-वर्गणाएँ इस लोक में ठसाठस भरी हुई हैं। 23 प्रकार की वर्गणाओं में से पाँच प्रकार की वर्गणाएँ ही ग्राह्य हैं, शेष अग्राह्य। वे पाँच वर्गणाएँ किसी को बुलाती नहीं कि आप आयें।

स्व-स्व कर्म ही कर्म का हित चाहता है, जीव ही जीव का हित चाहता है। स्वार्थ को कौन नहीं चाहता? लोक में जो वर्गणाएँ भरी हुई हैं, वे तुझसे बोलती नहीं हैं। आत्मप्रदेशों में बद्ध वर्गणाओं के साथ अबद्ध वर्गणाएँ भी होती हैं। मात्र राग-द्वेष करने की आवश्यकता है, वे कार्माण-वर्गणाएँ तुरंत कर्मबंध को प्राप्त हो जाती हैं। चूना स्वतंत्र है, हल्दी स्वतंत्र है, दोनों को मिला दीजिए। दोनों ने अपनी पर्याय छोड़ दी, तीसरी पर्याय का जन्म हो गया। मुमुक्षु! कर्म बहुत ईमानदार होते हैं, बलात् बंधते नहीं है। ऐसा होता नहीं कि द्रव्य कर्म का बंध हो नहीं, भावकर्म का बंध हो जाए। द्रव्यकर्म दिखते नहीं, मानता हूँ, लेकिन तुम्हें परिणाम समझ नहीं आते क्या? 148 कर्मों में कितने आ रहे हैं, कितने जा रहे हैं, तुम जान नहीं रहे क्योंकि तुम सर्वावधि-ज्ञानी, परमावधि-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी नहीं हो। लेकिन इतना जरूर मालूम चलता है कि अंतरंग में परिणाम कैसे हैं? यहाँ बैठे-बैठे भी हीयमान की ओर चले जाते हो। वर्द्धमान के चरणों में पहुँचो अथवा न पहुँचो, परिणाम वर्द्धमान हो जायें तो तुम वर्द्धमान बन जाओ। परिणाम हीयमान हैं, तो वर्द्धमान के चरण भी बचा नहीं पायेंगे।

प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। चरण पकड़ने से भगवान् नहीं बनते। आचरण पकड़ लोगे तो नियम से वर्द्धमान बन जाओगे। द्रव्यकर्म दिखाई नहीं दे रहे हैं- सत्य है, परन्तु भावकर्म समझ आ रहे हैं कि नहीं? जो कर्म व नोकर्म को जानकर भावकर्म में मग्न है, वही प्रतिबुद्ध है। अप्रतिबुद्ध वह है जो कर्म-नोकर्म में लिपटकर भावकर्म को दूषित कर रहा है। कर्म को सर्वदा दोष नहीं देना। देखो, कार्य क्या चल रहे

हैं। श्रमण संस्कृति में न जगतकर्ता है, न जगतहर्ता है, न ही रक्षक की कल्पना है। अपने शुभाशुभ का मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही कर्ता हूँ, मैं ही रक्षक हूँ ध्यान से सुनना- द्रव्यकर्म नहीं दिखते, भावकर्म को देखिए।

कामादिप्रभवश्चित्तः कर्मबन्धाऽनुरूपतः।
तच्च कर्मस्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्य शुद्धितः ॥99 आप्त मीमांसा॥

प्रभव यानि उत्पन्न होना, जन्म होना। मेरे नोकर्म का निमित्त माता-पिता हो सकते हैं, देह के जनक-जननी भिन्न हो सकते हैं, पर भावकर्म का मैं ही जनक, मैं ही जननी, मैं ही संतान हूँ। राग किसने किया? मैंने। जनक कौन? मैं। जननी कौन? मैं। संतान कौन? मैं। मैं ही मेरा जनक, मैं ही मेरी जननी, मैं ही संतान हूँ।

चित्त अर्थात् मन। रागादि का चित्त में जैसे ही उत्पाद् होता है, वैसे जन्यकर्म का बंध प्रारंभ होता है। हे ज्ञानी! सर्पिणी के बच्चे का उद्भव तो सर्पिणी प्रदत्त अण्डे से होता है और तेरे कर्म का जन्म तेरे भावों के अंदर के अण्डे से होता है। ये विकार, ये काम कहाँ उत्पन्न हो रहे हैं? उनका योनिस्थान/ जन्मस्थान कहाँ है? आकृत योनि 3 हैं, गुणयोनि 7 हैं। कौन-सा स्थान है, जहाँ कमादि का जन्म हो रहा है? विकारों का जन्मस्थान/योनिस्थान कोई है तो उसका नाम चित्त है। तन को पवित्र करने की बात मत करो। शरीर को बाँधकर भी क्या करोगे? जैन संस्कृति अंगों को छेदन-भेदन करने की संस्कृति नहीं है। श्रमण संस्कृति चित्त पर नियंत्रण करने की संस्कृति है।

तन तो विकारीपने को प्राप्त होता है। तन विकारी नहीं, विकारी तो आत्मा ही होती है। भ्रम निकाल देना कि पर्याय में विकार है। यदि पर्याय में विकार होगा तो बंध भी पर्याय को होगा। यदि ऐसा होता, तो द्रव्य ऊपर चला जाता और पर्याय एवं कर्म यहीं रह जाते, तब पर्याय के दहन के साथ कर्मों का दहन हो जाता और तू शुद्ध बन जाता।

ज्ञानी! कर्मबंध पर्याय को नहीं, पर्यायी को होता है। कर्मबंध पर्याय में करता है, बंध पर्यायी को होता है। जिस पर्याय में जाएगा, तो कर्मबंध करेगा। आस्रव व बंध पर्याय में नहीं, आत्मा में होगा। कर्ता व भोक्ता पर्याय नहीं, पर्यायी है। ध्यान रखना, नहीं तो जीव स्वच्छंद हो जायेगा। पर्याय को निर्मल नहीं करना। पर्याय को निर्मल अज्ञानी करे। ज्ञानी तो परिणामों में सुधार करता है। जो भुज्यमान पर्याय है, उसका क्या सुधार करेगा? माँ! जो रोटी खा रही हो, उसे क्या सुधारोगी? भोजन करते समय सुधारा नहीं जाता, बनाते-बनाते सुधारा जाता है, खाते-खाते तो बिगाड़ा जाता है। जो पुण्य भोग रहे हो, जो आयु फल भोग रहे हैं, वे पुण्य सुधार नहीं रहे, वे पुण्य बिगाड़ रहे हैं। जो वर्तमान में पुण्य कर रहे हैं, वे पुण्य सुधार रहे हैं। विश्व देखे, कि कितनी सुन्दर रोटी खा रहा है। ज्ञानी! सत्य यह है कि रोटी बिगाड़ रहा

है। ज्ञानी! एक बढ़िया सुदंर रोटी

मँगवाइये, बढ़िया पैकिंग में और फिर उसका अनावरण करिये, फिर तभी मुख में रख लेना, फिर वहीं छोड़ देना कहना-देखो, अनावरण कैसा हुआ है? अब कोई देखना पसंद नहीं करता। इस तन के संयोग से चमकती रोटी भी मलरूप हो गई। कौन कर्ता है, कौन भोक्ता है? पर्याय नहीं। जो कर्ता व भोक्ता है, उसका नाम पर्यायी है। तत्त्व की भूल यही है। तत्त्व की गहराई जाने बिना तत्त्व को कहने लग गए। ज्ञानी! डॉक्टरी पढ़े बिना यदि कम्पाऊडर हाथ देखने लगे तो रोज एक ऊपर जाए। देखे-देखे, सुने-सुने सत्यार्थ बोध हो जाए तो अनुभप की क्या आवश्यकता? बिना अनुभव, बिना स्वरूप ज्ञान के तत्त्व का व्याख्यान तो सबको ऊपर ही भेजेगा। बोध अंतरंग से होना चाहिए, तब वस्तु का व्याख्यान सत्यार्थ होगा। बंधक पर्याय है, कि पर्यायी है? बंध पर्याय ने किया, कि परिणामों ने? पर्याय से परिणामों की इच्छा की पूर्ति अवश्य की है, परन्तु परिणामों का कर्ता पर्याय नहीं, पर्यायी है।

समन्तभद्र स्वामी को जो जितना गहरा पढ़ लेगा, वही कुंदकुंद स्वामी को उतना गहरा समझ लेगा। 'आप्तमीमांसा' के ऊपर ही आचार्य विद्यानन्दि स्वामी ने अष्टसहस्री ग्रंथ की रचना की। जिसमें इतनी सूक्ष्म तात्त्विक व्याख्या की है। ज्ञानी! तत्त्व की भूल है। कहता है पाप आज किया है, बंध कभी होगा। जैसे-ही चित्त में कामादि का जन्म हुआ, कर्मबंध हो गया। मोक्ष का कर्त्ता ईश्वर नहीं, कर्मबंध का कर्त्ता ईश्वर नहीं। बंध का कर्त्ता कोई है तो, चित्त का विकृतपन ही कर्मबंध का कारण है। यही कारण है कि जो फलित-फलित दिखते थे, वे गलित-गलित दिख रहे हैं। क्षण नहीं लगा। सुन्दर तन था, गलित कुष्ठी हो गए। क्योंकि कामादि (आदि शब्द से तात्पर्य कामविकार से प्रारंभ होकर जितने विकार हैं सब) कर्मबंध के कारण हैं। श्रीपाल से पूछो, तन में कुष्ठ पहले हुआ कि मन में? जिसके मन में वीतरागी के प्रति अशुभ भाव हुए, यही मन का कुष्ठ फलित होता है तन के कुष्ठ के रूप में। श्रीपाल ने क्या किया था? निंदा की थी मुनिराज की। बहिरंग क्रिया को देखकर अंतरंग क्रिया का सर्वथा ज्ञान नहीं होता। किस भावलिंगी के क्या भाव को जाएँ जिससे वे भव का नाश करेंगे। हम भव का विकास कर लेंगे।

जब-तक जिनवाणी को नहीं सुना, जिनवाणी को नहीं जाना, तो कुछ-भी कह दिया, लेकिन कुछ बिगड़े या न बिगड़े, चित्त बिगड़ेगा तो कर्म का बंध तुरंत नियम से होगा। ज्ञानी! मनुष्यादि पर्याय है। जीवद्रव्य पर्यायी है। परिणाम यानि भाव। वर्तमान की पर्याय है, भविष्य की पर्याय का जनक नहीं है। वर्तमान के परिणाम ही भविष्य की पर्याय के जनक हैं। विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय है, वो अन्य विभाव पर्याय का कारण नहीं। उस विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय के प्रभाव से जो विभाव-गुण-पर्याय बन रही है, वह तेरे संसार का कारण है।

विभाव-व्यंजन पर्याय को विभाव व्यंजन पर्याय ने उत्पन्न नहीं किया। विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय के निमित्त से तुझे विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय भी मिल रही है और विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय भी मिल रही है। इस विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को प्राप्त करके ही स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को प्राप्त किया जाता है। जो विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय में स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को प्राप्त करना चाहते हैं तो विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय के काल में स्वभाव पर लक्ष्य ले जायें।

विभाव ही स्वभाव का जनक है। कैसे? कामपुरुषार्थ साधु को भी जन्म देता है। अशुभ कर्म करके संतान को जन्म दिया था, पर वह संतान 'संतान' हो जाए तो खुश होता है। भले ही पाप किया था फिर भी संतान अच्छी हुई। ऐसे-ही इस विभाव-व्यंजन पर्याय के काल में भाव सुधर जाए तो वह विभाव-पर्याय स्वभाव-गुण-पर्याय का कारण बन जायेगी। द्रव्यानुयोग का अर्थ आत्मा-आत्मा, पुद्गल-पुद्गल कहने वाला नहीं है। द्रव्यानुयोग समझने के लिये कई ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक है। न्यायशास्त्र का ज्ञाता होगा, तभी द्रव्यानुयोग का ज्ञाता होगा। कहाँ जन्म हुआ कर्म का?

द्रव्यकर्म नहीं दिख रहे, पर नोकर्म दिखाई दे रहा है। भावकर्म विकृत न होता, तो चित्त पर-के नोकर्म में लिप्त होकर कर्मबंध न करता। सुन्दर चेहरा देखकर चित्त विकृत कर रहा था। उसने तो पूर्व भव में-

'भक्तेः सुन्दर रूपं'

जिसे देखकर तू दृष्टि बिगाड़ रहा था, उसने पूर्व पर्याय में सुन्दर भक्ति की है। उसके सुन्दर रूप को देखकर तुझे भक्ति का ज्ञान होगा था। पर के नोकर्म को देखकर तू कर्मबंध कर रहा था, तू अप्रतिबुद्ध है। जिनको देखकर कर्मबंध कर रहा था, वह कन्या तो पूजा में लीन थी। पापी आया और दूर से देखकर चला गया। जिन तीर्थंकर के पादमूल में निधत्ति व निकाचित कर्म का क्षय हो सकता है, वहाँ कर्म का बंध करके चला गया। समयसार का व्याख्यान करना है, तो करणानुयोग का पुट देना ही पड़ेगा। जो तिरस्कार कर्म, नोकर्म, मोह ने कराया, वह जगत में किसी ने नहीं कराया। नाली के कीड़े देखे हैं, पूँछवाले? ऐसे पूँछ वाले कीड़े मैंने पुरुष की नाक से टपकते देखे हैं। नाक से कीड़े देखे हैं, पूँछवाले? ऐसे पूँछ वाले कीड़े मैंने पुरुष की नाक से टपकते देखे हैं। नाक से कीड़े टपकना कीड़े नहीं, कर्म का फल था। काली कोठरी में छुपकर भी पाप करना परन्तु कर्मबंध को बंद नहीं कर सकते। पापकर्म के फल को किस तिजोरी में बंद करने जायेगा? आज की नवपीढ़ी को सुनना चाहिए समयसार। आप सुना देना। ज्ञानी! जिनके बाल सफेद हो गए, सिर हिलने लगे, वे बूढ़े नहीं हैं। वासनाएँ जाग्रत हैं तो कामनाएँ जाग्रत हैं, सफेद बाल वाले वे बूढ़े नहीं, जवान हैं। वृद्ध वे, जो संयम से युक्त हैं। बत्तीसी चली गई फिर

भी कहता है चना पीस कर खा लूँगा। ज्ञानी! तत्त्व की पहचान करो। कर्मबंध को करनेवाले कामादि हैं।

उसका हेतु क्या है? परकृत कर्म उसका हेतु नहीं। यह स्वकृत है। शुद्ध करेगा तो स्वकर्म करेगा, अशुद्ध भी स्वकर्म करेगा। ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मा आदि नहीं। मैं ही अपना ईश्वर, मैं ही ब्रह्मा हूँ।

ज्ञानी कितना समझदार है, अच्छे काम किए तो कहता है कि हमने किया। काम बिगड़ जाए तो कहता है- 'बेटा! अपने ऊपर भगवान् रूठा है।' काम बन जाए, तो कहता है 'भगवान्! तुम सच्चे देव हो।' काम बिगड़ जाए, तो घर से ही कहता है- 'देख लिया भगवान् को, कुछ नहीं है।' तेरे राग से भगवान् की भक्ति छूट गई। बोले, 'भगवान् की पूजा की तो गरीबी आ गई।' भगवान् से नहीं, कर्म से गरीबी आई है। ज्ञानी! सारा जगत छूट जाएगा तो भगवान काम आयेंगे। न मानो तो द्रौपदी से पूछो। कोई काम नहीं आया तो-

एक गाँव-पति जो होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवे।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

जीव चतुर है। यदि सक्षम है, तो कुछ नहीं; लेकिन जब बीतती है तो प्रभु! तुम ही सब हो। क्यों?

द्रोपदी को चीर बढ़ायो, सीता-प्रति कमल रचायो।
अंजन से किए अकामी, दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

जब पिता-माता कोई से काम नहीं हो, तो याद आई। क्या?

ऐसा पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम्।

अरे ज्ञानी! स्वस्थ था, तभी कह लेता, तो दुनियाँ की तरफ क्यों देखना पड़ता? आज तत्त्व-प्रचार की आवश्यकता है। लोग भ्रमित हो रहे हैं। आज भक्त बनकर नहीं, भिखारी बनकर आ रहे है। अरे भिखारियो! भक्त बनकर आओ, तो भीख न माँगना पड़े। भिखारी वे ही हैं जो विकारी होते हैं। प्रतिबुद्ध/अप्रतिबुद्ध। नोकर्म के पीछे ही कर्म तुझे बुला रहा है। पर के कर्म-नोकर्म को देखकर जितना बंध किया है, उतना तो अन्य ने नहीं किया। पूरी पर्याय निकल गई। 25 वर्ष पूर्व तू कितना चमकता था, खजूर जैसा। आज छुआरा हुआ न? पर के नोकर्म को देखकर अपना नोकर्म बिगाड़ बैठा। दूसरे के देह, दूसरे के कर्म देखकर अपनी विधि अवस्था का घात किय।

आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी ने जिनेन्द्र की वाणी को गणधर परमेष्ठी से होते हुए आचार्य भद्रबाहु की वाणी से प्राप्त कर स्वात्मानुभूति से लिखा है। अप्रतिबुद्ध ही बुद्धि ठीक कर ले तो प्रतिबुद्ध हो जाए। जिस प्रकार रूपी दर्पण स्वयं को एवं दूसरे को प्रकाशित करता है, यह दर्पण की स्वच्छता की महिमा है। अग्नि में उष्णता है, ज्वाला है। दर्पण सामने रखा है, अग्नि जल रही है। जितनी जल रही है, उतनी दिख रही है। लेकिन दर्पण जल रहा है क्या? ज्ञानी! ज्ञातापन में बंध नहीं है, दृष्टापन में बंध नहीं है। जाननेवाले को, देखनेवाले को बंध है। फिर सर्वज्ञ अबंधक क्यों? जानते/देखते नहीं। जनता है, दिखता है, इसलिए अबंधक हैं। सर्वज्ञ हैं, आत्मज्ञ हैं।

जानते-देखते हैं संसार के सम्पूर्ण पदार्थ को व्यवहार से केवली भगवान, परन्तु जानते देखते हैं स्वयं को, निज आत्मा को निश्चय से केवली भगवान। व्यवहार से सर्वज्ञ हैं, निश्चय से आत्मज्ञ हैं। झलकता है जैसे अग्नि झलकने से दर्पण जलता नहीं है। समझ न आए तो कोई बात नहीं। आगम की भाषा सुनने मात्र से भावों की भाषा समझ में आती है। द्रव्य का उपयोग अन्य कामों में लगाते हैं, जबकि जिनवाणी में लगाना चाहिए। जो कमा कर रख है, वह कहाँ जायेगा? धन मिला है, तन मिला है तो वाणी से अरिहंत-शासन की प्रभावना करो। तुम चले जाओगे, कौन जानेगा? जैसे बने वैसे अरिहंत-शासन की प्रभावना करो।

सेठ पाहिल से समय में और-सेठ नहीं थे क्या? सेठ पाहिल को सारा विश्व जानता है। अनेक जिनमंदिरों का निर्माण करवाया।

ज्ञानी! भगवान् मंदिर बदल लेते हैं। मंदिर भग्न हो जाएगा, पर भगवान भग्न नहीं होंगे। हम तुम्हारे अंदर के भगवान् की बात कर रहे हैं। यह मंदिर नष्ट हो जायेगा, तो भगवान दूसरे मंदिर में विराजमान हो जायेगा। दर्पण 'दर्पण' है और अग्नि 'अग्नि' है, उष्णता 'उष्णता' है। अग्नि का धर्म उष्णता है, कि दर्पण का धर्म उष्णता है? दर्पण की स्वच्छता से अग्नि झलक रही है, जला नहीं रही है। दूर से जानो-देखो, तो जलता नहीं। यदि अग्नि पर रख दो तो जलेगा। जगत को देखो तो बंध नहीं होगा, परन्तु लिप्त हो जाओगे तो नियम से बंध हो जायेगा। आत्मा कैसी है? निरूप है।

कर्म की, राग की महिमा है। पर-के नोकर्म में लिप्त हुआ था, तो मल खा रहा है। कल भगवान् बनने वाला है। सुअर को मल खाते देख लगा- हे भगवानात्मा! तू क्या कर रहा है? हे भविष्य के भगवान्! कहाँ अपनी पर्याय को, संयम को, भोगों की नाली में लगा रहा है?

आज भोगों की नाली में पड़ा है। शुद्ध भगवान् कहाँ पड़ा है? सोच/शोक उनपर मत करो, जो तन को छोड़कर जा रहे हैं। सोच करो उन पर, जो भगवत् स्वरूप को भोगों की नाली में लगा रहे हैं। ऐसे

24 घण्टे सुनते रहो। दुनियाँ के ऊपर दया/करुणा करता है, सब दिखावा है। सच्ची करुणा निज पर कर लो, सच्ची दया स्वयं पर कर लो। यह मोती चुगने वाली निरपराध हंसात्मा, कहाँ मल के पिण्ड पर बैठी है। हे हंसात्मा! चारित्र के मोती को निहार, भोगों के मल को मत देख। ओ हंसात्मा! नीर-क्षीर को अलग करो। भेदविज्ञान करो, शुद्धात्मा के क्षीर का पान करो। ध्यान रखना है कि हम चील हैं, कि चकोर हैं। चील गगन में उड़ता है, लेकिन मुंडी नीचे होती है, जमीन से मांस के टुकड़ों को निहारता है। चकोर नीचे होता है, परंतु ऊपर चन्द्रमा को निहारता है। चकोर-दृष्टि-युक्त गृहस्थ तो संयम को निहारता है। यदि साधु बनकर भी भोगों को निहारता है, तो चील-दृष्टि है। घर जाना है, तो चले जाओ, परन्तु सत्यमार्ग पर जाने के लिए यहीं आना पड़ेगा। मेरा स्वभाव तो ज्ञातृत्व भाव मात्र है। ज्ञायक भाव ही मेरा स्वभाव है। परज्ञेय मेरा स्वभाव नहीं है। भूल यहीं हो रही है। परज्ञेयों में लिप्पता ही तेरे ज्ञेय स्वभाव की घातक है। आचार्य अमृतचंद्रस्वामी की टीका लघु है, पर महाटीका बन गई। रहस्य भरे हैं।

देख भाई! कर्म-नोकर्म के प्रति स्वतः अथवा दूसरे के द्ववारा जो तत्त्वबोध होता है वह तत्त्वबोध स्वयं होता है, पर से भी होता है।

तत् प्रामाण्यम् स्वतः परतश्च। (परीक्षामुख)

अभ्यस्त दशा में स्वतः, अनभ्यस्त दशा में परतः। जो शिवपुरी पहली बार आया तो वह शिवपुरी मंदिर से बाहर द्वार पर पूछता है कि मंदिर कहाँ है? परतः है। पहले तत्त्वबोध हुआ नहीं। एक बार हो जाए, तो स्वतः। आज तक नहीं हुआ, इसलिए परतः है।

आज तक बोध नहीं हुआ, इसलिए अनभ्यस्त है।

निज भाव परभाव नहीं, परभाव निज भाव नहीं। निजभाव निज है, परभाव पर है। ऐसा ज्ञान है तो प्रतिबुद्ध है, इसके पूर्व अप्रतिबुद्ध है। इससे पता चलता है कि त्यागमार्ग पर अभ्यास की आवश्यकता है। तत्त्व-अभ्यास करोगे तो पर के लिए निर्मल बनोगे। वैरागी इसलिए नहीं बनना कि पढ़ाई में मन नहीं लगता, साधु बनकर माला टारत रहें। ज्ञानी! इते, आफत टारवे न आ जइयो। मलपिण्ड का राग टर जाए तो समझो कि माला फिर आई। अध्ययन करना/कराना उसमें दोष नहीं है, पर उसमें लिप्त मत हो जाना, वही प्रतिबुद्ध है। साधना करते-करते, उपदेश करते-करते, उपदेश को विराम दे देना, निज समाधि की भावना में लीन रहना। वह दिन भी दिखाई दे कि समाधि का समय आ गया है, अब पर उपदेश, नहीं देना है। अब जगत को नहीं, निज को सुनाऊँगा। निज मंच पर मैं ही वक्ता, मैं ही श्रोता होऊँगा। तुमसे नहीं कह रहा, स्वयं से कह रहा हूँ।

टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी 'आत्मख्याति टीका' में कलश लिख रहे हैं। मंदिर कितना ही सुन्दर हो, परन्तु कलश बिना शोभा नहीं होती। अंतिम कलश रख दिया, तो मंदिर पूरा हो गया। प्रत्येक गाथा पर कलश लिख रहे हैं, पूरी टीका का सार कलश में है। भेदविज्ञान का मूल जिसमें है, जो अनुभूति से अचलायमान है। ऐसी जिनकी दृष्टि बन गई है कि स्वयं से कल्याण होगा, परंतु ध्यान रखना। निमित्त स्वयं भी हो सकता है, पर भी हो सकता है। अन्यथा गुरु-शिष्य का अभाव हो जायेगा। 'परस्परोपग्रहो' सूत्र समाप्त हो जायेगा और निमित्त-नैमित्तिक संबंध समाप्त हो जायेगा।

एकमात्र 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' पर 1000 विस्तार से व्याख्यान हो सकता है। इतना गहरा सूत्र है। स्वयं से अथवा दूसरे के द्ववारा। प्रतिपल जो निमग्न है अपने निज शांत स्वभाव में। कैसे? जैसे मुकुर यानि आदर्श/दर्पण। जैसे भी समझो, आत्मा को समझो। जैसे दर्पण जगत के पदार्थों को झलकाता है, परन्तु लिप्त होता नहीं, ज्ञानी! ऐसे-ही प्रतिबुद्ध देखता/जानता है, परन्तु लिप्त नहीं होता है। अविकारपन को जानता है, उसका नाम प्रतिबुद्ध है।

आत्मस्वाभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी, जैन वाङ्मय में अध्यात्म-विद्या के महान् योगी हुए हैं जिन्होंने अन्तरात्मा के स्वरूप का व्याख्यान कर सारे जगत् को ज्ञान करा दिया कि जो चाक्षुष विषय है, जिसे आँखों से निहारा जाता है, ऐसे बाह्य विज्ञान को कहना बहुत सरल है, परंतु अंदर के वीतराग विज्ञान का व्याख्यान कठिन है। ऐसे कठिन व्याख्यान को भी विशाल ग्रंथ के रूप में कहा जा सकता है। यह एक अपूर्व विद्या आचार्य कुंदकुंद स्वामी के पास थी। जब अंतरंग की अजस्र धारा प्रवाहित होती है तो, मनीषियो! सारे जगत की अविद्याओं के विशाल पटल को विदीर्ण करती हुई वह परम-आत्म-सरिता अंतस् में प्रवेश कर जाती है। मनीषियो! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की टीका का सरलीकरण करते हुए आचार्य जयसेन स्वामी समझा रहे हैं :-

सारे जगत का नाटक दो के ऊपर चल रहा है- कर्म और नोकर्म। आश्चर्य तो यह है कि कर्मातीत के पास भी जीव कर्म ही की भीख माँगने आता है। तीर्थंकर के पाद-मूल में बैठकर यदि कोई जीव यों कहे- 'हे नाथ! मैं धन-सम्पत्ति से सम्पन्न रहूँ, सुकुल की प्राप्ति हो, यश-कीर्ति बढ़े।' बहुत मधुर भाषा है, लेकिन, हे मुमुक्षु! अरिहंत के पाद-मूल में बैठकर, तीनलोक के नाथ के चरणों में बैठकर तू संसार ही तो माँग रहा है। सुकुल में जन्म हो, लेकिन जन्म का अभाव नहीं चाहता है। सम्पत्ति की प्राप्ति चाहता है, अहो! धन की वृद्धि हो, यानि 'धन्य' नहीं होना चाहता है। सीधी-सीधी बात है। हे नाथ! परिवार अच्छे से चले। यानी तू कर्मों के परिवार से मुक्त होना नहीं चाहता। अंतरंग में खोज कीजिए, शुद्ध आत्मतत्त्व का व्याख्यान करनेवाले जीव का हृदय भी टटोल लीजिए। यदि वह भी व्याख्यान के काल में 'द्रव्य' पर दृष्टि रखता है, उस द्रव्य से क्या होने वाला है? ध्यान दीजिए- परिवार ही चलेगा, संसार ही बढ़ेगा। समयसार के व्याख्यान का फल 'अर्थ' नहीं, परिवार नहीं; समयसार के ज्ञान का फल निर्वाण है।

मोह दशा की निवृत्ति हो, राग-दशा की निवृत्ति हो। बंध हो निवृत्ति तेरे विचार करने से नहीं होगी। विश्वास रखना, बंध से निवृत्ति तेरे अपने भावों से होगी। लेकिन वंश वृद्धि का विचार करनेवाले जीव के बंध की वृद्धि नियम से होगी। अहो वंश वृद्धि, धन-वृद्धि का विचार करनेवालो! ये तुम्हारे विचारों से बढ़ जाती, तो जगत में कोई दरिद्री नहीं होता। ये विचारों से नहीं, लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से मिलती है, पुण्योदय से मिलती है, लेकिन इसका विचार करनेवाले को संसार की वृद्धि नियम से होती

है। ज्ञानिओ! अंतरंग में बैठकर सुनो, हृदय को टटोल लो। अभी तत्त्वज्ञान से मैं बहुत खोखला हूँ। अभी तो सिर्फ इतने प्रशस्त परिणाम हुए हैं कि सुनने के भाव आ रहे हैं। परंतु सुनने-सुनाने के मध्य में भी एक राग बैठा हुआ है। यदि वह राग भी आपको स्पर्शित कर रहा है, तो वहाँ धर्म नहीं है। सामायिक धर्म है, सम्पत्ति धर्म नहीं है। जो सामायिक में ले जाए, समयसार उतना ही है। व्याख्यान यदि सम्पत्ति की वृद्धि का साधन बन जाए, तो वह धर्म नहीं है। सामायिक ही धर्म है, सामायिक ही चारित्र है। आत्मा को समयसार-भूत करानेवाला कोई है, तो सामायिक ही है। इसलिए यहाँ जयसेन स्वामी 19वीं गाथा का स्पष्टीकरण कर रहे हैं।

यहाँ स्वतंत्र व्याख्यान की मुख्यता से तीन गाथा कहते हैं। स्व-पर भेदविज्ञान के अभाव में यह आत्मा संसार में भटक रही है। जितना विकल्प स्व के लिए नहीं हुआ, उतना विकल्प पर-संबंधों के लिये हुआ है। सत्य बताना। अपना पेट भरना कठिन नहीं है, परंतु जो विषय-कषाय की गाँठ तेरे हृदय में बैठी है, उसकी पुष्टि के पीछे पर तन का तूने सम्बन्ध किया, उस पर तन के पीछे कितना कमाना पड़ता है और अपने तन के लिए कितना कमाना पड़ता है? एक पुरुष अपने शरीर को मलिन किए हुए व्यापार कर रहा है, कैसे धूल-धूसरित हो रहा है, परंतु कितना द्रव्य? अहो ज्ञानी! एक रागी जीव उस द्रव्य से अपनी नारी के राग की पुष्टि के लिए वस्त्राभूषण खरीदने जा रहा है, उसके पुद्गल को सजाने के पीछे अपने पुद्गल को मलिन कर रहा है। जब तेरा पुद्गल इतना मलिन हो रहा है, तो उस द्रव्य को कमाने में तेरा मन कितना मलिन होगा? कैसे धूप में बेचारे बैठे हैं? पिता से पूछना, कमाने के लिए कैसे पसीना बहाना पड़ता है।

अहो ज्ञानी! जैसे धूप में धन को कमाने में पसीना बहाना पड़ता है, ऐसे-ही धूप में बैठकर धर्म कर लेता तो पसीना न बहाना पड़ता और 18 दोषों से रहित भगवान बन जाता। क्या करें?

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः॥ 7 इष्टो.॥

मोह से आवृत व्यक्ति को ज्ञान होता कहाँ है? मादक कोदों खाने वाले को आपा-पर का ज्ञान नहीं। स्व-पर भेदविज्ञान का अभाव हो गया है। वस्तु में मत जाइए, वास्तविक दृष्टि निहारिए। भिन्नत्व भााव का, पृथकत्व भाव का अभाव है हृदय में। जब-तक भिन्न द्रव्य में भिन्नत्व का अनुभव नहीं होगा, तब-तक गुण-गुणी (आत्मा) की अनुभूति नहीं होगी। चारों अनुयोगों का सम्पूर्ण अध्ययन कर लीजिए, घोंट-घोंट कर पी लीजिए, फिर भी शास्त्रज्ञान आत्मज्ञान नहीं है। शास्त्रज्ञान तो अभव्य को भी होता है। जो लोक में कहा जाता है-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इहि परमामृत जन्म-जरा-मृत-रोग निवारन॥ 3/4 छहढाला॥

यह ज्ञान शास्त्रज्ञान मत समझ बैठना। यही तत्त्व की भूल है, जिसमें पड़कर इन्द्रिय-विषयों के लोभी हो गए। यह शास्त्रज्ञान ज्ञान का विषय नहीं। आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान हैं। श्रुत दो हैं- द्रव्यश्रुत आलंबन है, भावश्रुत परम आराध्यभूत है।

जं अण्णाणी कम्मं

जिन कर्मों की क्षपणा अज्ञानी हजारों कोटि वर्षों में करता है, उतने कर्मों की ज्ञानी क्षपणा क्षण भर में। कौन-से ज्ञानी के? त्रिगुप्ति से युक्त वाले के। ऐसा त्रिगुप्ति युक्त, भेदाभेद रत्नत्रय युक्त, निज शुद्धात्मतत्त्व में लीन योगी के लिए ऐसा कथन किया। ज्ञानी! जब-तक प्रमाद-दशा है, तब-तक समयसार का ज्ञान नहीं है। अप्रमत्त-दशा ही समयसार हैं। ऐसी प्रमत्त-दशा का व्याख्यान आनंददायी है, तो भगवत्-दशा/परमदशा कितनी सुंदर होगी। जब आप क्षणिक समय निकाल करके आए, तो कितना सुख मिल रहा है। बिना त्याग के किंचित् सुख नहीं है। अभी समझ में आएगा। तपती धूप में आप यहाँ चलकर आए हैं। घर छोड़कर विराजे हैं। मार्ग की थकान तत्त्व सुनने से विलीन हो गई। आनंद तभी आ रहा है, जब छोड़कर आए; क्योंकि जैनदर्शन ज्ञान मात्र से मोक्ष नहीं मानता। बड़ा अद्भूत दार्शनिक पक्ष है। जैनदर्शन रत्नत्रय से मोक्ष मानता है। उसके अनुसार, सिर्फ ज्ञान की पूर्णता अथवा एक दर्शन की पूर्णता अथवा केवल चारित्र की पूर्णता से मोक्ष नहीं मानता। समयसार शुद्ध सांख्यदर्शन पर लिखा ग्रंथ है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। वह सांख्यदर्शन जो कपिल ने प्रख्यापित किया था। कुंदकुंद स्वामी की महिमा अभूतपूर्व है, जो ऐसा ग्रंथ दिया। अकेले चारित्र से भी मोक्ष नहीं हो सकता।

हतं ज्ञानं क्रिया-हीनं

क्रियाहीन ज्ञान नष्ट होता है, ज्ञानहीन-क्रिया नष्ट होती है। जैसे-किसी जंगल में आग लग गई तो एक अंधा पुरुष दौड़ते-दौड़ते झुलस गया, और लंगड़ा पुरुष देखते-देखते झुलस गया। लंगड़ा अंधे के कंधे पर बैठ जाता, तो दोनों बच जाते। ज्ञान लंगड़ा है और चारित्र अंधा है। ज्ञान से मोक्ष नहीं, ज्ञान की पूर्णता से भी मोक्ष नहीं, क्योंकि ज्ञान-रहित कोई जीवद्रव्य नहीं। निगोदिया को भी ज्ञान होता है। ज्ञान की पूर्णता 13वें गुणस्थान में होती है। 13वें गुणस्थान में ज्ञान की पूर्णता है, चारित्र की पूर्णता नहीं है। दर्शन की पूर्णता तो 4थे गुणस्थान में हो जाती है। चौथे गुणस्थानवर्ती जीव को क्षायिक सम्यग्दर्शन हो जाए तो फिर कभी नष्ट नहीं होता। चारित्र की पूर्णता 14वें गुणस्थान में होती है, और यदि कोई यों कहे कि ज्ञान होते ही मोक्ष हो जाता है, तो आप जैनदर्शन से शून्य हो। वह शून्यवादी दर्शन है। वह सुगत

दर्शन (बौद्ध दर्शन) में है। जाति व कुल से जैन हैं परन्तु सिद्धांत से क्षणिकवादी हैं, तो बौद्ध है। किंचित् -भी श्रद्धान इधर-उधर हुआ, तो तन का धर्म तो रह जाएगा, परन्तु मन का धर्म नहीं बचेगा।

अहो सांख्यमति शिष्य, अहो बौद्धमति शिष्य।

दिगम्बर मुनि को ऐसा कह रहे हैं।

आचार्यों को शिष्यों को कितना सँभालना पड़ता है। क्रम से अध्ययन कीजिए। कहीं किसी दर्शन का ग्रंथ पढ़ लिया, सँभाल नहीं पाए, तो श्रद्धा बदल गई। तन से रहेंगे मुनिराज, पर मन से नहीं रहेंगे वे मुनिराज। बेटा कह रहा था कि मंदिर जाएँ क्यों? किसने देखा स्वर्ग-नरक? जो सामने होता है, मैं तो उस पर विश्वास करता हूँ। पिता ने सिर पर हाथ रख लिया। जहाँ 'सिद्धिरनेकांतात्' से चर्चा होती है, उस कुल में चार्वाकमति कहाँ से आ गया जो कह रहा है कि प्रत्यक्ष को मानता हूँ?

यावज्जीवेत् सुखम् जीवेत्, ऋण-कृत्वा घृतं पिबेत्।

'जब-तक जियो, सुख से जियो, ऋण लेकर भी घी पियो। देह के मृत होने पर पुनः आगमन किसका?' यह चार्वाकमति है। अभी मरुदेवी की घटना सुनाई थी। इसी प्रकार लहर चल रही है कि ''ज्ञान-समान न आन जगत में सुख को कारक''

मैं इसका विरोधी नहीं हूँ, लेकिन अनेकांत लगाइये। यह आत्मज्ञान का सिद्धांत है, शब्दज्ञान का सिद्धांत मत लगा लेना। चारित्र को किनारे कर दिया तो जैने स्याद्वाद कुल में जन्म लेकर भी तुम भ्रमित होकर चार्वाक हो जाओगे। संयम के बिना निर्वाण और मोक्ष तो बौद्धदर्शन मात्र कहता है। एक क्षण को बौद्ध बन जाओ। ज्ञान से मोक्ष होता है, कैसे? एक सेठ का बालक अध्ययन करने विद्यालय जाता है। एक निश्चित ड्रेस थी, मार्ग में हाथी के पगतले एक छात्र आ गया और छात्र दिवंगत हो गया। उसी समय में एक छात्र दौड़ा-दौड़ा आया, कहता है- सेठजी! आपके इकलौते पुत्र का मरण हो गया है। सेठ सुनकर मूर्च्छा खाकर गिर गया। हर व्यक्ति अपनी बात कहने तर्क/दृष्टांत जानता है। तत्क्षण एक भिन्न विद्यार्थी आया, कहता है- आपका बेटा नहीं था, दूसरे का पुत्र था। सुनते ही मूर्च्छा दूर हो गई। अर्थात् पुत्र का ज्ञान होते ही मोक्ष हो गया क्या? एक कामी पुरुष काम के बाण से बिद्ध हुआ। विवाह हुआ। 30 वर्ष की उम्र में पिता की मृत्यु हो गई थी। माँ की उम्र 18-19 वर्ष थी, तब बेटे ने जन्म लिया। माँ भी युवावस्था को प्राप्त हुई। माँ भी बड़ी हुई। बेटा भी काम से विधित हुआ। बेटा प्रेमिका से मिलने जा रहा था। रात्रि में माँ भी कहीं जा रही थी। अंधेरे में दोनों का संबंध हुआ। तभी बादल छाए, बिजली चमकी, प्रकाश में माँ का चेहरा दिखा, माँ के चेहरे को देखकर छोड़ दिया। ज्ञान होते ही निर्वाण हुआ कि नहीं? ध्यान दो। बेटे ने माँ के चेहरे को देखा- यह ज्ञान हुआ। निर्वाण तब, जब बेटे के हृदय में संवेग

भाव आ गया और माँ को छोड़कर आ गया और चारित्र धारण किया। विषय को बहुत स्पष्ट करने की आवश्यकता है। जैन कुल में जन्म लेकर ज्ञान से निर्वाण मानोगे तो जैन नहीं हो। ज्ञान होते ही निर्वाण, तो फिर बेटे के मृत्यु की सूचना से मूर्च्छा आई, फिर जानकारी ली कि मेरा बेटा नहीं तो राग का अभाव हुआ, तो मूर्च्छा दूर हुई।

न मुझे बुद्ध से द्वेष है, न महावीर से राग है, पर सत्यार्थ के प्रति अनुराग है। रागियों से भी द्वेष नहीं है, वीतरागियों से भी राग नहीं है। हे बुद्ध! बोधि हो गई अर्थात् ज्ञान हो गया। सम्पूर्ण तत्त्वों का ज्ञान हुआ जिस दिन बोधि हुई। यदि ज्ञान का होना और निर्वाण का होना युगपद् होता है, तो तत्त्व का उपदेश देने से कौन बचा? ज्ञानियो! गंभीर विषय है।

अध्यात्म के राग में यह विपर्यास हो गया। ज्ञान से निर्वाण मान रहे हो, तो शुद्ध अध्यात्म-तत्त्व का विपर्यास है। आत्मज्ञान से भेदविज्ञान होता है, स्व-पर का ज्ञान होता है। जानने से निर्वाण नहीं होता। जानने से वस्तुव्यवस्था बन जाएगी, तो क्रिया-शून्य हो, जाएगा। यदि ज्ञान से मोक्ष मानते हो, तो तीर्थकर को 13वें गुणस्थान में सम्पूर्ण ज्ञान होता है, तो उसी गुणस्थान में निर्वाण हो जाएगा, तो जिनवाणी कहाँ से आएगी? ज्ञान की पूर्णता से निर्वाण नहीं होता, चारित्र की पूर्णता से निर्वाण होता है। अंत समय में सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाती शुक्लध्यान। सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति तो आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त में होती है, तो क्या केवलज्ञान हो गया? क्षायिक सम्यग्दृष्टि पूर्व से था। आठ वर्ष के केवली भगवंत आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि काल तक ज्ञान देंगे।

चारित्र (अठारह हजार शील) की पूर्णता होगी, तभी मोक्ष होगा। 13वें गुणस्थान में शील की पूर्णता नहीं थी, काय-योग की सत्ता थी। जब सम्पूर्ण आस्रव समाप्त हो जाएगा, शील संपत्ति प्रकट होगी, तब अयोगकेवली भगवंत के चारित्र पूर्ण होगा तो अ, इ, उ, ऋ, लृ, और गए। सब कथा समाप्त। जितना व्याख्यान था, मात्र इतने क्षण के लिए था। 32-32 भव लग जायें, कोटि-कोटि वर्ष तक तप करें। सच बताऊँ तो, मुनि बनने के लिए मैं मुनि नहीं बना। बस, वह क्षण कब आए कि- अ, इ, उ, ऋ, लृ- इतने कालप्रमाण में सिद्धभगवान बन गए। सत्यार्थ शुद्धात्मा ये है। 13वें गुणस्थान में भावमोक्ष है, परंतु 14वें गुणस्थान में द्रव्यमोक्ष है। 13वें गुणस्थान तक भी जीव संसारी हैं। जब गुणस्थानतीत हो गए, तब परम-पारिणामिक भाव में लीन हैं। अशुद्धि चाहे एक क्षण की हो, चाहे दो क्षण की हो, अशुद्धि तो अशुद्धि है। यथार्थ प्ररूपणा को छोड़कर यदि विपर्यास में लगे हो, तो विपर्यासदृष्टि से कुछ सुधरता नहीं है। द्रव्यदृष्टि से, द्रव्यार्थिक नय से व्यक्त रूप से देखोगे तो वे सिद्ध भगवान् ही शुद्धात्मा हैं।

सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।

उस शुद्धात्मा की प्राप्ति की जानकारी का उपाय समयसार है, और उसकी प्राप्ति के लिए 'मूलाचार' है और स्थिरता के लिए करणानुयोग है। बस, इतना चिंतन करना कि मैं कहाँ जा रहा हूँ? शरीर के साथ जाने वाले को दुनियाँ जानती है। आप आज आ रहे हो, वह बालक आकर बता गया था, लेकिन यहाँ आकर आप कहाँ-कहाँ गए हो, इसे बालक नहीं बता सकता। यहाँ आकर बार-बार जा रहे हो, उसकी बात करो।

जिनालय में आकर यदि जिनालय से बाहर जाना जारी है तब-तक निजालय में प्रवेश नहीं। मैं जा रहा हूँ, यह बात जगत को पता हो या न हो परन्तु मुझे मालूम है कि परिणाम कहाँ-कहाँ जा रहे हैं। पिता को पता चल जाए कि बालक गलत जगह जा रहा है तो खोज करता है कि कहीं लाल बिगड़ न पाए, तो लाल के साथ किसी को लगा दिया। तेरा मन गलत जगह जाने लग जाए तो स्वयं को लगा दो कि कहाँ जा रहे हो? इस मन लाल को जाते समय पूछो कि कहाँ जा रहे हो? इस ज्ञान पिता से कह देना कि जब मैं गलत करूँ तब रोक देना। तुम भगवान को देखते-देखते णमोकार पढ़ते-पढ़ते भी पाप करते हो। ऐसा घटित हो रहा है। आज जब सुबह प्रवचन चल रहे थे, एक नवदंपत्ती दर्शन हेतु आए थे। आराधना अवश्य की है, लोकव्यवहार है, ठीक है, परन्तु समयसार कहेगा- हे पापी! परमात्मा से तू यही कह रहा था कि गृहस्थी अच्छे से चले। पाप अच्छे से पले। मोक्ष हो जाए, यह बहुत कठिन है। मोक्ष जाने के परिणाम आ जायें, यह और कठिन है। पूजा कर ली, दैनिक कार्य कर लिया। बाजार से वस्तु लेना चाहते हो, तो कन्ट्रोल की दुकान पर भीड़ में लाइन लगा लेते हो। मोक्ष में अनुराग नहीं है परन्तु चावल में, शक्कर में, मिट्टी तेल में अनुराग है। इसलिए वहाँ लाइन लगा कर खड़े हो। यहाँ तो मुनियों की भीड़ होनी चाहिए थी यदि अनुराग है तो। आज तो और आश्चर्य है, पानी के लिए लाइन लग रही है। ज्ञानी! यदि जिनवाणी के पीछे पड़ जाये तो पानी की लाइन क्यों लगाना पड़े। बोलो- भूतार्थ क्या है? पानी की लाइन लगाते हो, जिनवाणी की लाइन नहीं लगाते हो। पानी की तरह मोक्ष की प्यास सताने लग जाएगी तो मोक्ष तेरी मुट्ठी में होगा। कहना कुछ नहीं है आपसे। बस इतना कि ज्ञान मात्र से निर्वाण नहीं होता। ये विकल्प आ रहा है। चारित्र शुभोपयोग की दशा है। शुभोपयोग से पुण्यबंध होता है- भ्रम निकाल दो।

तपसा निर्जरा च। (त.सू.)

तप से निर्जरा होती है।

रागरहित हो, तो संवर होता है। तप है। किसी ने कहा- ज्ञानी! नमक छोड़ दो। नमक से प्रयोजन नहीं है। वह नमक भी दुकान के बाहर पड़ा रहता है। कितना राग है नमक से? उसे चींटी भी नहीं सूँघती,

परन्तु तू नमक की एक डली से चिपका है। राग की महिमा है। नमक को 'मूलाचार' में मधुर रस में रखा है। कहता है कि राग छोड़ो। वस्तु छुटी नहीं, तो राग कैसे छूटा? वस्तु छूटे बिना राग कैसे छूट गया? यह तत्त्व का विपर्यास है। कुंदकुंद स्वामी स्वयं कहनेवाले हैं कि ज्ञान होना, होना मात्र नहीं है। ज्ञान अनुभूति रूप होना है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र यदि अनुभूति से शून्य है, तो वह गधे के सींग के समान है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि स्व-पर भेदविज्ञान के अभाव में जीव अज्ञानी होता है। कितने कालपर्यंत तक अज्ञानी रहता है- ऐसा प्रश्न करने पर आचार्य महाराज उत्तर देते हैं।

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म एवं शरीरादि नोकर्म मैं हूँ, ऐसी प्रतिति कर रहा है कि मैं इस रूप हूँ, जैसे घट में वर्णादि गुण घटाकर रूप परिणत होते हैं। घट का वर्ण घट से भिन्न है अथवा अभिन्न है? जैसे घट और उसके वर्ण अभिन्न, ऐसे-ही आत्मा को इन कर्मों से जो अभिन्न मानता है, वह अज्ञानी है। शरीर का रंग आत्मा से अभिन्न नहीं है। तू गोरा कि तू काला? आँखों से ही देख पा रहे हो। तन गौरा है कि चेतन गोरा है? तू गोरा है, कि शरीर गौरा है? तू गोरा नहीं है। जिस दिन तू गोरा हो जायेगा, तो कभी गोरेपन से रहित नहीं होगा। आत्मा गोरी या काली नहीं है।

भीगे न पानी में, जले न अग्नि में,

सूखे न पवन के द्वारा

दुनियाँ में सबसे न्यारा, यह आत्मा हमारा।

आत्मा अग्नि से जलती नहीं, पानी से गीली नहीं होती और वायु से सूखती नहीं है। गोरापन या कालापन तन का है, नोकर्म है, आत्मा की पहचान नहीं है। जब-तक बोल रहा है कि 'शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ,' वह शुद्धात्मा नहीं है। जो शुद्धात्मा हो जाता है, वह बोलता नहीं। व्यवहारनय से नोकर्म से आविष्ट होने से आत्मा भी गोरी या काली होती है। निश्चय से, आत्मा न गोरी है, न काली है। कैसी है? 'जो सो दु सो चैव।' ठीक है, बेटा घर जाकर माँ से पूछे 'भोजन कैसा बना है?' बोलना-'कैसा है, वैसा है।' न आत्मा प्रमत्त है, न अप्रमत्त है। कैसी है? जैसी है, वैसी है। सत्ता है। राग भेद करा देता है, वस्तु में भेद नहीं है। राग में भेद है। वस्तु तो- 'जो सो दु सो चैव' यदि समझ में न आए तो पुनः समझा देता हूँ। बाल्य-अवस्था में पेड़ा खाया, युवावस्था में भी खाया, वृद्धावस्था में भी खाया। तीनों समय में एक-से लगे थे क्या? जो स्वाद प्रथम अवस्था में आया था, अब नहीं आता। राग में भेद आ गया तो वस्तु में भेद आ गया। अब इन्द्रियाँ वैसी बचीं नहीं। वही रसगुल्ला प्रथम क्षण में कितना स्वाद देता है, और यदि 1000 खाने पड़े तो? कहोगे कि इतने नहीं खा सकता। राग की पूर्ति हो गई, तो रसगुल्ले खराब लगने लगे। वस्तु न शुभ है, न अशुभ है। वस्तु में भेद नहीं है, राग में भेद है। सुनो, जो बेटा माता-पिता के

साथ रहता था, पर की कन्या आ गई, तो जन्म देनेवाली और धर्म देनेवाली में भेद दिखता है। अब माँ की गोद छोड़ने के लिए लड़ रहा है। माँ का भेद कहाँ चला गया? राग बदल गया, तो अब नारी के साथ जा रहा है। वस्तु में भेद है या राग में?

वस्तु की स्वतंत्रता पर ध्यान दो। दृष्टांत तो दृष्टांत है; दृष्टांत वे ही अब दृष्टांत नहीं है। वस्तु में भेद नहीं है, दृष्टि में भेद है। दृष्टि बदल गई तो जो पार्श्वनाथ शत्रु दिखते थे, भगवान दिखने लगे। दृष्टि बदल गई तो भक्त बन गया, सम्यग्दर्शन हो गया। अतः किसी को शत्रु मत कहना।

ज्ञानी! अनुभूति पूछते समय अंदर क्या लगा? जब सब हँसने लगे तो कैसा लगा? कुछ लगा? जो लगा है, उसमें लग जाओ, वही अनुभूति है। अनुभूति तो संवेदन है, प्रतीति है। संवेदन-'जो सो दु सो चैव' वह वाच्यार्थ नहीं है, अवाच्यार्थ है। यह स्थूल हो रहा है। सूक्ष्म हो भी नहीं सकता। ज्ञानी! घी खाया? कैसा होता है? घृत की अनुभूति नहीं बता पा रहा है, तो आत्मा को अनुभूति को कैसे कह पायेगा? अनुभूति को कहने की सामर्थ्य शब्दों में नहीं है। मैं कह रहा हूँ, आप सुन रहे हो, जो अनुभव हो रहा है वही अनुभूति है।

नावक्तव्यः स्वरूपाद्यैः निर्वाच्यः परभावतः।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो, नापि वाचामगोचरः ॥7 स्व. सं.॥

'स्वरूप संबोधन' ग्रंथ में आत्मा का रहस्य भरा है। आत्मा वक्तव्य भी है, अवक्तव्य भी है, परंतु परम सूक्ष्म दृष्टि से आत्मा अवक्तव्य ही है।

अभेद रूप से जितने काल तक ऐसी बुद्धि है, एकांत बुद्धि है, वह अप्रतिबुद्ध है। जो आत्म-तत्त्व की स्वसंवित्ति से शून्य है, वह बहिरात्मा है। भेदविज्ञान का मूल शुद्धात्मानुभूति है। यह स्वयंबुद्ध भगवान के स्वतः होती है। बोधित बुद्ध मुनि के परतः होती है।

जो स्वयं दीक्षित होते हैं, वे स्वयंबुद्ध कहलाते हैं। वे पंचमकाल में नहीं होते हैं। बोधित-बुद्ध वह हैं, जिनके पास ऋद्धियाँ हैं। खोटे काल में आया है, लेकिन हीन नहीं मानना क्योंकि इस खोटे काल में भी समयसार सुनने को मिल रहा है। परन्तु मान भी नहीं करना। मूल बात समझिए। शुभ-अशुभ बाह्य द्रव्य आपके पास होने पर भी, जैसे दर्पण के सामने झलकते हैं, कीचड़ भी आ जाए तो झलकता है, दर्पण मलिन नहीं होता। परद्रव्यों के ज्ञाता-दृष्टा होने पर भी बंध नहीं है। परद्रव्यों में तन्मय होना बंध का कारण है। कहता है कि हम दोस्त हैं, शरीर भिन्न है, पर आत्मा एक है। हे घोर मिथ्यादृष्टि! तू गलत स्थान पर बोल रहा है। भिन्न-भिन्न तन तो एक हो सकते हैं, लेकिन चेतन तन से अभिन्न नहीं है। पौद्गलिक वर्गणाएँ मिल सकती हैं, लेकिन मेरी और तेरी आत्मा में अत्यंताभाव है। पुद्गल से

पुद्गल का अन्योन्याभाव है, मिल सकते हैं, जैसे कीचड़ सामने होने पर भी दर्पण में विकार नहीं है। काले व्यक्ति के सामने आने से दर्पण काला होने लग जाए तो, दर्पण भला कहाँ बचेगा? धन्य हो दर्पण, जो जगत के सब चेहरों को दिखाता है, लेकिन अपनी स्वच्छता को, निज द्रव्य को नहीं खोता। दर्पण परद्रव्य को नहीं लेता। ज्ञानी ज्ञेयों को जानता है, उनमें जाता नहीं है। जो जाता है, वह रागी है। ज्ञेय ज्ञाता नहीं होता। निज आत्मद्रव्य ज्ञाता भी है और ज्ञेय भी है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी ने समय पाहुड़ ग्रंथ में अनुपम चिद्रूप दशा का वर्णन किया है। यह सारा जगत द्रव्य दृष्टि के पीछे द्रव्यदृष्टि (ध्रुव-सम्पदा)। को भूल गया है। द्रव्यदृष्टि को जाना, दृष्टि को द्रव्य मान लिया। दृष्टि, दृष्टि है; वस्तु, वस्तु है। बहुत बड़े विकल्प को समझने की आवश्यकता है। भटकते मुमुक्षुओं ने द्रव्यदृष्टि को द्रव्य मान लिया है। भूल है। द्रव्यदृष्टि से जीव त्रैकालिक शुद्ध है। "**सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया**"।

कर्मोपाधिक-निरपेक्ष-शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय से सभी संसारी जीव शुद्धात्मा हैं। लेकिन, ज्ञानियो! सव्वे जीवा में निगोदिया भी हैं, नारकी भी हैं, देव, मनुष्य, तिर्यंच भी हैं। सभी को ग्रहण कर लीजिए। यह सूत्र कर्म सहित जीव में ही लगता है, कर्म रहित जीव में नहीं लगता है। कर्मातीत के लिए नय नहीं, समयसार समझने में नय लगाना पड़ता है। समयसार नय नहीं है। अखण्ड वीतराग दिगम्बर समाज में भेद क्यों दिख रहा है? क्योंकि हमारे इन विद्वानों ने द्रव्यदृष्टि और द्रव्य में भेद नहीं डाला।

द्रव्यदृष्टि और द्रव्य दोनों भिन्न हैं। समयसार ग्रंथ को समझने के लिये नय और प्रमाण की आवश्यकता है, लेकिन समयसारभूत होने के लिए नय और प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जो नयातीत है, उसका नाम समयसारभूति आत्मा है। जहाँ नय का पक्ष समाप्त हो जाता है, उसका नाम समयसार है। जो यहाँ विराजमान है, वह समयसार ग्रंथ है। जो शुद्धात्मा है, वह अनुभूतिरूप समयसार है। समयसार जानना हो, देखना हो, तो निर्ग्रंथों को जानना। मूल वस्तु समझना-द्रव्य, और द्रव्यदृष्टि।

कुछ जीवों ने द्रव्य (अर्थ) के पीछे द्रव्यदृष्टि पर लक्ष्य नहीं दिया। कुछ ने दृष्टि को द्रव्य मान लिया। द्रव्यदृष्टि अर्थात् शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि। द्रव्य अर्थात् वस्तु, दृष्टि अर्थात् नय

देखो- भाषा तो भाषा है; भाषा वस्तु नहीं है। वस्तु को समझने के लिए भाषा का उपयोग किया जाता है। व्यवहारनय अथवा निश्चयनय वस्तु नहीं, भाषा है। एक भेद की भाषा है, एक अभेद की भाषा है। द्रव्यदृष्टि तो निश्चयनय की भाषा है। द्रव्य अर्थात् वस्तु। प्रयोग कैसे करेंगे। एक संसारी जीवद्रव्य में जब-तक शुद्ध सत्ता का ज्ञान, शुद्ध सत्ता का ध्यान, शुद्ध सत्ता की अनुभूति नहीं लगाओगे, तब-तक प्राप्ति का उपाय क्या लगाओगे?

द्रव्यदृष्टि ही किसान को खेत में बीज में वृक्ष को दिखाती है।

द्रव्य जैसा है, वैसा है। किसान खेती में तथा माँ भोजन बनाने में द्रव्यदृष्टि का प्रयोग करती है। माँ को आटे में नाना प्रकार के व्यंजनों का भान न हो, तो पकवान बनायेगी कैसे? और यदि आटे में पकवान दिख रहे हैं, तो बनाने की क्या आवश्यकता? लेकिन पहले पकवान बनाती है, कि आटे में देख लेती है? इंजीनियर से प्रश्न करो-तूने भवन पहले बनवाया, कि नक्शे पर पहले आया? कागज के नक्शे पर भवन पहले आया, कि पहले तेरे नक्शे (मस्तिष्क) में आ गया था। आज द्रव्यदृष्टि और द्रव्य पर चर्चा चली रही है। मस्तिष्क में नक्शा आया तो भवन दिखाई दे रहा था कि नहीं? भवन बना दिख रहा था, तो बनायेगा क्या?

सम्यग्दृष्टि जीव को निज शुद्धात्म भगवानात्मा दिखाई देती है। जैसे-इंजीनियर के अंतःकरण में भवन दिखाई देता है, सम्यग्दृष्टि के अंतःकरण में निज भगवानात्मा की रूपरेखा दिखती है।

चिंतन में भगवानात्मा की प्राप्ति का नक्शा बनता है। जैसे इंजीनियर ईंट, चूना, सीमेंट का उपयोग करता है, फिर भवन निर्मित करता है। सम्यग्दृष्टि जीव भेदविज्ञान की छैनी से चारित्र के माध्यम से, मोक्षमहल रूप अपने कल्याण भवन का निर्माण प्रारंभ कर देता है। ऐसे-ही कागज पर नक्शा है द्रव्यदृष्टि, नय है और द्रव्य अर्थात् वस्तु है बना हुआ भवन। इंजीनियर के मस्तिष्क में नक्शा आया कि कहाँ रसोई होगी, कहाँ बैठक होगी, आदि-आदि। द्रव्यदृष्टि द्रव्य का ज्ञान कराने के लिए है। द्रव्य तो जो है, सो है। द्रव्यदृष्टि में द्रव्य से जीव भगवानात्मा हो जाए तो फिर प्राप्ति कैसे करेगा? तो द्रव्य से भगवान नहीं है। द्रव्य से नहीं, तो पर्याय से भी नहीं।

ज्ञानी! शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का पुरूषार्थ कौन करेगा? शुद्ध बनने के लिए शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय पुरूषार्थ नहीं करेगा। ध्यान रखना। तत्त्व के व्याख्यान में विपरीत तत्त्व व्याख्यान का राग नहीं होना चाहिए। अशुद्ध द्रव्य ही शुद्ध द्रव्य की प्राप्ति का प्रयास करता है। शुद्ध तो शुद्ध की प्राप्ति का पुरूषार्थ नहीं करता। जीवदृष्टि में ऐसा शुद्ध नहीं जो कहीं से लाया गया अशुद्ध है। अनादि से कर्म बंध है। उनसे रहित होना उस रूप होने का नाम शुद्ध है। श्रमण संस्कृति में भगवान् को बनाया गया है, या कि निकाला गया है? जिनशासन में बनाए गए भगवान पूजे नहीं जाते। लोग मिट्टी गोबर के भगवान बना लेते हैं। ऐसे भगवान जैनदर्शन में नहीं पूजते। यहाँ भगवान निकाले गए हैं। पाषाण-पाषाण में परमात्मा की मूर्ति बनने की शक्ति है, पर प्रत्येक पाषाण परमात्मा की मूर्ति नहीं है; लेकिन परमात्मा होंगे, वे पाषण में ही होंगे। सब पाषाण परमात्मा नहीं होते। जो-जो परमात्मा होंगे, वे आत्मा ही होंगे। लेकिन सब आत्मा परमात्मा नहीं हैं। जब परमात्मा बनेगा, तो आत्मा से ही बनेगा। 'तिल-तिल तेल नहीं है। तिल यदि तेल है, तो तिल में पूड़ी तलना चाहिए? लेकिन तिल में ही तेल है। दुग्ध-दुग्ध में घृत है, लेकिन घृत 'दुग्ध'

नहीं है। जो भी घृत बना है, दुग्ध से ही बना है। दूध 'घृत' नहीं है। यदि दूध 'घृत' है, तो दूध में पूड़ियाँ तलनी चाहिए? ज्ञानी! संसारी आत्मा में भगवती आत्मा तो है शक्तिरूप से, परंतु सिद्धालय के समान भगवान की अनुभूति नहीं है। अन्यथा संसार व मोक्ष का अभाव हो जाएगा।

'संसारिणो मुक्ताश्च' में भेद है। कर्म-सहित संसारी है, कर्म-रहित मुक्त है। कर्म-सहित आत्मा में मुक्त-आत्मा का स्वरूप नहीं जानोगे तो मुनि बनने की आवश्यकता क्या? दूध में घृत का बोध नहीं, तो फिर तू दूध जमायेगा क्यों? जो यों ही करता है वह पागल है। पागल पुरुष ही ऐसा होता है, जो बिना प्रयोजन कर्म करता है। जो निष्प्रयोजन कार्य है, वह अनर्थ है। ज्ञानी अनर्थ नहीं करते। आँखों की शक्ति को संचय करो। धन्य हो जो दो-पाँच रुपये की बैटरी वाली टार्च को भी सँभाल कर खर्च करता है। जितनी आवश्यकता होती है, उतनी जलाता है, फिर बंद कर लेता है। पाँच रुपये की सेल को इतना सुरक्षित करता है। इन आँखों की कीमत कितनी है? ज्ञानी! देव-शास्त्र-गुरु को देखने के लिए खोल लिया करो। स्त्री, पुरुषों को देखने के लिए बैटरी क्यों नष्ट कर रहे हो? चक्षु-इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम क्यों नष्ट कर रहे हो? नयनों की कीमत किसान टार्च जितनी भी नहीं है क्या? कैसे वीर्यान्तराय कर्म का नाश कर रहे हो। आयुकर्म का क्षय निष्प्रयोजन कर रहे हो।

'तिलमध्ये यथा तैलम्, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।'

जैसे तिल में तेल, दूध में घृत विराजमान है, उसी प्रकार देह में परमात्मा विराजमान है। यह द्रव्यदृष्टि है। इन गहरे तत्त्वों को नहीं समझोगे, तो भ्रमित हो जाओगे। यह तो अध्यात्म का महान ग्रंथ है। आत्मा इस देह में शक्तिरूप में संस्थित है। शक्ति, शक्ति है; अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति तभी होगी, जब चारित्र की पूर्णता होगी। चारित्र की पूर्णता 14वें गुणस्थान में होगी। और कितना समय लगेगा फिर मोक्ष जाने में?- अ, इ, उ, ऋ, लृ उच्चारण काल मात्र में संसार समाप्त हो जाएगा।

कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं- समझो संक्षेप में मोक्षमार्ग क्या है? शुद्ध जीव में राग-रहित परिणाम हैं, तो मोक्ष होता है। देह आदि में राग-परिणाम हैं, तो बंध होता है। तू शांत बैठा है, सोचता है कि तू कोई असंयम नहीं कर रहा है, मात्र शरीर को देख रहा हूँ। स्वाध्याय में जाना है, तो कंघी कर रहा है। बाल बिखरे आता, तो क्या जाता? महाराज! अच्छे नहीं लगते। तुझको तो दिखता नहीं, पर के लिए जीताहै। जगत् की लीला तो देखो।

'संसार-हेतु पर-परिणति',

बंध का हेतु पर-परिणति, पागलपन का हेतु पर-परिणति, मानसिक तनाव का हेतु पर परिणति, दुर्गति का हेतु पर परिणति है। उपेक्षाभाव पर दृष्टि नहीं है। सबको जानने का विचार करोगे, तो उसी दिन पागल हो जाओगे। संसार में कितने जीव हैं, कितनी सामग्रियाँ हैं, कितने पुरुष हैं, सबसे जयजिनेन्द्र किया क्या? नियम ले लोगे तो सबको जयजिनेन्द्र करते-करते थक जाओगे। सबको नहीं देखते। जिससे संबंध होता है, उन्हें ही देखते हो। अन्य से उपेक्षा-भाव है। उपेक्षा-भाव नहीं है, तो संयम नहीं आएगा और पागलपन नहीं जाएगा।

घर में मृत्यु हो जाए तो, कितना कष्ट होता है? नगर में कितनी मृत्यु होती हैं, सबमें रोने लग जाओगे तो जो रो रहा है, उसके संस्कार का नंबर पहले आ जायेगा। बेटे के सिर में दर्द है, और तुझे बुखार आ गया। परपरिणति में दुःखी हो रहा है। ज्ञानी! रिश्ता निभाओ, परन्तु अपने को दुःखी क्यों कर रहे हो? तूने पूरी पर्याय को पर के रोने में नष्ट कर दिया। ज्ञानी! यह दुःखमय जीवन नहीं, आनंदमय जीवन है। दया का अभाव कहाँ हुआ?

समयसार से दया नहीं जाती, अज्ञानता जरूर जाती है। अज्ञानी बेटे के राग में रो रहा था। उसे समझा दो कि तू भी बीमार हो जायेगा तो सेवा कौन करेगा? तेरे घर में साधु का अंतराय हो गया, तू बैठ गया कि मेरा भी चार प्रकार के आहार का त्याग है। अरे ज्ञानी! साधु का तो लाभांतराय कर्म का उदय था, तेरा कर्त्तव्य है कि उन्हें थकान आई है, तो सेवा कर; परन्तु तू ही बिलख रहा है, तो तेरी सेवा कौन करेगा? सम्यग्दृष्टि जीव दुःखियों के दुःख दूर करता है, परंतु कर्तापन से नहीं करता, निमित्तपन से करता है, दुःखी नहीं होता। कोई दुःखी है, तो यह उसका असाता का उदय है। तुम दुःखी होकर असाता का आस्रव क्यों कर रहे हो? सम्यग्दृष्टि जीव रोता नहीं, दुःख दूर करता है। डॉक्टर साहब आपके घर पर कोई मरीज आ जाए, सीरियस हो, तो क्या सिर पर हाथ रखकर रोने लगोगे? वह मरीज न-जाते हुए भी ऊपर चला जाएगा। ज्ञानी! तुझे वैद्य किसने बना दिया? मरीज को देखकर वैद्य रोए नहीं, मुस्कुराये। ऐसा कहे-घबराओ नहीं, अभी परिपूर्ण रूप से ठीक होते हो। भगवान का नाम लो। कैसी भी चिंता मत करो। वैद्य, रोगी को देखकर रोता नहीं है, एकदम सतर्क होकर उपचार करता है। सम्यग्दृष्टि जीव क्लांत जीव को देखकर दुःखी नहीं होता, वरन् दुःख दूर करने का उपाय करता है। दुःख का हेतु पर-परिणति है।

ज्ञानी! आज से व्यवहार तुम्हारा बदलेगा, कि नहीं? जिनका 'व्यवहार' न बदलेगा, तो 'निश्चय' क्या बदलेगा? समझो, धर्म क्या है? धर्म के लिए कोई निश्चित स्थान नहीं है। हर स्थान धर्म के लिए हैं। कोई गाली दे, तो क्या करोगे? समझदार हो तो किसी से नहीं कहना, इज्जत बचा लेना। तुम स्वयं हल्ला करोगे तो जिसे सुनाया था वह बार-बार ताना दे रहा है- क्या है तुम्हारी इज्जत? पर-परिणति ही

दु:ख का हेतु है। ज्ञानी! पत्नि पीट दे, तो किसी से कह मत देना। तुम एक हो जाओगे, परन्तु जिसको सुनाई है, वह हँसी करेगा। ज्ञानीजीव प्रत्येक समय ज्ञान का प्रयोग करता है, अज्ञानी अज्ञान का प्रयोग करत है। स्वतंत्र रहना ही जैनदर्शन है। परिपूर्ण स्वतंत्र होना ही सिद्ध भगवान बनना है। कुछ नहीं झलक रहा। अनुभव में लाइए। अभी अपने इष्ट की चिंता प्रारंभ करो जो ऊपर चले गए, कैसे थे? कैसे चेहरे बदलना प्रारंभ हो गए? चिंता शुरू की, तो कष्ट प्रारंभ हो गए।

ज्ञानी! ऐसा चिंतन करो- प्रत्येक जीव स्वतंत्र है, आयुकर्म स्वतंत्र है। न कोई जला सकता, न मार सकता है। मेरी गति भी ऐसी होगी। मैं अपने चिंतन को अशुभ क्यों करूँ? दुकान जल गई तो रोते थोड़े-ही रहते हो। जो गए, वो पुराने हो गए। आप नये हो, उत्साहशक्ति भंग मत करो। जब राग ज्यादा होता है, तो कहता है कि महाराज ने कैसा कह दिया? कैसे सहन करूँ। यहाँ नहीं, तो क्या नरक में सहन करोगे? सहन नहीं होता। ज्ञानी! तूने करना छोड़ दिया है। शब्द भिन्न था, तू भिन्न था। धन्य हो या धिक्कार हो? बहू-सास, पिता-पुत्र, भाई-भाई से नहीं बोल रहा है। समयसार जैसा ग्रंथ वात्सल्य का अभाव नहीं कराता। जिन-जिन से पाँच-दस साल में कोई बातें हे गईं हों तो घर जाकर चरण छू लेना- 'भगवानात्मा! क्षमा कर दो।'

हम पार्श्वनाथ नहीं हैं कि दस भव तक उपसर्ग सह सकें। कमठ बनाकर मत जाना, तू छोटा बन जाना। क्षमाशील कभी छोटा नहीं होता। पार्श्वनाथ बड़े थे कि छोटे? सासू को बहू के पैर पड़ना पड़े तो पड़ लेना ,जीवद्रव्य है, सभी समान हैं। वस्तुस्वरूप समझो।

शरीर में आग लगे उससे पहले कषाय में आग लगा देना, कषाय का धुँआ निकाल देना। यह नहीं कि कल माँगूगा क्षमा। कल नहीं, आज। कल का क्या भरोसा? टोड़ी फतेहपुर के पास बिजना नाम का गाँव है। सुबह उनका ग्रंथ छपकर आया, शाम को मृत्यु हो गई।

भावों से अभी क्षमा माँग लेना। 'महाराज! वे क्षमा नहीं कर रहे।' तू मन में क्षमा धारण कर लेना क्योंकि धर्म तेरा है। तेरे अंदर क्षमा है कि नहीं? ध्यान रखना- कलुषित भाव नहीं करना। तू मकान पर पेंट कराता है तो पहले दीवार साफ कर लेता है। समयसार की कीमत पेंट से कम है क्या? दीवार साफ करो। कषाय की दीवार पर समयसार को नहीं रखा जाता। उपशम भाव को प्राप्त करो। बस यही सहजभाव बन जाए। हे भगवन्! कषाय भाव न आए। विश्वास है, नियम से भगवान बनूँगा। प्रार्थना करो कि अघवान (पापवान) न बन जाऊँ। बदल दो भाषाएँ, बदल दो भाव। हमारा समयसार पेंट से कम नहीं है। भावना बदल दो, अब सोचो कि वस्तुस्वरूप क्या है। विचार लो। भैया बिरलों में कोई एक ही होता है। 1000 चनों में कोई 1 ही उचटते हैं। वस्तुस्वरूप को भीड़ नहीं समझती। वस्तुस्वरूप को तो

भगवानात्मा ही समझती है।

जीव पर दृष्टि है, तो मोक्ष है। अजीव पर दृष्टि है, तो मोक्ष नहीं है। यदि किसी के शब्द सुनकर बुरा लग रहा है तो, ज्ञानी! तेरी दृष्टि शब्द (पुद्गल) पर ही है।

जीवेव, अजीवे वा संपदि समयम्हि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बंधमोक्खो, हवदि समासेण णिद्दिट्ठो॥ 23 ता.वृ.॥

जीव दृष्टि- अजीव दृष्टि

इतश्चिंतामणिर्दिव्य, इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये, क्व ऽऽद्रियन्तां विवेकिनः ॥ 20 इष्टो.॥

एक ओर चिंतामणि रत्न है, दूसरी और खली का टुकड़ा है। हे ज्ञानी! गाय-भैंस अपना मुख कहाँ मारते हैं? खली पर। तू कहाँ जा रहा है? एक ओर रन्त है, दूसरी ओर मल का टुकड़ा है। एक ओर हंस है, दूसरी ओर काक है। कौन कहाँ बैठेगा?

स्वात्मदृष्टि रत्नदृष्टि है। विषय-भोगदृष्टि मलदृष्टि है। आत्मस्वरूप को निहार रहा है तो हंसात्मा है। विषयभोग निहार रहा है तो काकात्मा है।

आप विचार करो, मैं कुछ नहीं कहता। निर्णय स्वयं कीजिए कि मैं क्या कहलाते लायक हूँ।

पापदृष्टि है तो काकदृष्टि है, पुण्यदृष्टि है तो हंसदृष्टि है और दोनों से रहित दृष्टि परमहंस दृष्टि है, निर्ग्रंथ दृष्टि है।

पुण्य-पाप, फल मांहि हरख विलखो मत भाई।

पहले ऐसा करो कि हंस दृष्टि पर आओ, फिर परमहंस दृष्टि बनेगी। परंतु काक दृष्टि को छोड़ दो। काकदृष्टि हेयदृष्टि है, हंसदृष्टि उपादेयदृष्टि है और परमहंसदृष्टि परमउपादेय दृष्टि है। पर घर में बैठकर निर्णय आ नहीं रहा है। घूम-फिरकर पुनः वहीं आ रहा।

सम्प्रति (वर्तमान में) कल परसों नहीं। न भूत, न भविष्य। वर्तमान।

बंध देखने नहीं आता कि कल बधूँगा, परसों बधूँगा। करंट लगा कभी? हाथ आज लगाना, करंट लगेगा कल-परसों। ऐसा है क्या? अच्छा, कष्ट कल-परसों होगा क्या? लगाने मत पहुँच जाना।

विद्युत पर हाथ जाए ना, तभी करंट लगता है। अचानक लग जाए तब पता चलता है क्या होता है?

विद्यार्थी-अवस्था में एक बालक ने एक तार पकड़ लिया। बेहोश हो गया। लोग डण्डे से पिटाई कर रहे थे। मैंने पूछा तो बताया कि पिटाई नहीं कर रहे, करंट से निकाल रहे हैं। जिस क्षण करंट लगा, उसी क्षण पीड़ा होती है। जिस क्षण जीवदृष्टि बनी है, उसी समय मोक्षदृष्टि है। जब भोगदृष्टि है, उसी समय बंधदृष्टि है। कोई समयभेद नहीं। मोक्ष जब होगा, हो जायेगा, भावना में तो मोक्ष लाओ।

कुछ की तो भावना में भी मोक्ष नहीं है। मंदिर तो परम्परा से आते हैं। पिताजी आते थे, इसलिये हम आते हैं। द्रव्यमोक्ष, और भावमोक्ष उन्हीं का, जिनकी सम्प्रति में भावना मोक्ष की है। कमाना, खाना, सोना, समय पर ऊपर जाना तो तिर्यंच भी कर लेते हैं। महाराज! मैंने ऊँचा भवन बनाया है। तूने क्या बड़ा काम किया? दीमक भी ऊँची-ऊँची वामी बना लेते हैं। तुम्हारा मकान देखकर मैं खुश नहीं होता। कहता है- 'महाराज! अपनी दुकान है, अपना मकान है।' अपने राग की पुष्टि भी निर्ग्रंथों से सुनना चाहता है। ज्ञानी! निर्ग्रंथों को तो निर्ग्रंथ ही रहने दो। कभी मत पूछना।

मुनिराज के पास पहुँचे नारियल लेकर, 'महाराज! पिच्छि लगा दो। बता दो, दुकान अच्छी कैसे चलेगी?' पूछना है, तो यह पूछो- 'मुनि कैसे बनूँ?' नारियल फुकवाने से नहीं। भाग्य है, तो सब बनता है। बात मानो- दुनियाँ के झंझट में मत पड़ो। सबसे बड़ा ग्रह राग का ग्रह 'परिग्रह' है। किसी ज्योतिषी के चक्कर काटना नहीं। भूलकर भी कुण्डली को मत दिखवाने आना। 'होता स्वयं जगत परिणाम।' शुद्ध तत्त्व की चर्चा की आवश्यकता है। जगत में कालसर्प का भूत चढ़ा है। ज्ञानी! तुम दूसरों के भगा रहे हो तो तुम सवा रूपैया क्यों माँग रहे हो? जितने कष्ट आ रहे हैं, सब योग का काम है। कर्मयोग कब हटेगा? अरिहंत भक्ति से सारे कर्म झर जाते हैं।

जिनेन्द्र की भक्ति पूर्व के संचित कर्म का क्षय कर देती है, अरिहंत की भक्ति करना चाहिए व्यवहारनय से और निश्चयनय से निज शुद्धात्मा ही परम आराध्य है।

यदि ऐसा नहीं करते हो तो सम्यग्दृष्टि नहीं हो। अरिहंत शासन पर भी श्रद्धा नहीं है। लोग भी ऐसे मिले तो स्वसमय में नहीं ले गए। स्वसमय यानि-निज आत्मा। महाराज निड़र होकर बोल रहे हो, कुछ हो न जाए। एक सज्जन आए 'महाराज! भूतों के गाँव में आए हो, ऐसी बातें कर रहे हो?' डर लगता है कि कुछ हो न जाए।' मैंने कहा- ज्ञानी! भूतों से वे डरें, जो 'भूतनाथ' की आराधना न करें। भूतनाथ अर्थात् आदिनाथ भगवान, पंच परमेष्ठी की आराधना न करें, वे डरें। ऐसे भी ज्ञानीजीव हैं जो यहाँ समयसार सुनते हैं और कहीं अन्य जाकर चादर चढ़ाते हैं, नारियल फोड़ते हैं, ढोक देते हैं। जोर से क्यों नहीं बोलते- 'होता स्वयं जगत परिणाम'। तब कहना, जब घर में किसी को भूत चढ़ गए हों। कष्टों में यह सूत्र लगने लग जाए, तो कहना कि समयसार आ रहा है। यह मजाक नहीं, सत्यार्थ है।

वस्तु का परिणमन स्वयं होता है, कोई कुछ नहीं करता। कालद्रव्य परिणमन में सहकारी है। परिणमन स्वयं का स्वतंत्र होता है। जब उपयोग होता है, तभी बंध और मोक्ष होता है। यह संक्षेप से कहा है बंध और मोक्ष का स्वरूप। शरीरादि में राग है तो बंध है, राग रहित है तो मोक्ष है। स्वयं विचार करो कि तुम्हारी दृष्टि कहाँ है? जीव में है, कि अजीव में?

वर्तमान समय में जब उपयोग से युक्त है, तभी बंध मोक्ष होता है। उपादेय-बुद्धि जीव में है, कि अजीत में? मेरा शरीर, मेरा मकान, मेरी स्त्री का शरीर, मेरे पुत्र का शरीर। ऐसे अज्ञानी हैं जो कहते हैं कि नारी सुन्दर दिखनी चाहिए। यदि आयुबंध हो गया तो उसके ही जघन्य स्थानों में सम्मूर्च्छन जन्म लेना पड़ जायेगा। आज सुन लो, कहने-बताने वाले नहीं मिलेंगे। सीधे डंडे पड़ेंगे क्योंकि तूने भगवानात्मा को संसार में भटकाया है, तू घोर पापी है। एक बात बिना उपचार के समझना। निज स्वतंत्रता, निज सुन्दरता का ज्ञान हो जाए तो कोई किसी से विवाद नहीं करेगा, राग नहीं करेगा। 24 घण्टे मुस्कान हट नहीं सकती। लोग सोंचे-परेशान करने आए हैं, पर परेशान नहीं कर पायेंगे। परेशान वह हो, जिसे राग-द्वेष हो। मान-अपमान किसका? जहाँ राग-द्वेष नहीं, वहाँ मान-अपमान नहीं। जहाँ राग-द्वेष है, वहाँ मान भी है, अपमान भी है।

सत्य है, शुद्ध साधुस्वभाव की ही व्याख्या है। तन के साधु का व्याख्यान नहीं चल रहा है, मन के साधु का व्याख्यान चल रहा है। चौबीसी पूजा में जल चढ़ाते समय बोलते हैं-

मुनि-मन सम उज्जवल नीर, प्रासुक गंध भरा।

धन्य हो! लिखनेवाले को गंगा का नीर नहीं भाया, क्षीरसमुद्र का नीर नहीं भाया। जैसे मुनि का मन। कल्पना कीजिए कि मुनिमन कैसा होता है। गंगा में तो लोगों की हड्डियाँ मिली हैं। मुनि-मन में कषाय का शैवाल नहीं है, राग-द्वेष का कीचड़ नहीं है, असंयम के जलचर नहीं, ऐसा जल आपके चरणों में चढ़ा रहा हूँ। मुनिमन की खोज करो। खोज करेगा तो मुनि नियम से बन जायेगा। किसी साधु को परेशान मत करना। पर में नहीं, निज में खोज करना। पंचमकाल में जीव पर को पहले दिखता है, ये महाराज! ऐसा कहते हैं, वे कैसा कहते हैं। ज्ञानी! अपना-अपना क्षयोपशम है। देहादि में दृष्टि तो बंध, जीवदृष्टि तो मोक्ष, ऐसा संक्षेप में सर्वज्ञदेव ने कहा है। मैं नहीं कह रहा हूँ। तीर्थंकर भगवान् ने कहा है।

सहजानंद आत्मा में रमण करना चाहिए। पर का रमण छोड़ देना चाहिए। जो सहजानंद से विपरीत है वे परद्रव्य हैं, उनसे विरक्त हो जाना चाहिए। कहाँ कहा है कि चारित्र धारण नहीं करना चाहिए? ज्ञानी! समयसार असंयम नहीं, संयम सिखाता है। 'समयसार' कहता है कि निज में निज का आचरण

करो, 'मूलाचार' कहता है कि 28 मूलगुणों का आचरण करो।

'समयसार' निश्चय चरणानुयोग है। निज गुणों में आचरण सिखाता है। 'मूलाचार' व्यवहार चरणानुयोग है। मूलगुणों में आचरण सिखाता है। दोनों मुनिधर्म सिखाते हैं।

आज घर जाकर चिंतन करना। क्या?

'मुनि-मन-सम उज्जवल नीर।' और जीव पर दृष्टि है तो मोक्ष है, अजीव पर दृष्टि है तो बंध है।

शरीरदृष्टि बंधदृष्टि है, आत्मदृष्टि निर्बन्धदृष्टि है। पर्यायदृष्टि बंधदृष्टि है। द्रव्यदृष्टि निर्बंधदृष्टि है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्य-भगवान् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज 'समयसार' जी में आत्म-वैभव की अलौकिक प्रस्तुति प्रदान की है। वस्तुव्यवस्था एक अलौकिक व्यवस्था है। द्रव्य स्वचतुष्टय से शाश्वत हैं, त्रैकालिक शुद्ध हैं। द्रव्य छह हैं। इनमें 4 द्रव्य शुद्ध ही हैं जबकि 2 द्रव्य शुद्धाशुद्ध अवस्था को प्राप्त हैं। निश्चयदृष्टि से 6 द्रव्य पूर्णतः शुद्ध हैं। व्यवहारदृष्टि से 4 द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध हैं, 2 द्रव्य शुद्धाशुद्ध हैं। छहों द्रव्य स्वतंत्र हैं। एक भी द्रव्य अपने निज स्वभाव से भिन्न नहीं है। क्रियावती-शक्ति-युक्त जीव और पुद्गल ये दो ही हैं। भाववती शक्तियुक्त एकमात्र जीवद्रव्य है। यह जीव शुभाशुभ परिणाम करके लोक में भ्रमण करता है। और यही जीव शुद्ध परिणाम करके लोकातीत अवस्था को प्राप्त करता है। शुद्ध भाव का सद्भाव जिस दिन उतर आयेगा, उस दिन मोक्ष निश्चित है।

आज का विषय जीव की पूर्ण स्वतंत्रता का वर्णन करता है। जीव का कर्ता ईश्वर नहीं, बंधकर्ता नहीं। तू ही अपने शुभाशुभ का कर्ता है। 'पर' तेरा कर्ता हो जायेगा, तो निज स्वतंत्रता का अभाव हो जायेगा। व्यवहारदृष्टि से कथन होता है कि माता-पिता के निमित्त से पुत्र का जन्म हुआ। आज गंभीर तत्त्व को समझना। जनक-जननी! आप पुत्र के जनक नहीं हैं। जीव का जनक नहीं होता। तेरे निमित्त से जीव का नहीं, शरीर का जन्म हुआ है। और गहरी दृष्टि में जाओ। कर्म-नोकर्म के संयोग से यह कर्म-नोकर्म पिण्ड का जन्म हुआ है। यह कर्म-नोकर्म पौद्गलिक है। रज की, वीरज की अवस्था भी पौद्गलिक है। तू अपने विषय-कषाय का कर्ता है। जीव का पुण्य नहीं होता तो मानुष जन्म नहीं होता।

आप किसके कर्ता हो? माता-पिता के निमित्त से संतान होती, तो बेटा या बेटी तुम जो चाहते वही होता। जिस जीव ने आयुकर्म का बंध किया है, उसका उसी कुल में जन्म होगा। व्यवहारदृष्टि से माता-पिता कर्ता हैं। लोग भ्रमित हैं। कुछ कर्ता मानते ही नहीं हैं, कुछ कर्ता ही मानते हैं। आचार्य महाराज प्ररूपणा कर रहे हैं- अशुद्ध-निश्चयनय से यह आत्मा रागादिक भावकर्मों का कर्ता है।

कर्म आत्मा का स्वभाव नहीं, इसलिए असद्भूत हैं। यह व्यवहार है। अनुपचरित क्यों? अन्य का उपचार नहीं है, जीव ने ही क्रिया है। हे जीव! यदि तूने बंध न किया होता तो देह आदि का कर्ता भी तू नहीं होता।

परमार्थ दृष्टि है। एक शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि है, दूसरी अशुद्ध निश्चयनय की दृष्टि है। जो

जीव 18 दोषों से सहित है, वह संसारी है। 18 दोष शरीर में दिखाई दे रहे हैं। आत्मा के नहीं होते, तो दोष किसके? जन्म-जरा-मृत्यु ये तीन दोष। शरीर की प्राप्ति, शरीर का जीर्ण होना।

अभाव तो शरीर में, पर में दिखाई दे रहे हैं। परनिमित्तिक होने पर भी, कर्ता-भोक्ता पुद्गल नहीं, जीव है। निश्चयनय क्या कहेगा-

नाऽहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले।

समझो! यदि तू बाल नहीं है, तो पर्याय की प्रत्यासत्ति का क्या होगा? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की प्रत्यासत्ति का प्रभाव पड़ता है। प्रत्यासत्ति अर्थात् निकटता, समीपता।

आत्मा वही है, जो बालशरीर में थी वही वृद्ध हुई है। जिसका बाल-शरीर था, उसी का वृद्ध हुआ है। बालशक्ति की चेष्टाएँ बाल-शरीर कर रहा है, कि बालक कर रहा है? आगम को परिपूर्ण समझना है। बालक ने मल किया, उसी से खेल रहा था और मुख में रख लिया। बालक ने किया, कि शरीर ने किया? यदि शरीर कर्ता है, तो बाल-मुर्दे को भी करना चाहिए? शरीर ने नहीं किया। बाल-शरीर में जीव का क्षयोपशम मंद है, विवेकहीन है। पुद्गल की क्रिया पुद्गल में हो रही है, ऐसा कहकर स्वच्छंदी मत हो जाना। ज्ञानियो! पुद्गल से, इन्द्रियों से भोग भोगे जा सकते हैं, परन्तु पुद्गल भोगों का भोक्ता नहीं है। द्रव्येन्द्रियाँ जड़ हैं, प्रेरित करनेवाली तो भावेन्द्रियाँ हैं। जीव की राग-दशा है, जो कहते हैं कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, पुद्गल का परिणमन है। तीन मिथ्यादृष्टि जीवों को बिठाइये आप। दो जैन मिथ्यादृष्टि हैं। एक ईश्वरवादी है। एक तू है, तूने क्या किया कि पीछे बैठे भैया के गाल पर चाँटा मार दिया। कहता है कि मैंने कुछ नहीं किया। मैं कर भी क्या सकता हूँ? सब ईश्वर की इच्छा है। यह प्रथम मिथ्यादृष्टि है। व्यभिचार, अनाचार, सब कर लीजिए और धीरे-से कह दीजिए- ईश्वर की इच्छा है। पत्ता भी ईश्वर की इच्छा से हिलता है। ऐसा कैसा भगवान? तू भगवान है तो जीवों को पीड़ित क्यों कर रहा है?

दूसरा जैन कर्मवादी-मिथ्यादृष्टि है। जो मन करे खाओ, जो चाहे कहो, और धीरे-से कह दो कर्म उदय है। यदि कर्म उदय को पूरा करना ही पड़ता है, तो संयम नाम की वस्तु होती ही नहीं। वेदकर्म सताया तो कहेगा- मेरा दोष नहीं, कर्म-उदय है। कर्म के उदय को पुरूषार्थ से टाला जा सकता है। कर्म-उदय पर चलेगा, तो पुरूषार्थ कहाँ जायेगा? मानता हूँ कि कर्म के तीव्र उदय में पुरूषार्थ कार्यकारी नहीं होता। मंद में होता है। अन्यथा 'तपसा निर्जरा च' सूत्र गलत हो जायेगा। किसी को भी सता दो, कहो- 'भैया! कर्म का दोष था।' यह कर्मवादी, एकांती जैन मिथ्यादृष्टि है। सर्वत्र ध्यान रखना।

'सिद्धिरनेकांतात्'

जिनशासन में जो भी चर्चा है, अनेकांत से ही है। स्यात् पद से युक्त वचन होना चाहिए।

तीसरा मिथ्यादृष्टि- जो मन चाहे कर ले। भैया! चतुर्दशी का दिन था, बढ़िया मस्ती से भोजन किया, आलू खा डाले। कहता है- भैया! पुद्गल का परिणमन है। पुद्गल ने पुद्गल को खाया है। धन्य तेरी महिमा। माया का सपूत, विषयों की पूर्ति के लिए स्वच्छंदी होकर कह रहा है- पुद्गल ने पुद्गल को खाया है। 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' में आचार्य अकलंक देव पुद्गल की परिभाषा करते हुए कह रहे हैं- जो पुरुषों द्वारा निगला जाए, वह पुद्गल है। पूरण-गलन स्वभाववाला पुद्गल है, यह तो दुनियाँ जानती है। संसार में जो- कुछ कर रहे हो, वह सब पुद्गल के निमित्त से कर रहे हो। भोजन, जीव कर रहा है कि पुद्गल कर रहा है? शरीर खाता है, कि आत्मा खाती है? आगम से समझिए। यदि पुद्गल खाता है, तो मुर्दे को भी खाना चाहिए? जीव खाता है, तो सिद्धों को भी खाना चाहिए? न शुद्ध-जीव खाता है, न शुद्ध-पुद्गल खाता है। जीव-पुद्गल दोनों की विभाव दशा, मिश्रधारा है, वह खा रही है। भोगता कौन है? जीव। मिथ्या-प्रपंचों में फँस मत जाना। मस्तिष्क परिवर्तन कर दिया। मस्ती में लीन है, और कह रहा है कि पुद्गल का परिणमन है। तीसरा मिथ्यादृष्टि है। पंडित टोडरमल ने मिथ्यात्व के भेद किये- निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी, उभयाभासी।

तदोन्यत् तदाभासः

आभास की परिभाषा- जो जैसा नहीं है, उसे वैसा कहना, तदाभास।

ध्यान रखना- कर्म-एकांती मत बनना। न भगवान को एकांती बना लेना, न पुद्गल को एकांती बना लेना। नयदृष्टि पर ध्याद दो। व्यवहारनय, निश्चयनय, शुद्ध-निश्चयनय।

पोग्गल कम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदण कम्मा णादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥8 द्र.सं.॥

आचार्यभगवान् नेमिचन्द्र स्वामी, एक ही गाथा में, दो नयों का कथन कर रहे हैं। यह जीव व्यवहारनय से पौद्गलिक कर्मों का कर्ता है। निश्चयनय से यह जीव रागादिक भावों का कर्ता है। शुद्ध निश्चयनय से शुद्धभावों का कर्ता है।

उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय से जीव घट, पट, मकान आदि का भी कर्ता है। यदि कर्त्ता नहीं है, तो इस भवन को किसने बनाया? निमित्तभूत कर्त्ता है। जीव का योग-उपयोग नहीं लगता तो भवन कैसे बनता? जीव ईंट-भवनरूप नहीं हुआ, इसलिए भवन का कर्त्ता नहीं है।

भगवान जिनेन्द्र का नयचक्र है, उसकी धारा पैनी है, एकांतवादी मूढ़ों को खण्ड-खण्ड कर देती

है। परमागम का अध्ययन करने के पूर्व नयचक्र का अध्ययन करना चाहिए। नयचक्र के अभाव में समाज में पंथ चल गए हैं। जो निश्चय व व्यवहार को साम्यभाव से समझता है, वह ही अरिहंत की देशना को सुनने का पात्र है। एक को भी छोड़ता है तो देशना सुनने का अधिकारी नहीं है।

एक निश्चय को भूतार्थ कहता है, दूसरा व्यवहार को भूतार्थ कहता है। प्रायः संसारीजीव सत्यार्थ-ज्ञान से शून्य हैं। निश्चयनय, निश्चयदृष्टि से भूतार्थ है। व्यवहारनय व्यवहारदृष्टि से भूतार्थ है। दोनों समझने कीशैलियाँ हैं। कर्त्तृव्य-भाव का व्याख्यान समझ में आ जाए कि मेरी कर्ता कौन है? तुझे जन्म किसने दिया है? शरीर नहीं, आत्मा को जन्म किसने दिया है? ये किसने सिखाया? आपके अनुभव में आ रहा है, कि किसी ने सिखा दिया? जिसके अनुभव में आ जाए, कि अखण्ड, ध्रुवधाम-स्वभावी आत्मा का कर्त्ता कोई नहीं है, तो कल्याण निश्चित है। माता-पिता रोने लग जायें। तो आप मेरे शरीर के निमत्तिकर्त्ता हो, आत्मा के कर्त्ता नहीं हो। आचार्य-भगवान् कुंदकुंद स्वामी ने एक ग्रंथ नहीं, 84 पाहुड़ लिखे। 'प्रवचनसार' जी में जब वे एक मुमुक्षु जीव का कथन हुए कहते हैं- वैराग्य से भरा जीव यदि गुरु के पास पहुँच जाए और कहे कि दीक्षा दे दो, तो राजमार्ग यही है कि गुरु उसे दीक्षा तुरंत नहीं देते। माता-पिता की अनुमति लाइए। एक वैरागी जब अपने जनक-जननी के पास जाता है, झोली फैला देता है, तो वह क्या कहता है? शब्द संयोजना निहारिये, कैसे क्या कहता है-

हे तन के जनक, हे तन की जननी! आज मेरे मन में ये भाव आ रहे हैं; मैं जैनेश्वरी दीक्षा लेकर ध्रुवधाम आत्मा को प्राप्त करना चाहता हूँ। आप मुझे अपने द्वारा प्रदत्त इस शरीर की भीख दे दो। आपके द्वारा प्रदत्त शरीर से मैं इस आत्मा को सिद्ध बनाना चाहता हूँ। नोकर्म के निमितकर्त्ता माता-पिता हैं। कर्म बंध का कर्ता तू ही है। कितना स्वतंत्र दर्शन है। ऐसे अपूर्व ग्रंथ का वाचन नहीं करोगे तो सत्यार्थ बोध से रहित रह जाओगे।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो ववहारा, पोग्गल-कम्माण कत्तारं॥ ता.वृ.॥

आचार्य कुंदकुंद देव कह रहे हैं- हे भोले भगवान! तुम कहाँ भटक रहे हो? कोई देव-देवी के पास जा रहा है, कोई तंत्र-मंत्र वादी के चक्कर काट रहा है। सत्यार्थ को भूल गया है। दवा और दुआ को माँग रहा है। विश्वास रखना- न श्राप लगते हैं, न वरदान लगते हैं। पुण्य है तो वरदान लगते हैं और पाप है तो श्राप लगते हैं। वरदान या श्राप काम नहीं करते। रावण ने राम को मारने भ्रामरी विद्या भेजी थी। वह राम की तीन प्रदक्षिणा लगाकर वापस रावण के पास पहुँच गई। रावण से कहती है- स्वामी! मैं पुण्यशाली का बाल भी बाँका नहीं कर सकती। राम का प्रबल पुण्य है, हाँ, आपका घात कर सकती

हूँ, राम का घात नहीं कर सकती। प्रद्युम्न कुमार को कष्ट देने भाइयों ने कहाँ-कहाँ नहीं पटका। व्यंतरों के यहाँ भेज दिया, तालाब आदि में फेंक दिया, परन्तु देव रत्नथाल लेकर आ गए- 'स्वीकार करो।' धन्यकुमार को घर से निकाल दिया। ज्ञानी! कष्ट के दिनों में किसी के दरवाजे जाना नहीं, आँसू टपकाना नहीं। थका हुआ वह युवा एक किसान के खेत की मेंढ़ पर पहुँचा। किसान के घर से दही-भात आया था। धन्यकुमार से कृषक ने कहा- 'भोजन कर लो'। किसान गया पत्ता तोड़ने। धन्यकुमार ने हल पकड़ा, तो दो कदम ही चला होगा कि धन का एक घड़ा निकल आया। धन्यकुमार वहीं छोड़कर आगे बढ़ गया। किसान पीछे-पीछे भागता है- तेरा धन है। किसान से वह कहता है- नहीं, तेरा है। किसान कहता है- मैं तो बरसों से हल चल रहा हूँ। एक पिता के दो बेटे। एक रोड़पति है, एक करोड़पति है। हिस्सा बराबर दिया था। पिता को नहीं, भाग्य को कोसो। कुंदकुंद देव कह रहे हैं- अपनी करनी को देखता नहीं, जीवन भर रोता है कि पिता ने कुछ नहीं दिया। ज्ञानी! पिता ने तुझे जन्म दिया, तूने पिता को क्या दिया? रोने की भाषा भूल जाओ। सब भाग्य है। मेढ़ से मेढ़ मिली होती है, एक-सी खाद, पानी, बीज दिया जाता है, फिर भी एक में बोरे भर-भरकर निकलते हैं, एक में खाद पानी का दाम भी नहीं निकलता। जैसा विपाक होगा, वैसा फल होगा।

एक गुरु के कई शिष्य हैं। एक ज्ञानी है, विद्वान है, जबकि दूसरे को कोई जानता तक नहीं है। एक महाराज आयें तो तुम टार्च लेकर घूमते हो कि चौका लगा लेना। और कोई साधु आ जायें, तो कहते हैं कि अपना चौका बंद कर दो, हमें लगाना है। सब पुण्य है। अतः हर्ष-विषाद नहीं करना। खिन्न होकर नीवन कर्मबंध ही कर पाओगे, खिन्न होकर कर्म को राके नहीं पाओगे। अशुभ उदय में कहीं नहीं जाना, कुछ नहीं करना, भवान् के चरणों में आ जाना। सम्पूर्ण असाता को साता में संक्रमित करने का एकमात्र स्रोत भगवान का पादमूल है। भैया! तीव्र पाप-उदय में भगवान का नाम लेना भी पसंद नहीं करता। किसी से कुछ कहा नहीं, फिर भी माला फेरने लग जाये, तो पुण्य उदय चल रहा है। कहीं पूछने जाने की आवश्यकता नहीं, सब स्वयं दिखता है। दस-पांच रुपये बचे थे, पुण्य से कहीं चले गए तो वे भी चले गए। शेष मंदिर की गोलक में डाल आए होते तो पुण्य होता।

कोई किसी को लक्ष्मी नहीं देता। कोई किसी का उपकार नहीं करता। शुभाशुभ का उदय, पुण्य-पाप जैसा होता है, वैसा फल मिलता है। सीता का पुण्य था तो बलभद्र की पटरानी बनी। और जब पाप उदय आया तो जंगल में गर्भिणी अवस्था में छोड़ दिया। आज आपको कौन कष्ट है? कौन पति होगा जो अग्निकुण्ड में बैठा रहा है? हाँ, आज तुम स्वयं बैठ जाओ वह बात अलग है। पूछो सीता से, पूरा जीवन कष्ट में निकल गया। परन्तु स्वामी को दोष नहीं दिया। यही है निकांक्षित अंग। सम्यग्दृष्टि जीव को निज स्वतंत्रता और पर स्वतंत्रता का भान होता है। भगवान की पूजा करते हुए निज स्वतंत्रता का

ध्यान नहीं तो सम्यग्दृष्टि नहीं है। भिखारी बनकर रह लेना, लेकिन मिथ्यात्व के विकारों को स्वीकार नहीं करना। ज्ञानी! ध्यान रखना, सम्यग्दृष्टि कभी भिखारी हो नहीं सकता। तुम्हारे साधुओं की कितनी सुन्दर व्यवस्था है। कभी जैनसाधु को भीख माँगते, कटोरा लिए नहीं देखा। दुनियाँ रोटियों के चक्कर काटती है, जबकि ये तीन-तीन चक्कर लगवाते हैं। बड़ी वीरचर्या है। अंजुलि लगाकर जाते हैं। यह भिक्षुओं की वृत्ति है। त्यागियों का मार्ग है। भिखारी-मार्ग नहीं है।

जिनशासन की संहिता दृढ़ है। जैनीवृत्ति स्वेच्छाचार से रहित होती है। इसीलिए आज तक नमोस्तु-नमोस्तु हो रहा है। जिस दिन ये दो बार पानी लेने लग जायें, तो कोई नमोस्तु नहीं करेगा, पड़गाहन नहीं करेगा। देखो, श्रावकों की भाषा है- 'महाराज! झूठ नहीं बोलूँगा तो व्यापार कैसे चलेगा? छल नहीं करूँगा तो धन कैसे आयेगा?' अरे! छल, कपट, झूठ, पापों से पैसा आता तो सभी पापी पैसे वाले दिखने लगते। फिर कोई रिक्शा चलाते, ऑटो चलाते, झाड़ू लगाते नहीं मिलेगा। डाकू का भी लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम होता है तो तुम्हारा पैसा उसे मिलता है। उसका भी पुण्य क्षीण हो जाता है तो पकड़ा जाता है। ध्यान दो- छल-कपट से नहीं, लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से धन मिलता है। कितना पुण्योदय है कि झूठ भी बोल रहा है, तब-भी पैसा आ रहा है। ज्ञानी! सत्य बोलो तो और धन आयेगा। जब पूर्व पुण्य से आ रहा है, तो सत्य बोलो। प्रत्येक व्यापारी को यह तत्त्व समझना चाहिए। हाय-हाय बन्द हो जायेगी। पर क्या करें? माँ ने जन्म से तेरे गले में 'हाय' लटका दी। कितना अपशकुन कर दिया। बेटा! जीवन भर बैठे-बैठे करना हाय-हाय। ज्ञानी! दुनियाँ जैसी चल रही है, वैसा चलोगे तो मोक्ष नहीं होगा। जैसा तुम कह रहे हो, तो भी मोक्ष नहीं होगा। जैसा जिन कह रहे हैं, वैसा करोगे, तो मोक्ष होगा। इनकी उनकी नहीं, मात्र जिन की मानना। सुनो सबकी, मानना जिन मात्र की। सबकी मानने लगोगे तो करोगे क्या? मार्ग तो एक ही है।

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' ॥ 1 त.सू. ॥

तीनों की एकता का नाम मोक्षमार्ग है। इतनी गर्मी पड़ रही है, ठण्डाई पी, कि नहीं? ठण्डाई क्या कहलाती है? पानी ठंडाई है, बूरा, बादाम, सौंफ, कालीमिर्च ठण्डाई है? यह मैं नहीं कह रहा, आचार्यभगवान् ब्रह्मदेव सूरि ने 'बृहद् द्रव्यसंग्रह' की टीका में कहा है। आचार्य महाराज को ठण्डाई ही मिली, और-कुछ नहीं मिला। सबका समूह ठण्डाई बनता है तो धूप की तपन भी समाप्त हो जाती है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से मोक्षमार्ग की ठण्डाई बनती है जो संसार की तपन को शांत कर देती है। मोक्षमार्ग एक ही है। तीनों की एकता का नाम मोक्षमार्ग है। आज से दृढ़ श्रद्धान्वित हो जाना। कोई कहे कि यहाँ चलो या वहाँ चलो, तो कह देना-

जैसे भाव आत्मा करता है, वह आत्मा उसी का कर्ता है। न मैं पर का कर्ता हूँ, न पर मेरा कर्ता है। व्यवहारनय से पौद्‌गलिक कर्मों का कर्त्ता जीव है। निश्चयनय से रागादि कर्मों का कर्त्ता है। कुछ विद्यार्थी आए- 'महाराज! याद नहीं होता। याद करो, जब दूसरे की पुस्तक छुपाई थी।

आज दिखता नहीं है। अरिहंत भगवान के मंदिर में ताले डाले थे कि हम आयेंगे, तो खोलेंगे। दर्शनावरणी कर्मका बंध किया। यदि दर्शन ऐसे करें कि सब तुम्हारी पीठ के दर्शन कर रहे हैं तो कर्म तुरंत बंधते हैं। वह यह नहीं कहता है कि तुमने व्यवस्था की है। मैंने भी व्यवस्था की है। आदिनाथ ने भी व्यवस्था की थी। उनने एक दिन को मुसीका लगवाया तो छह महीने के लिए मुसीका लग गया। कर्म कहता है कि मेरी व्यवस्था सुनिश्चित है। आप लोगों की व्यवस्था के नाम पर अव्यवस्था है। घर को बनवाते हो, तो एक-एक पत्थर सोचकर लगवाते हो परन्तु मंदिर बनवाते हो तो गरीबों का धन व्यर्थ में बर्बाद करते हो। कर्म मुस्कुराता है। अब सँभाल कर रहना नहीं-तो बंध होगा। इस पर्याय को सबकुछ मत मानो। भविष्य पर ध्यान दो। माताओ! घर के काम में भी मायाचारी नहीं करना। परिवार तो इस पर्याय का है न? परिवार के राग के पीछे तू कर्म करेगा, पर फल भोगने के लिये अन्य परिवार में जाना पड़ेगा। पाप किया था तो आज स्त्री बनना पड़ा। कर्म-परिवार मत बढ़ाना। कण-कण स्वतंत्र है। अपनी स्वतंत्रता पर ध्यान ही नहीं है। मतलब रूखे-सूखे मत हो जाना, कण-कण स्वतंत्र है तो वात्सल्य नहीं छोड़ देना, राग को छोड़ देना। अध्यात्म का दुरुपयोग नहीं करना। बचना चाहता था कि महाराज की सेवा कौन करे। कण-कण स्वतंत्र है- यह तत्त्वनिर्णय का विषय है, अंदर का विषय है। परम स्वतंत्रता को जिस दिन प्राप्त हो जाओगे, तो हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाओगे।

टीको देखो- जयसेन स्वामी की कृपा है, सारे नयों का व्याख्यान किया है

जब यह आत्मा रागादि भाव करती है, तो उस समय उन कर्मों का कर्ता होती है। अशुद्ध निश्चयनय से जीव अशुद्ध भावों का कर्त्ता है, शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है। भावों का, परिणामों का कर्ता जीव स्वयं है, ईश्वर कर्त्ता नहीं है। अनुपचरित-असद्‌भूत-व्यवहारनय से यह आत्मा पौद्‌गलिक कर्मों का कर्त्ता है। कैसे? प्राकृत व्याकरण में कारक और लिंग का व्यभिचार भी होता है। रागादि संसार का कारण है। इसलिए डरो। किससे? संसार से डरो, मृत्यु से नहीं डरो। मिथ्यात्व उसी दिन समाप्त हो जायेगा, जब मृत्यु से भय समाप्त हो जाएगा। मिथ्यात्व का कारण- मर न जाऊँ, मेरे न मर जायें, इसकी चिंता ज्यादा है। घर में कौन बाँधें है? अंदर का राग बाँधे है। जिसे लोक में व्यवस्था कहते हैं, परमार्थ में अव्यवस्था कहा जाता है। ज्ञानी! आप हमारे साथ रहने लग जाओ तो परिवार की व्यवस्था बिगड़ना प्रारंभ हो जायेगी, परंतु मन की व्यवस्था बनना प्रारंभ हो जायेगी। सब-कुछ जानता

है जीव, लेकिन हिलता नहीं है, भाव ही नहीं बनते। कोई रोके/बाँधे नहीं है। राग है। अंदर से भयभीत किए हैं राग और विषय-भोग। दो से ही भयभीत है। राग से हटा तो विषय-कषाय। बॉलीबॉल देखी है? दोनों तरफ लोग खड़े रहते हैं, इधर से कषाय ने मारा, उधर से विषय ने मारा। पिताजी! क्या करूँ? बॉलीबाल बन गया हूँ। बॉलीबॉल में हवा अच्छी भरी है, धक्का तो लग रहे हैं, झूला झूल रहे हैं। सत्य यही है कि धक्का-मुक्की मत खाओ। समय हो गया।

रागादिक संसार के कारण हैं। जो मोक्षार्थी है, उन्हें समस्त रागादि से रहित निज परमार्थ स्वरूप की भावना करना चाहिए।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

परम अध्यात्म ग्रंथ 'समयसार' जी के व्याख्यान में आचार्यभगवान् ने पूर्व में व्याख्यान किया है कि वह अप्रतिबुद्ध है जो त्रैकालिक पदार्थों में राग रखता है। स्वतंत्र सत्ता का न ज्ञान किया, न अनुभव किया। अपनों में, पर सत्ता में निज सत्ता का अनुभव करता रहा। पर-द्रव्य में रागादि भाव करके इस जीव ने संसार में भ्रमण किया। इसका मुख्य कारण है अंतरंग में ममत्वबुद्धि है। मनीषियो! संसार का न कोई कर्त्ता है, न ही मोक्ष का कोई कर्त्ता है। जीव स्वयं कर्त्ता है, स्वयं भोक्ता है। अन्य न करते हैं, न भोगते हैं। संबंध जगत में अनेक हो सकते हैं। संबंध के होते हुए भी अपने स्वभाव पर पर्दा मत डाल बैठना। सबके साथ रहना, सबके बीच में रहना, परन्तु सबको अपना मत स्वीकारना। अन्य संबंधी भी तेरे से भिन्न हैं। यही अप्रतिबुद्ध और प्रतिबुद्ध की दशा है। अज्ञानी त्रैकालिक द्रव्य के प्रति कैसा व्यवहार करता है और ज्ञानी कैसा व्यवहार करता है? यह जीव आकिंचन्य-स्वभावी है, अन्य से किंचित् भी संबंध नहीं है। बंधदशा में, रागदशा में जो भी व्यवहार दिख रहा है, उसे व्यवहार ही मानिए, निज स्वभाव मत मानिए। तू गृहस्थ है, वस्त्र धारण किए है, परंतु सिद्धांत स्वीकार करना पड़ेगा। वस्त्र तो वस्त्र हैं, वस्त्र शरीर नहीं है। गृहस्थ वस्त्र पहन सकता है। लेकिन वस्त्रों में आत्मा के स्वरूप को नहीं मानना। वस्त्र जीर्णपने को प्राप्त होता है, आत्मा जीण नहीं होती, वह वैसी ही रहती है।

शरीर के क्षत-विक्षत होने से यह आत्मा जीर्ण नहीं होती। जैसे निश्चित समय पर वस्त्रों को बदल लेते हैं, वैसे-ही मृत्यु को अनहोनी न समझें। वस्त्र फट जाते हैं तो नए पहन लिए जाते हैं। शरीर जीर्ण हो जाता है तो बदला जाता है। मृत्यु कोई नई वस्तु, कोई हउआ नहीं है। आयु पूर्ण होने पर शरीर बदल कर आत्मा नए शरीर को प्राप्त करती है। वृद्धो! तुम बिलखो मत। मृत्यु तो तुम्हारी सखा है। जीर्ण शरीर, नयनों से पानी बह रहा है, नाक से मल निकल रहा है, मुख से कफ निकल रहा है। इनसे दूर कर नया शरीर दिलाने वाली है मृत्यु। अतः मृत्यु से डरो मत। सम्यग्दृष्टि जीव मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

आज जो शरीर मिला है वह तो भुज्यमान है। उसकी प्राप्ति तभी हुई है, जब भूत का शरीर छोड़कर आया है। वर्तमान शरीर में इतने रागी नहीं हो जाना कि छोड़ने में रोना पड़े। उससे अच्छा है कि ऐसा पुरुषार्थ करो कि शरीर मिलना ही समाप्त हो जाए।

इस शरीर में आत्मबुद्धि ही कष्ट का कारण है। विकल्प मत करना। करणानुयोग का विषय है।

स्व-पर चतुष्टय का भान, निज का भान हो जाए। समझ में आ जाए कि प्रत्येक जीव स्वतंत्र है। यह देह वस्त्र-तुल्य है। वस्त्र को बदलना पड़ेगा, ऐसे-ही देह को बदलना पड़ेगा। नए कपड़े पहनते समय कैसे मुस्कुराता है। मुस्कुराते-मुस्कुराते पुराने छोड़ता है, मुस्कुराते-मुस्कुराते नए पहनता है। मृत्युकाल आ जाए तो रोना मत, मुस्कुराना। छूट रहा है पुराना। यह मत सोचना कि मेरे पीछे सबका क्या होगा। तेरे पिताजी गए थे तो क्या हुआ था? पिता का ऐसा सोच होता है कि मेरे बाद मेरे बेटे का क्या होगा? लेकिन सच बता- पिताजी के जाने के बाद भी तू सूखी है कि नहीं? तू बेटों के राग में मत रोना। उनका भाग्य होगा तो वे भी सुखी रहेंगे। यह विचार करो कि हमारे भविष्य का क्या होनेवाला है। नाती, पंती का क्या होगा? यह नहीं। मेरी भविष्य की संतति क्या होगी, यह विचार करना। आचार्य भगवान् कुंदकुंद स्वामी उसे महान अज्ञानी घोषित कर रहे हैं जो अपनी पर्याय का चिंतन नहीं कर पर-पर्याय के परिणमन के विकल्प में दुःखी है। मेरा तो कल्याण हो जायेगा, धर्मात्मा हूँ। भैया मंदिर नहीं आता, 24 घण्टे सोचता है कि उसका क्या होगा। ज्ञानी! तेरी मृत्यु आज हो जाए तो तू नरक जायेगा। मंदिर में था, अंतिम श्वासें चल रहीं थीं और कह रहा था कि भैया नहीं आया, भैया नहीं आया। भगवान् को नहीं देख सके।

ज्ञानी! अभ्यास आज से प्रारंभ कर दो। 24 घण्टे मुख से 'णमो अरिहंताणं' निकलना चाहिए। 'मूलाचार' में आचार्य वट्टकेर स्वामी कह रहे हैं- प्रथम क्षण से प्रतिक्षण 'णमो अरिहंताणं' पढ़ते रहना चाहिए। इससे निर्दोश समाधि होती है। हर क्षण, हर पल 'णमो अरिहंताणं' पढ़ना चाहिए। आचार्य शांतिसागर महाराज की समाधि के समय विद्वान् लोग पहुँच गए- 'महाराज! अंतिम उपदेश दे दो।' वे महाराज प्रवचन कर रहे हैं और बीच-बीच में बोल रहे हैं 'ओऽम् नमः सिद्धेभ्यः।' संयम धारण करो 'ओऽम् नमः सिद्धेभ्यः।' संयम धारण करने से कल्याण होगा 'ओऽम् नमः सिद्धेभ्यः।' वह जीव अपने आप में कितना स्थिर था कि पर उपदेश करते-करते ही जीवन न चला जाये।

मनीषियो! 24 घण्टे में कुछ समय निकाल लेना अपने लिए। खाने-पीने में तो सब समय खर्च करते हैं, थोड़ा समय निज को भी देना। भाषण नहीं, यह वस्तुस्वरूप है। इसे निज कल्याण हेतु समझना। निर्णय करना है। चारपाई पर भी 5 पापों का त्याग करके सोना। घर की दोहरी के बाहर पैर रखो तो सबसे हाथ जोड़कर माफी माँगकर निकलना। वापस लौटकर आए या न आए, तो ऊपर जाओगे तो संयम के साथ जाओ। भिलाई से एक डॉ. साहब रायपुर जा रहे थे, रास्ते में टिफिन खोल लिया। एक हाथ से खा रहे थे, एक हाथ से गाड़ी चला रहे थे। एक्सीडेंट हो गया। हंसात्मा खाते-खाते ही चली गई। ज्ञानी! बाहर का खाना पीना नहीं। ऐसे पैसे की क्या उपयोगिता कि दो मिनिट शांति से खा नहीं पा रहे हो। धन्य हैं वे श्रावक जो पोटली पीठ पर टांग कर व्यापार करते थे। जहाँ सामायिक का समय हो जाता तो बैठकर सामायिक करते थे। जहाँ संध्या हो गई वहीं बैठकर भोजन किया, फिर सामायिक की।

बड़ी-बड़ी बातों से काम नहीं चलता। अंतरंग में राग-परिणति का अभाव है, तो बहिरंग में नियम से त्याग परिणति होगी। अंतरंग में राग-परिणति है, तो बहिरंग में नियम से राग-परिणति होगी। मुमुक्षु! बहिरंग में परिग्रह हो अथवा न हो, अंतरंग परिग्रह हो सकता है, लेकिन बहिरंग परिग्रह है तो नियम से अंतरंग परिग्रह है। 'मूर्च्छा परिग्रहः' सूत्र का लोगों ने दुरुपयोग किया है। वस्त्र बंधे हैं, कहता है कि मैं तो मुनि हूँ, निर्ग्रंथ हूँ। तो इतना विशाल वस्त्र तेरे ऊपर बिना राग के कैसे? तन वस्त्र धारण किए हैं या मन वस्त्र धारण किए है? तन धारण करता है, तो मुर्दे को स्वतः धारण करना चाहिए। ज्ञानी! इन वसनों को वासनाएँ धारण किए हैं। वासनाएँ न होती, तो वसन उतर जाते। तन धारण नहीं करता, मन धारण करता है। गर्मी में भी चेहरा खोले रहता है, सर्दी में भी चेहरा खोले रहता है, क्यों? 'महाराज! यह तो दिखनी चाहिए।' नाक, आँख उसको ठण्डी नहीं लगती क्या? जहाँ मन करता है, उतना ही धारण करता है और जहाँ मन नहीं करता, वहाँ धारण नहीं करता। शरीर को वस्त्र धारण करना अनिवार्य नहीं है। यदि शरीर को आवश्यक होते, तो सबसे कोमल स्थान नयन हैं। जब यह नयन सहन कर सकते हैं, तो बाकी चमड़ी तो मोटी है। वसनों को वासनाएँ धारण किए हैं। जिनकी वासनाएँ नहीं हैं, उनके वसन हो ही नहीं सकते। यह निर्ग्रंथों का मार्ग है। यहाँ व्याप्ति लगाना। जहाँ-जहाँ राग है, वहाँ-वहाँ परिग्रह है और जहाँ-जहाँ परिग्रह है, वहाँ-वहाँ राग है। बिना राग के यह हाथ भी नहीं उठता। आप असंज्ञी नहीं हो, तो वीतरागी भी नहीं हो। आशीर्वाद में हाथ उठता है तो यह भी राग है। दूर से मुस्कुराकर आशीर्वाद दे दिया, भले ही धर्मानुराग है, वात्सल्य है, पर है तो राग। इस तीर्थंकर की, गणधर की गद्दी पर लाग-लपेट की बात करना मिथ्यात्व है। आशीर्वाद देना राग है, तो हाथ में हाथ मिलाना वीतराग कैसे? हाँ, यह राग वह राग नहीं है जो विषयराग है। यह धर्मानुराग है। उसने आपकी विनय की है, आपने (आशीर्वाद देकर) उसकी विनय को स्वीकार किया है। यह भी छटवें गुणस्थान तक ही चलता है, इससे आगे न राग है, न आशीर्वाद है। जिस दिन ये भगवान शांतिनाथ मेरे नमोस्तु के उत्तर में आशीर्वाद देने लग जायेंगे, उसी दिन नमस्कार करना समाप्त कर दूँगा। मैंने नमोस्तु किया, मैंने वीतरागता की वंदना की है।

हे वीतरागी अर्हंत देव! न आपको पूजा से प्रयोजन है, न निंदा में विवाद है। मैंने आपकी पूजा हेतु पूजा नहीं की है। मेरे कर्म नष्ट हो जाएँ, चित्त पवित्र हो जाए, इसलिए वंदना कर रहा हूँ। दर्शन है, स्वतंत्रता है। भगवान की वंदना भी परतंत्र नहीं है। कहीं नारियल नहीं चढ़ाते, तो देव नाराज हो जाते हैं। 14 नं. का मंदिर है पपौरा जी में। बालक खड़ा था, हम दर्शन कर रहे थे बड़बड़ाने लगा, महाराज! आपने गलती कर दी। हमारे ऊपर दीपक नहीं रखवाया। अरे! तुम तो देव हो, रत्नों का दीप रख लो।

ज्ञानी! ऐसे देव नहीं आने लगे। तुम इतने पुण्यात्मा नहीं हो। शुद्ध ढोंग है। जितने दरबार चल रहे

हैं, सब पैसे कमाने की बात है। देव एक बात को पुनः नहीं बोलता। ये देव हजारों बातें हजारों बार बोलते हैं। अकलंक देव ने शास्त्रार्थ किया छः महीने देवी से। एक दिन सामायिक में बैठे तो पता चल गया कि यह देवी है। परीक्षा के लिए उन्होंने प्रश्न किया, तो उत्तर मिला, पुनः प्रश्न किया तो मौन हो गई। क्यों? देव पुनः नहीं दोहराते।

वह तारादेवी भाग आई। हम वीर अकलंक के चेले हैं, ऐसे-ही नहीं मानते किसी को। आयें, तो साक्षात् कुछ करके दिखायें। मंदिरों में इतनी चोरियाँ हो रही हैं, तुम कहाँ चले जाते हो? अज्ञानियों, पाखंडियों के प्रपंच में फँसेनवाला शासन नहीं, यह वीतराग शासन है। लोगों को डर रहता है कि पूजना छोड़ देंगे तो होगा क्या? ज्ञानी! 'होता स्वयं जगत परिणाम।' मृत्यु ही होगी, उससे आगे क्या होगा? ध्रुव सत्य है, सम्यग्दृष्टि के ऊपर जादू-टोने काम नहीं करते। जिनभक्त को कोई सता नहीं सकता। हे राम! सीता को अग्निकुण्ड में डाल सकते हो, पर जला नहीं सकते हो। क्या कह रही है सीता? 'मेरे शील में दोष हो तो मैं ध्वस्त हो जाऊँ।' इतना विश्वास होना चाहिए।

मनीषियो! यह व्यवहार की चर्चा है। जब व्यवहार इतना कठिन है, तो निश्चय कितना कठिन होगा? शरीर में गलित कुष्ठ हो गया, देव परीक्षा के लिए घूम रहे थे; 'उपचार करा लो।' मुनिराज कहते हैं- यहाँ नगर नहीं है, कोई रागी नहीं है, आप दवाई लेकर क्यों घूम रहे हो? स्वामी! आप रोगी हो, आपका उपचार करने आए हैं। वे कहते हैं- मैं रागी अवश्य हूँ, क्या तू ठीक कर सकता है? मुझे रोग हैं- जन्म, जरा, मृत्यु। देव अपने रूप में आ गया- 'रोग को तो आप ही समाप्तकर सकते हो, मेरे पास दवाई नहीं है।' इस तन को कब स्वस्थ कर पाओगे? एक-एक अंगुल में 96-96 रोग हैं। इसको ठीक नहीं किया जा सकता, ध्रुव सत्य है। इसमें रहकर ठीक हुआ जा सकता है। इस तन में रहनेवाली आत्मा को ठीक किया जा सकता है। रागी जीव कहता है कि यही शरीर मेरा है, यही शरीर मेरा था, यह शरीर मेरा होगा। धन्य है! तू सर्वज्ञ हो गया। तीनकाल के अपने शरीर को जानता है। ज्ञानियो! सभा का नहीं, यह घर का विषय है। आपके अपने शरीर के प्रति कैसे भाव होते हैं? गाथा का चिंतन करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय॥

॥ ज्ञानी और अज्ञानी का चिह्न ॥

उत्थानिका - आगे, शिष्य प्रश्न करता है कि यह अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) किस तरह पहचाना जा सकता है? उसके चिह्न उसके चिह्न बताओ। उसके उत्तर रूप गाथा कहते हैं।

गाथा - **अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।**
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ॥ 20 ॥

आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहंपि आसि पुव्वंहि ॥
होहिदि पुणोवि मज्झं एयस्स अहंपि होस्सामि ॥ 21 ॥

एयं तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥ 22 स. सा. ॥

संस्कृत छाया - **अहमेतदेतदहमहमेतस्यास्मि ममैतत्।**
अन्यद्यत्परद्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रं वा ॥ 20 ॥

आसीन्मम पूर्वमेतद् एतस्याहमप्यासं पूर्वं हि।
भविष्यति पुनरपि मम एतस्याहमपि भविष्यामि ॥ 21 ॥

एतत्त्वसद्भूतमात्मविकल्पं करोति संमूढः।
भूतार्थं जानन्न करोति तु तमसंमूढः ॥ 22 ॥

अन्वयार्थ - (**यः**) जो पुरुष (**अन्यत् यत् परद्रव्यम्**) अपने से अन्य जो परद्रव्य (**सचित्ताचित्तमिश्रं वा**) सचित्त स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक, मिश्र ग्रामनगरादिक-इनको ऐसा समझे कि (**अहम् एतत्**) मैं यह हूँ (**एतत् मम अस्ति**) ये मेरे हैं (**एतत् मम पूर्वम् आसीत्**) ये मेरे पूर्व में थे (**एतस्य अहमापि पूर्वम् आसम्**) इनका मैं भी पहले था (**पुनः**) तथा (**एतत् मय भविष्यति**) ये मेरे आगामी होंगे (**अहमपि एतस्य भविष्यामि**) मैं भी इनका आगामी होऊँगा, (**एतत्तु असद्भूतम्**) ऐसा झूठा (**आत्म-विकल्पम्**) आत्म-विकल्प करता है वह (**संमूढ़ः**) मूढ़ है (**दु**) और जो पुरुष (**भूतार्थतम्**) परमार्थ वस्तुस्वरूप को (**जानन्**) जानता हुआ (**तम्**) ऐसा झूठा विकल्प (**न करोति**) नहीं करता है, वह (**असंमूढः**) मूढ़ नहीं है, ज्ञानी है।

समय देशना

मनीषियो! भगवत् कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं कि अच्छी तरह से मूढ़ हुआ प्राणी भिन्न द्रव्य पर भी ऐसा भाव रखता है कि मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं। जैसे नारी किसी भिन्न पुरुष को समझा रही हो अपने स्वामी के प्रति- यह मेरे स्वामी हैं, मैं इनकी पत्नी हूँ। जैसे दास कहे- यह मेरे स्वामी, मैं इनका सेवक हूँ, मैं ही इनका सेवक था, मैं ही इनका सेवक होऊँगा। त्रैकालिक राग चल रहा है। हो या ना हो, लेकिन आस्रव तो है। पर्युषण पर्व में हरी नहीं खाओगी। सुखाकर रख ली। हे माँ! जब सूखेगा, तब सूखेगा; जब खायेगी, तब खायेगी। परन्तु पुण्यकर्म सूख गया, पापकर्म जारी है। हे माता! खाना नहीं है तो बिल्कुल मत खाना। एक-दो का नियम ले लेना। राग की वृद्धि मत करो। परिवार के पीछे कितना-कितना करना पड़ता है। घर में छह-छह महीने की भाजी सुखी रखी होगी, अचार रखा होगा। नरक का पहला द्वार संथान (अचार) है। जितना पुराना अचार होग, उतने ज्यादा जीव होते हैं।

इधर भगवानात्मा कहता है, उधर नाश्ते में अचार खा रहा है। अचार खानेवाला शुद्ध माँस-सेवी है। जब ऐसी बाते करते हैं तो कहता है कि राग की वस्तु की बात कर रहे हैं महाराज। इस अचार जैसी सड़ी-गली वस्तु में तुझे राग है, उसे भी नहीं छोड़ पा रहा है।

ज्ञानियो! व्यवहारधर्म नहीं बचा तुम्हारे पास, तो फिर परमार्थ-धर्म कैसे मिलेगा? जो जीव यह मानता है कि चर्या का धर्म करने से मोक्ष नहीं मिलता, तो वह बौद्ध है। माँस खाते-खाते बोधि नहीं होती। यह जैनदर्शन है। बौद्ध अनुयायी कहते हैं कि जो जीव मर जाए तो खा सकते हैं। 'पुरूषार्थ-सिद्धि-उपाय' पढ़ना चाहिए। अहिंसा का विशद् वर्णन जितना 'पुरूषार्थ-सिद्धि-उपाय' में है, अन्यत्र नहीं है। आलू की चिप्स खा रहे हो। मछली सुखा-सुखाकर खा रहे हो। 'समयसार' जैसे महान ग्रंथ को सुन रहे हो। मुख से नहीं खाते, बोतल से पीते हो, वह भी माँस है। इंजेक्शन लग रहा है। कठिन धर्म है। समझो। कठिन समझ कर छोड़ मत देना। त्यागी-व्रती बने रहे, इंजेक्शन लेते रहे, तो व्रत समाप्त। बड़ा वीतराग शासन है। व्यवहार धर्म भी इतना विशाल है, इसे पूरा मत समझ लेना। अभी तो शुरू होता है। 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' के अनुसार मुनि तो दूर, श्रावक को भी पंखा चलाने की अनुमति नहीं है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है 'दंश-मशक' परीषह आ जायें तो भी मौनपूर्वक सामायिक करनी चाहिए। ज्ञानियो! यह रागानुभूति है कि सामायिकानुभूति है? यह नहीं कि कूलर चला लिया और कहने लगे- 'परमानंद स्वरूपोऽहम्।' भगवत् स्वरूपोऽहम्, अर्हत् स्वरूपोऽहम्। और बिजली चली गई तो संक्लेशित हो गए। मायाचारी धर्म में नहीं होना चाहिए। सबको मालूम है, तब भी ऐसा करते हो।

मैं तो इसलिए कह रहा हूँ कि समझ में आए कि हम कौन हैं? जहाँ रागानुभूति है, वहाँ तत्त्वानुभूति को कोई स्थान नहीं है। जहाँ तत्त्वानुभूति है, वहाँ रागानुभूति नहीं है।

यथा-यथा समायति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम।
तथा-तथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि ॥ 37 इष्टोपदेश ॥

जैसे-जैसे तत्त्व की अनुभूति होती है, तो वैसे-वैसे रागानुभूति समाप्त होती जाती है। जैसे-जैसे रागानुभूति समाप्त होती जाती है, वैसे-वैसे तत्त्व की अनुभूति होती जाती है।

गुणभद्र स्वामी ने 'उत्तर पुराण' में 23 तीर्थंकरों का वर्णन किया। सभी तीर्थंकरों को एक शब्द से पुकारा है। भगवान को ज्ञान हो गया। तो कौन-सा ज्ञान? वे तो जन्म से तीन ज्ञान की धारी होते हैं। सत्य ज्ञान यह नहीं है। आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान है। भेदविज्ञान हो जाए, विषयों से अरुचि हो जाए, इसका नाम ज्ञान है।

अन्य जितने परद्रव्य हैं, कैसे हैं? सचित्त, अचित्त, मिश्र। स्त्री-पुत्रादि सचित्त परिग्रह हैं। भवनादि, आभूषणादि अचित्त परिग्रह हैं। आभूषणादि से युक्त स्त्री आदि मिश्र परिग्रह है। तुम्हारा चिंतन कहाँ जा रहा है? या तो सचित्त में, या अचित्त में। सब भटक रहे हैं। मनीषियो! परम स्वरूप की प्राप्ति के लिए कितना निस्पृह होना पड़ेगा। निर्णय तो कर सकते हो कि परम तत्त्व के लिए कितना निस्पृह होना पड़ेगा। निस्पृह होने की आवश्यकता है। नींबू की जरा-सी बूँद दूध को क्षार-क्षार कर देती है। राग का अल्पकण भी वीतरागता को क्षार-क्षार कर देता है। जगत में परमाणु से छोटी वस्तु नहीं है। द्वादशांग को क्यों न कंठस्थ कर लो, लेकिन एक परमाणु प्रमाण भी शरीर से राग हो तो सिद्धि की प्राप्ति संभव नहीं है। घर छूटा, प्रांत छूटा, देश छूटा। अभ्यास करो अभी से।

कर्मों में मोहनीय कर्म, इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, गुप्तियों में मनोगुप्ति, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत दुर्गम हैं। कहता है कि जो उठने-बैठने वाले थे, उन्हें बुला दो। क्यों? उन्हें साथ ले जाओगे क्या?

गुप्तियों में मनोगुप्ति। भागता है मन। रस त्याग करो। त्यागियों से भी कहा जाता है, प्रतिमाधारियों से भी कहा जाता है। मुख से जाता नहीं है और खाना-खाना चिल्लाता है। इच्छित खाने वाला कभी समाधि नहीं कर पायेगा। धन्य हैं, साधु हाथ में आहार लेते हैं, उठाकर नहीं खाते। बैठकर, थाली में खाओगे तो इच्छित ही खाओगे। हूँ, हाँ नहीं, कोई इशारा नहीं। आवश्यक नहीं कि जो चल रहा है, वह इच्छित ही हो।

श्रावक को तय कर रहे हो तो भी दोष है। जिस दिन वह चला गया तो रोओगे। व्रतों में महान

ब्रह्मचर्य व्रत है। इसका पालन करना चाहिए। यह गया तो सब गया। अंक, शून्य है तो सारी साधना शून्य है। ब्रह्मचर्य अंक है। एक शून्य से अंक की कीमत दस गुना बढ़ गई। शील अंक है, शेष सब शून्य है। सचित्त, अचित्त, मिश्र तीन प्रकार का परिग्रह है। पूर्व में यह मेरे थे। घर में बड़ा कहता है कि तुम्हारे हमारे पूर्व के संबंध चल रहे हैं। महाराज! भव-भव में दर्शन मिलते रहें। भव-भव में तुम्हें दर्शन देने हमें आने पड़े तो दोनों संसार में भ्रमण करेंगे। ऐसा कहो- जब-तक भव मिले, आपके दर्शन मिलते रहें। भव में रहूँ तो आपके चरणों में रहूँ, यदि भवातीत हो जाऊँ तो निज में रहूँ। ऐसा मत कह देना कि भव-भव में दर्शन मिलें। कहीं महाराज को राग आ गया तो दोनों भटकेंगे।

भक्ति की भाषा भेदज्ञानपरक होती है। मैं इसका पूर्व में था, ये मेरा था, मैं इसका हूँ, ये मेरा है, मैं इसका होऊँगा, ये मेरा होगा- ऐसा विकल्प करता है जो, वह अमूढ़ प्राणी है। जो सत्यार्थ को, समीचीन तत्त्व को जानता है वह संमूढ़ है।

आज ऐसा चिंतन करना कि मैं संमूढ़ हूँ या कि असंमूढ़ हूँ? अकेले में करना है। त्रैकालिक विकल्प कैसे चल रहे हैं? कोई कहे कि बहुत साधना बाद में कर लेना, शास्त्र पढ़ते समय आँख खोल लिया करो, क्षयोपशम है कि नेत्रज्योति प्राप्त है। ध्यान रखना, संयम के लिए घर छोड़ना पड़ता है, श्रद्धावान् बनने के लिये कुछ नहीं छोड़ना पड़ता। तुम चारित्रवान, ज्ञानवान नहीं बन पाओ जो श्रद्धावान बनकर रहना। इतना भी करने से कल्याण हो सकता है। क्योंकि,

जं सक्कइ तं कीरइ

जब तक शक्ति है, करो शक्ति का उपयोग। शक्ति नहीं है, तो श्रद्धा करो। क्योंकि श्रद्धावान भी कर्मक्षय कर लेता है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय॥

जैन वाङ्मय में अनेकानेक महान आचार्य हुए, जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से श्रुत की आराधना की है। वह श्रुत-आराधना आचार्यभगवान् अकलंक स्वामी की, जोकि अपने आप में जैनदर्शन के लिए अनोखा दृश्य था। जैनदर्शन में कुंदकुंद के अध्यात्म को जीवित रखने का श्रेय आचार्य अकलंक देव, आचार्य समंतभ्रद को है। आप जैसे आचार्य न होते, तो इस अध्यात्म की रक्षा संभव नहीं थी। जिन्होंने अनेकानेक ग्रंथों का सृजन ही नहीं किया, ग्रंथि का निरसन भी किया है। सबसे बड़ी गाँठ मिथ्यात्व है। ज्ञानी! काँटा जितना गहरा चुभे, उसे निकालने के लिए उतना गहरा गड्ढ़ा करना पड़ता है। लगता है कि पैर छीला जा रहा है, यथार्थ में काँटे को निकाल रहा है। मिथ्यात्व जितना गहरा होता है, उसे निकालने में भी उतना ही समय लगता है, कष्ट लगता है।

जीव के विपरीत अभिनिवेश को निकालना असह्य होता है, जिसके माध्यम से मिथ्यात्व फैला है। जीव सम्यक्त्व प्राप्त करके अपने भक्तों को समझाने आए कि मैंने गलत कहा है तो भक्त अपने भगवान् की भी नहीं मानते। विपरीत श्रद्धान जम जाए तो निकालना मुश्किल होता है। ज्ञानी! संसार में अनादि से भ्रमण चारित्र से नहीं, दर्शन के विपर्यास से हो रहा है। जो यहाँ बैठे हैं, जरूरी नहीं कि सबका सम्यक्त्व दृढ़ हो। देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करना मात्र सम्यक्त्व नहीं है। पर में निज का, निज में पर का कर्तृत्व भाव अर्थात् ये मेरा है, मैं इसका हूँ; ये मेरा था, मैं इसका था; ये मेरा होगा, मैं इसका होऊँगा- ऐसी त्रैकालिक ममत्वदृष्टि चल रही है जिसकी वह सम्यक्त्वपने से शून्य है। ध्यान रखो- घर छोड़ना, वस्त्र उतारना सरल है, परन्तु मिथ्यात्व को निकालना बहुत कठिन है। मस्तिष्क में अनेकानेक शास्त्रों का ज्ञान रखना सरल है परन्तु तत्त्व के प्रति सही श्रद्धान रखना कठिन है। पर्याय के राग में परिणामों को विकृत मत करना। सम्मान आपका नहीं हो रहा, आपने श्रुत की सेवा की है, इसका समान है। अन्यथा आप जैसे बहुत हैं। शास्त्र एक अलमारी में विराजमान हों तो उस तरफ चेहरा करके पाय पड़ ेलेते हो। क्यों? जिनवाणी है।

जिन आत्माओं ने जिनवाणी को आत्मा में विराजमान किया है इसलिए उनका सम्मान करते हो। आप मस्तक पर अरिहंत का बिम्ब लेकर निकलते हो तो महाराज भी नमस्कार करते हैं, तो यह तेरा नहीं, बिम्ब का सम्मान है। पर्याय का, परिणामों का सम्मान नहीं, परिणामों में जो महावीर की वाणी

विराजमान है, उसका सम्मान है। मुमुक्षु! जब द्रव्यश्रुत की इतनी महिमा है, तब जिस दिन भावश्रुत आत्मा में आ जायेगा तो मैं भी नमोस्तु करूँगा पिच्छि से। भावश्रुत कब आयेगा? जब दिगम्बरी दीक्षा धारण करोगे। मोक्षमार्गी को बहुत अधिक ग्रंथों की आवश्यकता नहीं है। मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने वालों के लिए बहुत ग्रंथों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शिवभूति को कितना ज्ञान था? 12 वर्ष व्यतीत हो गए, फिर भी णमोकार याद नहीं हुआ। वह शिष्य कैसा होगा? गुरु चरणों में पहुँचता है- 'गुरुदेव! क्या करूँ? याद नहीं हो रहा।' इस प्रज्ञा का, क्षयोपशम का दुरुपयोग मत करना। ज्ञानी! यदि आपके घर में चुल्लु भर पानी हो तो कितने जतन से प्रयोग करते हो।

जितना प्राप्त है, प्रज्ञा से प्रज्ञा को बढ़ाना तो, लेकिन प्रज्ञा से प्रज्ञा पर, प्रज्ञा का दुष्प्रहार मत करना। तू पुण्य-पाप प्रज्ञा से करता है, पुण्य-पाप का क्षय भी प्रज्ञा से करता है। अपनी डायरी से एक शब्द निकाल देना कि 'दोष किया तो, अज्ञानता में किया है।' यह पुरानी परम्परा है। दोष अज्ञानता में होता ही नहीं है। ज्ञानी! तू राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त है। ऐसा दिन देखा जब ईमानदारी से नौकरी पर नहीं गया था। शासन का काम करना चाहिए था। ऐसे विद्वान हुए कि घर के काम के लिए घर का दीप और सरकारी काम के लिए सरकारी दीप। उस ज्ञानी से पूछो-तीन वर्ष के बेटे का टिकिट लिया। किसको पता था कि तीन वर्ष का है। हृदय से मिलना, जो-जो दोष किए अज्ञानता में नहीं, ज्ञान से किए हैं। जानकर किए हैं। जानकर दोष करने वाले को भी अज्ञानी कहा जाता है, परंतु अज्ञानी होता नहीं है। क्यों? चार के चालीस अज्ञानता में करते हो क्या? इतने बड़े अज्ञानी हो तो बुद्धि बन कैसे गई की चार के चालीस कर लो? जितना बड़ा व्यापारी होगा, जितना विशाल व्यापार होगा, उतना बड़ा अज्ञानी होगा क्या? दोष/पाप भी ज्ञान में किए हैं। निज दोष छुपाने की कितनी बड़ी विद्या आपके पास है। स्वयं का अज्ञानी कहकर बच गया। सुधरने के मौके ही नहीं हैं। क्यों? प्रतिष्ठाचार्य से पूछो, मूहूर्त नहीं था, परन्तु समाज चाह रही थी कि प्रतिष्ठा हो जाए, तो बिना मूहूर्त के मूहूर्त निकाल दिया, क्योंकि स्वार्थ था। पोथी को ज्ञान से पलटा, कि अज्ञान से? आप दोष को दोष नहीं मान रहे थे यह ज्ञान था, कि नहीं? ज्ञानी! तूने किसी बालक की पेंसिल उठा ली। जानकर की, या अज्ञानता में की? फिर चुराकर छुपाई क्यों? कितना ज्ञान का प्रयोग किया- उठाई, फिर छुपाया। दूसरा पक्ष है- यह जो कुछ किया, ज्ञान में किया है। इस ज्ञानी को जब काम निकालना होता है तो येन-केन-प्रकारेण काम निकाल लेता है। कुंदकुंद स्वामी, समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं- जिसे अकुशल कह रहा है, बिना कुशलता काम कर नहीं सकता। ज्ञानी! आप लोग हमारी बात सुनकर घबरा नहीं रहे, तो कहने का क्या फायदा? देवागम स्तोत्र में आचार्य समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं। एक वकील हिंसक व्यक्ति को बचाकर अहिंसक को फँसाकर अपने को कुशल कहता है। सत्यता तब समझ में आती है। धर्म के नाम पर पंचायत हो तो सत्य को असत्य कहे

तो आप-जैसे ने सत्य को नहीं, असत्य को स्वीकार किया गया? इस मंच पर आकर असत्य क्या सत्य हो जाता है? नहीं होता न? महाराज! लोकाचार/लोकव्यवहार में, धार्मिक क्षेत्र में असत्य को सत्य कहा है। लोक में पापी को सत्य कहलवा सकते हो, लेकिन वह सत्य नहीं है। जो अपने-आप को कुशल कह रहा था, यह कुशलता प्रज्ञा की नहीं, पुण्य की थी। प्रज्ञावान लाखों पर फँस जाते हैं। कुशल कह रहा था- परद्रव्य को निजद्रव्य से सिद्ध कर लिया। सबके बीच कह रहा था कि मैं कुशल हूँ, पाण्डित्य युक्त हूँ। अभी कहा था कि पाप को ज्ञान से ज्ञानी कर रहा है, लेकिन पाप करनेवाला ज्ञानी होता नहीं।

कुशलाकुशलः कर्मः

'देवागम स्तोत्र' में आचार्य समन्तभद्र स्वामी महावीर स्वामी से कह रहे हैं। विद्वानो! चर्चा आपके बीच में है। मैं शब्दों से आपका सम्मान कर सकता था, लेकिन यह जो मैं कह रहा हूँ, उसे सम्मान समझना। भविष्य में कभी गद्दी पर बैठना तो याद करना। जो अपने आप में कह रहा था, कि मैं कुशल हूँ, कुशलता में आकर छल-कपट किया, वह भी तीर्थंकर की वाणी में छल-कपट किया। किसी पुरुष से, नारी से, नपुंसक से छल करना समझ में आता है, परन्तु तूने भगवान की वाणी से छल किया। उस ज्ञानी से कहना कि कोई शनि, मंगल, बुध ग्रह की आराधना काम नहीं आयेगी। अमुक-अमुक ग्रह पर अमुक-अमुक तीर्थंकर विराजमान करवा दिए। ग्रह त्रैकालिक हैं, तीर्थंकर त्रैकालिक नहीं है। तीर्थंकर-परम्परा त्रैकालिक है, मुनिसुव्रतनाथ त्रैकालिक नहीं हैं। त्रैकालिक ग्रहों से त्रैकालिक कष्ट निवारक नवग्रह पूजा कौन-से जिनागम में है?

लोग जगत में भटक रहे हैं, इसलिए यह दूसरी भटकन शुरू न करें। कोई परिग्रह की ओर दौड़ रहा है, कोई ग्रहशांति की ओर दौड़ रहा है; परन्तु जो प्रबल मिथ्यात्व-ग्रह लगा है, उस पर दृष्टि नहीं है। ग्रह, कर्म, विधि, ब्रह्मा, कृतांत, यम- ये सब कर्म के पर्यायवाची हैं। जिस ग्रह की चर्चा विद्वानों के बीच होनी चाहिए, उस पर दृष्टि करो। आचार्य समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं, शनिग्रह के लिए लोग जगत में भटक रहे होंगे। कहते हैं कि दरिद्रों को शनि ग्रह लगता है। यदि त्यागियों को लग जाए तो श्रेष्ठ आराधना होगी। मेरी मानो, शनि ग्रह लगे हैं तो मुनि बन जाना उतरना ही तो है। ध्यान दो, गृहस्थों को तो शनि ग्रह लगता है, विद्वानों को सबसे जटिल ग्रह लगता है। विद्वान् यानि आचार्य, उपाध्याय, विद्वान् आदि सब। इनका ग्रह उतर जाए तो सम्पूर्ण समाज का ग्रह उतर जाए। विद्वानों को ग्रह लगने के कारण समाज से टुकड़े हो गए। विद्वान् शब्द विशाल है। त्यागी, गृहस्थ सब आते हैं। प्रश्न हमसे नहीं, समन्तभद्र स्वामी से करो, उन्होंने सबको लपेट लिया।

जिनको लगे, उनकी बात है।

हे प्रभु! न शनि ग्रह होता है, न रवि ग्रह होता है, न ही मंगल, बुध ग्रह होता है। विद्वानों के मस्तिष्क में कोई ग्रह लगता है, तो वह है एकांत का ग्रह। उससे बड़ा ग्रह नहीं। उनसे हाथ उठाकर कहना, यह स्व-पर के बैरी बैठे हैं। जो कहता है कि निश्चय मात्र ही मोक्षमार्ग है, या जो कहता है कि व्यवहार की मोक्षमार्ग है, वह स्व-पर का बैरी है। जो स्वयं ही मोक्षमार्ग से च्युत है और सबको च्युत कर रहा है, वह कुशल कैसे? उसे कुशल नहीं कह पायेंगे। तत्त्व का विपर्यास करोगे तो पापास्रव होगा, कि पुण्यास्रव? मोक्षमार्ग बनेगा, कि समाप्त होगा? यह तेरी अकुशल क्रिया थी। कितने भी छुपकर, माया-धर्म करके, सत्यार्थ धर्म को विपरीत कहना चाहो तो जिनवाणी कहेगी कि विपर्यास मत करो। कोई घृत को दही कहना प्रारंभ कर दे तो वह संज्ञा तो बदल सकता है, परन्तु संज्ञान नहीं बदल सकता। तुझे स्वयं मालूम है, कि मैं संज्ञा दे रहा हूँ। घृत तो घृत है। मिथ्यादृष्टि को भी मालूम है कि मैं मिथ्यादृष्टि हूँ। यह भी सत्य है। मिथ्यात्व सत्य है, कि नहीं? मिथ्यात्व की सत्ता है, कि नहीं? मिथ्यात्व, सत्य नहीं होता तो खण्डन किसका करता? सम्यक् सत्य है, मिथ्यात्व भी सत्य है। एक सत्ता रूप सत्य है, एक सत्ताऽसत्ता रूप सत्य है।

अब सुरेश के बारे में कुछ कहता हूँ तो पहले उसकी सत्ता स्वीकार करना पड़ेगी। किसी की सत्ता स्वीकार किये बिना सत्यार्थ भाषण नहीं होता। मिथ्यात्व भी सत्य है। असत्य क्यों? क्योंकि असत्य है। जहर स्वीकारोगे नहीं कि जहर है, तो बचोगे कैसे? विष, विष है- यह सत्य है, विष आपके लिए मारक है, यह भी सत्य है। विष, विष ही है कि विष अमृत भी हो सकता है? उद्देश्य दूसरा है। यदि विष को विष ही कहते रहे तो फँस जाओगे। विष, विष ही है तो विष को फेंक देना चाहिए न? नहीं। तो क्या मुख में रख लेना चाहिए? मुट्ठी का जहर मृत्यु का कारण नहीं है। विष मुख में रखने से मृत्यु होती है। यह समझ में आ गया, तो समाज की एकता, तत्त्व की अखण्डता अभी समझ में आती है। विष को रखना चाहिए कि फेंकना चाहिए। विष तो विष है। कुचला/संखिया शुद्ध जहर है। तो तू दुकान पर रखता है, कि नहीं? इतना ही कहना है। मैंने कुचला का शोधन करते देखा है, आँखों से।

'प्रमेय रत्नमाला' में कहा है कि एक अशक्य अनुष्ठान भी होता है। एक कुष्ठ रोगी किसी वैद्य के पास गया। गलित कुष्ठ की भी औषधि है, पर कैसे हो? वैद्य समझदार था, कहता है रोगी से कि भाग जा। पर वैद्य, जिस दिन वह रोगी आया था उस दिन की तारीख नोटकर पर्चे पर कुछ लिख लेता है। रोगी इतना पीड़ित था कि जाते-जाते श्मशान घाट चला गया। तभी तीक्ष्ण बारिश हो रही थी। एक नर-कपाल में बारिश का पानी इकट्ठा हो गया। तभी एक कालिया नाग वहाँ से गुजरा और नर-कपाल का पानी पिया, साथ में जहर छोड़ दिया। वह कुष्ठ पीड़ित सोचता है, कि मुझे तो मरना ही है। अच्छा है अलग से जहर नहीं खरीदना पड़ेगा। खोपड़ी को उठाकर विष पी लिया और पीते ही सारा कुष्ठ

समाप्त हो गया। सबसे पहले वैद्य के पास पहुँचता है- वैद्य! देखो मेरा शरीर। तूने तो कहा था कि कोई दवाई नहीं है। वैद्य कहता है- देख पर्चा, मैंने दवाई लिखी थी, कि मनुष्य की खोपड़ी में बारिश का पानी हो, उसमें कालिया नाग का जहर मिला हो, उसे पीने से कुष्ठ ठीक होगा। पूछता है- तूने क्या पिया? यही पिया है। ऐसा भी होता है। गहरी बात है।

संखिया/कुचला रखा हो तो, कहेगा कि हाथ मत लगाना, जहर है। जिसमें जहर था, उस कुचला का ही शोधन किया जाए तो जो मारने का कारण था, वो जीने का कारण होता है कि नहीं? घोर मिथ्यादृष्टि जीव को देखकर ग्लानि मत करना। एकांत से दूषित भी हो तो दूर मत भगाना, पास बिठाना। कुचला से अमृत बनाया जा सकता है तो वैसे-ही मिथ्यादृष्टि ही सम्यग्दृष्टि भगवान बनते हैं। कच्चा माल पक्का होता है, कि पक्का माल पक्का होता है? खेतों में हल-बखर चलता है कि नहीं? वह ढीला हो जाए तो क्या करते हो? पच्चर साथ रखते हो, जहाँ जरूरत पड़ जाए ठीक दो। बुजुर्गों को हमेशा साथ लेकर चलना, जहाँ जरूरत पड़ जाए, उपयोग लेना। यह याद रखना। न्यायशास्त्र कहता है कि सिद्ध को सिद्ध नहीं करना पड़ता, असिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है।

इष्ट , अबाधित , असिद्ध

जो सम्यग्दृष्टि है वह तो सम्यग्दृष्टि ही है। जो अनेकांत में है, वह अनेकांतमय है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्मइन्द्र एकांतदृष्टि इंद्रभूति गौतम को बुलाने गया था। मानस्तंभ देखकर गौतम का मान गलित हो गया। पढ़ाने गया था, शिष्य बन गया। ध्यान रखना, कभी भी किसी भी जीव को, एकांती हो अथवा अनेकांती हो, दुत्कारना नहीं, पुचकारना। बगल में बिठाना, फिर सुनाना। सुनेगा तो गुनेगा भी। ऊपर से कहेगा कि आपकी नहीं मानता, परन्तु मानता है, तभी तो कह रहा है कि नहीं मानता। जो शिविर में पढ़ाने गए थे, अथवा कोई जीव एक दिन शिविर देख भी गया होगा, वह कदाचित नारकियों के शिविर में पढ़ाने गए थे, अथवा कोई जीव एक दिन शिविर देख भी गया होगा, वह कदाचित नारकियों के शिविर में भर्ती हो जाए, तो आपके शिविर की याद आयेगी। कई लोग कहते हैं- महाराज! आप कठिन-कठिन ग्रंथ सामान्य श्रावकों के बीच में क्यों पढ़ते हो? अरे ज्ञानी! जो समयसारभूत हैं, वे तो हैं ही, जो समयसारभूत नहीं हैं वे भी तो बनेंगे। एक शब्द भी कान में चला गया और जीव नरक में गया और पिटाई शुरू हुई, तो याद आयेगा कि शिवपुरी में पढ़ा था-

'आत्मस्वभावं परभावं भिन्नम्'

यह भूल गया था, इसलिए यहाँ पड़ा हूँ। यहाँ से निकलूँगा तो यही पढूँगा। जगत में फँसने से पहले मुनि बनूँगा। जिनवाणी कभी व्यर्थ नहीं जाती। समाज तुम्हारा सम्मान इसलिए नहीं कर रही कि पुद्गल

से राग है। समयसार कह रहा है- हे पुत्रो! तुम राध (आराधना) लेकर जाओ। विद्वानों से कह देना। ज्ञानी! तू अपनी माँ का चित्र जड़वाने गया, चित्र बड़ा था, फ्रेम छोटा था, शिल्पकार पूछता है, इस चित्र को थोड़ा छाँट दूँ? क्या बोलोगे? हो सके तो तुम अपना फ्रेम बड़ा कर लो, परन्तु मेरी माँ का फोटो मत छाँटो। ज्ञानियो! अपने फ्रेम को बड़ा करना, माँ जिनवाणी की काँट-छाँट मत करना। मेरी माँ की पुकार है- अपने क्षयोपशम के फ्रेम को बड़ा कर लेना, प्रज्ञा बढ़ाना, परन्तु जिनवाणी के साथ विपर्यास मत करना। विद्वानो! यहाँ सब आपकी प्रशंसा करने आए हैं, समझाने कोई नहीं आया। दूसरा तुमको डाँटे, तो अच्छा नहीं लगता, हमने डाँटकर भेजा था तो मुस्कुराते हुए आए कि नहीं? जीव तीन दृष्टियों में जी रहा है। कैसे?

मैं इसका हूँ, यह मेरा है।

मैं इसका था, यह मेरा था।

मैं इसका होऊँगा, यह मेरा होगा।

यह लोक त्रैकालिक राग की दशा को प्राप्त है। जिस तन में विराजा है वह तेरे साथ नहीं जायेगा। तो पर के राग में निज को क्यों खो रहा है? समयसार कुछ नहीं सिखाता, बस इतना ही सिखाता है कि जो सीख चुके हो उसे भूल जाओ। अनादि से जो सीखा है, उसे भूल जाओ। इसका नाम है समयसार। पुराना नहीं भूल रहे हो, तब-तक समयसार नहीं आ सकता, पण्डित जी! विश्वास रखना। मुमुक्षु! अनेक भाषाएँ, अनेक विद्याएँ सीखना सरल हैं, परन्तु सबसे कठिन है कि जो अनादि से सीख रखा है, वह भूल जाऊँ। मैं मुनि सीखने के लिये नहीं बना। जो जगत की विद्याएँ सीख रखी हैं, हे प्रभु! वे भूल जाऊँ। तभी वह मिलेगी, जिसका नाम आत्मविद्या है। जगत की विद्याओं को सीखने से विद्वान तो बन सकते है, पर ज्ञानी नहीं बन सकता।

विद्वान् सौपाधिक दशा है। वे ज्ञानी स्वयं को पण्डित क्यों नहीं कहलवाना चाहते? रहस्य है पण्डित सौपाधिक दशा है जबकि ज्ञानी निरूपाधिक दशा है। पण्डित बना जाता है, ज्ञानी होता ही है। ज्ञानी होना अंदर की बात है।

आँखों से अग्नि को देखा ईंधन को देखा। अज्ञानी कहता है कि ईंधन जल रहा है। अग्नि ईंधन है, ईंधन अग्नि है। अग्नि ईंधर था, ईंधन अग्नि थी। अग्नि ईंधन होगी, ईंधन अग्नि होगा। अग्नि ईंधन है, कि ईंधन अग्नि है? अज्ञानी यही कहता है कि अग्नि ईंधन है, ईंधन ही अग्नि है। ईंधन अग्नि होती तो त्रैकालिक जलता ही नहीं क्यों? ईंधन, ईंधन है। अग्नि, अग्नि है। ईंधन में अग्नि लगी अवश्य है, फिर भी ईंधन अग्नि नहीं है।

आत्मा रागी है, राग आत्मा में है। ध्रुव सत्य यह है कि आत्मा तो आत्मा है। राग, राग है। आत्मा राग होती तो सिद्धों को राग होना चाहिए। आत्मा में राग अवश्य है, परन्तु आत्मा राग-स्वभावी नहीं है। सत्यता यह है कि बहुत-सा राग माता-पिता ने सौंपा है। कितना राग हो गया दादाजी कहता ही। जिस दिन तेरा जन्म हुआ था, उस दिन तू दादा था कि सुमतिप्रकाश था कि जीव था? जन्म के दिन सत्य था, एक घंटे बाद असत्य हो गया। लड़के ने जन्म लिया, उसके एक दिन पहले भी नहीं जानता था, परन्तु जब नाम रख दिया तो उस नाम में ऐसा तन्मय हो गया कि कोई नाम ले ले तो खुश हो जाता है। ज्ञानी! तू त्रैकालिक सुमतिप्रकाश नहीं है। यही तपस्या है- नाम के परिग्रह का भी त्याग कर दो, उसी दिन तुम सच्चे मुनि महाराज बन जाओगे। नाम का परिग्रह रहेगा, तो मोक्ष नहीं होगा। स्त्री, पुत्र आदि परिग्रह, नाम के परिग्रह के कारण ही हैं। जिस खाने को कमाकर घर में ले जा रहा है, वह खाने को भी नहीं मिलता, तो ले क्यों जा रहा है? निज तन के लिए कुछ नही करता, पर-तनों के लिए तनतना जा रहा है। प्रार्थना कर लेना- हे शांतिनाथ प्रभु! पूज्यवाद स्वामी की तो गई ज्योति आ गई थी, मेरी ज्ञान की ज्योति आ जाए। सर्वांग से जिनधर्म की प्रभावना करूँ, श्रुत की आराधना करूँ, श्रुतकेवली बनूँ।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्य-भगवान् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज 'समयसार' जी में प्रतिबुद्ध और अप्रतिबुद्ध की चर्चा की है। जो जीव परद्रव्यों में आत्मबुद्धि रखता है, वह अप्रतिबुद्ध है। जो परद्रव्यों से आत्मद्रव्य को भिन्न देखता है, वह प्रतिबुद्ध है। यथार्थ मानकर चलना, अंतरंग की निर्मलता बहिरंग के माध्यम से जानी जाती है। यदि आम मीठा है, पका है, तो वर्ण भी पीला होगा, सुगंध भी मधुर होगी। आम्र फल के पके-पन को देखकर उसके मीठेपन का ज्ञान उसके पीले रंग से होता है। अंतरंग परिणति निर्मल हो और बहिरंग परिणति निर्मल न हो, ऐसा हो नहीं सकता। बहिरंग परिणति भी नियम से निर्मल होगी। ऐसा नहीं मानोगे तो क्या वस्त्र धारण किए-किए मोक्ष हो जाएगा? ऐसा कहोगे कि बहिरंग से क्या करना, अंतरंग विशुद्ध करो, परंतु अंतरंग तेरा विशुद्ध है, यह मैं जानूँ कैसे? तू नाना प्रकार से परिग्रह में लिप्त है, तो कैसे कहूँ कि तू विशुद्ध है? इस सत्र से जैनधर्म के दिगम्बरत्व का नाश हो जाएगा कि जब अतंरंग विशुद्ध है तो बहिरंग का क्या करना है। चारों अनुयोगों में अनेकांत सूत्र लगेगा।

'सिद्धिरनेकान्तात्' ।।1।1।1 **जै. व्या.**।।

यह गंभीर विषय है। भूमिका समझ नहीं आयेगी तो समझ नहीं पाओगे। तत्त्व कहने वाले, सुनने वाले और तत्त्व जानने वाले बिरले हैं, लेकिन तत्त्व पर चलने वाले उससे भी कम हैं।

विरला णिसुणहि तच्चं, विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।
विरला भावहिं तच्चं, विरलाणं धारणा होदि।। 279 का.अनु.।।

आचार्य कार्तिकेय स्वामी 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कह रहे हैं कि पर की निंदा सुनने वाले करोड़ों हैं। गाने बजाने सुनने वाले करोड़ों मिल जायेंगे। रेडियो पर तत्त्वचर्चा कितनी होती हैं और मनोरंजन की बातें कितनी होती है? वही होता है जिसको लोग जानना चाहते हैं। 'वैराग्यमणिमाला' में कितने लोग आते हैं और 'समयसार' में कितने आते हैं? 'समयसार' में भी वही तत्त्व है, जो 'वैराग्यमणिमाला' में है। एक सामान्य भाषा है, एक सिद्धांत है। शुद्ध तत्त्व सुननेवाले जीव जगत में बिरले हैं। वे भी बहुत मिल जायेंगे, परन्तु सुनानेवाले कम मिलेंगे। तत्त्व को जाननेवाले उससे भी बिरले हैं। और उस तत्त्व को माननेवाले उससे भी कम हैं। और तत्त्व की धारणा बनानेवाले न्यून हैं। अर्थात् अंगुली पर गिनने लायक हैं। अहो ज्ञानी! तत्त्व को धारण करनेवाले दुर्लभ हैं। परन्तु तत्त्व का जब विपर्यास हो जाता है, तब लगता है कि समझो ध्यान से। 'अंतरंग शुद्ध है' कह रहा है कि मुझे बहिरंग से प्रयोजन नहीं है, अंतरंग से

प्रयोजन है। ज्ञानी! अंतरंग से प्रयोजन अवश्य है, परन्तु वह तभी दिखेगा, जब बहिरंग निर्मल होगा। बहिरंग निर्मल होगा। बहिरंग में नट-खट है। नट देखता है।

टी.वी. के सामने बैठा है और कहे अंतरंग विशुद्ध है। इन खोखली चर्चाओं से भोली आत्माओं को छलने का जाल मत फैलाओ। समुद्र में जाल डाला जाता है, खाना डाला जाता है, हे मछलियों! लगता अवश्य है कि खाने दे रहा है, लेकिन वह तुम्हें खाने वाला है। हौले-हौले धीरे-धीरे जाल फैलाता है, काँटों में आटा लगाता है, मछलियाँ समझ नहीं पाती। जो जीव भोली भाषी में जगत को तत्त्व का गलत उपदेश देता है, वह उस मछलीमारक के समान है जो जाल फैलाता है। मछली की तो पर्याय जा रही है। तत्त्व का विपरीत जाल फैला रहा है तो श्रद्धा का घात हो रहा है। महावीर से पूछो, एक बार के विपरीत श्रद्धान से कितने वर्ष भटक गए? अल्पज्ञानी होना कोई दोष नहीं है, पर विपरीत ज्ञानी होना महादोष है। मोहरहित अल्पज्ञान भी मोक्ष का कारण है, पर मोहसहित अतिज्ञान भी मोक्ष का कारण नहीं है। शिवभूति महाराज को णमोकार भी नहीं आता था। 12 वर्ष व्यतीत हो गए। गुरु के पास पहुँचे, हे स्वामी क्या करूँ? गुरु ने कहा, इतना सीख लो, 'तुषमास भिन्नं'। वह भी भूल गए। आहार को जा रहे थे, रास्ते में एक माँ दाल धो रही थी। याद आ गया। अब नहीं जाना आहार करने। आँख बंद करके बैठ गए शिला पर।

तुषमास घोषंतो

तुषमास का घोस करते हुए, अंतरंग में भाव इतना शुद्ध था कि अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य हो गया। आचार्यभगवान् वहीं रह गए, शिष्य की गंधकुटी लग गई। भावों की शुद्धि होगी तो नियम से द्रव्यशुद्धि होगी। यदि इससे विपरीत है, तो दिगम्बर आम्नाय से शून्य है, जो मात्र अंतरंग की शुद्धि से मोक्ष मानता है। क्या यह संभव है कि अंतरंग निर्मल हो और बहिरंग परिणति शुद्ध न हो? तीर्थंकरप्रकृति का बंधक जीव अत्यन्त विशुद्ध होता है। जिनके दो-दो कल्याणक मन चुके हों जन्म से तीन ज्ञान का धारी हो, वह जीव अंतरंग की शुद्धि के लिए बहिरंग तप कर रहे हैं।

ध्रुव सिद्धि तित्थयरो.......

ऐसे जिनकी ध्रुव सिद्धि है, वे तीर्थंकर भी तप करते हैं। तपकल्याणक मनाते कि नहीं आप? तीर्थंकर भी जब-तक दीक्षा नहीं लेते, तब-तक चौथा (मनः पर्यय) ज्ञान प्रकट नहीं होता। दीक्षा लेते ही मनः पर्यय-ज्ञान प्रकट हो जाता है। तीन ज्ञान तो असंयमियों को भी होते हैं। चारों गतियों में तीन ज्ञान होते हैं। मनःपर्ययज्ञान मनुष्यों मात्र को होता है। वह भी सामान्य मनुष्यों, देशव्रतियों को। महाव्रतियों को नहीं होता। जो महाव्रती परम शुद्ध, 7 ऋद्धियों में से, किसी ऋद्धि से युक्त हों, उनके ही मनः

पर्ययज्ञान प्रकट होता है। दुर्भाग्य है, आज लोगों के छल-कपट चल जाते हैं। वे मनः पर्यय-ज्ञानी चिंतित, अचिंतित, अर्द्धचिंतित सब बता देते हैं। किसी की मायाचारी नहीं चलती। यही नहीं कि सामने बैठा हो। विपुलमति मनः-पर्यय-ज्ञानी असंख्यात क्षेत्र तक का बता सकते हैं। वे योगी मानुषोत्तर पर्वत के पास में बैठे हों तो शिवपुरी में बैठे व्यक्ति के मन की बात सकते हैं।

वीतराग शासन में अंतरंग और बहिरंग विशुद्धि की आवश्यकता है, तब कहीं परमात्म-पद की सिद्धि होगी। बहिरंग में अशुद्धि है, तो नियम से अंतरंग में अशुद्धि है। अब प्रश्न है प्यास लगती है इसलिए पानी पीते हैं, कि पानी पीते हो इसलिए प्यास लगती है? प्यास तन को लगती है, कि मन को प्यास लगती है? प्यास राग को लगती है। राग-परिणति तन की है, कि चेतन की है? राग-दशा जीव की है, कि शरीर की है? हे जीव! तेरे पास दो दशायें हैं। एक स्वभाव दशा, एक विभाव हुआ। 6 द्रव्यों में मात्र दो द्रव्य ऐसे हैं जो द्वैतभाव से चलते हैं। चार द्रव्य अद्वैतभाव में रहते हैं। जीव और पुद्गल स्वभाव और विभाव को प्राप्त होते हैं। पुद्गल द्रव्य ऐसा है जो स्वभाव को प्राप्त होता है, फिर विभाव को प्राप्त होता है, फिर स्वभाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार होता रहता है। एक बार शुद्ध हुआ पुद्गल पुनः अशुद्ध हो जाता है। परन्तु यदि जीव एक बार शुद्ध हुआ, तो फिर अशुद्ध नहीं होता। जीव की विभाव-दशा राग-दशा है। यह राग-दशा पौद्गलिक नहीं है, परंतु समयसार में पौद्गलिक कहेंगे। जिस दृष्टि से राग-भाव पौद्गलिक हैं, उसी दृष्टि से पौद्गलिक भाव भी जीव भाव है। कर्म/ नोकर्म भी चेतन-स्वभावी हैं। जीवद्रव्य भी अचेतन-स्वभावी है उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय से कर्म-नोकर्म भी जीव-स्वभावी हैं। तुझे देखकर बुलाते हैं क्या कि जीवद्रव्य! यहाँ आओ। अर्चित! यहाँ आओ? नहीं।

तेरे नाम में जीव का उपचार है, इस प्रकार कर्म-नोकर्म भी जीवनस्वभावी हैं। रागभाव चेतन का विभाव भाव है। पुद्गल का विभाव नहीं है। पानी पीता है इसलिए प्यास लगती है, कि प्यास लगती है इसलिए पानी पीता है? यदि दोनों सही नहीं, तो आज से क्या पानी, खाना बंद कर देगा। जब-तक उभय पक्ष सामने नहीं लाओगे, तब-तक सत्यपक्ष सामने नहीं आयेगा। आत्मा अनशन-स्वभावी है। यह स्वभाव है। विभाव में असन है। अन्यथा सबकुछ खायेगा और कहेगा 'अनशनस्वरूपोऽहम्'।

अनशन आत्मा का त्रैकालिक स्वभाव है। विभाव में आकर सेवन कर रहा है। जैसे रागी जीव भोजन-पानी करते दिख रहा है। मुनिराज आशीर्वाद भी देते हैं तो राग दशा है। तो फिर खायें, तो वीतराग कैसे?

जब आशीष माँगना भी राग है तो जो असन माँगे, वह वीतराग कैसा? जहाँ असन-वसन की प्रवृत्ति हुई, वहाँ नियम से रागदृष्टि होगी। जहाँ रागदृष्टि का अभाव है, वहाँ अप्रमत्त दशा होगी। 7 वें गुणस्थान में आहार संज्ञा नहीं होती। वहाँ असन नहीं होता, वसन भी नहीं होता। यह अप्रमत्त दशा है। यही ज्ञानी

की दिशा है। यही ज्ञानी की दशा है। 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी ने छठवें गुणस्थान तक 'ज्ञानी' नहीं कहा। ज्ञानी शब्द अप्रमत्त गुणस्थान से प्रारंभ किया है। कुन्द-कुन्द स्वामी 'ज्ञानी' संज्ञा त्रिगुप्तिधारी को दे रहे हैं। पं. दौलतराम जी ने भी 'ज्ञानी' संज्ञा त्रिगुप्तिधारी को दी है।

'ज्ञानी के छिन मांही, त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते।'

जिन कर्मों की क्षपणा अज्ञानी हजार वर्षों में करता है, ज्ञानी श्वास मात्र में कर लेता है। लक्ष्य पर ध्यान दो। यह मत सोचना कि क्या आचार्य महाराज अंतरंग/बहिरंग पर उलझाना चाहते हैं। बहिरंग नहीं, अंतरंग की शुद्धि पर ही जोर है। बहिरंग शुद्धि बिना अंतरंग-शुद्धि होती नहीं। यदि यह छोड़ देंगे तो वीतराग शासन समाप्त हो जायेगा। फिर यहाँ जो सब विराजे हैं, सब दिगम्बर कहलाने लग जायेंगे। अंतरंग शुद्धि तभी होगी, जब बहिरंग शुद्धि होंगी। यदि बहिरंग शुद्धि पर ध्यान नहीं दिया तो बच्चे से यह नहीं कह पाओगे कि आलू मत खाओ। यही नहीं, सफेद गोल-गोल मत लाओ, बोतल मत लाओ। घर में माँस के टुकड़े आना प्रारंभ हो जायेंगे। क्यों? अंतरंग शुद्ध है।

अहिंसा का आचार्यों ने इतना विशद् वर्णन क्यों किया? द्रव्यअहिंसा पले नहीं, और यूँ कहे कि भाव-अहिंसा है, तो यह कभी संभव नहीं। 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' ग्रंथ का वाचन प्रत्येक जिनालय में होना चाहिए। खासकर युवाओं को इसका अध्ययन करना चाहिए। तात्त्विक चरणानुयोग-संबंधी वर्णन है पुरूषार्थ-सिद्धि-उपाय में। इतना एक कह दिया कि यदि दान नहीं देता, तो हिंसक है। हर बात में अहिंसा का कथन किया। तू कहता है कि मेरा द्रव्य है, क्यों दूँ? तेरा होता तो मेरा-मेरा नहीं करता। मेरा मेरे अंदर है कि नहीं? मेरा और मैं में अंतर हे कि नहीं? मेरा मैं होता ही नहीं है। मैं, मैं ही होता है। मैं में मेरापन नहीं लगता। मेरापन संबंधकारक है। संबंधकारक भिन्न में लगता है, अभिन्न में नहीं लगता। मैं अभिन्न हूँ। डॉक्टर कहता है कि मेरे पैसे हैं, क्यों दूँ? ज्ञानी! तेरा था ही नहीं। मेरा अर्थात् मैं नहीं, पहला प्रश्न है। एक किसान भी भेदविज्ञान जानता है। तेरी क्लीनिक पर कोई आदमी आया, वह क्या कहता हे, 'मैं' में बुखार चढ़ा है कि मेरे शरीर में बुखार चढ़ा है? किसान भी कहता है कि मेरा शरीर तप रहा है। मैं में कोई रोग नहीं है, मेरे शरीर में बुखार है। मतलब मैं भिन्न हूँ, शरीर भिन्न है। 'मैं' मैं हूँ। 'मैं' मेरा नहीं है। जो मेरा है, वह 'मैं' नहीं हूँ। अज्ञानीजीव मेरे में 'मैं' खोज रहे हैं। यही मैं-मैं का कारण है, बकरी। डॉक्टर कहता है मेरा पैसा। तू हिंसक क्यों बन रहा हूँ? धन पर-द्रव्य था, उस पर-द्रव्य को तूने, 'मैं' कहा। सबसे पहले तो तू व्यभिचारी हो गया। क्यों? पर को निज माने, वह ही तो व्यभिचारी है। हिंसक कैसे? दान क्यों नहीं किया? कहता है क्रियाकाण्ड नहीं करता। अरे! सीधे-सीधे कहो कि लोभ-कषाय बैठी है। जो कषाय जोंक की तरह है। जो आत्मा को हने आत्मा से, वह ही कषाय है। तूने लोभ किया, तो तू हिंसक है। कुछ कहना नहीं, कुछ कहा तो हिंसक है, क्योंकि बिना

राग शब्द भी प्रकट नहीं होते। जितने छदमस्थ सरागी हैं, वे सब हिंसक हैं कथंचित्। निर्वाण प्राप्ति हेतु अहिंसा उत्कृष्ट अहिंसा है। परभावों के प्रति भाव ले जाना भी हिंसा है।

उभय परिग्रह का वर्णन कर रहे हैं। अंतरंग-बहिरंग परिग्रह का त्याग नहीं होगा, तो अहिंसा-धर्म नहीं आयेगा। और तब-तक निर्वाण दशा की प्राप्ति नहीं होगी। ज्ञानी! ध्यान दो, अपने को प्रतिबुद्ध मानते हो, कहीं अप्रतिबुद्ध तो नहीं हो? हम यही सोच रहे थे कि भाव-शुद्धि होगी तो कार्य-सिद्धि जो जायेगी। लेकिन दोनों के बिना कार्य-सिद्धि नहीं होगी। अन्यथा अनाचार की सीमा नहीं रहेगी। दर्शनशास्त्र का अध्ययन करेंगे, तब पता चलेगा कि अंतरंग के नाम पर इस लोक में अनेक मिथ्या पंथ चले हैं। वर्तमान के लेखकों को लिखना पड़ा। एक लेखक ने लिखा, अंतरंग शुद्धि की बात करते रहे और बहिरंग में माँस के टुकड़े खाते रहे, और स्वयं को अहिंसक कहते रहे, कैसे संभव है? यहाँ स्याद्वाद लगाना पड़ेगा। अन्यथा युवा पीढ़ी भ्रमित हो जायेगी आपके एकांकी उपदेशों से। 'पिताजी!' अंतरंग शुद्ध है। क्यों कहते हो पानी छानकर पियो, रात्रि में न खाओ, मंदिर जाओ? ज्ञानी! अंतरंग शुद्ध है तो बहिरंग नियम से शुद्ध होगा। प्रेक्टीकल कर लो। बालक! खड़े हो जाओ, सबसे जय जिनेन्द्र बोलो। अब कायोत्सर्ग करो। देखो जय-जिनेन्द्र में प्रवृत्ति कर रहा था, हँस रहा था, णमोकार में हाथ नीचे लटक गए। आँखें बन्द हो गईं। अंतरंग में भगवान का नाम लिया तो बहिरंग में यह क्रिया हुई। जो बहिरंग के बिना अंतरंग की बात करना है, तो वह जैनदर्शन से विपरीत है, अन्यथा सिंह से पूछ लीजिए। शेर जब-तक हिरण मारता था, तब-तक मुनिराज ने भगवान नहीं कहा। प्रतिबोध हुआ तो मृग मरा पड़ा है, मृगराज ने हाथ जोड़ लिए। अंतरंग निर्मल होते ही बहिरंग शुद्ध हुआ कि नहीं? किंचित् भी गड़बड़ किया क्या? कोटि-कोटि ग्रंथों का अध्ययन कर लेगा, परंतु तत्त्वदृष्टि सम्यक् नहीं होगी।

स्यात् पदाङ्के

स्यात् पद से अंकित होकर वाचना करेगा तो मुमुक्षुओं को तत्त्वदृष्टि मिलेगी, मोक्ष-दृष्टि मिलेगी। विपरीत कथन करेगा तो मोक्ष नहीं मिलेगा, संसार दृष्टि नियम से मिलेगी।

'सिद्धिरनेकांतात्'

यह सूत्र सब जगह लिखा होना चाहिए शुभ-लाभ की तरह। जैसे वेदांत के मंत्र लिखते हैं, वैसे ही हर घर के द्वार पर यह सूत्र लिखना चाहिए। दूर से समझ में आए कि स्याद्वादी का घर है। नए बालक को णमोकार के साथ 'सिद्धिः अनेकांताश्च' भी सिखाना चाहिए। नई बहू घर में आए तो कहना कि काम बाद में करना पहले यह सूत्र याद करो, तो घर में कभी झगड़ा नहीं होगा, परंतु क्रियारूप होना चाहिए।

यहाँ आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी 20-21-22 नं. गाथा की टीका कर रहे हैं।

जैसे ईंधन अग्नि है, अग्नि ईंधन है, पूर्व में भी थी, पुनः भविष्य में होगी। ऐसा जो अग्नि का विकल्प कर रहा है, वह अप्रतिबुद्ध है। ईंधन अग्नि है, अग्नि ईंधन है ऐसा त्रैकालिक विकल्प कर रहा है, पर में पर-वस्तु को जोड़ रहा है एकीभाव करके, वह अप्रतिबुद्ध है। नाना द्रव्य एकरूप हैं, तो संकर दोष लगता है। यदि नाना द्रव्य एकरूप हैं, तो 6 द्रव्यों का अभाव हो जायेगा। सँभलकर बोलना। कभी-कभी व्यवहारी भाषा, लोकभाषा में जो भाषण हो जाता है तो ध्यान देना चाहिए, कि कहीं सम्यक्त्व न छूट जाए। घर पर कोई विपदा आ जाए तो कहता है- 'भगवान् रूठ गए।' कर्म की स्वतंत्रता भूलकर अपने दुःख का कर्ता भगवान् को बना डाला। भगवान् रागी-द्वेषी हो गए तो तेरे दुःख के पीछे भगवान् अपनी भगवत्ता को खो देंगे। ऐसे-ऐसे व्यक्ति हैं- 'भगवान! कष्ट दूर हो जायें।' दूर हो गए तो भगवान् आप सच्चे। कष्ट दूर न हुए, तो हमारे साथ ऐसा कर दिया। अपने कर्म को देखो, भगवान को दोष मत दो। तुम्होर सुख-दुःख के होने में भगवान् के साँचे-झूठे होने का परिचय नहीं है।

हे तीर्थेश! हे परमेश्वर! आप परमात्मा हो, सच चे हो मेरे दुःख दूर हो जाएँ। युक्ति से, शास्त्र से जो अविरोधी हो, वह सच्चा परमात्मा है। किसी रागी के सच्चे झूठे कहने से हमारा परमात्मा सच्चा-झूठा नहीं। एक भगवान् की भक्ति करने पर भी दुःखी है और एक कसाई भी सुखी है। तुम इसमें दुर्बुद्धि करके भगवान् को मत छोड़ देना कसाई का पूर्व का पुण्य का द्रव्य था। वह हिंसा से सुखी नहीं है, आगे नियम से दुःखी होगा। जो आज दुःखी है, तो वह पूर्व का पाप है। कभी निर्माल्य का द्रव्य मत खा लेना। पंचकल्याणक का पैसा, पाठशाला का पैसा मत खा लेना। जैसे कसाई की छाया पड़ जाए तो पानी नहीं पीते, तो निर्माल्यखाने वाले की छाया पड़ा पानी नहीं पीना। प्रवचन में निर्माल्य की चर्चा जरूर करना। लोभ-कषाय ऐसी कषाय है जो ध्यान नहीं देने देती। किसी ने कहा पुस्तकें प्रकाशित होनी हैं। 2000 के पैसे लिए, 1000 प्रकाशित करवाईं। बंध होगा कि नहीं? जिस निमित्त के लिए, जहाँ से दान लिया उसे वहीं खर्च करो। छत्र के लिए धन लिया है और फर्श बनवा रहा है, तो दोष है। देनेवाले का हृदय क्या है? उसका हृदय टटोल लेना।

देखो! धर्मायतनों की रक्षा, तुम्हारे हाथों में है। जो धर्म-आयतनों की द्रव्य का प्रयोग निज घर में कर लेता है वह भविष्य में दरिद्री ही होगा। ज्ञानी! घर पर मंदिर का फर्श ले गए, उस पर तत्त्वचर्चा नहीं हुई, विवाह की क्रियाएँ हुई। तीव्र आस्रव होगा। निर्माल्य का दोष लगेगा। मंदिर के उपकरण का प्रयोग घर जाकर नहीं करना और घर के पैसे और गोलक के पैसे ऐसे दूर रखना जैसे रुई और अग्नि को दूर रखते हैं। माँ-बेटे के परिणाम बदल जाते हैं धन देखकर। सुनो!

जिण्णुद्धार पदिट्ठा जिणपूया तित्थवंदण वसेसधणं।
जो भुञ्जदि सो भुञ्जदि जिणदिट्ठं णरय गदिदुक्खं।।32 र.सा.।।

जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा आदि के लिए आए धन में बचे धन को जो भोगता है वह नरक में दुःख भोगता है। पिता ने दान घोषित किया, तूने मना कर दिया। शास्त्र पढ़ो, पता चल जाएगा कि भागिनी के साथ व्यभिचार में जो दोष लगता है, वह पिता द्वारा घोषित धन को न-देने पर होता है। 'समयसार' खोखला नहीं है। समयसार पढ़ने वाला तिलक लगवाये मंदिर के द्रव्य से, इससे बड़ा अनाचार नहीं है। हमें क्या? कौन तुम्हारे घर में रहना है। आप तो घुमा सकते हो, हम नहीं। ग्रंथकर्ता आगम में मात्र तीन ही हैं। सर्वज्ञ देव, गणधर देव, आचार्य देव। चौथा कोई ग्रंथकर्ता नहीं है। उनके अनुसार सब व्याख्यान करे। कर्ता मात्र तीन हैं। क्यों?

क्रोध-लोभ-हास्य-भय।

क्रोधावेश में, लोभ में, हास्य में, भय में आकर जीव असत्य भाषण करता है। जिनका, इनका त्याग है, वह असत्य भाषण नहीं करता। पण्डित दौलतराम ने अपनी कैसे रक्षा की। सोचा कि मेरी कौन मानेगा। तो उन्होंने सील लगाई। जैसे विमर्शसागर महाराज का चातुर्मास आपने करवाया, तो आचार्य श्री के पास गए थे न लैटर लेकर? सील लग गई। पण्डित दौलतराम ने क्या कहा?

'पै कछु कहूँ, कही मुनि यथा।'

यह सील थी। मैं वही कहता हूँ, जो मुनियों ने कहा है। यही कारण है कि आज आचार्यों की वाणी की तरह 'छहढाला' पूरे देश में मान्य है। विद्वानों ने घर की नहीं कही, मन की नहीं कही, महाश्रमण तीर्थंकर महावीर की कही है। ध्यान दो-वचन तभी प्रमाणित होते हैं, जब वक्ता प्रमाणित होता है। अरे मुमुक्षु! श्वान नहीं, शेर बनना। श्वान की लाठी मारो तो लाठी को पकड़ता है, पिट जाता है। शेर लाठीवान को पकड़ता है। सम्यग्दृष्टि पहले वक्ता को निहारता है, फिर वचन देखता है। वक्ता प्रमाणिक होना चाहिए। सर्वज्ञ की वाणी खिर रही हो तो पूछने जाओगे क्या कि वचन प्रमाणित हैं? सर्वज्ञ को देख न। जहाँ भक्ति-श्रद्धा है, वहाँ विश्वास होता ही है। बताओ, इतनी गर्मी में आप टीन शेड के नीचे बैठे हैं, तो अर्हत् सूत्रों के प्रति आस्था है न? आचार्य कुंदकुंद के ग्रंथ का नाम सुनते ही आपका मन-मयूर नाच उठा। अंतरंग में श्रद्धा न होती तो आते क्या? सत्य यह है कि जब तत्त्व की दृष्टि मिलती है, तो बाहर की नहीं, अंतरंग की तपन समाप्त होती है। 1000 में एक भी यदि सम्यक्त्व को प्राप्त कर ले तो प्रवचन सार्थक हैं।

अज्ञानी दूध को मीठा कहता है, जबकि ज्ञानी दूध को नहीं, शक्कर को मीठी कहता है। आज

तक किसी ने यह नहीं कहा कि मीठी शक्कर वाला दूध दे दो। कहता है- मीठा दूध दे दो। व्यवहार की भाषा ने दूध-शक्कर का भेद समाप्त कर दिया। शक्कर की पर्याय का अभाव कर दिया। शक्कर मीठी थी, उसके संयोग से दूध मीठा लग रहा था। दूध मीठा नहीं है, मीठे अंश तो शक्कर के हैं। शिवपुरी में लोग नमक की रोटी खाते हैं क्या? रोटी आटे की है, पर नमक की डली ने कितना प्रभाव दिखाया है। आटे को गौंण कर दिया। सरासर झूठ बोल सकते हो। आटे की रोटी को नमक की रोटी कह लेता है। धन्य हो तुम्हारा व्यवहार। ऐसे ही शरीर को आत्मा कह लेते हो। आत्मा तो आत्मा है, लेकिन अनादि से कर्मबंध होने से कर्म का स्वाद आ रहा है।

आँखों से अलग करके नहीं दिखाया जा सकता है। अग्नि का विकल्प करनेवाला अप्रतिबुद्ध है। कोई ऐसा मानता है कि मैं इसका हूँ, ये मेरा है। मैं इसका हूँ, यह मेरा है, उभय कोटि लगाना। अभी आप घर जाओगे। कहता है आओ, हमारे घर चलो। ईंट, चूने के घर को अपना घर कहता है, कैसा अप्रतिबुद्ध है? समयसार को सुनकर घर नहीं जायेगा। मूढ़ जीव समयसार को अंधा कहने लगेगा। जिसने कभी रात्रि में पानी नहीं त्यागा हो, कोई कहे इतनी भीषण गर्मी में रात्रि में पानी नहीं पीते, तो कहेगा कि ऐसा असंभव है। जिसने कभी संयम नहीं पाला है तो वह कहेगा कि ऐसा होता नहीं। ऐसा कहो न कि मेरी भूल है?

भिलाई में मैं था। श्वेताम्बर लोग आए- हमारे यहाँ आपके महाराज का निमंत्रण है, दोनों टाइम का है, सब बिना नमक का बना है। अध्यक्ष ने समझाया-महाराज ऐसे नहीं जाते, एक बार ही चर्या को निकलते हैं। 'ऐसा भी होता है क्या?' कभी कोई ब्रह्मचारी बनकर विदेश जाए तो आशीर्वाद मत दे देना। धर्म की अप्रभावना होती है कि ये जैन साधु हैं, जैन मुनि हैं। मुनि नहीं, विद्वान् हैं। साथ में जैन मुनि की तस्वीर ले जाना। विद्वान् रूप रहो, तभी प्रभावना सार्थक है। ये पाँव पड़ाने की भूख है तो भगवान की वाणी समाप्त हो गई। यही अप्रतिबुद्ध दशा है। त्रैकालिक पर-द्रव्य में निरपेक्ष रूप, एकीरूप माने, वह प्रतिबुद्ध है। पर-भाव में सापेक्ष एकीभाव माने, वह परमप्रतिबुद्ध है। अन्यथा अरिहंत भगवान की दीक्षा आदि धारण करना अकारण हो जायेगी।

शुद्ध निश्चयनय त्रैकालिक द्रव्य का कथन करता है।

अशुद्ध निश्चयनय रागादि का कथन करता है।

जितने वचनवाद हैं, उतने नयवाद हैं। वक्ता के वाद का नाम नय है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज 'समयसार' जी में अशरीरी भगवत्-स्वरूप का व्याख्यान किया है। यह आत्मा कर्म, नोकर्म, भावकर्म युक्त है। बद्ध होने पर भी निवृत्ति-स्वरूप पर अपनी दृष्टि ले जाने का कार्य द्रव्यदृष्टि है। बंध को बंध स्वीकारना और बंध में निर्बन्ध को पहचानना ज्ञानी की दृष्टि है। बंध में निर्बन्ध को ही मान बैठना, यह एकांगी अज्ञानी की दृष्टि है। बद्ध, बद्ध है; निर्बद्ध, निर्बद्ध है। जो सिद्ध भगवान निर्बंध हैं, वे व्यक्त निर्बन्ध हैं। जो संसार-निर्बंध हैं, वे अव्यक्त निर्बन्ध हैं। एक में शक्ति, एक में अभिव्यक्ति। लेकिन अभिव्यक्ति तभी होगी, जब शक्ति का ज्ञान होगा। समयसार एकांत का कथन नहीं करता। जो संसारी आत्मा को सदा त्रैकालिक शुद्ध मानते हैं निरपेक्ष भाव से, तो एकांती सदाशिव दर्शन में प्रवेश हो गया है। काम भोग में लिप्त होते हुए मान रहा है कि मैं निर्बंध हूँ, तो यह सदाशिव मत है। जैनदर्शन में आत्मा सदाशिवत्व की शक्ति से सम्पन्न है, परंतु सदाशिव नहीं है।

'जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकालेबि।
तो तवचरण विहाण सत्वेसिं णिप्फलं होदि।। 200 का. अ.।।

यदि यह संसारी जीव सभी कालों में सदा शुद्ध ही है, तो आपके यहाँ करणानुयोग, चरणानुयोग की दृष्टियाँ निष्फल हो जायेंगी। पुनः आगे, नयचक्र से बात करा। यदि त्रैकालिक शुद्ध ही हैं जगत के सभी जीव, तो फिर कोई जीव संसारी नहीं बचेगा। नयचक्र, आलापपद्धति लगाओ। यदि जीव त्रैकालिक शुद्ध है, तो संसार का अभाव होता है। यदि संसार का अभाव होता है, तो मोक्ष का भी अभाव होता है। छूटने का नाम मोक्ष है, कि छूटे हुए का नाम मोक्ष है? छूटे हुए का नाम मोक्ष नहीं होता, संसारी का मोक्ष होता है। निर्बद्ध का नहीं, बद्ध का मोक्ष होता है। आचार्यभगवान् कुंदकुंद स्वामी बंध अधिकार में व्याख्यान करने वाले हैं। समझना नय विवक्षा और वस्तु विवक्षा। वस्तु-व्यवस्था समझने के लिए नय-व्यवस्था है, नय-व्यवस्था समझने के लिये वस्तु-व्यवस्था नहीं है। रोगी होते हैं, इसलिए डॉक्टर होते हैं कि डॉक्टर होते हैं, इसलिए रोगी होते हैं? डॉक्टर की क्लीनिक पर रोगी नहीं आए, सोचे-सीजन बन्द हो गया, तो दुर्ध्यान कर रहा है। मरीज के लिए डॉक्टर होने चाहिए, डॉक्टर के लिए मरीज नहीं होना चाहिए। आपके लिए मरीज होने चाहिए तो फिर निरोगी को रोगी होना पड़ेगा, तब आपके पास आ पायेगा।

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांति भगवाज्जिनेन्द्रः।।

यह सूत्र क्या करेगा? भले दुगना व्यापार कर लेना, पर अस्पताल में यह विचार मत करना कि कोई नहीं आया। वैद्य, वकील, प्रतिष्ठाचार्य के परिणाम यदि अच्छे नहीं हैं तो दुर्गति को प्राप्त होते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में बहुत सारे नियम दिए हैं। उनके अनुसार चलता है तो कल्याण-दृष्टि है, जीवों के उपकार की दृष्टि है। विपरीत दृष्टि है तो अपना अकल्याण होगा। यही कारण है कि तांत्रिक-मांत्रिक की समाधि नहीं होती। जंत्र, मंत्र, तंत्र, ज्योतिष विद्याओं में संलग्न मुनि हों, गृहस्थ हों, नियम से असमाधि होगी। इनका नियम से त्याग करना पड़ेगा। कुछ विद्याएँ भी परिग्रह होती हैं क्योंकि इन विद्याओं में लीन हो जाऊँगा तो ध्यान व सामायिक को खो दूँगा। लोकप्रसिद्धि में लीन हो गया तो आत्मसिद्धि शून्य हो जायेगी। दीक्षा चाहिए तो इन सबका त्याग करना पड़ेगा। डॉक्टरी का भी त्याग करना पड़ेगा। दीक्षा के बाद किसी को जड़ी-बूटी बताते मिले तो तुझे दोष लगेगा। 'जीव की रक्षा होगी, महाराज!' नहीं, आत्मरक्षा की रक्षा है। षट्काय जीव की हिंसा करके रक्षा मानना सही नहीं है। इसे सत्यार्थ मार्ग मत मानना। रूढ़ी चली आ रही है। राजमार्ग नहीं है। राजमार्ग यही है कि इन सब विद्याओं से शून्य होना पड़ेगा। 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार', आचार्य प्रभाचंद्र स्वामी की संस्कृत टीका में रेवती रानी की कथा का वर्णन है। क्षु. विद्याधर गुरु के पास दीक्षा लेने पहुँचे तो गुरु ने कहा कि पहले विद्याओं का त्याग करो। कोई संगीतकार दीक्षा लेना चाहता है, तो वह पंचम स्वर में गाने का त्याग करे। तुम संगीत में लीन रहोगे तो समलिंगी विषमलिंगी के झुंठ लग जायेंगे। सामायिक-ध्यान नहीं कर पाओगे। यह तो शून्य में, निजस्वरूप में लीन होने का मार्ग है। राग का कार्य बहुत बार किया, पर समयसार-संगीत कब-कब प्राप्त किया? आपका संगीत ताल-मंजीरों पर टिका है, पर समयसार का संगीत स्वानुभूति पर टिका है। बाहर की आवाजें जब बन्द होती हैं तो भीतर की स्वानुभूति की आवाजें आना प्रारंभ होती हैं। न जहाँ सितार हो, न मंजीरे हों, न पंचम स्वर हो, ऐसा संगीत जहाँ हो, वही पंचमगति का कारण है। ऐसा संगीत समयसार में है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी तो गहनतम कथन करते चले जा रहे हैं। अप्रतिबुद्ध जीव अग्नि में ईंधन, ईंधन में अग्नि को मान रहा था। ऐसे-ही अज्ञ प्राणी, परद्रव्य में मैं हूँ, ऐसी मान्यता में जीता है। मैं भविष्य में इसका होऊँगा, और वह मेरा होगा।

ज्ञानी! जब-तक समयसार की व्याख्या सुनो, गृहस्थी का त्याग कर दो। शरीर पर जो परिग्रह हैं, उनके अलावा शेष का त्याग। मन, मस्तिष्क में निर्ग्रंथता को अनुभव कर सुनो। अनात्मभूत जो-जो है,

उन सब में आत्मबुद्धि जिसकी है, वही बहिरात्मा है। इसलिए देह से भी हटकर चर्चा करना है। किसके सुन्दर शब्द सुनूँ, किसको सुन्दर शब्द सुनाऊँ? विद्वानों की दृष्टि है कि समयसार को बन्द करके रखा जाता है। नहीं, ज्ञानी! इससे बंध को हटाया जाता है। यही तत्त्व की भूल है। जिससे बंध हटाया जाना था, उसे बन्द करके रखा है। तत्त्व की प्ररूपणा क्यों नहीं सुना आज तक? जितना कर रहे हो उतना अच्छा है, लेकिन संतुष्ट मत हो जाना। धर्म उतना ही है जितने से आत्मा में शांति है। पूजन करके, पाठ करके, दान देके, आनंद आ रहा है, वह भी धर्म, अरिहंत का अभिषेक करना भी धर्म है, पर वो ही धर्म नहीं है। व्यवहाराभासी/निश्चयाभासी दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। पूजा कर रहा है, अशुभ से बचा कि नहीं? इससे भी आगे चलना है। शास्त्रज्ञान और आत्मज्ञान दोनों से हीन के हाथों में व्याख्यान आ गया है। एक सज्जन आए, कहते हैं- 'महाराज! आपको साथ में पुलिस रखना चाहिए, इतना खुलकर ोलते हो।' ज्ञानी! जिनवाणी के लिए प्राण भी चले जायें तो कोई बात नहीं। सत्य को लपेटा नहीं जा सकता। सत्य जो सत्य है।

बड़े-बड़े ज्ञानी, आम्नाय/पंथ में पड़कर, जिनागम का व्याख्यान नहीं करते। एक सोचता है, कि पूजा बन्द न हो जाए। एक सोचता है, कि निश्चय न मिट जाये। दोनों मिटेंगे। सत्यार्थ तो उभयनय स्यात् पंदाके। यही मिथ्यात्व का वमन करायेगा। क्रियाकाण्ड में धर्म नहीं है, यह परिपूर्ण सत्य नहीं है। कथंचित् सत्य है। एक सूत्र सबको रटना चाहिए।

'सिद्धिरनेकांतात्'

जो भी कथन करो, उसमें अनेकांत लगाओ। क्रियकाण्ड के बिना धर्म नहीं, यह भी सत्य है। अभी अर्थ इतने जल्दी समझ नहीं आयेगा। ज्ञानी! कभी सब्जी-मण्डी गया? हे मुमुक्षु! सब्जी-मण्डी जाकर मौसम्बी को खरीदा, कि उसके दल को खरीदा, कि छिलकों को खरीदा, कि बीजों को खरीदा? पैसे किसके दिए? ज्ञानी! सँभाल कर बोलना, पैसे किसके दिए? किसी जैन के द्वारे से निकल पड़ता, छिलके, दल, बीज मिल जाते, व्यर्थ में सबके पैसे क्यों दे आए? अच्छा, पैसे रस के दिए हैं। ज्ञानी! मौसम्बी का रस चाहिए। छिलके, दल, बीज नहीं चाहिएए, ऐसा रस चाहिए। रस फल है क्या? फल रस है क्या? छिलके, दल, फल हैं क्या? इन सबके बिना फल है क्या? कविताकार, भजनकार लिख लेते हैं, परिपूर्ण अनेकांत नहीं लगाते। इन लिखनेवालों से प्रश्न करो कि तुम बोल गए, लिख गए, पर अज्ञानी लोग क्रिया-रहित हो गए। दल-फल सब एक हैं, उसी के अंदर रस है। क्रियाएँ धर्म नहीं हैं, क्रियाओं बिना धर्म नहीं है। जैसे छिलकों के अंदर रस है। दिखती क्रियाएँ हैं। पूजा करते-करते क्रिया हो रही थी, जो आनंद आ रहा था, परिणामों में विशुद्धि थी, वही धर्म था। अज्ञानी कहता है कि क्रियाओं

में धर्म नहीं है। हे मुमुक्षु! परिणामों की शुद्धि के अभाव में क्रिया की, तो धर्म नहीं है, अन्यथा धर्म है। क्रिया व्यवहार-धर्म है, परिणामों की शुद्धि निश्चय-धर्म है। भजनों को गाने से पहले धर्म, अनेकांत, स्याद्वाद, सीखो।

कभी महावीर बनके, कभी पार्श्वनाथ बनके, चले आना।

गुरुजी चले आनां-शुद्ध मिथ्यात्व है।

महावीर लौटकर आयेंगे क्या? ऐसे भजन नहीं चाहिए जो हमारे भगवान को नीचे ला रहे हों। नकल के पीछे अक्ल लगाना। तू हमारे भगवान को कर्त्तावादी, ईश्वरवादी घोषित मत कर देना। भक्ति करने से तेरे कार्य हो जायेंगे, परंतु भगवान तेरे घर काम करने नहीं आयेंगे। भक्ति करना है तो आचार्य समन्तभद्र से भक्ति सीखो। उनसे बड़ा भक्त नहीं है विश्व में। उनके ग्रंथ भक्ति से ओत-प्रोत हैं, परंतु अनेकांत स्याद्वाद से युक्त हैं। भक्ति कैसी? लड्डू खाए, पर नमस्कार नहीं किया। जब नमस्कार किया, तो चन्द्रप्रभु प्रकट हो गए। हे भगवन्! आप नित्य एकांतवादी नहीं हैं, अनित्य एकांतवादी नहीं है। आप नित्यानित्यवादी हो, इसलिए नमस्कार हो। यह न्याय दर्शन की भक्ति है। नकल करें, परंतु विवेक के साथ करें। ऐसे भजन नहीं गाना कि भविष्य में सिद्धांत का नाश हो जाए। जगत की धुन नहीं, समन्तभद्र स्वामी की धुन पर ध्यान देना है। आज बच्चों की भीड़ लग जायेगी, परंतु सिद्धांत का नाश हो जायेगा। चमक नहीं चाहिए। यह भी पाठ दिया जाए कि हमारा दर्शन ईश्वर-कर्त्तावादी नहीं है। हाँ, प्रत्येक जीव अपने कर्मों का कर्ता अवश्य है।

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत् फलानां स एव तु ।। 10 स्व. सं.।।

जब कर्म का कर्ता और कर्म का भोक्ता जीव स्वयं है, तो मोक्ष दिलाने वाला कौन? भगवान नहीं, मैं स्वयं होऊँगा। तुम बचपन में पढ़ने गये थे। काठ की पाटी पर कालोंच लगाकर पढ़ते थे। लिखते-लिखते हाथ काले होते थे, कि नहीं? जब-तक हाथ-मुँह काला न हो, तो माता-पिता कैसे समझें कि बेटा पढ़कर आया है? जिन हाथों से कालौंच लगी थी, उन्हीं हाथों से साफ भी होती है। जिन भावों से कर्मबंध किया है, उन्हीं भावों से बंध से मुक्त हो सकते हो। 'सिद्धो वर्ण समाम्नायः', जैनदर्शन का कितना प्रसिद्ध सूत्र विश्व पढ़ रहा है। 'ओम् नमः सिद्धम्।' जिनसेन स्वामी ने बालकों को पढ़ाने की विधि का वर्णन किया है। बालक को नहा-धुलाकर मंदिर लाना चाहिए, सिद्धों की पूजा करवाना चाहिए। फिर ओम् नमः सिद्धम् पढ़ाना चाहिए। यह विधि है, सब भूल गए। यहाँ कितना गहरा विषय दे रहे हैं। देह भी आत्मभूत नहीं है। जब देह का राग संसार का साधन है, तब देह से भिन्न साधन में राग मोक्ष का साधन कैसे हो सकता है? एक क्षण को निर्ग्रन्थ-दशा का वेदन करो, फिर समझो। पर-

द्रव्य आत्मा से असद्भूत है, जो उनमें आत्मा का विकल्प करता है, उसे मूढ़, अप्रतिबुद्ध, अज्ञानी समझना चाहिए।

ज्ञानियो! जितने मस्तिष्क गर्म हो रहे हैं, नाना विचार आ रहे हैं, सब अनात्मबुद्धि है। एक को पेन दिया, दूसरे से छीन लिया। जो तीसरी ने पेन दिया था, उसने सुख दिया, कि दुःख? कितनी संक्लेशता बढ़ गई? कहता है कि दे मेरा पे। एक क्षण में पेन में आत्मबुद्धि कर ली, तो लड़ाई कर ली। यह सब अनात्मभूत द्रव्यों में आत्मबुद्धि ही कष्टकारी है। माँ के गर्भ में बालक आया, जन्म हुआ, कुछ दिन बाद मृत्यु हो गई, आप रो रहे हो। न उसे पानी पिलाया, न उसने आँखें खोली, फिर भी आप रो रहे हो। जिस दिन गर्भ में नहीं आया था, उस दिन को देखिए।

अभाव को देखिए। बीच में सद्भाव को देखकर रो रहे हैं। इतना चिंतन जब-तक नहीं है, तब-तक निर्ग्रंथ मन बनकर नहीं जी पाओगे। निर्ग्रन्थ तन बनकर रह सकते हो, परन्तु मन निर्ग्रन्थ नहीं हो सकता। मुझे किसी के परिचय से प्रयोजन नहीं है। अपरिचित बनकर रहना पड़ेगा। जब चर्या का समय आयेगा तो पिच्छि-कमण्डलु लेकर आहार को निकल जाऊँगा। वापस आकर साधना करूँगा। चारित्र तो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चमकेगा। जहाँ पूछा कितने चौके कहाँ लगे हैं, तो राग-द्वेष की भट्टी जलना प्रारंभ। मेरा धर्म इतना है कि कमण्डलु में प्रासुक पानी होना चाहिए, बस। आज के व्याख्याता कहते हैं कि महाराज उद्दिष्ट के त्यागी नहीं हैं। यह सरासर झूठ है। परिभाषा उद्दिष्ट की यह है कि पता चल जाए कि इनके यहाँ जाना है। इसके विपरीत भले ही एक चौका हो, फिर भी अनुद्दिष्ट है। साधु किसी से यह न पूछे कि कितने चौके लगे हैं। कमण्डलु लेकर निकल गए। विकल्प क्यों पाले? साधुचर्या बहुत सरल है, आपने कठिन कर ली है। चौके में बर्तनों के ढेर लगा लिए। क्यों? कोई देखेगा तो क्या कहेगा? आपके कारण एक गरीब तो साधु का पड़गाहन नहीं कर सकता। मार्ग जो है, उस पर ध्यान दो। जैसा शुद्ध भोजन करते हो, वैसा बनाओ। साधु आए तो पड़गाहन करो। यह तत्त्व भी सिखाना चाहिए ज्ञानियों को।

समयसार का पालन उभयरूप है श्रावक, साधु। जब-तक आप साधक के पास नहीं आयेंगे, साधुस्वरूप का भान नहीं होगा, वैराग्य नहीं होगा। समझ लो, यहाँ पर आते हो तो कैसा लगता है, और रोड़ पर जाते हो तो कैसा लगता है? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव पड़ता है। अन्यथा क्यों मंदिर बनवाते, शिविर लगाते? परम सत्य निज उपादान की योग्यता ही है। जहाँ समय मिले, बैठकर समयसार का विचार करना। जब मेरा देह ही मेरा धर्म नहीं है, तो पर-देहों का राग भी मेरा धर्म कैसा? धिक्कार हो, पर के पीछे तन-मन को एक कर डाला। कभी-कभी अपनी अशुभ प्रवृत्ति का भी चिंतन किया

करो। तू ही अपनी अशुभ प्रवृत्ति अपनी आँखों के सामने देख, कैसी लगती है? जिसके तरफ कैमरा घुमाओ, तुरंत सीधे बैठ जाता है। सावधान हो जाता है कि कहीं आड़े-तेड़े में चित्र न आ जायें। एक चित्र के लिए इतने सावधान हो जाते हो। तीनलोक के नाथ के कैमरे में तेरी प्रतिक्षण की पर्यायें आ रही हैं। प्रतिक्षण तो सावधान रहना चाहिए कि कहीं गलत न आ जाए। कर्मबंध का कैमरा प्रतिक्षण फोटो खींच रहा है। चिंतन करो, प्रतिक्षण अच्छे से रहो।

24 घण्टे सामायिक में रहो। केवली सीमंधर स्वामी के ज्ञान में अच्छी दशा झलकेगी। अच्छे से बैठो। यहाँ ही नहीं, जहाँ भी हो वहाँ। अब बोलो, समयसार पढ़ना चाहिए कि नहीं? पढ़ना चाहिए। पर समयसारभूत को समझना चाहिए। एकांतभूत नहीं, अनेकांतभूत दृष्टि से।

अब ज्ञानी की परिभाषा कर रहे हैं। अग्नि ईंधन नहीं है, न ईंधन अग्नि है। अग्नि, अग्नि है। ईंधन, ईंधन है। न अग्नि कभी ईंधन हुआ है, न ईंधन कभी अग्नि हुआ है। न पूर्व में था, न भविष्य में होगा। त्रैकालिक व्यवस्था चल रही है। सद्भूत अग्नि के विकल्प से। जैसे अग्नि में विकल्प हुए कि अग्नि ईंधन नहीं है, ऐसे-ही मैं (आत्मद्रव्य)परद्रव्य नहीं हूँ। न परद्रव्य मैं हूँ। न परद्रव्य मेरा था, न मैं परद्रव्य का था। न मैं परद्रव्य होऊँगा, न परद्रव्य मेरे होंगे। ऐसा जो जानता है, उसका नाम ज्ञानी है। मैं तो मैं ही हूँ। मैं आत्मारूप ही हूँ। मैं पर-द्रव्य नहीं हूँ।

समुद्री नमक-जो व्रती 'जैन' संज्ञा को प्राप्त हैं, वे समुद्री नमक का त्याग कर दें। जो समुद्री नमक खाता है, उसका माँस खाने का त्याग नहीं है। वह नमक कौन-सा पानी छानकर बनाया जा रहा है? छोटे त्रस, जलचर जीव उसमें मिल गए हैं। खाने का शौक है तो पत्थर वाला नमक खाया करो? समुद्री नमक का सेवन नहीं करना। 'महाराज! दोनों की कीमत में अंतर है। इसलिए तो महाराज आपके प्रवचन नहीं सुनना। आप तो शुद्धात्मा कहते जाओ, बस।' तुम चारित्र शून्य हो गए हो। मिश्री नाम बोलने से मुँह मीठा होता है क्या? ज्ञानी! भगवानात्मा कहने से भगवान नहीं बन जाते। पुरूषार्थ करना पड़ेगा। (यह ग्रंथ वस्तु तत्त्व को बताने वाले हैं लेकिन दिलाने वाले नहीं है) एक रास्ते पर लिखा था- क्षतिग्रस्त पुलिया है, धीरे चलो। तूने गति कम की नहीं और नीचे गिर गया। अब कहे कि मैंने पढ़ तो लिया था। तो सिर्फ पढ़ना ही नहीं था। भगवान तीर्थंकर का बोर्ड है जिनवाणी, उसमें लिखा है- मार्ग संकीर्ण है, पुलिया क्षतिग्रस्त है, धीरे चलना। तो कहता है, कि पढ़ तो लिया था। ज्ञानी! स्पीड ब्रेकर आता है तो वाहन कितना धीमा कर लेते हो। विषयों के पथ पर गाड़ी धीमी क्यों नहीं चलाते? निजानंद के, परमानंद के शीशे टूट रहे हैं। ध्यान ही नहीं है। बनवा लो गति-अवरोधक। यहाँ तो उल्टे ही चिकने फर्श किए हैं। हाथ पर पट्टा बाँधकर आ गया। क्या हुआ? महाराज! बाथरूम में फिसल गए। बाथरूम में पानी डाला

किसने? चिकना करवाया किसने? करो चिकने फर्श, बाँधो पट्टे, तोड़ो पैर। ये अज्ञानी राग की चिकनाई में फिसलकर चारित्र के पैर तोड़ रहे हैं। ध्यान रखना, युवावस्था में चिकने करवा लिए, बूढ़े होकर गिरोगे, सब ज्ञानी हैं। इसलिए यहाँ कह रहे हैं कि मैं त्रैकालिक नहीं हूँ। मैं आत्मा 'आत्मा' ही हूँ। पर का कथंचित् भी नहीं हूँ। न मैं पूर्व में इनका था, न ये पूर्व में मेरे थे। ये, ये ही थे। मैं, मैं ही था। न मैं इनका होऊँगा, न ये मेरे होंगे। मैं तो भविष्य में मैं ही होऊँगा और परद्रव्य ही होंगे। पिता का द्रव्य तेरा नहीं होगा, तेरा द्रव्य पिता का नहीं होगा। लोग सात कदल भी एक दूसरे के साथ चल लें तो राग हो जाता है। तूने व्यर्थ में एक दुःख बढ़ा लिया। अब पत्र डालना भूल जाओगे तो शत्रु बन जायेगा। इसलिए आचार्यभगवान् कह रहे है- हे मुनीश्वर! अपरिचित होकर रहो।

जनसम्पर्क करोगे तो वचनवाद होगा, फिर चित्त में विक्षिप्तता आयेगी। तो फिर स्वात्मानुभूति में कैसे जायेगा? मुनि का धर्म है 'मौन'। बोलो तो तत्त्व बोलो, सत्य बोलो। अधिक बोलोगे तो एक असत्य के पीछे सौ असत्य बोलने पड़ेंगे। जगत को खुश करने के लिए बोलोगे तो पता नहीं कितना बोलना पड़ेगा। मोक्षमार्ग जगत को खुश करने का मार्ग नहीं है। स्वयं खुश रहने का मार्ग है यह मोक्षमार्ग। नाटक थोड़े-ही है। अपने आप में, एकांत में रहोगे तो आनंद आयेगा।

गंथ-हस्ति वत्-

वह एकांत में जाकर आनंद लूटता है। जैसे गंध-हस्ति, ऐसे-ही निर्ग्रंथ तपोधन आत्म-सुगंध का आनंद एकांत में लेते हैं। यह सब बातें गृहस्थी में नहीं होती, ध्रुव सत्य नहीं है। देखो, सुनो, जानो, अनुभूति लेने ऐसा बनना पड़ेगा। भजन गाओ तो ऐसे गाओ-

'मुनि बन वन-वन डोलूँ रे' और-कुछ नहीं चाहिए। 'गंध हस्तिवत्' जैसे वह एकांकी विचरण करता है, ऐसे-ही तपोधन समयसार की सुगंध का आनंद एकांत में लेते हैं। लोभी पुरुष धन की चमक को एकांत में देखता है कि कोई देख न ले। तपोधन निज-ज्योति को एकांत में देखते हैं। वह कैसा होता होगा एकांत स्वभाव? वैसा ही, कि मैं बोल रहा हूँ, आप सुन रहे हैं। वहाँ मैं ही बोलूँगा, मैं ही सुनूँगा। मुख से भी नहीं, अंदर ही बोलूँगा, अंदर ही सुनूँगा। इस प्रकार जो स्वद्रव्य है, वह स्वयं में ही होगा। स्वद्रव्य ही होगा। बस। ज्यादा देर नहीं लगती, ज्यादा कठिन विषय नहीं है। बस थोड़ी गड़बड़ी है। ये जो राग की लालिमा है, वह हट जाये। निज स्वतंत्रता का भान नहीं हो रहा जीव को। जिस दिन पक्का निर्णय हो जाए कि मैं मैं हूँ। कहाँ के जनक, कहाँ की जननी, सब राग के संबधं हैं। आत्मा का स्वभाव पर से अत्यंताभाव है। ऐसा जिसका लक्षण है, वह ही ज्ञानी, प्रतिबुद्ध है जिसने परभावों का अभाव कर दिया है। शेष भाग सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान करके भी अज्ञानी ही हैं।

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम्।। 22 अ.क.।।

यहाँ आचार्य अमृतचंद्र स्वामी, 22वें कलश में, अलौकिक बात कह रहे हैं। हे ज्ञानी! यदि ऐसा है, जब तुझे समझ आ गया है कि सारा जगत निज से भिन्न है, तो इस जगत के मोह को छोड़ दो। यह आत्मा कैसी है? 'चिदानंद रस-रसायन-स्वरूपोऽहम्' जो रसिकों को रसिक आनंद देने वाली है, ऐसे ज्ञानरूपी अमृत में विचरण करो। मेरी आत्मा में पर द्रव्य एकमेक न हुआ, न होगा। मैंने कहा था समुद्र का नमक। ग्रीष्मकाल में वही पानी सूखकर नमक बनता है, बारिश में पुनः पानी हो जाता है। ऐसा कौन-सा मौसम आएगा कि आत्मा पुद्गलभूत होगा और पुद्गल आत्मभूत होगा? नमक तो हो जायेगा, लेकिन ऐसा मौसम कभी नहीं आयेगा कि आत्मा पुद्गल हो जाये और पुद्गल आत्मा हो जाए। चेतन तो चेतन रहेगा, पुद्गल भी पुद्गल ही रहेगा। किसी भी काल में निश्चय से परद्रव्य व निजआत्म तादात्मवृत्ति को प्राप्त नहीं होगा। नीर-क्षीर एक हो जाए, पर एक नहीं होगा। नीर, नीर होगा; क्षीर,क्षीर होगा।

सप्त धातु का कड़ा, कि कड़े में सात धातु हैं? परन्तु सबकी सत्ता पृथक् है।

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि णिच्चं संग सभावं ण विजहंति।। 7 पं.का.।।

एक द्रव्य दूसरे में प्रवेश भी कर जाये, तो-भी अपने स्वभाव का विनाश नहीं होता। ध्यान रखना-किसी भी काल में आत्मद्रव्य परभूत एवं परद्रव्य आत्मभूत नहीं होंगे। ऐसा चिंतन करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

जैन वाङ्मय में सुप्रसिद्ध आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी हुए, जिन्होंने 84 पाहुड़ ग्रंथों में 'समय प्राभृत' ग्रंथ का लेखन किया। यह अलौकिक अध्यात्म कृति सारे विश्व को वस्तु की स्वतंत्रता का ज्ञान कराने वाला समयसार ग्रंथ है। ध्रुवधामी अखण्ड ज्ञायकस्वभावी आत्मा को दिखानेवाला है यह अनुपम ग्रंथ। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने 'आत्मख्याति' नामक टीका में इसका विस्तार किया। आचार्य जयसेन स्वामी ने टीका की टीका करके बहुत सरल लेखन किया है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की दृष्टि, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की दृष्टि में जो है उसे ही जयसेन स्वामी ने विशिष्ट रूप से प्रकट किया है।

अप्रतिबुद्ध की धारणा और गहरी बता रहे हैं। अभी तक आपने यह सोचा कि गृह, सामान आदि परद्रव्य हैं। जब योगी निज ध्यान की गहराई में उतरता है तो उस काल में पंचपरमेष्ठी भी परद्रव्य हो जाते हैं। आराध्य-आराधक भाव दृष्टि भिन्न है। स्वभाव दृष्टि भिन्न है। क्षोभ हो सकता है कि पंचपरमेष्ठी को भी परभाव कह दिया तो क्या आराधना न करूँ? नहीं, आराधना का अभाव कहाँ किया? कौन मना कर रहा है? परमेष्ठी की भक्ति भावना आराधना द्वैतभाव है, अद्वैतभाव नहीं है। पिता को पिता कहने से मना कब किया? ध्यान रखना, पिता तो पिता हो सकता है, लेकिन पिता आत्मा का स्वभाव नहीं हो सकता। जनक-जननी भाव, आराध्य-आराधक भाव हो सकता है, लेकिन भिन्न द्रव्यों में स्वभाव भाव नहीं हो सकता। स्वभाव-भाव मात्र अभिन्न-भाव में ही होता है। स्वभाव-भाव मात्र निज स्वभाव में ही होता है। विभाव भाव तो परभाव के निमित्त से ही होता है। जब भी विभाव में जाएगा, परभाव के निमित्त से ही जायेगा। परद्रव्य के भाव से राग में जाता है। हे पुद्गल! पानी उष्ण हुआ, उसका स्वभाव उष्ण नहीं, अग्नि से सौपाधिक भाव से हुआ है। अग्नि का सम्पर्क न होता तो शीतल पानी उष्ण कैसे होता?

एक विचित्र मिथ्यात्व सुना। मन में कषाय भाव आ रहा है, अब्रह्म भाव आ रहा है, अज्ञानी कहता है कि सहज भाव है। घोर मिथ्यात्व/अनाचार है जो ऐसा कहे कि यह प्रकृति का सहज भाव है। हे ज्ञानी! यह जीवद्रव्य की प्रवृत्ति का सहज भाव नहीं, कर्म की प्रवृत्ति के संयोग का सहज भाव है। जैसे बिना अग्नि, पानी की शीतलता सहज भाव है। पानी गर्म कैसे हुआ? सहज, कि अग्नि के संयोग से? हे मुमुक्षु! आत्मा में स्त्री को देखकर विकार आ रहे हैं। यह सहज भाव नहीं है। कर्म बंध में कारण

है। इसे यदि सहज भाव कहेगा तो भगवती आत्मा का स्वरूप कैसा होगा? सहज भाव में आकुलता नहीं होती, पश्चाताप नहीं होता। ठण्डे पानी में अंगुली नहीं जलती। अग्नि पर रखे पानी में अंगुली जल जाती है। जो जीव शांत बैठा हो, तो पश्चात्ताप नहीं होता। जो एक क्षण को क्रोधित हुआ, क्रोध आया, तो पश्चात्ताप नहीं होता। जो एक क्षण को क्रोधित हुआ, क्रोध आया, तो पश्चात्ताप होता है। जहाँ पश्चात्ताप होता है। जहाँ पश्चात्ताप हो, ग्लानि भाव हो, वह सहज नहीं, सौपाधिक भाव है। सभी समझदार हैं। क्यों, ज्ञानी! जब मन में अशुभ भाव आते हैं, कर्म कर बैठे, तो स्वयं से पूछो, भाव कैसे होते हैं? किसी जीव ने खोटा कार्य कर दिया, सत्य बताना, अपना ही चेहरा स्वयं को अशुभ लगता है कि नहीं? धिक्कार हो। जिसे करने के बाद पश्चात्ताप हो, तो सहज भाव कैसा? जो सहज कार्य होता है, उसे छिपाया जाता, जो छिपाया जाता है, वह विकारी भाव है। विकारी भाव सहज भाव नहीं है। परभाव सहज नहीं है। आराध्य-आराधक भाव हो सकता है, लेकिन, हे परमेश्वर! जो आपकी वाणी है वह जिनवाणी से हटकर नहीं है। सोचते हैं कि यह तो स्वरूप से हटकर भाव हो रहे हैं, पर यह अरिहंत की ही वाणी है। अरिहंत भक्ति भी सहज नहीं, असहज भाव है। यह धर्मानुराग, भक्तिभाव है। सहजभाव में एक मात्र निज स्वभाव में रमण होता है, शुभ राग है। राग का परिवर्तन है, सहज नहीं है।

अशुद्ध की अपेक्षा उपादेयभूत है, परंतु शुद्ध की अपेक्षा हेयभूत है। तेरा पिता, तेरा है न? व्यवहार से वो है तेरा जनक, तेरी आत्मा का धर्म नहीं है। ये बालक वस्तु-स्वरूप को समझ रहा है। हे तात्! आप मेरे पिता हो, यह सत्य है, व्यवहार दृष्टि से इसमें कोई शंका नहीं, पिता हो सकते हो, पर आत्मा का स्वभाव नहीं हो सकते। ऐसा होगा तो आपका वेदक भाव मुझमें और मेरा वेदक भाव आपमें होगा। आपकी पीड़ा का विकार मुझे होगा, मेरा आपको होगा। जो अरिहंत स्वरूप को निज स्वरूप मान रहे हो, एकांगी घोर मिथ्यादृष्टि है। तू तो रागी है। तेरा और अरिहंत का स्वरूप एक जैसा हो तो संकर दोष हो जायेगा। तेरी राग दशा वीतरागी अरिहंत को रागी बना देगी। तेरा स्वभाव तेरा है, अरिहंत का स्वभाव अरिहंत का है। तेरा स्वरूप सिद्ध होता तो तू फर्श पर क्यों बैठा होता? तू तो सिद्धालय में होता अथवा तेरे फर्श पर होने से सिद्धों को फर्श की अनुभूति होने लग जाती। दोनों भिन्न हैं।

प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है, इसमें शंका नहीं। वेदक भाव दोनों का भिन्न होता है। चेतनत्व की अपेक्षा एकत्व भाव है। सभी की चेतना सदृश हो सकती है, लेकिन एकरूप नहीं है। यही जैनदर्शन का तात्त्विक मौलिक विवेचन है। करुणा जगत पर करते हैं। करुणा का विपर्यास नहीं करो कि किसी को पीड़ा हो तो हम रोने लगे। आपका कर्त्तव्य है कि उपचार करायें, पर रोएँ नहीं। उपचार करना धर्म है, रोने लगना अधर्म हो जायेगा। पर दुःख से दुःखी न होना, पर सुख से सुखी न होना, यह तत्त्व की मूल बात है। लोग उल्टा बोलते हैं। यही जीवद्रव्य का वास्तविक स्वरूप है। परदुःख में दुःखी

है, वह रागी है। परदुःख में जो सुखी है, वह भी रागी है। परसुख में जो सुखी है, वह रागी है। पर सुख में जो दुःखी है, वह भी रागी है। सब व्यवहार है। जैनधर्म सुन्दर स्फटिक तुल्य दर्शन है।

शिवपुरी के चन्द्रप्रभु जिनालय में स्फटिक की प्रतिमा है। हे ज्ञानी! स्फटिक के सामने लाल पुष्प लाना, पीछे लगाना, स्फटिक लाल दिखेगा। पीला पुष्प लाओगे तो पीला दिखेगा, नीला तो नीला और काला लगाओगे तो काला दिखेगा। लाल-पीला-नीला दिखता है, लेकिन क्या यह सत्यता है? क्या सत्यता नहीं है? स्फटिक साक्षात् आँखों से पीला दिख रहा है। क्या सत्य नहीं है? इस ग्रंथ पर समाज में हउआ है। यह सर्वोपरि ग्रंथ है। अध्यात्म का इससे बड़ा ग्रंथ कोई नहीं है। उस स्फटिक की प्रतिमा के पीछे पीला पुष्प रख दिया तो वर्ण पीला होगा। सत्य है कि असत्य?

ज्ञानी! पुष्प उठाइये और उसी जिनालय की काठ के बैंच को सामने ले जाइए। बैंच का रंग कैसा होगा? वह पीली क्यों नहीं हुई? यहीं मुमुक्षु भ्रमित हैं। जितना भ्रम है, यहीं पर टिका है। हे ज्ञानी! स्फटिक पीला है, यह भी सत्य है और पीला नहीं है, यह भी सत्य है। दोनों भूतार्थ हैं; परंतु एक सौपाधिक है, एक निरुपाधिक है। स्फटिक में परिणमन की योग्यता/सामर्थ्य न होती तो पीला कैसे होता? पुष्प ने पीला कैसे किया? परद्रव्य मुझे विकृत कर रहा है, यह एकांतिक नहीं है। परिणमन की योग्यता स्फटिक में नहीं होती तो पुष्प कर भी क्या सकता था? महाराज! गुस्सा नहीं आता। पिताजी ने डाँट दिया तो भी क्रोध न आए तो समझो कि समझदार है। 24 घण्टे सिर पर हाथ रहे तो कोई भी शांति से रह सकता है। स्फटिक में जैसे विभाव रूप होने की योग्यता थी, वैसे-ही आत्मा में परभावों के निमित्त से विभाव की योग्यता है। यह तो एक पक्ष हुआ। दूसरा पक्ष है कि स्फटिक पीला था क्या? उसका स्वभाव पीला था क्या? पीला तो पुष्प है, स्फटिक तो जैसा है वैसा है। आत्मा में जितने विकारी भाव आ रहे हैं, परभावों के संयोग से/निमित्त से आ रहे हैं। आत्मा तो स्फटिक के समान शुद्ध है। भक्ति का भाव भी शुभ राग-भाव है। अभक्ति का भाव कुभाव है। स्वभाव में विषयों का राग अत्यंत कुभाव भाव है। स्वभाव पर विकार/आवरण नहीं होते। भिन्नत्व-अभिन्नत्व भाव में परिवर्तन नहीं होता। स्फटिक तो स्फटिक है। ध्यान दो, फलीय मणि (स्फटिक) अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होती। परभावों के कारण भिन्नत्व कर रहा है। पर स्वभाव-भाव में स्फटिक कैसी है? जैसी है, वैसी है। पुनः समझिए। तू पुत्र है, कि भाई है, कि भतीजा है, कि नाती है, कि भांजा है? बोलो, आप क्या हो? मैं तो मैं हूँ। ये सब संबंध हैं। जितने संबंध हैं, सब पर-सापेक्ष हैं। मैं तो मैं हूँ, निरपेक्ष है। तू एक है। मैंने तुझे खड़ा किया, तेरे माता-पिता प्रसन्न हो रहे हैं, कि मेरा बेटा खड़ा है। समाज के सारे-के-सारे जीव तुझे देख-देखकर संतुष्ट हो रहे हैं और तेरे अंदर नानापने को, नानत्व भाव को देख रहे हैं। पर तू एक हैं। आप संतुष्ट होना चाहते हैं, हो लीजिए। मेरे कर्म-नोकर्म को निहार कर कोई पुत्र कह रहा है कोई भांजा,

नाती कह रहा है। यह सब राग से निहारकर, नानारूपत्व से देख रहे हैं। पर मैं एक हूँ। मैं तो-

अहमिक्को

जो मैं एक हूँ वह मेरा स्वभाव है। जो नानत्वपना है, वह विभाव है। समझ में अया कुछ? ऐसा समझ में आ जाए तो सारे विसंवाद समाप्त हो जायें। संबंध मेरे लिए नहीं, मेरे में नहीं हैं। संबंध गैरों के लिए हैं, गैरों के हैं। मैं तो एक हूँ। जब आँख खुलती है, संबंधों पर जाती है, तो वही विभाव धारा प्रवाहित हो जाती है। जहाँ संबंधों से हटकर स्वयं पर दृष्टि जाती है, तो वैराग्यधारा है। संबंधों में विभावधारा/रागधारा ही बहेगी। स्वभाव में वैराग्य-धारा-वीतराग-धारा ही बहेगी। मन की विशुद्धि नष्ट हो चुकी है। एक बार दृष्टि जाने के बाद दृष्टि गई, तो विशुद्धि समाप्त। अब तुम वो नहीं बचे, जो तुम आए थे। ऐसी सूक्ष्म धारा का चिंतन करो। वह नहीं हो जो किशोर थे। सुख-विषय का बढ़ गया है, पर शांति तेरी नष्ट हुई है। लगता है कि सुख बढ़ रहा है, पर यथार्थ यह है कि शांति घट रही है। सौपाधिकपने में सुख कैसा? हे भगवानात्मा! सौपाधिक दशा में शांति नहीं है। दृष्टांत दूँ क्या? शीतल पानी शांत दिखता है, खौलते पानी में बबूले उठते हैं। चेहरा दिखाई देता है क्या? मन उबलता है तो कहाँ भगवानात्मा? भगवान की प्रतिमा भी नहीं दिखती। उनने ऐसा कहा कैसे? यह सौपाधिक दशा है। धर्म-धर्मात्मा तभी तक सामने दिख रहे हैं, जब-तक तुम अपने स्वभाव में हो। कोई कुछ कहे कि हो गया धर्म, तो प्रेम से कहना अभी है तू गर्म, जब ठण्डा हो जायेगा तो कहेगा 'सत्य है धर्म।' ज्ञानी! गर्म दूध में जामन नहीं डाला जाता। जामन भी हल्के ठण्डे दूध में डाला जाता है। तत्त्वज्ञान भी गर्मागरम में नहीं देना। ठण्डा हो तब देना, अन्यथा जिनवाणी का अविनय कर देगा। सौपाधिक दशा नहीं, निरुपाधिक दशा स्वभाव है। जिस शासन में परमात्मा को भी परद्रव्य कहा हो, तो राग को निज द्रव्य कैसे कह सकते हैं? जब परमात्मा का राग मुझे परमात्मा नहीं बनने देगा, तो विषयों का राग भगवानात्मा कैसे बना देगा? पहले विषयों से हटो, जब वीतराग दशा को प्राप्त कर लो, जब निर्विकल्प ध्यान में लीन होकर अद्वैत भाव में लीन होगे, तो परमात्म-भाव का भी अभाव होगा। द्वैत/अदैत भिन्न-भिन्न का जोर रहे तो द्वैतभाव है, अभिन्न भाव अद्वैतभाव है।

परमात्मा की भक्ति में परमात्मा हैं भिन्न, मैं भिन्न हूँ। द्वैत भक्ति है, द्वैत भाव है। अपनी निज आत्मा में निज स्वभाव में लीन होना अद्वैत भक्ति, अद्वैत भाव है। अद्वैतवादी मिथ्यादृष्टि है, द्वैतवादी भी मिथ्यादृष्टि होता है। हम द्वैताद्वैतवादी हैं। स्यात् द्वैतवादी, स्यात् अद्वैतवादी। कथंचित् द्वैतवादी हैं, कथंचित अद्वैतवादी हैं। एकांतवादी नहीं हैं। एकांगी द्वैतवाद मिथ्यात्व है। एकांगी अद्वैतवाद भी मिथ्यात्व है। हम उभयवादी है। उभय एकांतवादी भी नहीं हैं। व्यवहाराभासी, निश्चयाभासी, उभयाभासी इन आभासों से दूर रहना।

अब आचार्य जयसेन स्वामी से मिल लो। हे स्वामी! इन गाथाओं के बारे में आपका क्या मंतव्य है? 20-21-22 तीन गाथाओं की टीका चल रही है। कोई अप्रतिबुद्ध ही कहेगा कि ईंधन अग्नि होती है, अग्नि ईंधन होता है, ईंधन अग्नि थी, अग्नि ईंधन था, ईंधन अग्नि होगी, अग्नि ईंधन होगा। इस प्रकार तीनों कालों में, देहादि से, निजात्म द्रव्य को जोड़ता है। 'यह मेरा बेटा है' यह क्या है? परद्रव्य से निज को जोड़ना है। ज्ञानी! यही विभाव भाव है। अहो! मेरे एकीभाव में भी रागी कितने रूप देख रहा है। मैं एक हूँ। यहाँ इन प्रशम सागर महाराज जी की माँ आ जायें तो ऊपर से तो कहेंगी, नमोस्तु-नमोस्तु, कोई पूछ ले कौन हैं तो कहेंगी, मेरा बेटा है। मित्र तुझमें मित्र देखेगा। भाई, भाई देखेगा। तू मुनि मात्र देखेगा। संबंधियों के साथ निर्मल संबंधों में भी सदोष भाव है। बिना संबंध के निहारोगे तो मात्र मुनि दिखेगा। जितनी निर्जरा तू कर रहा है उतनी माँ नहीं कर रही है। तू देख रहा है कि हमारे धर्म के मुनि हैं। इसमें भी राग है।

अमरावती में एक महाराष्ट्रीयन बालक द्वार पर खड़ा था। हम लोग वहाँ से निकल रहे थे वह कहता है- 'आई','आई'! इधर आओ, देखो, जैनों के भगवान जा रहे हैं। भैया विश्वास रखना, एक क्षण को बालक के शब्दों ने स्तब्ध कर दिया। इस बालक ने युवा, मुनि नहीं देखा, मात्र मुद्रा में भगवान को देखा। लगा, यह मेरा रूप नहीं, यह तो भगवान की मुद्रा है। बालक के परिणाम कैसे थे? साधुओं से अपरिचित रहोगे, तो साधु में मात्र मुनि दिखेगा। ज्यादा परिचय होगा तो अपने-अपने मुनि देखेंगे। जितने अपरिचित रहोगे तो उतनी भक्ति प्रशस्त रहेगी। ज्यादा परिचय होगा तो राग आयेगा। कोई कमी दिखेगी तो विकार आयेगा। अतः दूरी बनाकर रखो। मुमुक्षु! रोटी कहाँ सिकी? अग्नि पर। रोटी जली कहाँ? वह भी अग्नि पर। बात है, सिकती भी है अग्नि पर, जलता भी है अग्नि पर। समझो, ऐसा क्यों? कौन जलती है अग्नि पर? हे मुमुक्षु! ध्यान दो। अग्नि पर रखकर माँ से पूछना कि जलती कब है, सिकती कब है? माँ रोटी घुमाती रहे तो सिक जायेगी और अग्नि पर रख देगी तो जल जायेगी। गुरुचरणों में, पंचपरमेष्ठी के पास में आते रहोगे तो सिक जाओगे। यहीं जम जाओगे तो जल जाओगे। मंदिर में सुबह से आते हो तो भक्ति से आते हो। 24 घंटे रहोगे तो प्रमाद आयेगा, तो जलना शुरू। 24 घण्टे भक्ति से रहो तो ही रहना। यह भावना कि मेरी वेदी, मेरा मंदिर, तो जलना शुरू।

अग्नि के तीन गुण हैं- दाहकत्व, पाचकत्व, प्रकाशत्व। प्रयोग करो, जैसे करना है। लकड़ी को दाहकत्व है। रोटी को पाचकत्व है। अंधेरे में प्रकाशकत्व है। अग्नि एक है। तीन रूप हो रहे हैं। माँ खुश हो रही है कि, पुत्र नाम रोशन करेगा, प्रकाश करेगा तो तुझमें, प्रकाशकत्व है। कोई तुझे देखकर राग कर रहा है, दाहकत्व है। कोई तुझे देखकर प्रमुदित हो सोचे कि कितना सुन्दर लड़का है, धर्म सुन रहा है, तो उसके कर्म पच रहे हैं, तो तुझमें प्राचकत्व भी है। परमेष्ठी के पास भी जलने के लिए नहीं, सिकने

के लिए जाओ। किंचित भी भाव इधर-उधर हुए तो जलना प्रारंभ।

जयसेन स्वामी ने उन विषयों को स्पष्ट किया है, जिन्हें दो पूर्ववर्ती आचार्यों ने नहीं किया। देहादि में निज को जोड़ता है, वह बहिरात्मा, मिथ्याज्ञानी होता है। यह परद्रव्य मैं हूँ, यह परद्रव्य मेरा होता है, मेरे संबंधी होते हैं, मैं संबंधियों का हूँ। देहादि से भिन्न, पुत्र, कलत्र आदि, ये तो देह से ही भिन्न हैं। आत्मा को आत्मा से अभिन्न मानें, ऐसे अज्ञानी तो हैं ही। जो परदेह को भी आत्मा से अभिन्न मानें, तो ऐसे अनेक हैं। साक्षात् खड़े हैं, कहते हैं 'महाराज! हम मित्र हैं। शरीर भिन्न है, आत्मा एक है।' हे मिथ्यादृष्टि! तू एक रोयेगा तो दूसरा भी रोयेगा। एक जहर खायेगा तो मरेंगे दोनों। मिथ्या भाषण छोड़ दो। यह राग की कथा है।

एक सज्जन आए, 'महाराज! कष्ट में हूँ। अपनी तपस्या का फल दे दो।' मेरी तपस्या दे दूँ, तेरे विषय-भोग में लगाने के लिए? महाराज! मेरे नाम की एक माला फेर लेना। अरे! फिर मैं भगवान के नाम की माला कब फेरूँगा? रागियों के राग में आ जाये तो साधना शून्य। यह जैनदर्शन है। जल ढारा और सवा रूपैया वाला दर्शन नहीं है। महाराष्ट्र में पैठन में मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा है। कहते हैं रावण ने स्थापित की थी। उस पर लोग तेल चढ़ाते हैं शनि ग्रह टालने के लिए। मैं दो वर्ष पहले वहीं था। दर्शन कर रहा था। भोपाल से लोग पहुँचे। पुजारी बोला कि तेज चढ़ाने से शनि शांत होता है। दम्पत्ति आश्चर्यचकित कि ऐसा भी होता है क्या? हाँ। लेकिन आज शनिवार नहीं है। आप पैसे दे दो। शनिवार को मैं तेल चढ़ा दूँगा। आहा! नया मिथ्यात्व। यह जैनदर्शन नहीं है। मैंने पुजारी से पूछा कि शनि टरते हैं क्या? पुजारी कहता है कि उनके शनि टरें या न टरें, हमारे तो टर गए। यदि दूसरे करने लगें, तो स्वयं के किए कर्म कहाँ जायेंगे?

'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' की टीका में आचार्यमहाराज ने कहा है- अरिहंत की पूजा, निर्ग्रंथों को दान और संतान को जन्म कभी नौकरों से नहीं करवाया जाता। नौकरों से संतान को जन्म दिलवाओगे तो संतान किसकी होगी? अरिहंत पूजा, और निर्ग्रंथ को दान देने नौकर नहीं लगाए जाते। अपने हाथ से करना पड़ता है। यह है सत्य मार्ग। लोग भूल गए हैं। बड़े-बड़े तीर्थ बना लिए लेकिन पूजा करने नहीं जाते। दान की, द्रव्य की पेटियाँ रख जायेगा। नहीं, स्वयं पूजा करनी चाहिए। चरणानुयोग इतना विकृत हो गया तो द्रव्यानुयोग की क्या कहना।

पुत्र, कलत्र आदि परद्रव्य हैं। सचित्त, अचित्त, मिश्र तीन प्रकार का परिग्रह है। गृहस्थ अपेक्षा से स्त्री, पुत्रादि सचित्त परिग्रह है। सोना, चाँदी, गृह, भवन आदि अचित्त परिग्रह है। सोना, चाँदी से युक्त स्त्री आदि मिश्र परिग्रह है।

तपोधन की अपेक्षा, शिष्यादि सचित्त परिग्रह है। पुस्तक, पिच्छि, कमण्डलु आदि अचित्त परिग्रह है। ऐसा नहीं कि आहार की अलग पिच्छि, विहार की अलग पिच्छि, निहार की अलग पिच्छि, विहार का अलग छोटा कमण्डल, निहार का अलग कमण्डल। जब एक परिग्रह है तो बहुत सारे कैसे रखोगे? पिच्छि-कमण्डलु उपकरण हैं, तो भी परिग्रह कहा जा रहा है और यदि मोबाइल आदि होंगे, तो तीव्र पापकर्मबंध होगा। आज नियम लो कि ऐसी सामग्री संयमी की नहीं दूँगा जो संयम के विरुद्ध हो।

द्रव्यं तदैव देयं सुतपः स्वाध्यायवृद्धिकरम्।। 170 पु. सि.।।

ऐसा द्रव्य देना जिससे तप, स्वाध्याय की वृद्धि हो। ऐसा द्रव्य नहीं देना जिससे कि धर्म की अप्रभावना हो, तप में कमी आए। देखो! ये महाराज हाथ पर हाथ रखे कितने सुन्दर दिखाते हैं और हाथ कान पर हों तो कैसे लगेंगे? महाराज के तो फोटो भी प्रशस्त मुद्रा वाले होने चाहिए। हँसते-मुस्कुराते फोटो नहीं देना। कोई अभिनेता की फोटो है क्या? अनावश्यक पिच्छि, कमण्डल को रखने को परिग्रह कहा है। आवश्यक है, तो-भी परिग्रह ही है। फिर आप स्वयं समझदार हो। पिच्छि-कमण्डलु से रहित होकर ही मोक्ष होता है और इसको लिए बिना भी मोक्ष नहीं होता। इसके साथ भी मोक्ष नहीं होता। यही निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी का भ्रम है। पिच्छि-कमण्डलु ले लिया, सबकुछ छोड़ दिया, घर गृहस्थी छोड़ दिया, फिर भी परिग्रह है। क्यों? राग है। पहले ऊपर के छोड़ो, फिर अंदर के छोड़ो। अचित यानि द्रव्यकर्म, सचित यानि भावकर्म। दोनों परिग्रह हैं।

जो विषय-कषाय से रहित परम योगीश्वर की अपेक्षा से सिद्ध-परमेष्ठी का चिंतन कर रहे हो, नमोस्तु, नमोस्तु सिद्ध भगवन्, नमोस्तु अरिहंत भगवन्! यह भी परिग्रह है। यह सचित्त परिग्रह है। जीव स्थान छोड़कर पाँच द्रव्य अचित्त परिग्रह हैं। मिश्र परिग्रह तो नाम कर्मबंध, गुणस्थान, मार्गणास्थान जीव और पुदगल की मिश्र दशा है, इसलिए यह मिश्र परिग्रह है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

नमोस्तु शासन में आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ऐसे महान आचार्य हुए, जिन्होंने ध्रुव आत्मा के सत्यार्थ स्वरूप की प्ररूपणा की। संयोग को संयोग कहकर, सहज स्वरूप का जो कथन किया, वह अलौकिक है। मिश्रण कितना भी हो, पर यह मिश्र-भाव स्वभाव न हुआ न होगा। अज्ञानी मिश्रधारा को ही अमिश्र-स्वरूप समझता रहा। आत्मा का भिन्नत्व भाव शीघ्र ही समझ आता है। ये हंस इस देह में विराजा है, तब-तक सब हलन-चलन व खान-पान की क्रिया है। हंस गया, तो सड़ना प्रारंभ। तात्पर्य, जो आत्मा को नहीं मान रहा है वह भी मानता है कि कोई वस्तु अवश्य है जिसके प्रयाण से शरीर विकृत वस्तु परिवर्तित होने लगी। समझ आता है कि वस्तु स्वतंत्र है। असमान जाति है शरीर में आत्मा की। शरीर का उत्पाद-व्यय और आत्मा का उत्पाद-व्यय युगपद् चल रहा है, फिर भी भिन्न-भिन्न है। निहारिये, मैं जीवद्रव्य हूँ। शरीर तो शरीर है। ज्ञानी! इस शरीर में परिणमन हो रहा है। ज्ञानी! कभी तू सुकुमाल था, शिशु था, किशोर हुआ। आज 23 वर्ष का युवा दिख रहा है। शरीर के अंदर कितना परिणमन हो रहा है? सुकमारता गई, कठोरता आई, यह देह का परिणमन है। अंतरंग में भावों में परिणमन चल रहा है।

इस अंतरंग परिणमन में शरीर का परिणमन भिन्न है। तेरे परिणामों का परिणमन तेरे हाथ में है, पर तेरी पर्याय का परिणमन तेरे हाथ में नहीं है। मंदिर आने के परिणाम तूने किए। सिनेमा जाने के परिणाम भी कर सकता था। इसमें तू समर्थ था। शरीर का परिणमन रोकने के लिये तेरे पास कोई शक्ति नहीं है। शुभ से अशुभ, अशुभ से शुभ भावों पर हमारा पुरूषार्थ चलता है, परन्तु भव पर कोई पुरूषार्थ नहीं चलता। नहीं समझ आया? ज्ञानी! मैं अपने परिणामों को बदल सकता हूँ। यदि न बदले जाते, तो कभी परमात्मा नहीं बनते। भावों का उत्कर्ष हमारे हाथ में है। भव के विघटने, शरीर के विघटने में कोई पुरूषार्थ नहीं चलेगा। निश्चित समय पर भूत-भूत में मिल जायेंगे। भगवानात्मा! जिस तन पर पुरूषार्थ नहीं चल सकता, तो उस तन पर पुरूषार्थ करना वृथा है। जिस पर पुरूषार्थ चल सकता है, उस पर चलाना चाहिए, तो भगवान बन जायेगा। तुझे अपनी तीनों पर्यायें याद हैं। क्यों, भैया? कभी तेरा चेहरा हरा था। क्या बचा पाये? माँ के आँचल का पान किया, पिता के हाथ की छाया में रहा, फिर भी सुन्दर बनावट बचा नहीं पाया। देखते-देखते विलीन हो गई। रोका नहीं जा सकता। परिणामों की सुन्दरता को रोके रखता तो तू भगवानात्मा बन जाता। चेहरावान भगवानात्मा है, उसे सुरक्षित किया जा सकता है,

पर देह को नहीं बचाया जा सकता। देही को सुरक्षित किया ही जाता है। भिन्न-भिन्न द्रव्य कोटि वर्ष तक अभिन्न होकर नहीं रह सकते, वे पृथक् होंगे। जो कर्म कोटि वर्ष पूर्व बंधे थे, वे बदल गए।

'अनादि संबंधे च' (त.सू.) यह कर्म-अपेक्षा से हैं।

पुराने कर्म जीर्ण होंगे, अभिनव कर्म बँधेंगे। संतति अपेक्षा कर्म अनादि हैं। तातकालिक अपेक्षा, कर्म सादि हैं। आप इस भव की अपेक्षा सादि हो, अनंत भवों की अपेक्षा अनादि से हो। आत्मा अनादि से बंधन में है। भव्य के न सादि कर्म बचेंगे, न अनादि कर्म बचेंगे। भवितव्यता की पहिचान क्या है?

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य के साथ मायाचारी रहित आस्था है तो भवितव्यता निर्मल है। जो-जो अभव्य है, वह मिथ्यादृष्टि ही होगा। भव्य मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है, सम्यग्दृष्टि भी। जैसे गाय के सींग से दुग्धधारा नहीं निकलती, वैसे ही अभव्य जीव की भवितव्यता प्रकट नहीं होती। कछुए के पीठ के बाल किसी के काम में आयेंगे क्या? जिस दिन वे काम में आयेंगे, उस दिन देह तुम्हारे साथ चली जायेगी। यदि कुछए के पीठ के बाल काम न आते तो, तन पर राग रखने वाली आत्माओं! इस तन के एक अंश को भी अपने साथ नहीं ले जा पाओगे। आचार्य जयसेन स्वामी सहज भाषा में समझा रहे हैं कि न सचित्त परिग्रह, न अचित्त परिग्रह, न मिश्र परिग्रह कुछ काम नहीं आयेगा। राग ही कर पायेगा, बंध ही कर पायेगा, साथ नहीं ले जा पायेगा। परद्रव्य के राग में बंध ही कर पायेगा, बंध ही कर पायेगा, साथ नहीं ले जा पायेगा। परद्रव्य के राग में बंध ही कर पायेगा। यह पोटली क्रोध करके नहीं मिली, पूर्व पुण्य दिख रहा है। वर्तमान में जो है, वह भी भविष्य के लिए अप्राप्य है। भवन, कोठियाँ हैं लेकिन जिस दिन जायेगा तो हाथ खाली करके जायेगा। समझदार लोग हाथ देखेंगे, कुछ ले जा रहे हो कि नहीं? मोबाईल की सिम, सी.डी. यहाँ रख दो, कुछ दिखाई नहीं देता। लेकिन उसमें अनेकानेक अक्षर, अनेकानेक तरंगें भरी होती हैं। भगवती आत्मा हाथों में कुछ नहीं ले जाती, वह पुण्य-पाप की वर्गणाएँ ले जायेगी। अगले जन्म में दिखेगी कि क्या-क्या किया था।

आचार्यों ने कितनी करुणा की, कितनी अलौकिक बातें लिखकर गए। अन्यथा हम कहाँ होते। गद्दी पर बैठे जिह्वा से पता नहीं मिथ्यात्व की पुष्टि करते होते। सुन, तेरा पंचमकाल का यही पुण्य समझना कि खोटे काल में जिनवाणी सुनने को मिल रही है।

गाथा का अर्थ जयसेन स्वामी कर रहे हैं। जगत में जितने द्रव्य हैं, वे पूर्व में मेरे थे और मैं भी पूर्व काल में इनका था और भविष्य में भी ये मेरे हों और मैं इनका होऊँ। हों अथवा न हों, लेकिन पापास्रव तो हो रहा है। माँ! तू शाम को घर में बैठी साग छील रही थी, सोच रही थी कि शाम से बनाकर रख लेती हूँ, कल बहुत काम है। हे माँ! क्या आवश्यक है कि सुबह खा पायेगी? लेकिन खा पाओगे या नहीं

खा पाओगे ध्रुव सत्य है पाप का भोग तुम्हें करना पड़ेगा। रात्रि में ही छोड़कर त्याग करके सो जाते तो कर्म से बच जाते। बहुत सारे काम हैं जो एक दिन तो दूर, जिंदगी त्याग करके सो जाते तो कर्म से बच जाते। बहुत सारे काम हैं जो एक दिन तो दूर, जिंदगी में भी पूरे नहीं हो पायेंगे। तो त्याग ही कर देते। किसी से झगड़ा हो जाएँ तो कहता है कि सारे ऊपर चले जायें। वे जायें या न जायें, तेरे पुण्य का द्रव्य जरूर ऊपर चला जाता है। बंध-अपकर्ष का काल आ जाता तो ....? महामत्स्य के कान में स्थित तंदुल मत्स्य से पूछना। स्वयंभूरमरण समुद में महामत्स्य होता है। 1000 योजन लंबा, 500 योजन चौड़ा, 250 योजन मोटा। वह छह माह सोता है, तो उसका मुख खुल जाता है। इतना बड़ा मुख कि पूरी शिवपुरी मुख में बस जायेगी। कई जलचर जीव आते-आते रहते हैं। वह तंदुल मत्स्य कहता है कि कितने जीव आ जा रहे हैं, यह सो रहा है। मैं एक को भी नहीं छोड़ता। वह पापी तंदुल मत्स्य एक दाना भी नहीं खाता। उसका भोजन ही है महामत्स्य के कान का मल खाना। महामत्स्य छह माह जागकर जीव खाता है तो उस पाप से 7वें नरक जाता है। तंदुल मत्स्य, अपध्यान करते-करते 7वें नरक जाता है। चाहे पाप करो या न करो, पाप की आकांक्षा भी नरक का बंध करा देती है। इतना विचारो कि जिन पापों को करने की सामर्थ्य नहीं, तो उनका तो त्याग कर दो। क्या इस भव में चक्रवर्ती, राष्ट्रपति बनना हैं? नहीं न? तो त्याग दो। कर लो कायोत्सर्ग। यह भी एक महान त्याग है आकांक्षा नहीं कि इस भव में चक्रवर्ती बन जाऊँ, तो तत्संबंधी संक्लेश समाप्त। सारे प्रपंच बैर बढ़ाने वाले हैं। राग में न आ जाना। किसी के काम में आयेंगे क्या? जिस दिन वे काम में आयेंगे, उस दिन देह तुम्हारे साथ चली जायेगी। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के राग में मत आ जाना। बहुत बनने वाले मिलेंगे। तो अपन को तो निर्दोष संयम पालन करना है। समयसार सुनते-सुनते भी अभी तू नारकियों की, देवों की हिंसा कर सकता है क्या? नहीं। तो नियम ले लो। नारकी/देव का वध नहीं करूँगा। नारकी का, देव का वध करने भी नहीं जा सकता। टी.वी. में मैच चल रहा था। तेरा न कुछ गया, न आया। मैच देखा, पटाखे फोड़ रहा था, हिंसा की। बैठे-बैठे कितना दोष किया। पद्मपुराण का स्वाध्याय चल रहा था, रावण का वर्णन चल रहा था, नरक की त्रास का वर्णन निकला तो कहता है कि बहुत अच्छा हुआ, स्त्री हरण किया था तो अच्छा हुआ, ऐसा ही होना चाहिए था। तो इस तरह नारकी की हिंसा का दोष लगता है। मित्र देव बन जाए, तुझे ईर्ष्या सताने लगे कि देव कैसे बन गया? यह दोष है। धन्य हो जिनशासन। नमोस्तु शासन जयवंत हो जिसमें नारकियों की हिंसा का भी निषेध हो। अभी नियम कर लो ताकि याद रहेगा कि समयसार में कुछ सीखा है। एक प्रतिज्ञा और कर लो, निज आत्मा की हिंसा नहीं करूँगा। जिसने यह नियम ले लिया, उसने जगत में महाव्रत ले लिया। काषायिक भाव निज हिंसा है। निज हिंसा का त्याग तो कर कभी।

यस्मात् सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम्।
पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तरणं तु।। 47 पु. सि.।।

जो जीव कषाय से युक्त होता है, उस समय अपनी आत्मा से अपना ही घात करना है। जितनी कषायी हैं, सब कसाई ही हैं। कसाई तो छुरी/कटार से दूसरे पर घात करता है, पर तुम तो ऐसे कसाई हो जो निज आत्मा का घात कर रहे हो। अब बचकर रहना। कषायियों से दूर रहना चाहिए। चाहे कषाय रागरूप हो, चाहे द्वेषरूप हो, कषाय तो कषाय ही है। जीवन के किसी क्षण में याद आ जाये कि कषाय तो कषाय है। जो करेगा, वह कषायी ही होगा। कषाय करने वाला तो कषायी ही है। जो कषाई है, वह तो कषायी ही है। तो आत्मा का स्वरूप है?

'अकषाय स्वरूपोऽहम्, चिदानंद स्वरूपोऽहम् परमानंद स्वरूपोऽहम्।' मेरी आत्मा का ध्रुव स्वभाव अकषाय-भाव है। कषाय-भाव आत्मा का स्वभाव नहीं है।

इसलिए कषायभाव वोस्सरामि, अकषाय भाव परिवज्जामि। कषाय भाव का त्याग करता हूँ, अकषाय भाव को धारण करता हूँ। वीतरागी तपोधन प्रतिक्षण भावना करते हैं, कि अकषाय भाव की प्राप्ति हो जाये। वसन उतारना ही पर्याप्त नहीं। मकान बनाना ही सब कुछ नहीं। सफाई प्रतिदिन करते हो कि नहीं? निर्ग्रन्थ भेष भवन है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान द्वारा निज की सफाई करते हैं। बिना कषाय के मोहत्व/ममत्व भाव होता नहीं। जहाँ-जहाँ ममत्व है, वहाँ-वहाँ नियम से कषाय है। कोई कितने भी बहाने बनाये, जो है सो है। जिसके प्रति राग हो तो स्वप्न में, व जागते हुए वही दिखता है। मरते-मरते वही दिखता है। निदान करता है कि मुझे यही फिर से मिल जाये। राग मत करना, प्रेम/वात्सल्य से रहना। जितना राग करता है, तो उसके जाने पर उतना ही दुःखी होता है। चित्त में किसी की तस्वीर अंकित मत कर लेना अन्यथा परेशान हो जाओगे। करना है तो मात्र परमात्मा की तस्वीर अंकित करना। नहीं- तो दिन-रात चिंता करता है कि कहाँ गया? जो गया, तो गया, अगली पर्याय में सुखी हो गया, तुम यहाँ रो रहे हो। मुस्कुराते-मुस्कुराते रहो, जाते-जाते मुस्कुराकर जाओ। प्रेम से आये थे, प्रेम से जाओ। न जब आए थे तब हमारे थे, न जब गए तब हमारे थे। जब मैं एक घर में आया तो कहीं से रुलाकर आया था। संघ यहाँ आया तो कैसा लगा? झाँसी वालों से पूछो। तेरी माँ तेरे पिता के घर में आई तो तेरा पिता हँस रहा था, माँ की माँ रो रही थी। इसी पर्याय में दिख रहा है। जब यह जीव कहीं आयेगा, तो कहीं से जायेगा कि नहीं जायेगा? नई बात हो रही है क्या? पुरानी है, तो रोते क्यों हो? माताओ! रोने-धोने का ढोंग क्यों करती हो? हे माँ! मरना सत्य है, कि असत्य? जन्म लेना सत्य है, कि असत्य? मरने पर रोना सत्य है, या असत्य? असत्य है। फिर असत्य के लिए रोना क्या? आज से असातावेदनीय कर्म का आस्रव छोड़ो। नाटक के पात्रों को भी आँसू बहाते देखा, तो भी आस्रव। धोखे से भी आँख से आँसू

गिराया, तो भी आस्रव होगा। पता नहीं आँखों में कितना पानी भरा है, जरा-से में टपकते हैं। ज्ञानी! सबसे ज्यादा हाथ-पैर कौन से मौसम में टूटते हैं? बारिश में। जितना पानी गिरता है, उतनी फिसलन होती है, तो हाथ-पैर टूटते हैं। जितना आँखों से पानी गिरता है, तो उतने ही फिसलते हैं और संयम के हाथ-पैर टूट जाते हैं।

दुःखशोकतापाऽऽक्रन्दन-वध-परिदेवना-न्यात्म
परोभय स्थानान्यसद्वेद्यस्य।। 11/6 त. सू.।।

इस सबसे असातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है। कर्म-विपाक में दुःख होगा। तू जानकर दुर्बद्धि होकर आस्रव बुला रहा है। बुद्धि के विचार किए बिना रोना नहीं आ सकता। अध्ययन करो कि आँसू पहले आया, कि मन पहले बिगड़ा? अध्ययन की जरूरत है। बेटा गर्भ में पहले आया, कि आँचल में दुग्ध पहले आया? राग के, क्लेश के आए बिना आँखों में आँसू आ नहीं सकते। अध्ययन करें, क्योंकि हम ऐसे नहीं मानते। दर्शनशास्त्र पढ़नेवाला ऐसे-ही कोई बात नहीं मानता। कारण होता है, बिना कारण कार्य नहीं होता। आँखों से आँसू हृदय के कुछ का सूचक है। इष्ट वियोग से, अनिष्ट संयोग से भी आता है। आँसू आयेगा तो असाता का आस्रव होगा। इष्ट के मिलने में प्रसन्नता के भी आँसू नहीं बहाना। जितने अंश में क्लेश, उतने अंश में असत बंध है। जितने अंश में श्रद्धा, तो बंध नहीं। जितने अंश में रागांश है, उतने अंश में बंध अवश्य है। यह मत सोचो कि घर की व्यवस्था क्या होगी? परिणामों की व्यवस्था क्या होगी? घर की व्यवस्था देखते-देखते पंचमकाल में आ गए। अब क्या छटवें काल में जाना है? जहाँ अग्नि का भी अभाव होगा, एक हाथ के आदमी होंगे, एक दूसरे को कच्चा खायेंगे, सब नियम से नरक जायेंगे, ऐसे काल में जाना है क्या? नहीं है, तो जगत की चिंता छोड़ो।

उत्तमा स्वात्मचिंतास्यान्मोहचिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंतास्यात्, परचिंताऽधमाधमा।। 4 प. स्तो.।।

80 वर्ष के दादा को अब किसकी चिंता? जितनी चिंता पर के प्रति है, उतनी स्व की है क्या? ज्ञानी! आत्मानुशासन को कितना देखता है? आत्मा का कल्याण तो आत्मानुशासन से होगा। निज लक्ष्य को ध्यान में रखना भूल मत जाना। त्रैकालिक रागदशा अज्ञानी की दशा है। कालत्रय संबंधी समय का आत्म विकल्प को अल्पधी जीव कर रहा है। अशुद्ध निश्चयनय से जीव परिणाम करता है। वह (सम्यक्मूढ़ा) अच्छी तरह से मूढ़ है। जो पर द्रव्य में राग कर रहा है, वह अज्ञानी बहिरात्मा है।

मैं सुखी-दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।

मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं रंक हूँ, मैं राव हूँ। यह सारे विकल्प बहिरात्मा में जन्म से रहते हैं।

जो भूतार्थ यानि निश्चयनय को जानता है, वह ऐसे विकल्पों को नहीं करता। सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा होता है। सम्यग्दृष्टि को ही ज्ञानी कहो। जो पर में आत्मबुद्धि रख रहे हैं, वे सब अज्ञानी हैं। ज्ञानी! कितने संबंध हैं तेरे और तू कितना है? संबंध किसके हैं? संबंध पर्याय के हैं, पर्यायी के नहीं हैं। ऐसे-ऐसे युवा ज्ञानी लोग भी हुए हैं। ऐसे जीवों की स्मृति करो। लोगों की मोहवृत्ति छूटे। भोपाल के एक व्यक्ति थे, उनके 21 साल का बेटा था, वह केंसर से पीड़ित हुआ। माँ रो रही है, पिता फुस-फुसा रहा है। बेटा कहता है, 'माँ! जन्म दिया था तो मुस्कुराई थी। जाते समय अपशकुन क्यों कर रही हो? 21 वर्ष पाला है, तो इतना कर दो, कि णमोकार सुनाओ।' माँ मुझसे कह रही थी, महाराज! मैंने आँसू पोंछ लिए। वह माता-पिता को समझा रहा था कि कुछ न कहो, णमोकार सुनाओ। धन्य हो बेटे के धैर्य को। धन्य हो माता-पिता को जिन्होंने बेटे की बात मानकर णमोकार सुना दिया। हंसात्मा ऊपर चली गई। भाग्य था। बिरलों को ही मिलता है। एक और घटना है। डॉक्टर ने कहा- छः घण्टे शेष बचे हैं। मैं नगर में था, लोगों ने कहा कि महाराज के पास ले चलो। वह बोला- नहीं, डॉक्टर के पास ले चलो। बड़ा भैया आता है। यह तो जाने वाला है, डॉक्टर ने कहा है। कहता है, 'मैं भोजन करके आता हूँ। जब-तक मैं आऊँ, इनको णमोकार सुनाना।' पत्नी ने नहीं सुनाया। व्रतियों की पुत्री, विद्वानों के भैया सब काम नहीं आए। अशुभ उदय हो तो णमोकार सुनाने वाला नहीं मिलता। सिरहाने बैठी रोती रही, णमोकार नहीं सुनाया। बारम्बार यही कह रहा हूँ। समयसार तो पूरा हो जायेगा। इतना विवेक आ जाये कि स्व के मरण में, और पर के मरण में आँसू नहीं, णमोकार सुनाना सीख जायें। तिर्यंच ही क्यों न हो, णमोकार सुनाना। जीवधंर ने कुत्ते को णमोकार सुनाया तो यक्ष बनकर काम आया। श्रीराम के जीव में सुग्रीव के जीव को बैल की पर्याय में णमोकार सुनाया, तो वह काम आया। पानी पिला न सको, परंतु णमोकार सुनाने में समय नहीं लगाना। वह ही सुना पायेगा जो 24 घण्टे स्वयं गुनगुनाता होगा। सभी सलाह कर लेना। जिसका समय पहले आ जाए तो णमोकार सुनाने आ जाना। शांति से मरने देना। ऐसा नहीं कि यहाँ से इंजेक्शन, वहाँ से बोतल। 80 वर्ष की उम्र में अस्पताल इसलिए नहीं ले जाते हो कि बच जाए। इसलिए ले जाते हो कि कोई क्या कहेगा? पिता की चिंता नहीं है। हे दादा जी! घर जाकर कह देना- तुम मेरी संतान हो, आत्मज हो, मैंने तुम्हें जन्म दिया, तन दिया, तो अब तुम इतना कर देना, कि अंतिम श्वास योगी के चरणों में, समाधिकरण करवा देना। अन्यथा, तत्त्व-उपदेश सुनने का कोई अर्थ नहीं। अन्त समय में समयसार ग्रंथ की गाथा नहीं, समयसार की शांति काम आयेगी। वहाँ यही कहना-

'तो तेरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी'

कभी-कभी प्रथमानुयोग का चिंतन कर लिया करो। बोधि समाधि का खजाना है तो प्रथमानुयोग है। जियो, खुश होकर जियो। पर जीते-जीते जीना। जी भी रहे हो कि नहीं? धंधे-व्यापार में ऐसे फँसे

कि याद ही नहीं कितनी उम्र निकल गई। यदि सम्यग्दृष्टि है तो, यहाँ प्रमाणपत्र दे दिया। जयसेन स्वामी ने एक-एक शब्द स्पष्ट कर दिया। सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा ही ज्ञानी है। आप तो शास्त्र पढ़ लेते हैं बस। जो भेद-अभेद रत्नत्रय की भावना से युक्त हैं, वे ज्ञानी हैं।

माना कि सुबह-शाम स्वाध्याय कर लिया, पर दिन भर गोरखधंधा किया। कभी समाधिकरण की भावना नहीं आती, तो अज्ञानी है। एक व्यक्ति प्रतिदिन आते हैं, श्रीफल चढ़ाते हैं, धन-संपत्ति मिले यह नहीं कहते। यह कहते हैं कि यह सब उतर जाए, आपके चरणों में समाधि हो जाए। 'भगवती आराधना' में उल्लेख है कि यदि कोई समाधि हेतु चले और रास्ते में मृत्यु हो जाए, फिर भी समाधि हुई है। शिष्य-सदोष चले, गुरु के पास समाधि हेतु चले, प्रायश्चित्त हेतु जा रहा है, रास्ते में मृत्यु भी हो जाए, तो भी निर्दोष मरण हुआ है। भेदाभेद भावना से च्युत जैसे कोई अज्ञानी ईंधन-अग्नि निश्चय से, एकांत से, अभेद से कहता है। ऐसे देहादि परद्रव्य मेरे होते हैं, मैं इनका होता हूँ, पूर्व में ये मेरे थे, भविष्य में होंगे, जो ऐसा कहते हैं, वह अज्ञानी बहिरात्मा हैं।

'देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्व मुधा है'

उसके विपरीत जो है, वह ज्ञानी है, वह सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है। इस प्रकार समझना। अब समझा रहे हैं आचार्य महाराज कि। अज्ञानी व ज्ञानी में भेद जानकर भेदविज्ञान की भावना करना चाहिए, फिर उसी भेदविज्ञान की भावना को दृढ़ करना चाहिए।

जैसे एक राजसेवक पुरुष, कदाचित् ऐसा राज्याधिकारी, शत्रु-राजा से संपर्क करें तो शत्रु अधिक घातक कि अधिकारी अधिक घातक है? लक्ष्मीबाई से पूछो। जब आँख फूटती है तो अपने घर के कुरबों से फुटती है। एक बार छोटे-छोटे पौधे रोने लग गए। बूढ़ा वृक्ष पूछ है, क्यों रोते हो? पौधे कहते है 'दादाजी! एक किसान आ रहा है हमें काटने के लिए।' वृक्ष कहता है 'चिंता मत करो। सिर्फ कुल्हाड़ी होगी तो कुछ नहीं हो सकता। जब-तक हमारी जाति का कोई नहीं है, अहित नहीं होगा। वंश का कोई न हो, तो भेद नहीं खुलता।'

पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किसने किया? भाई ने। गजकुमार पर उपसर्ग करने वाले ससुर थे। सुकुमाल, सुकौशल पर भी माँ, भाभी ने उपसर्ग किया। इतिहास साक्षी है। घर के लोगों से बचकर रहना। वर्तमान में भी उपद्रव हो रहे हैं, भाई-बंधु ही कर रहे हैं। गुरु, शिष्य में भी उपद्रव हो रहे हैं। इसलिये भिन्नत्व भाव बनाकर रखें। कोई साथ नहीं देगा। सब तुम्हारी श्री को देख रहे हैं। बहु-बेटे आपको नहीं पूछते, श्री को पूछते हैं। कोई किसी का होता नहीं। दृष्टांत चुनकर रखा है आचार्य महाराज जयसेन स्वामी ने। राजा के शत्रु के साथ संसर्ग करता हुआ व्यक्ति राजा का आराधक नहीं है। क्योंकि शत्रु से मिला है।

राजपुरुष, राजा के शत्रु से मिला है तो राजा को घातक है। मेरी आत्मा के परिणाम अरिहंत परमात्मा की आराधना कर रहे हैं। यही परिणाम किसी भिन्न देवी-देवता के चरणों में सिर टेक रहे हैं मिथ्यात्व रागादिक परिणामों में तो वह परमात्मा का आराधक नहीं है। ऐसा समझना चाहिए। जो रोज मंदिर आते हैं, उनसे कहना है यदि तू अंतरंग में मिथ्यात्व का सेवन कर रहा है तो तू आराधक नहीं है। निश्चय से धोखा देगा। आत्मा राजा है, तन शत्रुराजा है। परिणाम तेरा अधिकारी है। मेरे से कहता है; मैं भगवानात्मा, तेरा आराधक हूँ। और राग करता है शरीर से। वैसे-ही जैसे कि विट पुरुष से मिली नारी। अपने पुरुष से कह रही है, कि स्वामी! तेरी हूँ, परंतु पता नहीं कब धोखा दे दे। तन से देव-शास्त्र - गुरु के चरणों में बैठा है, पर मन में मिथ्यात्व (शत्रु) बैठा है।

हे आत्म राजा! अपने सेवकों को कर रखो। कहीं शरीर शत्रु से मिले तो नहीं हैं?

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। आचार्य अज्ञानी को समझाते हैं ।।

संस्कृत छाया - **अज्ञानमोहितमतिर्ममेदं भणति पुद्‌गलं द्रव्यम्।**
बद्धमबद्धं च तथा जीवो बहुभावसंयुक्तः ।। 23 ।।

सर्वज्ञानदृष्टो जीव उपयोगलक्षणो नित्यम्।
कथं स पुद्‌गलद्रव्यीभूतो यद्‌भणसि ममेदम्।।24 ।।

यदि स पुद्‌गल द्रव्यीभूतो जीवत्वमागतमितरत्।
तच्छक्तो वक्तुं यन्ममेदं पुद्‌गलं द्रव्यम्।। 25 ।।
तासत्तो वुत्तुंजे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं।।25 ।।

अन्वयार्थ - (**अज्ञानमोहितमतिः**) अज्ञान से जिसकी मति मोहित है ऐसा (**जीवः**) जीव इस तरह (**भणति**) कहता है कि (**इदम्**) यह (**बद्धं च अबद्धम्**) शरीरादि बद्धद्रव्य, धनधान्यादि अबद्ध परद्रव्य (**मम**) मेरा है। वह जीव (**बहुभाव संयुक्तः**) मोह-राग-द्वेषादि बहुत भावों से सहित है। आचार्य कहते हैं जो (**जीवः**) जीव (**सर्वज्ञज्ञान दृष्टः**) सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया (**नित्यं**) नित्य (**उपयोग लक्षणः**) उपयोग लक्षणवाला है (**सः**) वह (**पुद्‌गलद्रव्यीभूतः**) पुद्‌गल द्रव्य रूप (**कथं**) कैसे हो सकता है? (**यत्**) जो (**भणसि**) तू कहता है कि (**इदं मम**) यह पुद्‌गल द्रव्य मेरा है? (**यदि**) यदि (**सः**) जीवद्रव्य (**पुद्‌गलद्रव्यीभूतः**) पुद्‌गल द्रव्य रूप हो जाये तो (**इतरत्**) पुद्‌गल द्रव्य भी (**जीवत्वम्**) जीवपने को (**आगतम्**) प्राप्त हो जायेगा। यदि ऐसा हो जाय (**तत्**) तो (**वक्तुंशक्तः**) तुम कह सकते हो (**यत्**) कि (**इदं पुद्‌गल द्रव्यम्**) यह पुद्‌गल द्रव्य (**मम**) मेरा है। (किन्तु ऐसा नहीं है)।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ग्रंथराज समयसार जी में अज्ञानी जीव की पहचान का व्याख्यान कर रहे हैं। ज्ञानी जीव, अज्ञानी जीव, दो धारायें जीव की चल रही हैं। पर ध्रुव सत्य है कि जो अज्ञानी है, वह ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानी है। गहरा विषय समझने की आवश्यकता है-

अंतरंग में कषाय भाव के अभाव में कभी पर पर दृष्टि जाती नहीं। जहाँ परदृष्टि होगी, नियम से कषायभाव होगा। जहाँ कषायभाव है, वहाँ अज्ञानभाव है। जो अज्ञान भाव है, वह ही बंधभाव है। कैसी मति अज्ञान से मोहित हुई इस जीव की, ऐसा भ्रमित हुआ है कि निज स्वभाव की पहचान किए बिना पर की गलतीयों की चिंता करता है। यदि कोई एक जीव गलती कर रहा है और उसे देखकर तू भी गलती कर रहा है। तेरे पिता ने तुझे समझाया, कि बेटा! ऐसी गलती मत कर, तो तू कहे कि वह तो करता है। हे ज्ञानी! दूसरे के करने से या न करने से तेरे स्वभाव में क्या परिणमन होगा? किसी को गलती करते देख आप गलती करोगे तो क्या गलती स्वीकृत है? कोई जीव शासन के विरुद्ध काम करे और वह बड़ा अधिकारी हो, तो क्या उसके द्वारा की गई चेष्टा अधिकृत हो जाएगी? जो वस्तु, जो कार्य जिनशासन में स्वीकृत नहीं है, यदि उसे कोई मृदुल चर्या करने वाला साधक करता है, तो उसकी वह प्रवृत्ति स्वीकृत कह देंगे क्या? अधिकृत तो वही है जो जिनशासन में, जिनवाणी में अनुबद्ध है। अज्ञान की महिमा देखिए-

जो जीव कषाय अंश में बैठा हुआ है, उसकी दृष्टि विपरीत चलती है। उसे महसूस होता है मैं अच्छा कर रहा हूँ। तेरा तेरे भैया से झगड़ा हो गया, तब तू कहे कि जो मैं कह रहा हूँ वह सही है। माना कि तू सही है, लेकिन तू कषाय कर रहा है, क्या कषाय सही है? यही भूल चल रही है तत्त्व की। जीव जिसे अधिकार मानता है, यही इसका अनधिकार है। भाई से भाई झगड़ रहा था सम्पत्ति के अधिकार के पीछे, परंतु यह वास्तव में अनधिकार है। तेरा हिस्सा तुझे मिले या न -मिले-मिले, पर कषाय का हिस्सा, बंध का हिस्सा नियम से मिलेगा। आज लड़ रहा है, आगामी पर्याय में क्या होगा? ध्यान रखना, समयसार सुन रहे हो, आँख के बंद होने के पहले अपनी शत्रुता को समाप्त करके जाना। मत करना कोई पंचकल्याणक, मत बनवाना मंदिर, मत छपवाना कोई पुस्तक। बस, भैया। इससे बड़ी कोई साधना नहीं है कि हम किसी को अपना शत्रु बनाकर नहीं जायेंगे।

आपकी भाषा में कहूँ- क्य करूँ, महाराज! अंदर से हूक उठती है। भैया! यह व्यर्थ की हूक मत उठाओ। उठाना है तो वैराग्य की हूक उठाओ, प्रेम-वात्सल्य की हूक उठाओ। ऐसे शब्दों के जाल बिछाओ कि प्रेम-वात्सल्य रहे। ऐसे जाल मत बिछाओ कि प्रेम-वात्सल्य की चिड़िया फँसकर रह जाए। ज्ञानी! आत्मघात भी होता है। जीवन का भरोसा नहीं है, कब आयु का अंत हो जाए, उससे पहले कुछ कर लो।

विष से वेदना से, रक्तक्षय से, श्वांस के विरोध से, अति ठण्ड से, अति गर्मी से, आहार के निरोध से आयुकर्म के निषेक का अपघात भी होता है। ऐसा आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने 'अष्ट पाहुड़' में, आचार्य

नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में इसका कथन किया है। 'तत्त्वार्थसूत्र' के दूसरे अध्याय में भी कथन आया है :-

औपपादिक-चरमोत्तमदेहा संख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।। त. सू.।।

नारकी और देव का अकालमरण नहीं होता। मनुष्य और तिर्यंच का अकालमरण होता है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले (भोगभूमिका) का अकाल मरण नहीं होता। केवली का अकालमरण हो सकता है। घातायुष्क हो जीव, अर्थात् कदलीघात मरण हो सकता है। केले का वृक्ष कभी अपनी आयु पूर्ण नहीं कर पाता। फल आता है तो किसान वृक्ष को हटा देता है। जीवन का कोई भरोसा नहीं है।

इसलिए, ज्ञानी! कितना सँभाल कर रहने की आवश्यकता है। हमारे परिणाम कितने विशुद्ध हों। इसलिए आचार्यभगवन कुंदकुंद स्वामी यहाँ 23-24-25 इन तीन गाथाओं में उस अज्ञानी जीव को पुनः-पुनः समझा रहे हैं। कितनी करुणा से कह रहे हैं- हे जीव! तू मान ले मेरी बात।

अज्ञानी जीव को समझा रहे हैं।

ज्ञानियो! आचार्य कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं- इस जगत में कोई खोटा है तो 'अज्ञान से मोहित मति' साक्षात् तीर्थंकर भी सामने बैठे हों, तो भगवान भी भगवान दिखाई नहीं देते, परमेष्ठी में परमेष्ठी दिखाई नहीं देते।

''अण्णाण मोहिद मदी''

जब इस मति में श्रीमती और श्री का प्रवेश हो जाए, तो मोहित मति है। ज्ञानी! महाभारत, रामायण के पीछे कौन था? आज भी हो रहे हैं। श्री, श्रीमती से मति हट जाए तो तेरी मति प्रवरमति बन जाए, विशुद्धमति बन जाए। हटाओ इस मति को। मनीषियों! हम दूसरे को दोष तो दे पायेंगे, पर सत्यता है कि दोष मेरा ही है। दूसरे को दोष देने का भाव आना ही दोष है। वह दोषी हो या न हो, निश्चित नहीं, पर मैं तो दोषी ही हूँ, क्योंकि मेरी बुद्धि दूसरे को दोष देने में जा रही है। शुद्ध तत्त्व का व्याख्यान पढ़ने का नहीं, समझने का विषय है। जिस तत्त्व को जानना है, उस तत्त्व को जानने में अनंतानंत पर्याय व्यतीत हो गई, पर आज-तक नहीं जान पाये। परंतु दुर्भाग्य है, जो उस पर भी अब भी मति नहीं आई। क्या कह रहा है?- यह पुद्गल द्रव्य मेरे हैं। एक भी जीव से आज तक किसी भी द्रव्य ने क्या ये कहा है कि मैं तेरा हूँ? मकान, जिसमें तू रहता है, उसने कब कहा मैं तेरा हूँ? जब स्वप्न में भी किसी द्रव्य ने नहीं कहा- मैं तेरा हूँ, तो सत्य बताना, तूने जन्म से लेकर आज तक कितनी बार कहा मेरा घर, मेरा घर। और, तू और इस तन ने कब कहा कि मैं तेरा हूँ? नहीं कहा न? तूने शरीर को अपना कितनी बार

कहा? यह तो ठीक है कि इसे तो तूने अपना कहा ही, लेकिन पर्याय की पर्याय में कितना राग चल रहा है? फोटो छपकर आ जाए तो कहता है कितना सुन्दर लग रहा हूँ। यह तो तेरी पर्याय भी नहीं थी। यह शरीर तो तेरी विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। सिद्धपर्याय जीव की स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। लेकिन शरीर का खींचा गया फोटो, यह तेरी कौन-सी पर्याय है? पर्याय में पर्यायोपचार है। पर्याय में पर्याय का उपचार है। यह तेरी पर्याय भी नहीं है। तब भी विश्वास मानना, जगत में सबसे ज्यादा प्राण जा रहे हैं ये पर्याय और पर्यायोपचार में जा रहे हैं। जिनालयों में भी रागी-भोगियों के फोटो मत टाँगना। नामपट्टी तक सीमित रहो, आगे मत बढ़ जाना। पर्याय की पर्याय का इतना तीव्र राग है, जरा-सी तस्वीर छप पाये तो देखो कैसा भाव होता है, और न छप पाए तो कैसा मन होता है। 50 किलो का शरीर 50 मन का हो जाता है जब फोटो छप जाती है। ये है क्या? अभी वैराग्य नहीं है, राग है। जो मैं कह रहा था- दिगम्बर मुनि एक पत्थर के भगवान की तरह हैं, यानि कि मात्र अपने स्वभाव के लिए ही प्रवृत्त होना, शेष के लिए पाषाणवत् रहना। जैसे सम्यग्दृष्टि जीव को पर का द्रव्य लोष्ठवत् (पत्थर समान)दिखता है। आँख नहीं रखता पर द्रव्य पर।

आचार्य महाराज कह रहे हैं :-

हे जीव! पर्याय के राग को छोड़ो। यह पुद्गल द्रव्य मेरा है, ऐसा कहता है, जो बद्ध है, जो अबद्ध है, उनको भी कहता है। कर्म-नोकर्म जो बंधे हुए हैं, उनको तो 24 घंटे अपना कहता है। सच बताना, जितने चाव से तू दर्पण में देखता है अपने चेहरे को, क्या उतने चाव से तू भगवानको भी देखता है? भगवान का अभिषेक भी जल्दी-जल्दी करता है और अपने चरणों को कैसे प्रक्षालित करता है कि कहीं काले न रह जायें। इस पर्याय को घिसने में तेरे लिए समय की बर्बादी नहीं दिखती और भगवान का अभिषेक करने आयेगा तो 10 बार घड़ी देखेगा। बद्ध में, अबद्ध में। यहाँ सुनने में अच्छा लग रहा है, अभी कोई कह दे कि तुम्हारे घर की दीवार में किसी ने गाड़ी मार दी और 8-10 ईंटें गिर गई हैं। तू मंदिर में था। ईंट घर की दीवार की गिरी, पर तेरे अंदर ईंटें गिरना प्रारंभ हो गयी, प्रवचन में मन लगना बंद। यह बद्ध था, कि अबद्ध? अबद्ध था। भवन ईंट-चूने का था, तू तो तू था।

आज ध्वनित होता है कि सबकुछ छोड़े बिना समयसार का वैराग्य संभव नहीं है। किंचित् भी रागदृष्टि है तो समयसार की पंक्ति कह रही है कि अभी समयसार की प्राप्ति तो दूर, अभी समयसार का वैराग्य भी नहीं है। हे जीव! अनेक प्रकार के भावों से युक्त होकर तू कह रहा है कि यह मेरे यह मेरे, जबकि कोई तेरा नहीं है। सर्वज्ञ वाणी सत्य है, कि तेरा विचार सत्य है? हम किसकी मानें? ज्ञानी! हमें तेरी विषमताओं से कोई प्रयोजन नहीं, आपकी परिस्थितियों हमारे आत्मकल्याण का साधन नहीं

हैं। आपकी परिस्थितियाँ आपकी मनःस्थितियों से बन रही हैं। सीधा-सीधा कहिए कि कषाय सता रही है। परिस्थितियाँ किसी को सताती ही नहीं है। विश्वास रखिए, वैरागी को परिस्थिति नहीं सताती है, अहो ज्ञानी! मनः स्थिति ही सताती है। राग-द्वेष की भावना होगी तो परिस्थितियाँ खराब लगेंगी और निर्मल परिणाम होंगे तो परिस्थितियाँ कुछ नहीं करती।अपना कलुआ बेटा भी सुन्दर लगता है, और दूसरे का सुन्दर बेटा भी नहीं सुहाता। बोलो-

किं सुन्दरं, किं असुन्दरम्।

दूसरे का सुन्दर बेटा अच्छा नहीं लगता और अपना बेटा काला हो, नाक टपक रही हो, तो भी तुम उठा लेती हो, साड़ी से नाक पोंछ लेती हो। धन्य हो, राग की महिमा तो देखो कि मल को भी प्रेम करती है। क्यों माताओ! रोड़ पर श्लेषता पड़ा हो तो क्या साड़ी से पोंछ लेती हो? किसी के बालक के मुँह पर छपा हो तो? और स्वयं के बेटे के गाल पर छपा हो तो? तुरंत पोंछती है क्योंकि बेटा मेरा है। एक बात समझ में नहीं आ रही, इसके बेटे का मल क्या विशिष्ट होता है? सीधा संबंध क्या है? अण्णाण मोहिद मदी।

कितना-कितना वैराग्य चाहिए। ये सामान्य दो चार अक्षरों को जान लेने से और सामान्य दो चार व्रतों को ले लेने से वैरागी नहीं कहा जा सकता। धर्म की भाषा सीख लेना वैरागीपने का लक्षण नहीं है। उपदेशों की भाषा सीख लेना वैरागीपने का लक्षण नहीं है। यहाँ तक कि व्रतों को मात्र धारण कर लेने से भी वैरागी का लक्षण नहीं है। सारे जगत के प्रति जब-तक मैं और मेरे पन का भाव विसर्जित नहीं होता, तब-तक वैराग्यपन का भाव नहीं है। जैसे नदी है वह किसी में जाकर मिल जाती है, नीर जैसे मिल गए, तो किस नदी का पानी ऊपर है? हे ज्ञानी! कई नदियों का संगम हो जाता है फिर वह नदियों का नीर समतल में बहता है, अपने-अपने अस्तित्व को खो दिया है। ऐसे-ही जब-तक अपने-अपने अहम् अस्तित्व को बचाकर रखोगे, तब-तक वैरागी नहीं हो, सागर नहीं हो। जिस दिन अपने अहंकार के अस्तित्व को खो दोगे, तो सच्चे वैरागी हो जाओगे। समयसार समझने में जितना सुन्दर चरणानुयोग का पालन होगा, वो कभी होने वाला नहीं है। अब क्या कह रहे हैं-बद्ध को तो अपना मान रहा है, अबद्ध को भी अपना मान रहा है।

सर्वज्ञ के मान में देखा गया है- जीव का लक्षण उपयोग है यानि चेतना।

चेतनावगाही परिणामा

अनंत मोह के निमित्त से चेतन का अवगाही परिणाम है, उसका नाम उपयोग है। 'तत्त्वार्थ सूत्र'

के दूसरे अध्याय में आचार्य उमास्वामी ने कहा है-

'उपयोगो लक्षणम्'

'जो खाता है, पीता, चलता है वह जीव है', यह परिभाषा त्रैकालिक नहीं है। यानि कोई जीव बीमार हो जाए, खाये-पिये नहीं, तो अजीव। कोई, सो रहा है, चल-फिर नहीं रहा,तो अजीव है क्या? ज्ञानी! यह परिभाषाएँ बदलने की आवश्यकता है।

जो चेतना से युक्त है, उसका नाम जीव है। जो ज्ञान-दर्शन से युक्त है, उसका नाम जीव है। खाना-पीना लक्षण नहीं है। सिद्ध भगवान् खाते-पीते नहीं, तो क्या अजीव हो गए? ऐसा नहीं है। लक्षणशास्त्रों में यदि कोई प्रसिद्ध शास्त्र है, वह है सर्वार्थसिद्धि। उसमें जो परिभाषा आचार्य पूज्यवाद स्वामी ने जीव की, की है उसे किसी ने नकारा नहीं है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने भी धवला टीका में सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा दी है। जो ज्ञान-दर्शन से सहित है, वह जीव है। और जो ज्ञान-दर्शन से रहित है, वह अजीव है।

एक परिभाषा और गलत लिखी है 'बालबोध' में। संज्ञी किसे कहते हैं? जो जाने सो संज्ञी, जो न-जाने सो असंज्ञी। तो फिर अण्डे में चिड़िया का बच्चा संज्ञी है कि असंज्ञी है? मनुष्य का बच्चा संज्ञी है या असंज्ञी ? यदि कोई मूर्च्छित हो गया, ब्रेन हेमरेज हो गया, तो असंज्ञी?

ज्ञानी! यह परिभाषा गलत है-

संज्ञिनः समनस्काः। (त.सू.)

जो मन-सहित है, वह संज्ञी है और जो मन रहित है, वह असंज्ञी है। परिभाषा त्रैकालिक होना चाहिए, सैद्धांतिक होना चाहिए। सकलीकरण की भाषा प्रयोग करते हो। यह आचार्य कुंदकुंद के ग्रंथ को पढ़कर लोकभाषा बना ली।

जो विज्ञान के नाम पर अपनी बात कहना चाहे रहे हैं, ध्यान रखना, विज्ञान हमेशा अधूरा है। यह वीतराग विज्ञान है। जो विज्ञान की बात करते हैं, वह आगम को कभी परिपूर्ण नहीं कह पायेंगे। वे मिथ्यात्व में डूबे हैं। विज्ञान से आगम पर छाप नहीं लगती, हमारे आगम ने विज्ञान पर छाप लगाई है। विज्ञान महान नहीं, विज्ञान अधूरा हो सकता है। विज्ञान में लिखा होता है कि इतना खोजा, आगे खोज जारी है। जिसकी खोज जारी है, वह पूर्ण कैसे? आगम में कहीं नहीं लिखा कि इतना खोजा, अभी खोज जारी है। यहाँ तो जो है, सो है। सभी वक्ताओं से मेरा कहना है कि गद्दी पर बैठकर जिनवाणी की ही प्रशंसा करें, अन्य की नहीं। परमाणु की खोज करते-करते उसके भेद कर डाले, इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन,

न्यूट्रॉन, जबकि आगम कहता है कि परमाणु अविभाज्य है। ऐसे-ही 'तत्त्वार्थ सूत्र' की व्याख्या की आवश्यकता है।

ज्ञानियों! संस्कृति की रक्षा के दो ही साधन हैं- 'साहित्य और पुरातत्व'। जिस दर्शन का साहित्य अथवा पुरातत्व नहीं, वे दर्शन समाप्त हो गए। हमारे देश में एक चार्वाक दर्शन भी था, वह समाप्त हो गया, क्योंकि साहित्य नहीं था। जैनदर्शन साहित्य से भरा पड़ा है। पुरातत्व संग्रहालयों में प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। हर भाषा में जैन साहित्य है। प्राचीन एवं अर्वाचीन। वक्ता का कर्त्तव्य है कि सबसे पहले आगम के कठिन शब्दों का प्रयोग करें, फिर धीरे-धीरे सरल करें। श्रोताओं को समझ भी न आए, तब भी चिंता न करें। प्राकृत/संस्कृत भाषा का शब्द श्रद्धा को उत्पन्न करता है। इसलिए, हे जीव! सर्वज्ञ के ज्ञान में जीव का लक्षण उपयोग है, वह पुद्‌गल-द्रव्य-रूप कैसे हो सकता है? अज्ञान से मोहित मति है जिनकी, वे परद्रव्य को अपना कह रहे हैं, लेकिन वे परद्रव्य अपने कैसे हो सकते हैं? जीव का लक्षण तो उपयोगरूप है, वह पुद्‌गलरूप कैसे हो सकता है? यदि जीव पुद्‌गल-रूप हो जाएगा, जब जीव को पुद्‌गल कह सकते हो, तो पुद्‌गल भी जीव हो जायेगा। तार्किक दृष्टि से समझने की आवश्यकता है। विभिन्न दर्शनों को भी समझाया जा रहा है।

यदि पुद्‌गल जीव, और जीव पुद्‌गल हो जाए, तो ऐसा कह सकते हैं कि पुद्‌गल मेरा है। पर ऐसा होता नहीं है। तो कैसे कह सकते हो कि पुद्‌गल मेरा है? ज्ञानी! समयसार कोई एक-दो घण्टे का विषय नहीं है। एक घण्टे को सुनो, फिर चार घण्टे अकेले, कमरे के एक कोने में बैठकर, चिंतन करो। जब करना-धरना समाप्त होगा, जब-तक किंचित् भी करने-धरने के भाव हैं, तब-तक समयसार समझ नहीं आता। मनीषियों! करना-धरना कठिन नहीं है, कुछ नहीं करना कठिन है। सच्चे भावलिंगी मुनि कुछ-नहीं-करने की साधनाकरते हैं। तीर्थंकर की प्रतिमा देखी? कोई भी प्रतिमा आशीर्वाद नहीं दे रही। जो वरदान/आशीर्वाद दे रही है, वह वीतरागी भगवान की प्रतिमा नहीं। वे तुमसे सकुछ बोलते भी नहीं है। सच्चा भगवान वही है जो वंदना करनेवाले पर खुश न हो, निंदा करने वालों पर गुस्सा न हो। वही सच्चा भगवान है। जो खुश हो जाए, या नाराज हो जाए, वह भगवान नहीं।

सबसे कठिन यही है- हाथ पर हाथ रखना। या तो हाथ नीचे कर लो या हाथ पर हाथ रख लो। यही भगवान बनने की कला है। कर्तृव्य भाव ही संसार है, अकर्त्तव्य भाव ही मोक्षमार्ग है। न कहने के, न सुनने के, न करने का भाव आयें तो समझो कि प्रभु बनना प्रारंभ हो गया है। समझ लो कि जैनदर्शन की अंतरंग साधना क्या है। उपवास, अनशन, केशलुंचन आदि-आदि बहिरंग साधना है, मुनिदीक्षा लेना बहिरंग साधना है। कुछ-नहीं-करना के भाव आना ही अंतरंग साधना है।

25 साल दीक्षा लेने के बाद कोई कहे मुझे भवन बनवाना है, तो 25 साल किसमें निकाल दिया? 25 साल विरक्त रहा, अब कहता है मुझे भवन बनवाना है, पैसा इकट्ठा करो। ओहो, 25 साल कहाँ बर्बाद कर दिए? जिस भवन से निकलकर गया था,उसी भवन में फिर लग गया।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ग्रंथराज समयसार जी में, आत्मा की उस परमसत्ता का व्याख्यान कर रहे हैं जो सत्य है, परम सत्य है। उस सत्य को सहज रूप से अवगत करा रहे हैं। जो आत्मा की ज्ञानधारा का वास्तविक रूप है, वह कर्मधारा से पृथक् है। तीन प्रकार की चेतना है-कर्म चेतना, कर्मफल चेतना, ज्ञान चेतना। कर्मचेतना, कर्मफल चेतना के लिए सारा जगत रो रहा है। लेकिन जो शुद्ध ज्ञानचेतना से युक्त होता है वे हैं अशरीरी सिद्ध परमेश्वर। 12वें गुणस्थान तक अशुद्ध ज्ञानचेतना है। शुद्ध ज्ञानचेतना 13वें-14वें गुणस्थान में एवं सिद्ध परमेश्वर में है।

उसे एकेन्द्रिय जीव से पूछ लेना कि कितना भोग है? चल फिर नहीं सकता, कर्मफल चेतना को भोग रहा है। अहो! ऐसा क्यों भोगना पड़ रहा है? यदि यह बोल सकता होता तो वह भी कह देता- मैं भी तुम्हारे जैसा था, मैंने अपने ज्ञान का दुरुपयोग किया और एकेन्द्रिय विशेष के राग में उलझकर पाप किए, उसका फल आज कर्मफल चेतना के रूप में भोगना पड़ रहा है। ज्ञान का, इन्द्रिय का दुरुपयोग किया। प्रत्येक इन्द्रिय के ज्ञान का दुरुपयोग किया। जिन आँखों से जिनेन्द्र भगवान को, जिनवाणी के शब्दों को, निर्ग्रंथ गुरुओं को देख सकता था,उन आँखों से सिनेमा देखा, नारियों को देखा। जिन हाथों से सुकृत किया जा सकता था, उन आँखों से सिनेमा देखा, नारियों को देखा। जिन हाथों से सुकृत किया जा सकता था, उन हाथों से अशुभ कार्य किए। ध्यान रखना- सिर हिलाने मात्र में सिद्धों के अनंत गुणे, सिद्धों के अनंतवे भावकर्म का बंध (पलक झपकने मात्र में असंख्यात समय हो जाते हैं)एक समय में हो जाता है। एक समय में इतना बंध होता है। किंचित् भी सिर हिला दिया किसी पाप की स्वीकृति में, तो बंध। अनुमोदना की, तो बंध। फिर अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि-

हे नाथ! कैसा अप्रतिबुद्ध हुआ कि अपनी ज्ञानचेतना पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया। कभी-कभी विचार नहीं करते कि जो ज्ञाता इस देह में है, वह ज्ञाता है अशरीरी सिद्ध भगवान। जो कभी जगत के लोगों से पूज्य होगा, वह पूज्य अपने वर्तमान के ज्ञान को कहाँ लगा रहा है? जिस ज्ञान की धारा का उपयोग निज ज्ञेय में होना चाहिए था, उस ज्ञान का उपयोग परज्ञेयों में ज्ञाताभाव से हो रहा है,दृष्टाभाव से हो रहा है, कर्ताभाव से हो रहा है।

मनीषियों! जगत के द्रव्यों को जानने-देखने से बंध नहीं होता। भोक्तृत्व भाव से, कर्तृव्य भाव से

देखने से बंध हो रहा है। भोग भी एक प्रकार से नहीं, अनेक प्रकार से होता है। ईर्ष्या से भी किसी के चेहरे को देखा है, तब भी बंध होगा। ओहो! नगर की कितनी-कितनी वस्तुयें जिनको आपने खरीदा नहीं, स्वीकारा नहीं, लेकिन भोगा है। नाट्यगृह में नाटक देखने की क्या आवश्यकता है? आनंद नहीं आता होता, संतुष्टि नहीं मिलती होती, तो गया क्यों? संतुष्टि का होना ही तो भोग है। उपरिम स्वर्ग में देव अपनी देवी का रूप देख लेते हैं, अवलोकन मात्र से स्पर्शन इन्द्रिय की पुष्टि हो जाती है। भोग हो गया। यदि राग की दृष्टि से किसी के हाथ पर हाथ भी रख दिया, तो भोग हो गया। अब कैसे करोगे राग? काष्ठ की पुतलिका को देखकर दृष्टि विषय में चली गई तो हो गया एकेन्द्रिय का विषय। हे जीव! तू कहता है मैंने तो भोग भोगे ही नहीं हैं। ज्ञानचेतना कहाँ जा रही थी? भोग मिले नहीं, यह भिन्न विषय है। मिले नहीं, उसका नाम त्यागी नहीं है। मिलने पर भी उसे न मिलें, इसका नाम त्याग है। मिले ही नहीं, तो त्याग क्या? जिसे मिले, पर वह मिला नहीं और जिसे मिले, वह पाने की इच्छा न रखे, इसका नाम त्याग है। आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने एक महायोगी का नाम लेकर वन्दना नहीं की, एक कुमार ब्रह्मचारी की वन्दना की। धन्य हो, भगवन्! आपने किसकी वंदना की। जो बिना भोगे ही विष के कटोरे को छोड़ दे, अहो! आश्चर्य। नमस्कार हो कुमार ब्रह्मचारी को, जिसने बिना भोगे ही विषयों को छोड़ दिया। यह है ज्ञानचेतना की ओर बढ़ने का मार्ग। इसलिए ध्यान दो, ज्ञेय तो ज्ञेय है, ज्ञाता तो ज्ञाता है। ज्ञाता कभी ज्ञेय नहीं होता। परज्ञेय कभी ज्ञाता नहीं होते। निज ज्ञाता परज्ञेय नहीं होता, परंतु ज्ञाता राग में लिप्त होकरके बंध को प्राप्त होता है। ज्ञेयों ने कभी कहा नहीं कि ज्ञाता तू मुझे ज्ञेय बना। परंतु ज्ञाता ही रागी हुआ तो पर को ज्ञेय बना बैठा। ज्ञेय ही बनाते तो बड़ी बात नहीं, पर तूने भोग बनाया, जिससे बंध हुआ। अग्नि देखने से आँखें नहीं जलती, पानी देखने से गीली नहीं होती। ज्ञानी! ज्ञेयों को जानने-देखने से बंध नहीं होता। ज्ञेयों में जो लिप्तता है, वह बंध का कारण है। जानने मात्र से बंध होता तो सबसे बड़ा बंधक तीर्थंकर देव होता। क्योंकि सारे जगत को जानने देखने वाला यदि कोई होता है तो वे अरिहंत परमेश्वर हैं। ज्ञानी! ज्ञान से अज्ञानी नहीं बनता, अज्ञानी बनता है तो राग से बनता है। क्यों ज्ञानी! जिस पाप को कर चुके हो, उसे जानते हो, बता सकते हो क्या कि पाप करने के बाद कैसा लगा? जब पाप करने जा रहा था, तब क्या तेरे पास ज्ञान नहीं था क्या? उस ज्ञान से प्रश्न करो- हे ज्ञान! जब मैं पाप करने जा रहा था तब मैंने तेरा ही तो प्रयोग किया था। एक-एक क्रिया को जान-जान कर किया था, वो भी तूने मुझ से करा डाली, तू तो ज्ञान था। अहो ज्ञानी! जो ज्ञान काम करा रहा था, वो ज्ञान राग की कीचड़ से सना था। राग की पुष्टि हो गई तो ज्ञान कहने लगा गलत किया। कोई स्वार्थी मित्र मिल जाए, पाप करा ले, वह मित्र तो शत्रु तुल्य है। राग-मिश्रित ज्ञान पापी-मित्र के तुल्य है।

शिल्पकार की छैनी ने प्रतिमा बना दी और शत्रु की छैनी ने प्रतिमा को तोड़ दिया। जब भेद-

विज्ञान की दृष्टि न बने, तेरे अंदर जब विषयों में दृष्टि जाए, तो ज्ञान से कहना कि तू शत्रु की छैनी है। ज्ञानियो! समझ में आया? इसलिए पर दृष्टि को छोड़ना पड़ेगा। बंध बंद करना है तो परदृष्टि को बंद करो। पर को दोष वही दे पाता है जिसकी मति अज्ञान से मोहित है। आचार्य-महाराज कह रहे हैं-

अब मैं अप्रतिबुद्ध को समझाने उद्यत होता हूँ। एकसाथ अनेक प्रकार से बंध के उपाय होने पर, एक प्रकार से नहीं, अनेक प्रकार से बंध कर रहे हो। कभी मन से, कभी वचन से, कभी काय से बंध हो रहा है। जितने प्रकार के प्रमाद हैं, उतने प्रकार के पाप हैं। आप गिनते हो पाँच पाप। तो 5 तो पाप के प्रकार हैं, पाप पाँच नहीं है। कठिया, पिसिया, सरवती तीन प्रकार के गेहूँ हैं आपके यहाँ, पर गेहूँ कितने हैं? ऐसे-ही 5 प्रकार हैं पाप के, पर पाप पाँच नहीं हैं। असंख्यात प्रकार की हिंसा, असंख्यात प्रकार का झूठ आदि हैं। ज्ञानी! किसी की जेब में पेन को देखकर आपके परिणाम चले गए, तूने पूछा था कि देख लूँ, तो यह चोरी है। तू ज्ञानी था, अपने परिणाम कहीं-और ले गया तो तूने निज शुभ भावों की हिंसा की कि नहीं? तू हिंसक भी है। ज्ञानी! पेन परवस्तु थी, परवस्तु पर दृष्टि फेंकी, कुशील किया कि नहीं? पाँचों पाप हो गए। जिन व्रतों की बात कर रहे हो, सब मोटी बातें हैं। किसी ने पढ़ने को चार ग्रंथ दिए, तुमने चार श्लोक उतार लिए, तो चोरी कर ली। पूछना था कि लिख सकता हूँ कि नहीं? चुपके से किसी का ग्रंथ उठाकर पढ़ लिया तो अचौर्यव्रत में दोष लग गया। बंध के अनेक प्रकार हैं, पर छूटने का एक ही उपाय/प्रकार है। सबसे दूर होकर ज्ञायक-स्वभाव में लीन हो जाओ।

बंध की उपाधि के संयोग होने पर जो स्वभाव-भाव हैं, उसमें, वस्तुस्वभाव से भिन्न होकर, पर के संयोग के वश हुआ यह जीव, स्फटिक मणि तुल्य, जैसे स्फटिक मणि निज स्वभाव में है लेकिन परवस्तु के संयोग के कारण धवल स्फटिक मणि भी अनेक चित्र-विचित्र रूप दिख रहा है, ऐसे-ही आत्मा एकरूप है, पर रिश्तों के कारण नानारूप है। ये रिश्ते तेरे स्वभाव में हैं, कि पर की उपाधि है? वैराग्य कोई वस्तु नहीं है जिसको उठाकर खिला दिया जाए।

ज्ञानी! तू अपने आप में जीवद्रव्य है, एक है। जिस कुल में जन्म ले लिया उस कुल के लोगों ने तुझे नाना रूप कहना प्रारंभ कर दिया। एक ही स्थान पर तू भतीजा, भांजा, पुत्र, भाई, चाचा है। पर से जो संबंध स्थापित कर लिया है, इन परसंबंधों से निज को हटा लेना, इसी का नाम वैराग्य है। निज संबंध में लीन हो जाना, इसका नाम चारित्र है। निज-पर के संबंध को जानना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान है।

यथावद्-वस्तु-निर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्मा कथंचित्प्रमितेः पृथक्।। 12 स्व. सं.।।

जब-तक वस्तु का निर्णय नहीं होगा, तब-तक सम्यग्ज्ञान प्रारंभ नहीं। शास्त्रों का ज्ञान अनंत है,

पर फिर भी अपना सम्यग्ज्ञान है। दीपक के समान ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है। बहुत सुन्दर बात की अमृतचन्द्र स्वामी ने। नाना विकल्प प्रारंभ हुए, संयोगवशात्। ज्ञानी! जब तेरी शादी नहीं हुई थी, उस कुल में क्या-क्या हो रहा था, तुझे सुख-दुःख का भान नहीं था, विकल्पों से रहित था। जिस दिन संयोग हुआ, व्यर्थ के संकट आ गए, वहाँ कहीं किसी की मृत्यु हो जाए तो दुःख प्रारंभ। अनेक दुःखों का कारण कोई है तो संयोग है। जो वर्तमान के संयोगी हैं, वे हमारे ही थे, हम इनके ही थे, हमारे रहेंगे क्या? जैसे वहान पर चढ़कर सीट पर बैठना है, बेटे से कहता है कि शांति से बैठो, हम गाड़ी से उतरें फिर जो होता है, होता रहे। जैसे कि आप यात्रा में जिस वाहन पर विराजे हो, मात्र बैठने का सुख है न? उस वाहन का क्या इष्ट-अनिष्ट हो रहा है, इस पर दृष्टि है क्या? हे मुमुक्षु! जैसे तुझे मालूम है कि शिवपुरी आने उतर जाऊँगा, बाद में जो चाहे हो, क्या करना? इसी प्रकार यह सम्यग्दृष्टि जीव इस देह व परिवार के साथ रहता है और अपनी संतान को सँभाल कर रखता है, परंतु ध्रुव सत्य है कि मैं आया हूँ, दो दिन बाद चला जाऊँगा, तुम्हारा जो होगा सो होगा। मैं तुम्हें, तुम मुझे देखने नहीं आओगे। मैं स्वर्ग में होऊँगा, मैं नरक में होऊँगा, मेरा सुख-दुःख बाँटने नहीं आओगे। ये पागलपन छोड़ो। कितनी बार पिता-पुत्र बन गए। पिता! तू आपने शरीर से दुःखी नहीं, अपने आप से दुःखी नहीं, बेटे के पीछे रो रहे हो। अरे! उपचार कराओ, रोओ मत। ज्ञानी! इस पर्याय को शोक में डुबाकर नीचे मत ले जाओ। जिसकी जितनी आयु होगी, उतना जीता है, तुम टाल नहीं पाओगे। माँ की गोद में भी मृत्यु होती है और शत्रु के हाथ से भी नहीं होती। काल नहीं आता तो प्रद्युम्न कुमार को देव अपने हाथ में लिए था। भाव हो गए कि क्यों मारूँ, तो शिला के नीचे दबा दिया। ज्ञानियों! गर्भ में भी मृत्यु होती है। समयसार सुन रहे हो, तो निर्णय कर लो कि सब बेकार है। माँ ही बेटे के टुकड़े करवाकर फिंकवा आती है। बेटे माँ के टुकड़ेकर देते हैं। यह सब राग की विडम्बना है, पर सत्यता यह है कि कोई किसी का कुछ नहीं कर पायेगा, बंध ही कर पायेगा। ऐसा शुद्ध निश्चय जिसको हो जायेगा तत्त्व का, वो वैरागी मुस्कुराकर अपने आप में लीन रहेगा। प्रशंसा भी स्ववस्तु नहीं है, यश कर्म की प्रवृत्ति है, इसके कारण तुम्हारा मन ऐसा बोल जाता है मेरे प्रति। लेकिन मैं तो इनसे भी भिन्न हूँ। यश-अपयश भी आत्मा का धर्म नहीं है। मैं इनसे भिन्न हूँ। यथार्थ बताना, समयसार सुन रहे हो, ध्यान दो। राग जहाँ है, वहीं सम्पत्ति-विपत्ति है। छल मात्र है। हल्का होना है तो, राग छोड़ दो। जीवन में सम्पत्ति जाए तो रोना मत। यही सोचना कि मेरा गया क्या? मैं तो हल्का ही हुआ हूँ। 10 भवनों का टेंशन था, थोड़ा तो कम हुआ, अब आनंद से रहेंगे, कहीं भी ठहर सकता हूँ। खेतों में क्या गजब की नींद आती है। आप कहते हो- मैं सुखी होना चाहता हूँ, मैं सुखी होना चाहता हूँ। सब झूठ कहते हो। हाथ में अटैची लिए घूम रहे हो, ताला लगा रखा है, चाबी हाथ में है और कहता है मैं सुखी होना चाहता हूँ। जो पकड़े है, उसे छोड़ दे, हो गया सुखी। विषय आपका है

हो पा रहे हो कि नहीं हो पा रहे हो। मनीषियों! रोटी का एक टुकड़ा था, कुत्ते ने झपट लिया, दस कुत्तों न देख लिया। इतना समय नहीं मिला कि अंदर ले जाए। वे कुत्ते उसके पीछे पड़े हैं। ज्ञानी! कष्ट कब-तक है? या तो अंदर ले जाए, या बाहर फेंक दे। कष्ट समाप्त। ज्ञानी! रोटी का टुकड़ा फेंक दो और भाग जाओ। पुद्गल के टुकड़ों को जब-तक पकड़े रहोगे, तब-तक कष्ट पीछे पड़े रहेंगे और पुद्गल के टुकड़े को छोड़ दोगे तो कष्ट पीछे छूट जायेंगे, तू आगे चला जायेगा। ज्ञानी! घर में बोल देना 'छोड़ता हूँ।' घर जाकर क्या बोलना, यह भी राग है। इसलिये अभी छोड़ दो। जब मेरा था ही नहीं, तो किसको छोड़ता हूँ।

संयोगवश स्फटिक अनेक प्रकार का दिखता हूँ, उसके समान- अत्यंत भिन्न, तिरोहित भाव से। जिसकी अस्त हो गई है सम्पूर्ण रूप से विवेक ज्योति। मनीषियों! आँख की ज्योति चली जाए तो टेंशन मत करना, हे माँ! मेरी विवेक-ज्योति न चली जाए, वह जीवंत रहे। विवेक ज्योति जीवंत रहे तो कल्याण हो जायेगा। दीपक के भी कई प्रयोग हैं। एक दीपक लेकर अंधेरे में किसी को ढूँढ़ रहा है और एक दीपक लेकर शास्त्र पढ़ रहा है। ज्योति का प्रयोग अच्छा भी होता है बुरा भी होता है। जिसने अपनी विवेकज्योति का प्रयोग निर्मल कर लिया, वह परमात्मा हो गया। विवेकज्योति का प्रयोग खोटा किया, तो दुर्गति का भाजक हुआ है। जिसके विवेकज्योति नष्ट हो गई है, यहाँ पर का कथन मत करना। जैनदर्शन स्वतंत्र है। यह मत सोचना कि बेटा बगल में बैठा था इसलिए दीक्षा नहीं ली। सत्यता यह है कि तू बेटे के बगल में राग लेकर बैठा था इसलिए दीक्षा नहीं ले पाया। यह सत्य है। पिता में सामर्थ्य होती तेरी शादी करवाने की, तो नेमिनाथ के पिता क्यों नहीं करवा पाए? अंतरंग के राग ने बांधकर रखा है, कोई किसी को नहीं बांधता। यदि बांधने वाला कोई है, तो स्वयं तेरा अज्ञान है।

मोह से युक्त हृदय रहता है जिसका, परभाव में भेद न करते हुए उन परभावों को ही स्वभाव भाव स्वीकारता हुआ,यह मेरे हैं-ऐसा भाव करता है, वही निश्चय से अज्ञानी जीव है। देखो, संस्कृत की लाइन कितनी-सी है, पर अर्थ कितना भरा है? निश्चय से वह अप्रतिबुद्ध जीव है, अज्ञानी जीव है। कुछ है, कि नहीं? है और न के बीच में कुछ है कि नहीं? यानि, यह भवन मेरा है और मैं इसका मालिक हूँ, इन दोनों के बीच कुछ है कि नहीं? हे रागियों! घर जाकर सबसे कह देना कि मैं और तुम के बीच में न मैं तुम हूँ, न तुम मेरे हो। पर मैं और तुम के बीच में जो है, वह सबसे छोटी वस्तु है, वही मैं- मैं करा रही है। वह क्या है? राग।

पद्मपुराण पढ़ा? साले बहनोई का मजाक चल रहा था, 'क्यों देख रहे मुनिराज को बार-बार? इतने अच्छे लग रहे हैं तो बन जाओ न?' नई शादी हुई थी, पत्नी को विदा करके ले जा रहे थे। साले ने मजाक किया था। गुरुचरणों में बैठ गए, केशलुंचन हो गए, दीक्षा ले ली। पत्नी सोचती है, 'हाय! मैं

क्या मुँह लेकर जाऊँगी, लोग क्या कहेंगे?' उसने आर्यिका दीक्षा ले ली। साले ने भी दीक्षा ले ली। भैया! मजाक भी करो तो ऐसा करो जिससे कोई काम बने। लेकिन मूढ़ ये सब मेरे हैं- मेरे हैं, ऐसा कहकर अज्ञानी होता है। अब आचार्य अमृतचंद्र स्वामी की डाँट सुनो, बड़ी मीठी डाँट है- 'जो निज स्वभाव से दूर हैं, वे सब दुरात्मा हैं। निजात्मा में लवलीन, निश्चय से सप्तम गुणस्थान में लीन जीव ही आत्मस्वभाव में लीन है। जितने भी सराग अवस्था में है, छटवें गुणस्थान तक दुरात्मा हैं।

दुरात्मा दो प्रकार के हैं- 1. शुभ, 2. अशुभ।

विषयों में लीन हैं, वे अशुभ दुरात्मा हैं। समयसार कह रहा है कि जो पूजा-पाठ में लीन हैं, भक्ति में लीन हैं, शुभ भावों में लीन है, वह शुभ दुरात्मा है। निज स्वभाव से दूर हैं, वे दुरात्मा हैं। महानात्मा तो वहीं है-

'अप्पा अप्पम्मि रओ'

वही है महानात्मा, शेष दुरात्मा। सोचो, आपका स्थान कहाँ है? जब-तक समयसार की कक्षा में नहीं बैठा था तू, तब-तक अपने आप को कुछ ज्ञानी मानता था, धर्मात्मा भी मानता था। जब से यहाँ बैठने लग गए, सो लगता है कि कहाँ है भैया! अपना धर्म। नम्बर ही नहीं है। जब राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आ जायें तो कलेक्टर आदि छोटे लगने लगते हैं, उसकी कीमत नहीं होती। ऐसी दशा दिख रही है छटवें गुणस्थान तक। कोई स्थान नहीं। सम्राट हैं 14वें गुणस्थानवर्ती, जहाँ 18000 शील कीपूर्णता होगी। इससे पहले कोई चारित्रचक्रवर्ती नहीं।

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्क ो गयजोगो केवली होदि ।।65 गो.जी.।।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती देव ने लिखा है- वो ही सम्पत्तिशाली है जिसके पास शील की सम्पत्ति है। सम्पूर्ण आस्रव जिस जीव ने समाप्त कर दिए हों, जिनके योग भी चले गए हों, वे अयोगकेवली भगवंत चारित्रचक्रवर्ती हैं, परिपूर्ण संयमी हैं। किसी स्त्री को छू लिया, यह तो दोष हो ही गया। किसी स्त्री का फोटो लगा था, उसे देख भी लिया, तो शील में दोष हो गया। चटाइयाँ हैं, यदि किसी जीव आदि के चित्र बने हैं, आप बैठ गए, तो अहिंसा में दोष लग गया। जिस भूमि पर विषमलिंगी बैठा था अन्तर्मुहूर्त पहले, वहाँ जाकर बैठ गए, यह शील में दोष है। जहाँ विषमलिंगी बैठा हो, 48 मिनिट तक वहाँ बैठना भी नहीं चाहिए, कहाँ चरण स्पर्श करना। इसीलिए लिखा-7 हाथ, 6हाथ, 5 हाथ। इसलिए मृदुल चर्या को आगम नहीं कहा जा सकता। 'जो है, सो है।' यहाँ वह तर्क भी नहीं चलेगा कि आहार के समय 7 हाथ से चर्या बनाइए। वो भाव अलग है। इसलिए,

मनीषियों! मुनिराज आते हैं तो मर्यादा से रहो। आर्यिका आती हैं तो आप अपनी सीमा में रहो।

हम अपने भगवान की इतनी भक्ति करेंगे कि हमारा भगवान 'भगवान' के रूप में दिखता रहे। ऐसी भक्ति नहीं करेंगे कि हमारा भगवान ही बदनाम हो जाए। इतना कठोर हमारे आचार्य न लिखते तो आज तक नमोस्तु, नमोस्तु यह शब्द ही नहीं बचता। महावीर की परम्परा का अनुशरण अन्य लोगों ने भी किया, उन्होंने भी स्त्रीदीक्षा देना प्रारंभ किया। लेकिन, महावीर ने स्त्रीदीक्षा तो दी, परंतु मर्यादा बना दी। जिन्होंने साधु और साध्वियाँ एकसाथ रखे, वो दर्शन समाप्त हो गया, मात्र चरणानुयोग के अभाव में। बुद्ध ने स्वयं कहा-आनंद! अब धर्म बचेगा नहीं, इससे साधुमार्ग विकृत हो जायेगा। साधु-साध्वियों का शील नष्ट हो रहा था। महावीर ने शिक्षा-दीक्षा का उपदेश दिया। प्रारंभ से ही ब्राह्मी, सुन्दरी जैसी आर्यिकायें हुई। लेकिन मर्यादा बनी रही। सीमा है, एक मुनि एक आर्यिका नहीं रह सकते। तुम्हारी माँ ही क्यों नहो। कठोरता ही जीवित रहेगी,मृदुलता जीवित नहीं रहपायेगी। दर्शनसार एक ग्रंथ है, देवसेन स्वामी कृत। इसमे जैनियों का संक्षिप्त इतिहास है। अनेक-अनेक संघ हुए, विलीन होकर चले गए, आगे और संघ होने वाले हैं। वर्तमान समय तो बहुत सुन्दर चल रहा है। ऐसे-ही एक संघ होने वाला है, जिसे देवसेनाचार्ये ने भिल्लवसंघ कहा है। ऐसे कई संघ हुए जिन्होंने मनमाने कार्य किए, लेकिन जैसे हाथी के पैर में सबके पैर समा जाते हैं कुंदकुंद की परम्परा में सब समाहित है। जीवित वही रहता है जो उज्जवल होता है।

परसम्पत्ति में लीन होकर निज सम्पत्ति को मत खो देना। मैं और मेरे के बीच में जो है, उसे अपना मत बना लेना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

जैन वाङ्मय में अध्यात्म का सर्वोपरि ग्रंथ है यह समयसार। सारे विश्व में इस ग्रंथ के ऊपर कोई आत्मा के स्वरूप का व्याख्यान करने वाला ग्रंथ नहीं है। जड़ और चेतन की चर्चा (मिश्र धारा)का व्याख्यान करने वाले जीव अनंत मिल जायेंगे, पर शुद्ध चेतना का कथन करने वाले जीव इस लोक में बहुत कम हैं। परंतु यह अज्ञानी जीव ''अण्णाण मोहिद मदि'' अज्ञान से मोहित मति के कारण बद्ध-अबद्ध परभावों को निजभाव मानता है। जब-तक यह परभाव को निजभाव मानने की दृष्टि है,तब-तक मोक्षमार्ग की दृष्टि नहीं है। अध्यात्म विद्या का जो लक्ष्य है, वह यह है वस्तु की स्वतंत्रता का ज्ञान हो जाए। जो यों कहता है कि यह विषय साधुओं को पढ़ने का है, कि श्रावकों को पढ़ने का है? यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है। वस्तु-स्वतंत्रता, स्वरूप दृष्टि। तीर्थंकरप्रकृति का बंध मुनियों को भी होता है और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती श्रावक को भी होता है, लेकिन उस प्रकृति का बंध तभी संभव है जब वस्तु-स्वतंत्रता का भान हो जायेगा। ये तो नियोग है कि यहाँ इतने मुमुक्षु जीव विभिन्न दिशाओं से आए हैं। सिद्ध करता है कि श्रद्धा है। इन ज्ञानियों से पूछो- कभी जैनदर्शन का अध्ययन नहीं किया।

वर्णी जी का एक देहात में प्रवचन हुआ, बहुत सारे लोग आ गए। तब उन्हें अपनी जीवनगाथा में लिखना पड़ा कि शहरी लोगों की अपेक्षा ग्रामीणों में सरलता अधिक है। यानि आज तुम्हारा सौभाग्य है, जो यह ग्रंथ विराजमान है। इसे, ये पण्डित लोग खोलने तक से डरते हैं। आज आपको उसके दर्शन हो रहे हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को तत्त्व का निर्णय नहीं होता, तो तीर्थंकरप्रकृति का बंध नहीं होता और तत्त्व मिलने के उपरांत सम्यग्दर्शन भी होता है। वो विषय भिन्न है कि आपके समझने की ताकत कैसी है। नय और न्याय का ज्ञान होना द्रव्यानुयोग के अध्ययन के लिए अनिवार्य। जिसको नय और न्याय का ज्ञान नहीं है वह द्रव्यानुयोग को समझ नहीं पायेगा। एक ही वस्तु का इतना व्याख्यान किया जा रहा है, जिसका नाम है आत्मा और उस शुद्धात्मा को यह जीव शरीर सहित अवस्था में कैसे पहचाने?

ज्ञानी! किसी भी डॉक्टर के घर आप गए तो आपने यह बोला कि मुझमें पीड़ा है, कि मेरे हाथ में पीड़ा है? यों कहते हो- मेरे हाथ में पीड़ा है। यानि मेरा हाथ 'मैं' नहीं हूँ। महाराज! हाथ में पीड़ा है, मैं में पीड़ा नहीं है। हाथ 'मैं' नहीं हूँ। मैं कुछ-और हूँ, हाथ कुछ-और है। इसी का नाम है शरीर भिन्न है, जीव भिन्न है। इस ग्रंथ में मात्र इतना उपदेश है। किसी तीर्थंकर का नाम नहीं है, कोई कथा नहीं है। इतना मोटा ग्रंथ है, वर्णन किसका है? आत्मा का।

कोई संबंधकारक नहीं है। प्रश्न करो, संबंध भिन्न मे होता है कि अभिन्न में? घर, जिसमें तू रहता है, अधिकरण है, आधेय नहीं। शिवपुरी में भवन में बैठे हो, यह भवन 'आप' हैं या आप भवन में हो। ज्ञानी! देह में तो तू है, पर तू देह नहीं है। भवन गिर जाए तो क्या तू गिर जायेगा? भवन में आग लग जाए तो क्या तू भोगेगा नहीं? भारतीय दर्शनों में एक चार्वाक दर्शन को छोड़कर सबने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। शेष दर्शनों में भी जो समयसार की भाषा है उसी भाषा का प्रयोग है। गीता में पहुँचोः-

जो छिन्न-भिन्न नहीं होती, नष्ट नहीं होती, देहों को बदलती अवश्य है पर देहभूत नहीं होती है। यदि आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते हो तो किसी को भूत भी नहीं लग सकते। आत्मा की सिद्धि भूतों से होती है। जब किसी को भूत लग जाते हैं तो कहता है कि मैं तेरा अमुक संबंधी हूँ, यानि जो भूत बना वह पहले तेरा संबंधी था, आज सता रहा है। तात्पर्य यह है कि आत्मा त्रैकालिक है। शरीर त्रैकालिक नहीं है, वह तात्कालिक है। जब मैं शरीर छोड़ूँगा, तो शरीर के नाश का नाम मरण है, कि आत्मा का मरण है? मृत्यु तो सत्यार्थ है, वह तो आनंद का दिन है। ज्ञानी! तेरे कपड़े फट जायें और पिताजी तेरी माँ से चर्चा कर रहे हों कि बेटे के कपड़े फट गए हैं, नए सिलवाना है, तू सुने तो कैसा लगेगा? अच्छा लगेगा। भो ज्ञानी! जिन कपड़ों को बरसों से पहने था, उतरने पर खुश हो रहा था तो फिर शरीर बदलने पर खुश होना चाहिए था। मृत्युकाल में ज्ञानीजीव को आनंद आता है कि चलो, सड़ा-गला छूटेगा, नया मिलनेवाला है। समयसार में यही कथन है। बस इतना समझा आ जाए कि हम मर नहीं रहे हैं। विश्वास रखना, मैं भी नहीं मरूँगा। इतना बोध हो जाए, इसका नाम आत्मविद्या है। आज ज्ञान हो गया कि मैं नहीं मरूँगा। वस्त्र के फटने से मैं नहीं फटूँगा। शरीर के नष्ट होने से मैं नहीं नष्ट होऊँगा। अन्यथा सब शास्त्र झूठे हो जायेंगे। शरीर के साथ यदि आत्मा नष्ट होती तो शरीर के जलने के साथ आत्मा भी जल गई। फिर पुण्य-पाप किसको मिलेगा? डायरी पर नोट कर लेना-सम्प्रदाय की रूढ़ि किसी को समझाई नहीं जाती। रूढ़ि में चल रहे हैं। तर्क के सम्प्रदाय सभी को समझ आते हैं। रूढ़ि में- 'जो है, सो है', तर्क में 'जो है, सो कैसे है?' ऊर्जा का कभी नाश नहीं होता, यह त्रैकालिक सिद्धांत है। जीव के बारे में 'पंचास्तिकाय' की पाँच गाथायें और गीता की पाँच कारिकायें एक-जैसी हैं। आत्मा को 'पदार्थ' नाम से भी जानते हैं। पदार्थ यानि वस्तु। वस्तु का विनाश होता है क्या? यदि हो जाएगा तो- ''दीप जल रहा था, जलते-जलते बुझ गया। दीप नष्ट हुआ कि राख में बदल गया? दीप नष्ट नहीं हुआ, बाती नष्ट नहीं हुई। जो बाती रूई के रूप में थी, वह राख के रूप में हो गई। लकड़ी चूल्हे में डाल दी थी, व्यवहार से कहते हो कि लकड़ी खत्म हो गई, पर वास्तविकता यह है कि लकड़ी खत्म नहीं हुई, राख बन गई है। लकड़ी समाप्त नहीं हुई, लकड़ी बदल गई। जो शरीर है, वह भी नष्ट नहीं होता। जब भी जलाया

अथवा गाड़ा जाएगा। जलायेगा तो राख होगा, गाड़ेगा तो मिट्टी होगा।

विचार करो, भारतीय दर्शनों को कॉलेजों में पढ़ाने की आवश्यकता है कि नहीं? जो मंदिरों में करते हो, वह पुण्यक्रिया है, पुण्यकर्म है। जो यहाँ सुन रहे हो, व्याख्या चल रही है, यह वस्तुधर्म है। नमस्कार आदि करना, ये क्रियायें हैं। वस्तुव्यवस्था जो है, वह द्रव्यानुयोग है। बोलो- किसको पढ़ना चाहिए, किसको नहीं? जिसमें प्रज्ञा है, उसको श्रावक को भी पढ़ना चाहिए। जिसमें प्रज्ञा नहीं है, उस बड़े-बड़े त्यागी को भी नहीं पढ़ना चाहिए। जो भ्रमित हुए सो फँसे। ऐसा अलौकिक ग्रंथ है, इसकी प्रकृति का ज्ञान नहीं होगा तो भ्रमित होगा। इसलिए अधिकरण तो अधिकरण है, संबंध-संबंध है। संबंधकारक जब लगेगा, पर में ही लगेगा। हाथ भिन्न है, मैं भिन्न हूँ। जब पीड़ा हो, तब चिंतन करना। अभी इतनी गर्मी पड़ रही है, उससे पेट में गर्मी पड़ने लगे, फिर भी वह क्या कहता है- मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे पेट में जलन हो रही है। यानि कि अनुभवकर्ता भिन्न है, जिसमें जलन हो रही है वह भिन्न है। लेकिन मैं उसमें हूँ, इसलिए वह रागभाव है। मैं वेदक तो हूँ, पर वेदना शरीर में है। उस वेदना का भोक्ता मैं अवश्य हूँ, क्योंकि संश्लेष संबंध है, इसलिए मेरे में पीड़ा हो रही है। फिर-भी पेट में जलन है, मेरे में नहीं। जिसके हाथ-पैर हैं, उनमें दर्द है। जिसके पेट है, उसे दर्द है। जो हाथ-पैर पेट से रहित हो जाए, तो सम्पूर्ण दर्द से रहित हो जाए। इसका नाम सिद्ध भगवान है। जब-तक शरीर है, तब-तक दर्द है।

न अंगं न संगं न स्वेच्छा न कायं।
चिदानंद रूपं नमो वीतरागम्।। 1।।

न अंग मेरे हैं, न संग मेरा है। मैं कैसा हूँ 'चिदानंद रूपं,' चिदानंद रूप हूँ। खेत से शाम को घर आते-आते किसी ज्ञानी ने खेत का सौदा कर लिया। किसी ने फसल सहित खेत खरीद लिया। पैसे जेब में आ जाए। दूसरे दिन उसी खेत की मेंढ़ से गुजर रहा था। जिस ज्ञानी ने कल तेरे खेत से बूंट उखाड़े थे वही आज बूंट उखाड़ कर ले जा रहा था। कैसा लगा? न गुस्सा आया, न कषाय भड़की। कहता है हमने तो खेत बेच दिया। ओहो! वह भूमि थी, वही फसल थी, वही उखाड़ने वाला था, फिर भी गुस्सा क्यों नहीं आई? जब-तब स्वामित्व भाव है, संबंधकारक जहाँ-जहाँ होगा, वहाँ-वहाँ कषायभाव होगा और जहाँ-जहाँ कषायभाव होगा, वहाँ-वहाँ बंधभाव होगा। और जहाँ बंधभाव होगा, उसका नाम संसार है।

मैं इस बात को किंचित् भी नहीं मानता कि जिनवाणी किसी को समझ नहीं आती। मानिए इस बात को कि जो सत्य तत्त्व है, वह सभी को समझ में आता है। समझाने की आवश्यकता है, वस्तुस्वरूप

सबको समझ में आता है। जहाँ-जहाँ संबंध है, वहाँ-वहाँ कष्ट है। यही कारण है कि अध्यात्मशास्त्रों में संबंधकारक की व्याख्या नहीं की जाती। समयसार ग्रंथ मात्र में षट्कारक की व्याख्या है। संबंधकारक को नहीं स्वीकारा तो संबंध कहेगा कि महावीर हैं, राम हैं, पर.....। 'पर' आ गया, मैं नहीं बचा। और जहाँ पर आ गया, मैं नहीं बचा, वहीं मैं स्व से हट गया। अज्ञानी जीव को इतना ही कहा जा सकता है- अहो! संबंधकारक में लीन आत्मा। यदि उसको वैराग्य भाषा में बोला जाए तो अहो मुमुक्षु। इस संबंधकारक का अपादान करो। अपादान कौन-सी विभक्ति है? पाँचवी विभक्ति का नाम अपादान करो। जैसे वृक्ष से पत्ते गिर रहे हैं, ऐसे-ही, अपने अंतरंग में राग का पत्र पड़ा हुआ है, उसे छोड़ दो। यहाँ आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी 23वाँ कलश लिख रहे हैं और प्रेमपूर्वक कह रहे हैं-

जैसे कौतूहलपूर्वक और जिस पर आस्था भी न हो श्रद्धा भी न हो, आश्चर्यकारी द्रव्यों को देखकर आप देखने के लिए दौड़ते हो। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं अरे ज्ञानी! एक दिन ऐसे-ही कौतूहल कर लो, निज शुद्ध भगवानात्मा को देह से भिन्न देख लो। कौतूहल से ही, एक दिन तो कर लो। ज्ञानी! हँसते-हँसते लड्डू खाने से मुँह मीठा होता है कि नहीं? और गुस्से में रखे तो.....? बस, रूक जाओ, चाहे तुम अशुभ कर्म हँसी-हँसी में करो तब भी बंध होगा, चाहे साँची-साँची में करो, चाहे गुस्सा-गुस्सा में करो, तब भी बंध होगा। गुस्सा तुम्हें आया, कर्म को नहीं आया। इसलिए जो कर्म हँसते-हँसते, गुस्से-गुस्से में, साँची-साँची में कर रहे थे, ऐसा कर्म करना बंद कर दो, तो कर्मबंध समाप्त हो जाए। आप कर्मबंध से तो डरते हो, पर कर्म बंद नहीं करते। कर्मबंध से मत डरो, उन कर्मों को बंद कर दो जिनसे कर्मबंध होते हैं। योगी कुछ नहीं करते, आप बहुत ऊँची-2 बातें करते हो कि साधु ने ये छोड़ दिया, साधु ने वो छोड़ दिया। जो कर्मबंध के कर्म को बंद करके बैठता है, उसी का नाम साधु है। साधु क्यों बनना पड़ता है? खाने-पीने को नहीं मिला, रहने के लिए नहीं मिला, इसलिए बनना पड़ता है क्या? ज्ञानी! इसलिए बनना हो तो मत बनना। साधु भी न बनना पड़े, इसलिए साधु बनना। इसका नाम समयसार है। साधु न बनना पड़े इसलिए, भगवन्! मैं साधु बना हूँ और साधु ही बनता रहूँ तो क्या फायदा? कोई जीव राजा का सैनिक बना, अज्ञानी से अज्ञानी भी होगा तो यही सोचेगा मैं गद्दी पर कब बैठूँ? कब ऐसा अवसर मिले कि मैं स्वामी बन जाऊँ। सम्यग्दृष्टि जीव, चाहे श्रावक हो चाहे साधु, 23 घण्टे यही भाव लाता है- हे भगवन्! मैं आपके पास इसलिए नहीं आता हूँ कि आता रहूँ। इसलिए आपके पास आता हूँ कि आपके पास भी न आना पड़े। ध्यान रखना, आना मत छोड़ देना। तब-तक आते रहना, जब-तक आप स्वयं भगवान न बन जाओ।

यहाँ आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी यही स्पष्ट कर रहे हैं कि कोतूहल करो-

अयि! कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्,-
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्व समालोक्य येन,
त्यजसि झगिति मूर्त्त्या साकमेकत्वमोहम्।।23 अ.अ.क.।।

हे ज्ञानी! (मुहूर्त्तम्) एक मुहूर्त्त में तो सब हो जाता है। भैया! समय बदलता है, फिर भी समय नहीं बदलता, यही समयसार है। हे सागर! तेरे में उत्पन्न होती हैं धारायें, वे तो उत्पन्न एवं नष्ट होती हैं, पर तू होता है। जिसमें होती हैं, वह होता है। जो होता है, उसमें होती हैं। द्रव्य होता है, उसमें पर्याय होती हैं। जो पर्याय होती हैं, वे द्रव्य में होती हैं। समय बदलता है, समय नहीं बदलता। काल बदल रहा है, पर उस काल में ज्ञानी आत्मा कहाँ बदल रही है? तन बदल रहा है, पर आत्मा तो वही है। तू बदला तो है, पर बदला नहीं है। बदला नहीं तो ऐसा कैसे हुआ?

अब अनुभव में आता होगा कि किसी की कथा किए बिना भी कथन होता है। वही यथार्थ होता है। वही समयसार होता है। कथायें संबंधों की होती हैं, पर समयसार स्वभाव होता है। ये लोग बच्चों को गीता नहीं पढ़ने देते, क्यों? बच्चे नाजुक हृदय के, भावुक होते हैं, पढ़ लेंगे तो वैराग्य हो जायेगा। आपके यहाँ समयसार नहीं पढ़ने देते। पढ़ लेंगे तो वैराग्य हो जायेगा। ये घर न छूट जाए। अरे ज्ञानी! जिसके विधि में जो विधान है, तुम क्या कर सकते हो? पकड़नेवाला पकड़ता रह जाता है, जानेवाला चला जाता है। जहाँ मोह की रस्सी टूट जाए, तुम्हारी रस्सी किस काम की? ध्यान रखो जिनको दीक्षा लेना हो, ये माँ-बाप तो पकड़ते ही हैं, पकड़नेवाले पकड़ते हैं, पर हम पकड़े नहीं जाते हैं। जिसे पकड़ेंगे, वह मैं नहीं होऊँगा और जो मैं होऊँगा, वह पकड़ा नहीं जा सकता। जो पकड़ा जाता है, वह शरीर होता है, मैं नहीं होता।

इसलिए आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी बड़े प्रेम से कह रहे हैं :-

हे ज्ञानी! हे भाई! किसी भी प्रकार से, महान कष्ट हो प्राप्त करके भी तत्त्व का कौतूहल कर (तत्त्व को जानने का प्रयास कर)। मरण अवस्था को भी प्राप्त क्यों न हो जा, लेकिन तत्त्व का कौतूहल कर भी अपनी निज आत्मा को इस शरीर से मुहूर्त मात्र भी तू पृथक् देख। यदि जान लिया, यदि एक अन्तर्मुहूर्त के लिए भी सम्यक्त्व हो गया, तो नियम से निर्वाण होगा। यदि एक समय प्रमाण काल भी किसी को प्रकट हो जाए तो अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन में नियम से मोक्ष होगा। हाँ, सम्यक्त्व की इतनी महिमा है। इसलिए स्वयं अच्छे ढंग से देखकरके, उसे शीघ्र ही तुम छोड़ दो। मैं शरीर हूँ, शरीर मैं हूँ, इस मोह को छोड़ दे तू। एक मुहूर्त प्रमाण भी छोड़ दिया तो ध्यान रखना, मुमुक्षुओं! जैसे पत्थर को तोड़ने

वाला शिल्पकार एक घन मारता है, पत्थर टूटता नहीं है, लेकिन जब भी पत्थर टूटेगा, एक घन में ही टूटेगा। एक घन में टूटता था तो अनेक घन ने क्या किया? जब-तक अनेक घन न होते, तो एक घन काम करता क्या? इसलिए, बिल्कुल मत घबराना। अभी ये घन पड़ रहे हैं अपनी आत्मा में। कहते हैं कि इस कलिकाल में भगवान तो कोई बनता नहीं है। जैसे, एक घन से पत्थर नहीं टूटता, लेकिन जब भी टूटेगा एक घन में ही टूटेगा, ऐसे-ही इस कलिकाल में हम आत्मा में लगे कर्म-पत्थर में घन मार रहे हैं और जब भी टूटेगा, वह हमारा एक ही घन में टूट जायेगा। बिल्कुल मत घबराना। इसलिए तो जीव प्रमादी होकर ये कहते हैं कि इस पंचमकाल में, खोटे कलिकाल में मोक्ष तो होता नहीं, इसलिए मुनि क्यों बनना, साधना क्यों करना, भगवान का नाम क्यों लेना? अरे ज्ञानी! एक घन में पाषाण नहीं टूटता, एक घन में तेरा मोक्ष कैसे हो जायेगा? जैसे पत्थर को तोड़ने अनेक घन, छैनी, मारना पड़ती हैं, इस पंचमकाल में भी आत्मा में लगे कर्म-पत्थर को तोड़ने के लिए आपको अनेक घन मारने पड़ेंगे।

अप्रतिबु द्ध के विषय में यहाँ कहते हैं :- अज्ञान से मोहित मति है जिसकी, ऐसा जीव सोचता है- मेरे पुद्गल द्रव्य हैं, जो बद्ध हैं, संबंध को प्राप्त हैं, देह रूप हैं, जो अबद्ध हैं-

हमारे निज देह से भिन्न हैं, स्त्री पुत्र आदि। आप अपने आप से कितने सुखी हो, कितने दुःखी हो? आप यहाँ भगवान शांतिनाथ स्वामी की चरण-मिश्रा में बैठे हैं, कोई अप्रिय समाचार आ जाए तो टेंशन हो जायेगी। कर्म-विपाक उसका है, दया का भाव तेरा है। तेरी आँखों से आँसू न ढालना, इसका नाम धर्मात्मा है। पर के दुःख में दुःखी मत होना, दया करना, अपने सुख को देखकर सुखी मत होना।

एक व्यक्ति को कैंसर हो गया। बेटों से उसने पूछा क्या हुआ? तो बेटों ने छुपाया नहीं, बता दिया कि आपको कैंसर हो गया है। वह वृद्ध बिल्कुल संक्लेशित नहीं हुआ। बेटों से कहता है मेरी व्यवस्था एक कमरे में कर दो। और उसने स्वयं को उस कमरे तक सीमित कर लिया। ज्यादा किसी को जाने की मनाही थी। एक दिन उन्होंने अपने बेटों से कहा कि हमारे यहाँ जो त्यागी जी हैं उन्हें बुलवा दो। वे त्यागी जी आए और वृद्ध की अवस्था देख सहानुभूति जता रोने लगे कि आपकी हालत कितनी खराब है। वे वृद्ध कहते हैं 'आप उठिए, जाइए यहाँ से। मैंने आपको तत्त्व की बातें बताने बुलाया था। इसलिए बुलाया था कि समयसार की दो बातें सुना दो।' उन्हें भान हुआ- मैं त्यागी हूँ और ये गृहस्थ। मैं समझाने आया हूँ, ये मुझे समझा रहे हैं। ज्ञानियों! भीतर का गुरु जागृत होना चाहिए। भावों का गुरु निर्मल नहीं है तो बाहर के गुरु कुछ नहीं कर पायेंगे। हम आपको उपदेश ही तो देंगे, स्वीकार तो आपको करना है। इस तत्त्वविद्या की यही तो महिमा है। प्रत्येक वस्तु को स्वतंत्र घोषित करना, यह समयसार की दृष्टि है, कोई पराधीन नहीं है।

अनेक परिणामों से युक्त, इस जीव में मिथ्यात्व व रागादि भाव हैं। अज्ञानी जीव 'स्त्री पुत्रादिक मेरे हैं, ऐसा कहता है। अब यहाँ पर बहिरात्मा जीव को समझा रहे हैं- हे दुरात्मन्! यदि जीव पुद्गलभूत है, तो पुद्गल भी जीवभूत हो जाएगा। ये पुद्गल द्रव्य मेरे हैं, ऐसा कहता है। जैसे बरसात के काल में समुद्री नमक पानी हो जाता है, ग्रीष्मकाल में जल नमक हो जाता है। ऐसा कोई भी मौसम नहीं आयेगा जिसमें आत्मा पुद्गलभूत हो जाए, पुद्गल आत्मभूत हो जाए। आत्मा आत्मा ही है, पुद्गल पुद्गल ही है। ऐसा निश्चय से जानो।

आत्मास्वभावं परभाव भिन्नं।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी, जैन वाङ्‌मय के अध्यात्म के अपूर्व सृजेता जिन्होंने 84 पाहुड़ ग्रंथ लिखकर सारे विश्व को द्रव्य-दृष्टि प्रदान की। यदि आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी का साहित्य आज हमारे सामने न होता तो वस्तु की वास्तविकता का भान नहीं हो सकता था। सिद्धांतशास्त्रों में पदार्थों, लोकालोक आदि का कथन किया गया है, कर्मप्रकृतियों का कथन है, जीव के परिणामों का कथन है, लेकिन आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने आत्मा की उन अपूर्व गहराइयों को हमारे सामने रखा कि जो पदार्थ हैं...

'तस्य भावस्तत्त्वम्।।

जो वस्तु का स्वभाव है, वही तत्त्व है। इसलिए सात तत्त्वों में सारा विश्व समाविष्ट हो चुका है। सात तत्त्वों में सारे विश्व की व्याख्या है। और अभेददृष्टि से कथन करें तो दो तत्त्वों में सारा विश्व आ चुका है-जीव, अजीव। शेष तत्त्व जीव और अजीव का ही संयोग है और वियोग है।

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।।द्र.सं.।।

भगवान ऋषभदेव ने दो ही मूल द्रव्य कहे हैं- जीव और अजीव। जितने जीव हैं, वे सब जीवद्रव्य हैं। जितने शेष हैं, वे सब अजीवद्रव्य हैं। छह द्रव्यों में एकमात्र जीवद्रव्य चेतन है, मूर्तामूर्तिक है। एक पुद्‌गल द्रव्य है जो मूर्तिक है, अचेतन है। शेष जो द्रव्य हैं, वे सब अचेतन हैं, अमूर्तिक हैं। जीवद्रव्य मूर्तामूर्तिक है। बंधदृष्टि से मूर्तिक है और स्वभाव से अमूर्तिक है, इसलिए मूर्तामूर्तिक है। जो मूर्त दशा है, वह जीवद्रव्य की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय है। अमूर्त दशा है वह जीवद्रव्य की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय है। स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय और विभाव-द्रव्य-व्यंजन-इन दोनों को ज्ञेय, हेय, उपादेय इन तीन दृष्टियों से जानने की आवश्यकता है। यह वर्तमान में तेरी विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय है यह हेय है, ज्ञेय है, कथंचित् उपादेय है। परंतु स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय उपादेय ही है, ज्ञेय भी है। विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को उपादेय क्यों कहा? हेय तो समझ में आता है। जो 84 लाख योनियाँ हैं, ये जीवद्रव्य की विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्यायें हैं और सिद्ध पर्याय जीवद्रव्य की स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय है। विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को उपादेय कहने का उद्देश्य क्या है?

आचार्य वीरसेन स्वामी ने धवला जी की पहली पुस्तक में एक बात लिखी- जो अभव्य जीव है, संसारी जीव है, वह जीवद्रव्य भी अमंगलभूत नहीं है। क्यों? ज्ञानगुण कभी अमंगल नहीं होता। उस जीव में ज्ञान है, कि नहीं? तो विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय भी उपादेय है। विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय की सत्ता में ही मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ होता है। स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय में मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ होता है क्या? सिद्ध पर्याय स्वभाव-द्रव्य-गुण-व्यंजन पर्याय है। संसारी पर्याय जीव की विभाव-द्रव्य-गुण-व्यंजन पर्याय है। स्वभाव-द्रव्य-गुण-व्यंजन पर्याय तो उपादेय ही है, यह तो सबको समझ में आ रहा है। लेकिन यहाँ कहा जा रहा है कि विभाव-द्रव्य-गुण-व्यंजन पर्याय भी उपादेयभूत है। ये कैसे है? :-

''नय अपेक्षा, न सर्वथा''

जो-जो स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को प्राप्त करेंगे, वह सिद्ध प्राप्त करेंगे कि असिद्ध करेंगे? असिद्ध, जो स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय को प्राप्त करेंगे, वे उपादानसाध्य हैं, कि पुरुषार्थसाध्य हैं, कि निमित्तसाध्य हैं? आप कह रहे हैं कि उपादानसाध्य हैं, तो क्या निगोदिया में उपादान शक्ति नहीं थी? क्या उसमें सिद्ध बनने की योग्यता नहीं थी? बहुत बड़ी शंका का समाधान होने वाला है। उपादान साध्य है, कि उपादान साध्य ही है। यानि कि निमित्त साध्य भी चाहिए। निमित्त साध्य भी है, पुरुषार्थ साध्य भी है, उपादान साध्य भी है। अब कुछ बात जम रही है।

आत्मोपादान सिद्धं

'सिद्ध भक्ति' मैं एवं 'इष्टोपदेश' में आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं-

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसम्पत्ता वात्मनोऽप्यात्मता मता ।। 2 इष्टो.।।

देखिए हम कहाँ गलती कर लेते हैं- कहीं कोई निमित्तसाध्य ही मान रहा है, कोई उपादानसाध्य ही मान रहा है, कोई पुरुषार्थसाध्य ही मान रहा है। आचार्यभगवान समन्तभद्र स्वामी से प्रश्न कर लिया होता तो वे इन तीनों को मिथ्यादृष्टि घोषित कर देते। एक कि निमित्ताधीन दृष्टि है, एक की उपादानाधीन दृष्टि है, एक की पुरुषार्थाधीन दृष्टि है। जहाँ अधीन, शब्द लग गया, वहीं मिथ्यात्व प्रारंभ हो गया।

'एकांतनया मिथ्या'

जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव की प्रत्यासत्ति का व्याख्यान नहीं करते, वे तत्त्व का निर्मल व्याख्यान कभी नहीं कर पायेंगे।

द्रव्यदृष्टि वस्तु के द्रव्यत्व का कथन तो कर रही हैं, लेकिन जब-तक पर्याय की प्रत्यासत्ति नहीं बनेगी, तब-तक द्रव्य की अनुभूति का वेदन नहीं होता। द्रव्यदृष्टि बराबर होने पर भी जब-तक पर्याय में नहीं आएगा, तब-तक तद्रूप परिणति नहीं बनेगी। जीव द्रव्य निगोदिया की अवस्था में भी द्रव्यदृष्टि से भगवान है, लेकिन जब तक पर्याय दृष्टि में नहीं आयेगा, तब-तक सिद्ध भगवान की अनुभूति को प्राप्त नहीं हो सकेगा। यही तत्त्व की भूल है। न निश्चय पक्ष है न व्यवहार पक्ष है, वस्तु का स्वरूप ये है। हे मुमुक्षु! ये आचार्य विद्यानंद अष्टसहस्री ग्रंथ में कह रहे हैं। दिगम्बर जैन आम्नाय में ही नहीं, विश्व के सम्पूर्ण न्यायशास्त्रों में कोई उत्कृष्ट न्यायशास्त्र है उसका नाम है अष्टसहस्री। इस ग्रंथ से बड़ा कोई न्यायशास्त्र नहीं है, जिसे ग्रंथकर्ता स्वयं कहते हैं- कष्ट सहस्री। जब प्रत्यासत्ति का कथन किया और स्वाध्याय करते-करते गद्गद् भाव आ रहा था कि प्रत्यासत्ति का कथन किए बिना ये सारे-के सारे जीव तत्त्व में भटक रहे हैं। भैया! आप प्रौढ़, अवस्था में हैं, मनुष्य हैं कि नहीं? शिशु-अवस्था से आगे निकल गए। हे मुमुक्षु! एक प्रौढ़, एक मनुष्य और एक सिंह को यहाँ खड़ा कर दिया जाए, बताइए, तीनों में से जड़ कौन है? इन तीनों में से अजीव कौन है? अब समझ में आता है। यह समयसार ग्रंथ अलौकिक ग्रंथ है और इस ग्रंथ के अध्यात्म से कोई भटके, ये मेरे समझ से बाहर है। इसको न समझने से लोग भटके हैं। तीनों जीव हैं न? भैया! विश्वास मानना- इस प्रौढ़ से मेरा आग्रह है- क्या इस प्रौढ़-अवस्था में शिशु-अवस्था की अनुभूति कर सकते हैं शिशु-जैसी चेष्टायें कर सकते हो क्या? कोई किशोर है, शिशु-जैसी चेष्टाएँ कर सकता है क्या? एक ही पर्याय में एक ही जीव अपनी ही पूर्व पर्याय की चेष्टा वर्तमान अवस्था में नहीं कर पा रहा है। तदनुरूप अनुभूति भी नहीं कर पा रहा है। जब पर्याय की प्रत्यासत्ति बदल गई तो जीव के परिणाम भी बदल गए। सादृश अस्तित्व की दृष्टि से प्रत्येक जीव में चेतनत्व भाव एक-सा है, लेकिन फिर भी सिंह की ज्ञान-दर्शन दृष्टि और आपकी ज्ञान-दर्शन दृष्टि भिन्न है। तुम दोनों जीवद्रव्य हो, लेकिन आपको देखकर भद्रता झलक रही है और सिंह को देखकर क्रूरता झलक रही है। इन दो द्रव्यों में भेद किसी बात का है? सिंह के अंदर क्रूरता और तेरे अंदर भद्रता। ये भेद क्यों? तुम दोनों जीवद्रव्य हो कि नहीं? ध्यान दो- जीवद्रव्य होने मात्र से काम नहीं चलेगा। जीवद्रव्य की पर्याय की प्रत्यासत्ति पर ध्यान देना होगा। अन्यथा सिंह की अनुभूति मनुष्य करेगा, मनुष्य की अनुभूति सिंह करेगा। नारकी की अनुभूति मनुष्य करेंगे, मनुष्या की अनुभूति नारकी और देव करेंगे। पर्याय की पर्यायों का वेदन प्रारंभ हो जाएगा। तो गतियों में संकर नाम का दोष हो जाएगा। जब नरकगति की अनुभूति मनुष्य नहीं कर पा रहा है। देखो, कैसे घुमा सकता है, वक्ता कैसे भ्रमित कर सकता है और कैसे तत्त्व को निर्मल कर सकता है।

चार गतियों के जीव अपनी-अपनी पर्यायों में हैं, जो जीव जिस पर्याय में होता है, उस पर्याय की

प्रत्यासत्ति (निकटता) के कारण उस जीव के परिणाम व प्रवृत्ति वैसी होती है। शिशु को कोई सिखाता नहीं है, उसकी प्रवृत्ति वैसी होती है, और प्रौढ़ से कोई कहता नहीं है कि गंभीर हो जाओ, वह प्रवृत्ति सहज होती है। जब संसार की चार गतियों के जीवों की अनुभूतियाँ एक-दूसरे में नहीं आती हैं, फिर संसारी जीवों में सिद्धों की अनुभूति कैसे आयेगी? सिद्धस्वरूप का ध्यान तो हो जायेगा, करना ही चाहिए। लेकिन जो शुद्ध द्रव्य-व्यंजन पर्याय है, तदनुरूप अनुभूति इस पर्याय में आने लग गई तो फिर शुद्ध पर्याय का पुरुषार्थ करने की आवश्यकता क्या है? यह प्रश्न विद्वानों के बीच में करना चाहिए। तर्क पर विचार करना। ज्ञान में आना/ध्यान में आना भिन्न विषय है और होना भिन्न विषय है। जब-तक सिद्धों का ध्यान है, तब-तक तू सिद्ध नहीं है। क्योंकि ध्यान प्राप्य का नहीं, अप्राप्य का होता है। प्राप्य की तो अनुभूति होती है। सिद्धों के चार में से कौन-सा ध्यान होता है? जब-तक ध्यान है, तब-तक वस्तु नहीं है। वस्तु होती है तो उसका ध्यान नहीं करना पड़ता है, फिर तो वेदन करना पड़ता है। सिद्धों का ध्यान वे करें जो सिद्ध बने नहीं हैं। सिद्धों का ध्यान सिद्ध नहीं करते, सिद्ध तो निजात्मा में लवलीन हैं। वहाँ ध्यान नहीं है, अनुभूति है, वेदन है, संवेदन है। स्वानुभव है, आत्म प्रतीति है, पर ध्यान नहीं है। सिद्धों के ध्यान नहीं होता। जो भी ध्यान होता है, असिद्धों के होता है। निर्णय करना पड़ेगा। जब-तक सिद्धों का ध्यान कर रहा हूँ, तब-तक मैं सिद्ध नहीं हूँ। जिस दिन में सिद्ध हो जाऊँगा, तो जगत में किसी का ध्यान नहीं करना पड़ेगा। समयसार भी नहीं पढ़ना पड़ेगा। न निश्चय का व्याख्या करना पड़ेगा, न व्यवहार का व्याख्यान करना पड़ेगा। क्योंकि- जो समयसार सिद्धस्वरूप समयसार है, वह तो पक्षों से अतिक्रांत है।

'' सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो।। 144 स. सा.।।

जो निश्चय-व्यवहार के पक्षों से शून्य है, उसका नाम समयसार है। उस समयसार की सिद्धि चाहिए तो निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का अध्ययन कर, समझकर, मध्यस्थ हो जाएगा, वह उसे प्राप्त कर लेगा। जब-तक निश्चय-व्यवहार में से किसी एक को खींचता रहेगा तो खींचला तो बनाता रहेगा बुन्देलखण्डी में, लेकिन मिथ्यात्व नहीं गला पायेगा। यानि स्वभाव-व्यंजन पर्याय जब-तक प्रकट नहीं होती, तब-तक द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध नहीं है। क्योंकि ये मुमुक्षु ज्ञानी कहते हैं कि द्रव्य तो त्रैकालिक शुद्ध है, महाराजश्री! पर्याय अशुद्ध है।

भूल सुधार करें। द्रव्यदृष्टि से जैसे किट्टिमा से युक्त नाली में बहता पानी। आँखों से देखने में गंदा दिखता है, लेकिन सत्य बताना, गंदा पानी है कि मिट्टी है? ठीक है, मिट्टी गंदी है, पानी स्वच्छहै, तो नाली से गिलास भरकर पी लेना चाहिए? पर गंदगी का संयोग पानी के कितने अंशों में है? सभी अंशों में है न? तो तुम नाली का पानी पीना पसंद नहीं करते हो। ऐसे-ही कर्म-मल से युक्त आत्मा अभी

स्वभाव से युक्त होने पर भी मिश्रण के कारण अशुद्ध है, स्वभाव से शुद्ध है, पर मिश्रण किसका है?

'अनादि संबंधे च।' (त.सू.)

कर्म कब से हैं? अनादि से हैं।

भैया! पर्याय अशुद्ध है, द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध है। यह कथन ऐसा ही मानना जैसे नाली का पानी त्रैकालिक शुद्ध है, लेकिन इसे पियोगे क्या? अशुद्ध नहीं है क्या? ऐसे-ही, जो आत्मा संसार में कर्म की नाली के साथ बह रही है, वह आत्मा, स्वभाव से शुद्ध होने पर भी, कर्म संबंध के कारण, जब-तक 14वें गुणस्थान तक में होती है तब-तक शुद्ध नहीं है। सिद्ध ही शुद्ध हैं। कितना समय लगता है? अ, इ, उ, ऋ, लृ। इतने समय तक अरिहंत भगवान अशुद्ध ही हैं। शक्तियाँ तो शक्तियाँ हैं। हम कब मना कर रहे हैं? लेकिन जिस समय जो होगा, वह तो वही होगा।

भैया! शुद्ध द्रव्य कभी अशुद्ध पर्याय में नहीं रहता। या तो विभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय का अभाव कराओ, या फिर स्वभाव-द्रव्य-व्यंजन पर्याय का अभाव कराओ। दोनों में से एक का अभाव तो करना ही पड़ेगा। अब करोगे क्या? विभाव पर्याय में शुद्ध द्रव्य निवास करेगा, कि अशुद्ध द्रव्य निवास करेगा? एक शरीर में जो आत्मा है, वह स्वभाव द्रव्य पर्याय में है कि विभाव पर्याय में है? स्वभाव में जो विराजमान हैं, वे कर्म सहित हैं या कर्म रहित हैं। जो कर्म सहित हैं, वे विभाव पर्याय में निवास करती हैं, और जो कर्म रहित हैं, वे स्वभाव पर्याय में निवास करती है। करणानुयोग तो यह कहेगा, अहो! द्रव्य-दृष्टि का कथन करने वाली आत्माओं! आपको जो कहना है कह लीजिए, लेकिन हमारे यहाँ तो 100 टका काम होता है। आप द्रव्यदृष्टि से निगोदिया को सिद्ध भगवान बनाओ, हमें कोई प्रयोजन नहीं, लेकिन जब-तक कर्म का अंश मात्र भी आत्मा में रहेगा, तब-तक हमारे सिद्धांत से अशुद्धात्मा ही है। शक्ति तो शक्ति है, अभिव्यक्ति तो अभिव्यक्ति है। पंचास्तिकाय ग्रंथ में आचार्यप्रवर कुंदकुंद स्वामी स्वयं कह रहे हैं-

पज्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति।।12 पं. का.।।

पर्याय से रहित द्रव्य, द्रव्य से रहित पर्याय नहीं है। दोनों अनन्यभूत हैं। तो जिस काल में जैसा द्रव्य होगा, वैसी पर्याय होगी और जैसी पर्याय होगी, वैसा द्रव्य होगा। यह व्यर्थ की बातें हैं कि द्रव्य शुद्ध है, पर्याय होगी, वैसा द्रव्य होगा। यह व्यर्थ की बातें हैं कि द्रव्य शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है। ये कथन चला कैसे? ऐसा कहना चाहिए कि शक्ति की दृष्टि से आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है,-

सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।

शुद्ध नय की अपेक्षा से आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है।

कर्मोपाधिक निरपेक्ष (आलाप पद्धति)

जब कर्म की उपाधि से निरपेक्ष होकर देखेंगे तो सारे जगत के जीव सिद्ध के समान शुद्ध हैं। बस एक एक्स-रे मशीन है, एक कैमरा है। एक्स-रे मशीन से देख रहा था जब हड्डियाँ ही थीं शरीर में, कि चर्म आदि भी थे? ये तो उस मशीन की योग्यता है कि वह सिर्फ हड्डियों को देखता है, चर्म को गौण करता है, लेकिन विनाश नहीं करता। फोटो में ऊपर का रूप दिखता है, तो क्या उस शरीर में हड्डियाँ नहीं होती? निश्चयनय एक्स-रे मशीन है, व्यवहारनय कैमरा है। यहाँ न कैमरा चाहिए न एक्स-रे। यही निश्चयनय-व्यवहार नय है। दो दृष्टियाँ हैं, दोनों दृष्टियाँ वस्तु नहीं हैं। वस्तु को समझने के लिये ये दो दृष्टि हैं। वस्तु तो आत्मद्रव्य है। वे दो दृष्टियाँ (निश्चयनय, व्यवहारनय) वस्तु की प्राप्ति का उपाय भी नहीं। मात्र शैलियाँ हैं समझने के लिए। उससे वस्तु प्राप्त होती नहीं है।

जिसका कथन चल रहा है, वह प्राप्त कैसे होगा? तो उसके लिए निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय की आराधना चाहिए। जब-तक निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय की आराधना नहीं है, तब-तक निश्चय-व्यवहार नय आपको वस्तु प्राप्त नहीं करा सकता। वह तो भाषा है। अंतर समझ में आया? निश्चयनय, व्यवहारनय मोक्षमार्ग नहीं। निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय मोक्षमार्ग है। इसलिए जो जीवद्रव्य है, वह देहादि से भिन्न है, अमूर्त है। शुद्ध स्वभाव ऐसा समझना। इस प्रकार देह व आत्मा के में भेदज्ञान को जानकर के, मोह से उत्पन्न हुए समस्त विकल्प जालों को छोड़कर, निर्विकार, चैतन्य-चमत्कार मात्र निज परमात्म भाव में भावना करना चाहिए। ऐसा तात्पर्य समझना चाहिए।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। अज्ञानी की आशंका। ।

उत्थानिका - **आगे अप्रतिबद्ध (अज्ञानी) जीव का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं।**

गाथा - **जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथु दी चेव।।**
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।। 26।।

अन्वयार्थ - **(यदि)** जो **(जीवः)** जीव है वह **(शरीरं न)** शरीर नहीं है तो **(तीर्थकराचार्य) (संस्तुतिः)** तीर्थंकर आचार्यों की स्तुति करना है वह **(सर्वापि)** सब ही **(मिथ्याभवतिः)** मिथ्या हो जाय **(तेन तु)** इसलिये हम समझते हैं कि **(आत्मा)** आत्मा **(देहः चैवः)** यह देह की **(भवति)** है।

संस्कृत छाया - **यदि जीवों न शरीरं तीर्थकराचार्य संस्तुतिश्चैव।**
सर्वापि भवति मिथ्या तेन तु आत्मा भवति देहः ।। 26।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने वस्तु के यथार्थ धर्म का कथन करते हुए समझाया। प्रतिबुद्ध/अप्रतिबुद्ध की क्या दृष्टि है? अज्ञानी/ज्ञानी जीव का क्या विचार है? जो निजद्रव्य को निजद्रव्य और परद्रव्य को परद्रव्य स्वीकारे, उसका नाम ज्ञानी है। इसके विपरीत अज्ञानी है। प्रश्नरूप गाथा कहके आचार्य महाराज प्रकरण को आगे कह रहे हैं। निश्चय पक्ष और व्यवहार पक्ष का समन्वयभूत कथन कर रहे हैं। एक पक्ष शरीर की वंदना को ही वंदना कहता है दूसरा पक्ष गुणों की वंदना को ही वंदना कहता है।

सापेक्ष कथन है तो दोनों सही हैं। शरीर की वंदना से आत्मगुणों की वंदना नहीं हो जाती, यह सत्य है। हो जाती है, यह भी सत्य है। जो मात्र शरीर निहार रहा है, आत्मा के चेतन गुणों पर दृष्टि नहीं, तो शरीर की वंदना सही नहीं, कोई कार्यकारी नहीं। पर्याय के बिना पर्यायी को जाना/समझा नहीं जा सकता। तीर्थंकर की पर्याय यदि है, बिना तीर्थंकर द्रव्य के नहीं है। जहाँ पर्याय है, वहाँ गुण-द्रव्य नियम से होगा। तीर्थंकर का वर्णन तो शरीर का वर्णन है जिसमें गुणों का और द्रव्य का दोनों का वर्णन हो जाता है। कुंदकुंद स्वामी दोनों पक्षों का विशद् कथन कर रहे हैं। यह न्याय की शैली है। निर्ग्रंथ जब पक्ष का कथन करते हैं तो पूर्ण तन्मय हो जाते हैं। तन्मयभूत हो जाते हैं। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी भी यही कह

रहे हैं। आत्मा संसार में किसी शरीर से युक्त हो सकती है, लेकिन शरीर आत्मा नहीं है। संसार में आत्मा व शरीर तन्मयीभूत होने से व्यवहार से शरीर आत्मा एक कहे तो ठीक है। परमार्थ से आत्मा शरीर नहीं है। प्रश्न कौन कर रहा है? अप्रतिबुद्ध, अज्ञानी कर रहा है।

अप्रतिबुद्ध जीव, कोई दूसरा जीव नहीं बैठा। आचार्य कुंदकुंद स्वयं ही प्रश्न कर रहे हैं, स्वयं ही समाधान कर रहे हैं। यह हमारे आचार्यों की शैली है। अन्य किसी को प्रश्न करने का समय ही नहीं। हम ही शंका खड़ी कर देते हैं। ऐसी शंका कि शंका ही को ध्यान से सुन लिया और उत्तर नहीं सुना, तो लगेगा कि बिलकुल सही कहा जा रहा है। दर्शनशास्त्र में आचार्य पूर्वपक्ष को बड़े ध्यान से प्रज्ञा से कहते हैं। जब-तक पर पक्ष को जाने नहीं, तब-तक स्व पक्ष का कथन नहीं कर पायेंगे। किसी भी दर्शन के बारे में बोलने से पहले, पूर्व पक्ष का अध्ययन कर लेना। वकील भी पक्ष का अध्ययन करता है। स्वपक्ष के साथ पूर्व पक्ष का ज्ञान आवश्यक है। यह समयसार ग्रंथ है। अध्यात्मशास्त्र पर पूर्णरूप से न्यायग्रंथ है। जिस ग्रंथ पर अन्य आचार्य महाराज की लेखनी नहीं चली, उस पर यह ग्रंथ लिखा गया।

आचार्य कुंदकुंद महावीर परम्परा के ऐसे योगी हुए जिन्होंने सांख्य दर्शन की समस्याओं का समयसार में व्याख्यान किया है। यहां प्रकृति और पुरुष में प्रकृति भिन्न है, पुरुष भिन्न है। ऐसा पता चला है कि पुरुष को चेतन मानते हैं, प्रकृति को अचेतन मानते हैं। सांख्य दर्शन में प्रकृति को जड़ मानते हैं। प्रकृति व पुरुष के संयोग से संसार-व्यवस्था चल रही है। प्रकृति से पुरुष चल रहा है कि पुरुष से प्रकृति चल रही है-मेरा प्रश्न है। ये कहें, प्रकृति जड़ है, पुरुष से प्रकृति काम करती है। चेतन पुरुष से जड़ प्रकृति चल रही है। यदि चेतन से जड़ अपना काम कर सकता है, चेतन से जड़ चेतनरूप हो सकता है तो जड़ से चेतन भी जड़रूप हो जायेगा। शरीर से आत्मा चलती है, कि आत्मा से शरीर चलता है? रुकना। हे ज्ञानी! उपादान शक्ति से कथन पहले प्रारंभ कर रहे हैं। यदि यह कहें कि शरीर से आत्मा चलती है, तो आत्मा पराधीन हो गई। शरीर आत्मा से चलता है, तो पुद्गल पराधीन हो जायेगा। मान कर चलना कि जादू का खेल हो गया। शरीर से आत्मा चलती है तो आत्मा का स्वभाव 'विस्ससोड्ढगई ' समाप्त हो जायेगा। शरीर पौद्गलिक है। जीव और पुद्गल दो द्रव्य हैं जिनमें क्रियावर्ती शक्ति है। जीव अपनी क्रियावती शक्ति, और पुद्गल अपनी क्रियावती शक्ति से गमन करता है। यदि एक दूसरे के बिना नहीं चलेगा तो मुर्दे को उठाकर ले जाया नहीं जा सकता। अपनी क्रियावती शक्ति से गमन होता है, यह उपादान कथन है। निमित्त दृष्टि से देखें तो धर्मद्रव्य के बिना न पुद्गल चले, न जीव चले। यदि बिना निमित्त गमन होता है तो सिद्धशिला के ऊपर गमन होना चाहिए।

धर्मास्तिकायाभावात्।(8/10 त.सू.)

अभी और-भी निमित्त रखे हैं। कथन जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य का है। हे जीव! तेरा क्रियावती शक्ति स्वतंत्र है, पुद्गल भी स्वतंत्र है। जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, तो ऊपर जाता क्यों नहीं? बार-बार नीचे क्यों आ जाता है? मध्यलोक में क्यों बैठे हैं? सिद्धशिला पर जाने के लिए धर्मद्रव्य का अभाव नहीं है। सिद्धशिला पर निगोदिया तो जा रहे हैं। वे कर्मसापेक्ष होकर जा रहे हैं, कर्मनिरपेक्ष होकर नहीं जा रहे हैं। जीव और पुद्गल शुद्ध होकर गमन करें, दोनों का गमन तभी संभव है। बिलकुल मध्यस्थ होकर बैठना पड़ेगा यदि समयसार की (द्रव्यानुयोग की) गहराई को समझना है तो। जीव व पुद्गल स्वतंत्र हैं, फिर भी एक दूसरे से परतंत्र हैं। मिट्टी घट बनती है। मिट्टी घट बनती नहीं बिना पानी के, पानी घट बनता नहीं, पर पानी के बिना घट बना नहीं। मिट्टी घट का रूप लेती नहीं पानी के बिना। मिट्टी पानी से संयुक्त है, तब-तक मिट्टी नाना रूप है। मिट्टी का पानी सूख जाए तो फिर रूप कैसे बदलेगी मिट्टी? गीली मिट्टी है तो जितने आकार देना चाहो दे सकतो हो। सूखने पर आकार नहीं दिया जा सकता। मिट्टी में पानी है तो नाना रूपता है। परंतु पानी स्वतंत्र है, मिट्टी स्वतंत्र है। संयोग की महिमा देखो कि कठोर मिट्टी भी मुलायम हो रही है। मिट्टी का स्वभाव है, कि पानी का? मिट्टी का स्वभाव न होता तो पानी पत्थर पर भी पड़ता है। पानी न हो तो मिट्टी की कोमलता प्रकट न हो। जैसे पानी के संयोग से मिट्टी में नानारूपपना है, ऐसे-ही कर्म के संयोग से आत्मा में नानास्वरूप है। आत्मा से कर्म, मिट्टी से पानी अलग हो जाए, तो आत्म सिद्धरूप है। पुद्गल का भ्रमण कालकृत है, आत्मा का भ्रमण कर्मकृत है। इस आत्मा का गमनागमन सारे लोक में तभी तक है जब-तक कर्म से संयोग है। कर्म संयोग हट जाए तो आत्मा स्थिर हो जाए। इसलिए, जब-तक गमनागमन है और आप आँखों से दिखाई दे रहे हो, तब-तक शुद्ध नहीं हो। जिस दिन आँखों से दिखना बन्द हो जायेगा, गमनागमन बन्द हो जायेगा, तो जीव शुद्ध हो जाएगा।

अनेकानेक तिर्यंचों की मण्डली हो, मंत्रीपरिषद एवं सम्राट घोषित किया जाता हो, तो मैं सुनना चाहता हूँ कि कौन राजा है, कौन मंत्री है। आज्ञा में कौन-कौन चलते हैं? मैं जानता चाहता हूँ। क्या सम्राट घोषित किया जा सकता है? नहीं। क्यों नहीं? भाई! ध्यान दो। तिर्यंच पर्याय में सम्राट घोषित नहीं करना चाह रहे हो, क्या वह जीवद्रव्य नहीं है? हे मुमुक्षु! शब्द कठिन लग रहे हैं, कठोर लग रहे हैं। वे भी जीवद्रव्य हैं। उस पर्याय के जीव को आप अपना सम्राट स्वीकारना पसंद नहीं करते। तिर्यंचों में राजा नजर नहीं आता, तो मनुष्य में सिद्ध कैसे नजर आयेगा? जिस पर्याय में जो है, उस पर्याय में वह स्वीकार करना पड़ेगा। जैसे किट्टिमायुक्त सोना है। मनुष्यपर्याय में भी सिद्ध है, स्वभाव है। परमार्थ व व्यवहार दोनों दृष्टि बारहवीं गाथा में स्वयं कह चुके हैं-

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदाभावे।। 12 स.सा.।।

जो शुद्ध योग्य है उसे शुद्ध का, जो अशुद्ध योग्य है उसे अशुद्ध का उपदेश कीजिए। परंतु लक्ष्य परमार्थ का ही होना चाहिए। जो निश्चय नहीं समझते, व्यवहार में लक्ष्य परमार्थ का ही हो। इस गाथा को प्रश्नरूप ही ग्रहण करना। प्रश्न सुनकर जीव चला गया, तो लगेगा कि कुंदकुंद ने जो कहा, वह सही है। एक ओर व्यवहार, ओर निश्चय का लोप हो जायेगा। जो जीव व्यवहार को नहीं मानता, वह व्यवहारतीर्थ का घातक है, धर्मतीर्थ का घातक है। जो निश्चय को नहीं मानता, वह परमार्थतीर्थ का शत्रु है, शुद्ध तत्त्व का घातक है। जो दोनों को मानता है, तो अर्हंत देशना को प्राप्त होता है। तत्त्वदृष्टि तो तटस्थ दृष्टि है। एकांत में बहने वाला कभी तत्त्व को नहीं समझ सकता। मध्यस्थ जीव ही तत्त्व को समझ पायेगा।

जदि जीवो न शरीरं......

यदि जीव शरीर नहीं है, तो तीर्थंकर-भगवंतों की और आचार्य-भगवंतों की संस्तुति सभी मिथ्या हो जायेगी। हम आचार्यों की भक्ति करते हैं। उनकी स्तुति करने वाले सब मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे। कैसे कहेंगे देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धान करो? द्रव्य आँखो से नहीं दिखता, पर्याय ही दिखती है। भक्ति मिथ्या हो जायेगी। व्यवहार वाले को गाथ कितनी अच्छी लग रही है। इसलिए आत्मा ही ध्येय है। यह व्यवहार पक्ष का कथन है। जहाँ तक हमने विहार किया है दीक्षा काल में, जैन आम्नाय में जितने पंथ हैं, सब मेरे पास बैठे, पूछा! ऐसा है कि नहीं? लोग कहते हैं ऐसा है नहीं। 'महाराज श्री! आप बराबर बोल रहे हो।' मैं प्रतिप्रश्न करता हूँ कि फिर आप क्यों नहीं बोलते हो, तो मौन ले लेते हैं। तारण चैत्यालय में प्रवचन हुए। यथार्थ यही है। सत्य को समझ लेना, सत्य को जान लेना सरल है। पर स्वीकारना कठिन है।

पराभिप्राय निवृत्वा मसकत्वा

दूसरे के ह्दय के अभिप्राय को बदलना कठिन होता है। मुमुक्षु बैठते तो हैं, बस भावना यही रहती है, कि मेरा पक्ष न चला जाए। ज्ञानियों! पक्ष/पंथ में नहीं, धर्म इनसे बहुत दूर है। पक्ष बैठा होगा तब-तक समाधि ही संभव नहीं, मोक्ष तो दूर की बात है। मेरे गुरु के प्रति रागभाव हैं तो समाधि संभव नहीं है। गुरु को गुरु निमित्त मानता हूँ, पर साध्यभूत तो मेरी निज शुद्धात्मा ही है। मैं शांतिनाथ की रोज वंदना करता हूँ परंतु मैं उन्हें अपना नहीं मानता। दोपहर भर वहीं बैठता हूँ उनके चरणों में, आप मेरे परम आराध्य हो, पर फिर भी आप मेरे से पर हो। जो व्यक्ति अपने आराध्य को भी पर मानता हो। ऐसा पर

नहीं मानता जैसे कर्म पर हैं। निज स्वरूप से पर हैं, लेकिन भक्ति से आराध्य से पर नहीं हैं। फिर भी स्वगत तत्त्व नहीं, परगत तत्त्व हैं। जिस दर्शन में आराध्य को भी निज नहीं मानते, तो दस दर्शन में भाई, माता-पिता को निज कैसे कहा जा सकता है? यह समयसार है। हमारी भाषा में कहो। सत्य यह है, कि सत्य मिथ्या की भाषा मैं नहीं कह सकता। मैं किसी विद्वान की भाषा में नहीं कह सकता। संस्कृत की दो-दो टीकाएँ हैं सामने, हिन्दी नहीं पढ़ रहे। दोनों टीकाएँ आचार्यों की हैं, तो उनके चिंतन से अपना चिंतन बनायें, कि किसी गैर का चिंतन अपनायें? क्या करें? अपना ज्ञानावरणी कर्म का तीव्र उदय चल रहा है। आपको यहाँ प्रश्न करना चाहिए 'महाराज! क्या आपको आचार्यों से राग है जो कि दूसरे के चिंतन को स्वीकार नहीं कर रहे? विद्वानों को छोड़ दिया, आचार्यों को पकड़ लिया, आपको आचार्यों से राग है।' मुझे न राग है, न द्वेष है, परंतु सत्य से अनुराग है। संयमी जो सत्य कहेगा, वह असंयमी नहीं कह पायेगा। दूसरा कारण क्या? गोम्मटसार जीवकाण्ड में उल्लेख है,

सम्माइट्ठी जीव उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।। 27 गो.जी.।।

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।। 28 गो.जी.।।

मैं आचार्यों पर जोर क्यों दे रहा हूँ? विशुद्धसागर ने अनंत पर्याय प्राप्त की हैं। अब इस पर्याय से मिथ्यात्व का पोषण नहीं करना है। आत्मा के प्रबल शत्रु का नाम मिथ्यात्व है। मैं कितना संयम में हूँ, यह मेरा विषय है। शक्ति व संहनन का विषय है। चर्यापालन में शक्ति, व संहनन की आवश्यकता है। श्रद्धा के पालन में संहनन की आवश्यकता नहीं है। चारित्र में न्यूनता आ जाए तो प्रायश्चत्त से शुद्ध हो सकता है, लेकिन श्रद्धा में कभी कमी मत लाना।

आत्मा कैसे विलखी, कितनी भटकी, यह भी सामायिक कर लिया करो। कमी रह गई। महावीर के समय ऐसा मुनि होता तो यहाँ नहीं आना पड़ता। हम भी वहाँ थे। अनंतानंत सिद्धों के सामने मैं था।

द्रव्य त्रैकालिक है। पद-प्रतिष्ठा के पीछे, यश के पीछे, भय, दबाव में आकर, अरिहंत वाणी के विरुद्ध इस गद्दी से कथन नहीं हो सकता।

शुरू में भोपाल गया तो कोई समझता नहीं था। एक ज्ञानी तो 4 महीने बाद मिला। एक पुरुष बोला 'महाराज! यही ठहरो।' शाम 4 बजे टी.टी. नगर पहुँचे। 5 बजे विद्वानों ने घेर लिया। प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मैंने सोचा कि भले ही में विषमता में यहाँ आया हूँ। पण्डितों के प्रश्न उनके पक्ष के लिए सत्य थे, परंतु आगम के अनुकूल नहीं थे। प्रश्न पण्डित जी की आम्नाय के विरुद्ध थे। मेरी परीक्षा कि मैं

क्या कहता हूँ। मैंने परवाह नहीं की। जैसा शास्त्र में लिखा है, वैसा कहा। मन में सोच लिया था कि यहाँ से तो विहार करना पड़ेगा, क्योंकि इनके विरुद्ध बोल रहा हूँ। लेकिन वह टोली एक बोरी श्रीफल छुपाये रखे थी। कहते हैं- वाचना यहीं करना है, गर्मी बहुत है। महाराज! मन के कहने वाले तो बहुत मिलेंगे। हमारे गाँव आकर, हमारे विरुद्ध आगम की कही है। मैंने सोचा था यह झूठ कह देता, विद्वान तो मुस्कुरा देता, लेकिन मन कहता, सत्य यही है। आगम के विरुद्ध नहीं करना।

यश/कीर्ति पर्याय की है, कथन श्रद्धा का विषय बनता है। आचार्यों को प्रमाण क्यों कहा? जो उपदिष्ट प्रवचन हैं, उनका श्रद्धान करना; पर जो अनुपदिष्ट हैं, उनका श्रद्धान नहीं करना। कदाचित् गुरु-उपदेश से तत्त्व को मिथ्या भी समझ लिया, तो भी सम्यक्त्व जीवंत है, क्यों? श्रद्धा में कुंदकुंद आदि विराजे हैं। व्यवहार से यह श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। कहीं विद्वान का श्रद्धान कर लूँगा और वह गलत कह रहा होगा, तो मेरा श्रद्धान गलत/मिथ्या ही होगा। गुरु के नियोग से गलत श्रद्धान भी हो गया, तो भी सम्यग्दर्शन ही है। कब तक? कोई कहे 'महाराज! हो सकता है, सुनने में अथवा गुरु से स्खलन हो गया हो।' सूत्र दिखाये, पर यदि कहूँ कि जो हमने सुनी, वही सही है। तो मिथ्यात्व प्रारंभ हो गया। सम्यक्त्व में स्थिरता नहीं आ रही है। सत्य पर कोई नहीं चल रहा है। एक जगह जिनवाणी दिखाई देखो महाराज ऐसा है। ऐसे फेंक दी जिनवाणी 'मैं नहीं मानता जिनवाणी। हमारी परम्परा रूढ़ी है।' हे ज्ञानी! तू ऐसा कह रहा है कि परंपरा है। तेरी परंपरा नीचे जाने की है। जब-तक तीर्थंकर/केवली नहीं मिले तब-तक आचार्यों की वाणी ही मान्य है। हम यहाँ समयसार की वाचना कर रहे हैं, आज तक हिन्दी नहीं पढ़ी, संस्कृत और प्राकृत पढ़ रहे हैं। समझ आए या न आए, पर नीकी लगती है। यह है गुरुवाणी। कठिन है।

आचार्य भगवन् वीरसेन स्वामी ने धवला पुस्तक ९में कहा हैकि पंचमकाल के श्रमणों को आचार्यों की दो-दो बातें भी मिल रही हों। एक ही पक्ष में, तो भी दोनों की बात मानना। जब-तक केवली न मिलें, मान्य/अमान्य मत करना। पण्डितों ने तो लिस्ट निकाल दी कि इतने आचार्य प्रमाण हैं। तू सर्वज्ञ हो गया क्या? दिन में चार बार खाने वाला कहता है कि इतने आचार्य प्रमाण हैं। ऐसी पत्रिकाओं में लिखने से प्रकाशन से दूर रहना। ज्ञानी/विद्वानों से दिखवा लेना, फिर छपवाना। पैसे का दुरुपयोग नहीं करना। पैसे जिनवाणी में लगाना, मनवाणी में द्रव्य मत लगाना। कुंदकुंद आचार्य जैसे आचार्यों की वाणी हो। मंदिर तो एक जगह है, पर जिनवाणी जगह-जगह जायेगी। दोनों का प्रचार होगा। अर्हंत का, अर्हंत वाणी का। अर्हंत वाणी अति विशाल है। करणानुयोग जितना विशाल है, द्रव्यानुयोग भी उतना ही विशाल है। द्रव्यानुयोग में सिर्फ आत्मा व पुद्गल की बातें नहीं। छह द्रव्यों का वर्णन है। आत्मा देह है, ऐसा प्रश्न किया। जो आत्मा है, वही शरीर है, पुद्गल आत्मा नहीं है, तो कहते हैं-

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतं
वन्द्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः ।।24 अ.अ.क.।।

सुन्दर छंद है। पक्ष से हटा कर पढ़े तो परमात्मा की स्तुति हो गई। अभी पक्ष में ही रखना। व्यवहार का पक्ष चल रहा है। हे परमेश्वर! हे तीर्थंकर! आपके शरीर की कांति से दशों दिशायें अभिषेक की कांति को प्राप्त हो जाती हैं। आपके तेज से दशों दिशायें निरुद्ध हो जाती हैं। (स्तुति की भाषा है) उत्कृष्ट तेज वाला सूर्य अंधकार को विलीन कर देता है। आपकी कांति भी अंधकार को समाप्त कर देती है। आपकी दिव्यध्वनि लोगों के कषाय भावों की उष्णता को दूर कर देती है। दिव्यध्वनि जगत को सुखदायी साक्षात् अमृत झराती है।

जब तत्त्व सुनते हैं तो आनंद आता है। वे भाग्यवान साक्षात् दिव्यध्वनि सुनते होंगे तो सभी को सुख एवं अमृत तुल्य लगती है। आप 1008 लक्षणों से युक्त हैं। तीर्थंकर परमेश्वर, आचार्य परमेष्ठी की देशना से जगत के जीवों का कल्याण होता है। सत्य है। नहीं होता, यह भी सत्य है। नहीं होता तो धूप में बैठे हो, तप रहे हो, आनंद आ रहा है। आचार्य महाराज ग्रंथ न लिखते तो मोक्षमार्ग कैसे देखते? निमित्त दृष्टि से कल्याण किया है, उपादान दृष्टि से कल्याणकारक नहीं हैं। जब करुणाशील थे, कल्याण करने वाले थे, तो हम सबको क्यों छोड़ दिया? करुणा क्यों नहीं आई? हमें भी साथ ले चलते। मैं भी वहीं था। ज्ञानी! निमित्त ही हैं। हमारी उपादान की योग्यता होती तो बन जाता। अन्यथ हम ईश्वरवादी हो जायेंगे। बड़े सँभलकर चलना है। यह जैनदर्शन है।

साइकिल चलाई है? चालक से पूछो, जो पहली बार बैठा वह हिलता है। अभ्यास हो तो हाथ छोड़कर भी साइकिल चला लेता है। रंगमंच पर खेलना कठिन नहीं, धर्म के मंच पर बैठना कठिन है। थोड़े स्खलित हो गए तो करोड़ों जीवों का घात हो सकता है। समयसार की गद्दी पर समाज के टुकड़े हो गए एकांगी कथन से। हम अखण्ड रूप में रहें। पंथ-मंथ छोड़ो, नमोस्तु शासन एक है। कोई विद्वान आए, त्यागी आए, तो सम्मान करना, पर पक्ष का निर्णय तभी करना जब समाज की मीटिंग कर लो। अखण्ड दिगम्बर जैन समाज एक है। अखण्डता में जो आनंद है वह टुकड़ों में नहीं है। ऐसा नहीं कि विशुद्धसागर का संघ रोकूँगा, अन्य का नहीं। शांतिनाथ का द्वार है, तुम बाद में हो, हिरण पहले बैठा है। अपन तो धरती के देवता, पिच्छि-कमण्डलु के भक्त हैं। मिट्टी के पुतला के आकार में दिख जाए, तो भी, नमोस्तु करना। तुम्हारे भाव तुम जानो।

यदि आत्मा और शरीर को एक नहीं मानते हो, तो तीर्थंकर व आचार्य की स्तुति मिथ्या हो जायेगी। इसलिए जो आत्मा है, वही शरीर है। जो आत्मा है, वही पुद्‌गल द्रव्य है। ऐसा मैं एकांत से मानता हूँ। अनेकांत से मानता तो सभी होती। हे ज्ञानी! इस बात को स्वीकार नहीं कर लेना, नहीं तो वह घातक हो जायेगी। 'मैं नहीं आता तो ये मर जाता।' पुराने समय का घर था, घर मैं चबूतरा, फिर पौर, फिर आँगन, फिर कमरे। आँगन में खेल रहा था बच्चा। खेलते-खेलते वह पौर में पहुँच गया। वहाँ बैल बंधे थे। बड़ा भाई आया तो झट से बालक उठा लिया, उसके मुख से निकल पड़ा कि मैं न आता तो ये मर जाता। छोटा भाई जब आया तो उसके कान में शब्द पड़े 'मर जाता'। दोनों का झगड़ा हो गया। अधूरी बात सुनोगे तो ऐसा ही झगड़ा होना है। यही हो रहा है कि प्रवचनकार एक गाथा पर प्रवचन कर गए, समाज भ्रमित हो गई। 26नं. की गाथा प्रश्नवाचक है, 27वीं में समाधान है। अन्यथा यही हो जायेगा, विवाद हो जायेगा। पण्डित जी प्रवचन कर रहे थे 'खाली हाथ मंदिर नहीं आना चाहिए।' वह सुनता है 'मंदिर नहीं आना चाहिए।'

समाधान हो गया। ज्ञानी! यह जो तू बोल रहा है, इसमें नय लगाइए। व्यवहारनय से शरीर व आत्मा एक है, व्यवहारनय का कथन है। निश्चयनय से दोनों कभी भी एकरूप नहीं है। कैसे? जैसे परस्पर में ठसाठस मिले होने पर भी समवर्ती अवस्था में, फिर भी भिन्नता है। जयपुर गए, सप्तधातु की प्रतिमा लाए। सोना-चाँदी धातु भिन्न थी, एकरूप ढलवा लिया। व्यवहारनय से चाँदी अथवा सोने की कहेगा। सोना और चाँदी, व्यवहार से, एक स्कंध रूप हैं परंतु सोने के परमाणु भिन्न हैं, चाँदी के परमाणु भिन्न हैं।

माँ! घर में दूध कितना शुद्ध पिलाती हो? शुद्ध पानी पिला दो। आज तक किसी माँ ने नहीं कहा, दूध मिला पानी पियो। यही कहती हैं कि दूध पियो। यह व्यवहार है। निश्चय से पानी व दूध भिन्न-भिन्न हैं। स्वभावी हैं। शरीर अनुपयोग स्वभावी है। सोना पीला है, चाँदी सफेद है, दोनों भिन्न हैं। पिण्डरूप में एक दिख रही हैं, फिर भी भिन्न हैं।

अमृतचंद्र स्वामी कितना स्पष्ट कर रहे हैं, फिर भी लोग भटकें, तो तुम्हारी बुद्धि का दोष है। नय लगा लेना चाहिए। पूजा भक्ति बन्द नहीं करना चाहिए। व्यवहारनय से शरीर का स्तवन करने से आत्मा का स्तवन हो जाता है। अन्यथा तीर्थंकर और उनके माता-पिता की वंदना समाप्त हो जायेगी।

आचार्य के विषय में कुंदकुंद स्वामी लिख रहे हैं,

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुह्यं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु में णिच्चं।। आचार्य भक्ति ।।

देश, कुल, जाति शुद्ध हो तभी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। अन्यथा योग्य नहीं। पद किसी को भी नहीं दिया जाता। व्यवहार नहीं मानोगे तो सारी व्यवस्थायें भंग हो जायेंगी। इसलिए व्यवहार, व्यवहार है, निश्चय, निश्चय है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। उत्तर ।।

उत्थानिका - वह नय विभाग ऐसा है उसको गाथा द्वारा बतलाते हैं।

गाथा - **ववहारणयो भासदि जीवो देहोय हवदि खलु इक्को।**
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो।। 27 ।।

अन्वयार्थ - (**व्यवहारनयः**) व्यवहारनय तो (**भाषते**) ऐसा कहता है कि (**जीवः च देहः**) जीव और देह (**एकः खलु**) एक ही (**भवति**) हैं (**च**) और (**निश्चयनयस्य**) निश्चयनय का कहना है कि (**जीवः देहः तु**) जीव और देह ये दोनों तो (**कदापि**) कभी (**एकार्थः**) एक पदार्थ (**न**) नहीं हो सकते।

संस्कृत छाया - **व्यवहारनयो भाषते जीवो देहश्च भवति खल्वेकः।**
न तु निश्चयस्य जीवो देहश्च कदाऽप्येकार्थः।। 26 ।।

समय देशना

भारतीय तत्त्वमनीषा में आचार्यप्रवर कुंदकुंद स्वामी ऐसे महान योगी हुए जिन्होंने द्वितीय श्रुतस्कंध को अपने हृदय में विराजमान किया, आत्मा के यथार्थ स्वरूप का व्याख्यान किया और अपवर्ती आचार्यों के लिए एक मार्ग/उदाहरण प्रस्तुत किया। कल स्वयं उन्होंने प्रश्नात्मक गाथा कही कि शरीर आदि का व्याख्यान आत्मा का व्याख्यान नहीं है। अप्रतिबुद्ध को समझाया कि एकांत में शरीर आत्मा, आत्मा शरीर नहीं। देह का स्तवन व्यवहारनय से, निज आत्मगुणों का स्तवन निश्चय सापेक्ष है। दोनों नय भूतार्थ हैं। एक व्यवहारदृष्टि से भूतार्थ है, दूसरा निश्चयदृष्टि से भूतार्थ है। व्यवहार की प्राप्ति के लिए निश्चय नहीं है, निश्चय की प्राप्ति हेतु व्यवहार है। अभेद से भेद को नहीं, भेद से अभेद की ओर जाना है। निश्चय अभेद का कथन करता है, व्यवहार भेद का कथन करता है। दोनों सुनय हैं, पृथक् कर दो तो कुनय हो जायेंगे। एकाक्षीपन कभी शुभ नहीं होता। यात्रा पर निकलता है, एक आँख वाला दिख जाए तो शकुन होता है या अपशकुन? तो परमार्थ की यात्रा में एकाक्षी दिखे तो शकुन कैसे?

'लघुनयचक्र' ग्रंथ है आचार्य देवसेन स्वामी का एवं 'द्रव्य स्वभाव प्रकाश नयचक्र' यह मयधवल जी का ग्रंथ है। देवसेन स्वामी लघु नय चक्र में कह रहे हैं जैसे एक-अक्षी अशुभ होता है, ऐसे-ही एक

नय वाला भी अशुभ होता है। 'सम्मइ सुत्तं' यह प्राकृत का वह अलौकिक ग्रंथ है, जिसके शीर्षकों का वीरसेन स्वामी ने अपनी धवला टीका में कथन किया है। यह सिद्धसेन गणी का ग्रंथ हैं। इस ग्रंथ में विद्यार्थी, व विद्वान की दृष्टि से नय का सुन्दर कथन किया है। इन्होंने कहा- नय के कितने भेद?

जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवाया।
जावदिया णयवाया तावदिया चेव परसमया।। 47 सम्मइसुत्तं।।

जितने प्रकार के वचनवाद हैं, उतने प्रकार के नय हैं। ज्ञाता के विकल्प, श्रुत के विकल्प का नाम नय है। ज्ञाता के कितने प्रकार के अभिप्राय हो सकते हैं? उतने ही अर्थात् असंख्यात लोक प्रमाण प्रकार के नय हैं। मूल रूप से दो नय हैं। एक निश्चय नय, एक व्यवहार नय। परमार्थदृष्टि निश्चयनय है, व्यवहारदृष्टि व्यवहारनय है। दोनों दृष्टि से वस्तु को समझना, दोनों को वस्तु मत स्वीकारना। यह दर्शनशास्त्र से युक्त आध्यात्मशास्त्र है। किंचित भी चूक हुई तो भिन्न दर्शन में प्रवेश हो जायेगा, पूजा करते हुए भी जैन तत्त्व से बाह्य हो जाओगे। सोना तो सोना है। कुण्डल बन गया, सोना तो नहीं बदला। सोना तो वही है। सोने में परिणमन नहीं हुआ। सोने की डली से कुण्डल बना, पर्याय ही बदली, सोना तो नहीं बदला। आज बड़े विषय का निराकरण होने वाला है। यह सिद्धांत समझ आ गया तो विशुद्ध दिगम्बर आम्नाय की चर्चा हो जायेगी। जो जीव भ्रमित हो रहे हैं, यही कारण है कि तत्त्व को समझ नहीं रहे। सोने में परिवर्तन हुए बिना कुण्डल बना। कितने लोग सुन रहे हैं। एक जीव भी तत्त्व का विपर्याय छोड़ दे, उसे सम्यक्त्व हो जाए, तो कोटि-कोटि गजरथों का फल मिलता है। सोना डली में था, कुण्डल बना। बिना परिवर्तन के कुण्डल बना क्या? महाराज! निश्चय से सोना है, व्यवहार से कुण्डल है। हे मुमुक्षु! मैं निश्चय से ही पूछ रहा हूँ। सोने में परिणमन हुए बिना कुण्डल बन गया, कि सोने में परिणमन हुआ है?

नित्य-एकांत है तो कूटस्थ है। सांख्या में चला गया।

अनित्य-एकांत क्षणभंगुर है। बौद्धदर्शन में चला गया।

आज विद्वान् मुनि क्यों कह रहे हैं कि समयसार मत पढ़ो? कुछ कारण होगा। नय का ज्ञान नहीं होगा तो भ्रमित होगा। भव्यत्व भाव, अभव्यत्व भाव, ये उभय है।

'जीव भव्याभव्यत्वानि च।' (7/2 त.सू.)।

यह सूत्र जीव के असाधारण पारिणामिक भाव मात्र के लिए हैं। 21 प्रकार के भाव 'आलाप पद्धति' में देवसेन स्वामी ने लिखे हैं। आचार्य पद्मप्रभमलधारि देव ने नियमसार की संस्कृत टीका की

है। यह आचार्य अमृतचंद्र स्वामी की शैली में है। द्रव्य नित्य है, नित्य ही है कि अपरिणमनशील है? परिणमनशील है, कि नित्य है, कि अनित्य भी है? द्रव्य नित्य है, परिणमनशील है। द्रव्य अनित्य भी है, कि अपरिणमन शील है? द्रव्य नित्य है, अपरिणमनशील है। अनित्य है, कि परिणमनशील है? क्या द्रव्य नित्य भी है अपरिणमन शील भी है, अनित्य है परिणमन शील भी है? क्या विचार है? द्रव्य नित्य भी है, अपरिणमन शील भी है। स्वभाव में संयोग लगता नहीं। जब-जब संयोग लगेगा, तब-तक व्यवहार होगा। जो वस्तु का स्वरूप सत्यार्थ/भूतार्थ है, उसमें कोई संयोग नहीं है। यह पेन पुद्गलद्रव्य है। इसके आकार में विभिन्न पुद्गलों का संयोग है। लेकिन यह पुराना हो गया, पुराना होने में किसका संयोग है? कालद्रव्य। ज्ञानी! कालद्रव्य से नए-पुराने को जाना गया है कि कालद्रव्य से नया-पुराना हुआ है? कल तेरी पर्याय शिशु थी, आज प्रौढ़ हो गई, किसका संयोग मिला? कालद्रव्य से यह जाना कि प्रौढ़ हुआ, कि कालद्रव्य ने उसे प्रौढ़ किया है? बात सैद्धांतिक है, समझना। कालद्रव्य से छोटे-बड़े, नए-पुराने का ज्ञान होता है। कालद्रव्य परिणामी होकर परिणमन कराता है क्या? मेरे द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है। यदि कालद्रव्य परिणमन कराता है तो सभी का परिणमन सादृश होना चाहिए। सदृश क्यों होता है? काल के निमित्त से कार्य होता है तो सभी कार्य सदृश होना चाहिए? एक ही काल में कमल खिल रहा है और कुमुदनी मुरझा रही है। काल एक है। प्रभात बेला में कमल खिलता है, कुमुदनी मुरझाती है। काल एक है। प्रभात का सूर्य एक था, एक को खिलाने में निमित्त है, दूसरे को मुरझाने में निमित्त है। निमित्त भी उपादान की योग्यता से निमित्तरूप घटित होते हैं। सूर्य वही था, एक में खिलने की योग्यता है, दूसरे में मुरझाने की योग्यता है। हे पुरुष! तेरे लिए सूर्य दिखने में निमित्त है, उल्लू के लिए सूर्य नेत्र बंद करने का निमित्त है। यह विद्वानों की चर्चायें हैं। दिनकर प्रकाश देता है, मुझे दिखाई देता है। प्रकाश से मुझे दिखाई देता है, तो उल्लू को भी दिखाई देना चाहिए? तर्क समझ में आ रहा है न? इसलिए प्रकाश ज्ञान का कारण नहीं, पदार्थ ज्ञान का कारण नहीं। स्वावरण कर्म की क्षयोपशम की योग्यता ही पदार्थ का ज्ञायक है। पदार्थ में ज्ञान का स्त्रोत है। मुमुक्षुओं! सुनो-

उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता, स्वावरण कर्म के क्षयोपशम की योग्यता ऐसी है। प्रकाश पदार्थ-ज्ञान के कर्ता नहीं। हे ज्ञानी! अपनी कक्षा में इतने श्रोता विराजे हैं, वक्ता मैं एक हूँ। कोई कुछ समझ रहा है, कोई कुछ समझ रहा है। मेरा दोष है, या आपकी समझने की योग्यता है? तीर्थंकर की सभा में अनेक लोग होते हैं, गणधर कुछ ही क्यों होते हैं। सभी मुनि गणधर क्यों नहीं? क्या गौतम आदि पर महावीर ने राग कर लिया था? राग था, तो केवली कैसे बन गए? गौतम के आने पर ध्वनि खिरी, गौतम की योग्यता थी कि महावीर की कृपा थी? कह दो कृपा थी। क्या कह रहे हो? योग्यता थी। और भजन गाते हो कि तुम्हारी कृपा से सारे काम हो रहे हैं। ऐसे भजन मत गाओ। यहाँ ईश्वरवाद मत खड़ा

करो। लगता है कि जैनदर्शन की प्रभावना हो रही है। नहीं, अप्रभावना हो रही है। पूरे जैनदर्शन में जहाँ आचार्यों ने ईश्वर के कर्तृत्वपने का खण्डन किया है, आप बच्चों के बीच उसका मण्डन कर रहे हो। हमें भीड़ नहीं, सिद्धांत देखना है। गौतम स्वामी की योग्यता थी, कि वर्द्धमान की कृपा थी? हे गौतम! आपके स्वावरण कर्म के क्षयोपशम की योग्यता थी, कि वर्द्धमान की कृपा थी? हे गौतम! आपके स्वावरण कर्म के क्षयोपशम की योग्यता थी। स्वतंत्र दर्शन है। हम बंधकर नहीं रहते। पदार्थ से प्रकाश से ज्ञान मानते हो, तो-फिर तेरे सामने, आपके घर की अलमारी में एक मटका रखा है, तू मंदिर में बैठा है। तू उसे जान रहा है, पर सामने तो है ही नहीं। धर्मपत्नी पिताजी के घर में है, तू देख रहा है क्या? पर जान रहा है कि नहीं? पदार्थ के सामने होने पर ही ज्ञान होता है, यह निश्चित नहीं है। ऐसा मानोगे तो महावीर पर श्रद्धा नहीं कर पाओगे। ज्ञानी! तूने दादा के दादा के दादा को देखा क्या? तो क्या वे नहीं थे? कैसे थे, तू कैसे जानता है? नहीं थे, तो तू क्या आकाश से टपक कर आ गया? पदार्थ, प्रकाश के न होने पर भी ज्ञान होता है। तुम सब बदल गए। मतलब जैसा वक्ता बदलता जाए, तो बदलते जाओगे क्या? यह वक्ता की कला है। सबसे बड़ा शत्रु, सबसे बड़ा मित्र, उपकारी भी, वक्ता है। आगमानुकूल है, तो मित्र है। आगम तोड़कर बोले, प्रतिकूल है, तो परम शत्रु है।

जैसे पदार्थ, प्रकाश से ज्ञान नहीं होता स्वावरण कर्म का क्षयोपशम हो तभी ज्ञान होता है, तभी निमित्त बनेगा। क्षयोपशम नहीं, तो बाहरी निमित्त नहीं बनेगा। तो कहेंगे कि पदार्थ अपरिणामी ही है। जिस स्याद्वाद कुल में 'सिद्धिरनेकान्तात्' (जैनेन्द्र व्याकरणम्) का नाद होता था, उस कुल में तू एकांगी कहाँ से उतर आया?

भव्यत्व भाव- परिणमनशीलता

अभव्यत्व भाव- अपरिणमनशीलता

एक समय में एक द्रव्य में भव्यत्व व अभव्यत्व भाव दोनों हैं। ये पेन पुद्गल द्रव्य है। शिल्पकार ने कलम का आकार दिया। परिणमन हुआ, कि नहीं? लेकिन, यह कभी जीवद्रव्य नहीं होगी। अपने पुद्गलत्व का अभाव नहीं होने देना ही अपरिणमनशीलता है। पेन टूट सकता है, क्योंकि परिणमनशील है, लेकिन पुद्गल का अभाव नहीं होगा। अपरिणमनशील के ही, सोने में परिणमनशीलता नहीं तो कुण्डल बना किसका? अपरिणमनशील क्यों? स्वर्णत्वपेन का अभाव नहीं, तो अपरिणमनशील है। यदि अपरिणमनशील ही मान लोगे, तो कभी पर्यायांतर नहीं होगा। पुण्य-पाप क्रिया न स्यात्।

कोई कहे कि द्रव्य अखण्ड ध्रुव नित्य है। यदि एकांत से कहता है तो मिथ्यादृष्टि है। अखण्ड ध्रुव नित्य ही है तो हे मुमुक्षु! तू नित्य मनुष्य ही रहेगा। जितने चाहे अनाचार करो। जो जैसा है वैसा ही

होगा। तिर्यंच तिर्यंच रहेगा, मनुष्य मनुष्य रहेगा, नारकी नारकी रहेगा। पुण्य-पाप का सिद्धांत समाप्त हो जायेगा। पुण्य-पाप की व्याख्या पर्याय के लिए की जा रही है, कि आत्मद्रव्य के लिए की जा रही है? पर्याय के लिए करता है तो पर्याय के साथ पुण्य-पाप भी झुलस जायेगा। तत्त्व-व्याख्या पर्याय से की जाती है, पर्याय में की जाती है, लेकिन पर्याय के लिए नहीं है, पर्याय में विराजे जीवद्रव्य के लिए है। अन्यथा मनुष्यपर्याय का वियोग होगा तो पर्याय के साथ सब जल जायेगा। यह तो मनुष्यपर्याय में बैठे जीवद्रव्य के लिए है। मनुष्य बना तो जीवद्रव्य मनुष्याकार है, कि कोई-और आकार है? आप लोगों के साथ कितना गहरा धोखा किया जाता है। सम्यग्दर्शन की गहराइयाँ, तत्त्व की गहराइयाँ हैं। आत्मा अपरिणमनशील ही है, तो चार गतियों का अभाव हो जायेगा। फिर सिद्ध गति का भी अभाव हो जायेगा। यदि परिणमनशील मात्र ही ऐसा मानोगे तो पुण्य-पाप किसके लिए करेगा? कोई करेगा, कोई भोगेगा, क्षणकम्-क्षणकम् हो जायेगा। द्रव्यत्वपन ध्रुव है, परन्तु द्रव्य परिणमनशील है। सोने में परिणमन हुए बिना आकार नहीं बनता। लेकिन स्वर्णपन का विनाश नहीं। स्वर्ण, स्वर्ण है, स्यात् परिणामी स्यात् अपरिणामी। स्यात् छोड़कर चले जाओगे तो जैनत्व से शून्य हो जाओगे। मेरा परिणमन न होता होता तो 84 लाख योनियाँ कौन धारण करता? अपरिणामी न होता, तो 84 लाख योनियों का वेदन कौन करता? क्षणिक भी नहीं, कूटस्थ-नित्य भी नहीं।

द्रव्यदृष्टि से अपरिणामी है।

पर्यायदृष्टि से परिणामी है।

भूल कहाँ हो रही है? मनुष्यपर्याय को देख रहे हैं। यह तो असमान जाति पर्याय है, समान जाति नहीं है। सिद्धों की पर्याय होती है कि नहीं? तीनों कालों में क्या द्रव्य रहित पर्याय, और पर्याय रहित द्रव्य होता है? सम्पूर्ण 12 अंगों में द्रव्य-गुण-पर्याय का कथन है। आचार्य उमास्वामी महाराज से पूछो। इतना श्रद्धान हो जाना चाहिए कि 'तत्त्वार्थ सूत्र' को कितने अच्छे से पढ़ना चाहिए।

''गुण-पर्यय-वद् द्रव्यम्' (गुण व पर्याय से युक्त द्रव्य है)।। 38/5।।

यह विषय इंजीनियर, डॉक्टर के बीच का है। एक व्यक्ति आए 'महाराज! हम आपके प्रवचन घर पर मोबाइल से सुनते हैं।' कितना सँभल कर रहना चाहिए साधुओं को? तत्त्व को कितना सँभल कर कहना चाहिए? विदिशा मं प्रवचन होते थे, तब कितने इंजीनियर, प्रोफेसर सब विराजते थे। एक प्रोफेसर ने 9 महीने प्रवचन सुना। जब साँची के लिए विहार हो गया, एक दिन आए-'महाराज! आपको अमुक दिन के प्रवचन याद हैं क्या? आपको क्या मालूम आप एक दिन प्रवचन में इंजीनियर, डॉक्टर की तरह बोले। सी.डी. ले जाकर कॉलेज में दिखाई। रसायन का सूत्र मिल गया। शंका समाप्त हो गई।

वस्तुस्वतंत्रता का सूत्र विश्व में कोई दर्शन नहीं बतला सकता। भगवान ने कहा, इसलिए परिणमन पदार्थ का हो रहा है- यह झूठ है। जो हो रहा है, वह केवली ने जाना है। यह स्वतंत्र दर्शन हैं। दर्पण में झलक रहा है इसलिए तेरा चेहरा है, कि तेरा चेहरा है इसलिए झलक रहा है? दर्पण में झलकाने की योग्यता है, दर्पण झलका नहीं रहा। चेहरा है इसलिए झलक रहा है, तो कूटस्थ है। योग्यता है, तो झलक रहा है। भगवान कह रहे हैं इसलिए सत्य है, कि सत्य है इसलिए भगवान कह रहे हैं? तुम भगवान को कर्ता क्यों बना रहे हो? अद्‌भूत स्वतंत्र दर्शन है। हल्दी ने चूने को लाल किया, कि चूने ने हल्दी को लाल किया, कि तूने किया है? यह इंजीनियर कहता है, मैंने नई वस्तु का निर्माण किया। ज्ञानी! हल्दी, चूने से नया वर्ण बनाया है, कि प्रयोग किया है? यह रक्त वर्ण का कर्ता है, कि प्रयोक्ता है? जगत का कोई भी वैज्ञानिक किसी भी वस्तु का कर्ता नहीं, प्रयोक्ता है। सत्ता का विनाश नहीं, असत् का उत्पाद नहीं, तो नया द्रव्य लाया कहाँ से? जड़ी-बूटी से तूने दवाई बनाई तो तूने आत्मा का कौन-सा अंश लगाया? वैद्य दवाई बनाता नहीं, मिलाता है। शक्तियाँ मौजूद हैं, प्रकटीकरण किया है। आत्मा को कोई भगवान बनाता नहीं है। भगवत्ता प्रकट होती है। भव्यत्व भाव- अभव्यत्व भाव सूत्र में आया, वह भिन्न है। यहाँ कथन भिन्न है। वह अभव्यत्व या भव्यत्व मात्र जीव द्रव्य में घटित होता है। यहाँ जो भव्यत्व-अभव्यत्व भाव का कथन है वह छहों द्रव्यों में घटित होता है। यदि यह कह रहे हैं कि कर्ता 'प्रयोक्ता' नहीं, 'ज्ञाता-दृष्टा' है, तो यह भी एकांत से सत्य नहीं, कथंचित् सत्य है। यदि पूर्णतः सही सत्य कह दो तो घर भी नहीं जा पायेगा। क्यों? घर के ज्ञाता-दृष्टा हैं, कर्ता नहीं, तो घर किसके जाओगे? शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध भावों का कर्ता है, अशुद्ध निश्चयनय से रागादि भावों का कर्ता है।

व्यवहार से शरीर, घट-पट आदि का कर्ता है। परम शुद्ध निश्चयनय से- न कर्ता है, न भोक्ता है। ये जीव न कर्ता है न भोक्ता है, वह ज्ञाता-दृष्टा है, यह शुद्ध निश्चयनय है। अन्यथा, सब वस्तुव्यवस्था गड़बड़ हो जायेगी। तटस्थ दृष्टि से निहारो। मैं हल्दी का न कर्ता हूँ न प्रयोक्ता। मैं तो उपयोगमयी हूँ। चूने को उठाया, हल्दी में डाला, यह तो योग की क्रिया थी। जो हो रहा था, मैं तो देख रहा था। मैंने कुछ नहीं किया। 'मैंने किया, मैंने किया।' ज्ञानी! तू स्वयं को नहीं कर पाया तो तू जगत को क्या करेगा? तू जीव द्रव्य है कि नहीं? इसे तूने कब बनाया? धन्य हो तेरे लिए, तू अपने आप का कर्ता नहीं। द्रव्य का कोई कर्ता नहीं, द्रव्य त्रैकालिक होता है। जब तू अपना कर्ता नहीं तो जगत का कर्ता कैसे? तू द्रव्य का कर्ता नहीं है, ज्ञाता-दृष्टा है। निमित्त हो सकता है। वीतरागी तपोधन जंगल में बैठकर करते क्या थे? प्रश्न आना चाहिए। हम तो सद् गृहस्थ हैं, घर में 24 घंटे आरंभ-परिग्रह में लिप्त रहते हैं। यह तपोधन क्या करते हैं? करते कुछ नहीं। यही कहते हैं कि मैं अपना कर्ता नहीं तो जगत का कर्ता कैसे? ऐसा हो जायेगा तो भावलिंगी हो जायेगा। यह है भावयोगी की चर्चा। शरीर-द्रव्ययोगी है।

परिणाम-भावयोगी है। इनके अंदर बैठा है भगवानात्मा।

तत्त्व का निर्णय हलचल/कोलाहल में नहीं, एकांत में होता है। प्रवचन शुरू हुए तो सब शांत हो गए। तत्त्वनिर्णय हेतु शांत कराना नहीं पड़ता, स्वयंमेव शांति हो जाती है। इतना सूक्ष्म है। तत्त्वनिर्णय कि स्थूल आँखों से दिखाई नहीं दे सकता। आपको विपरीत दिख रहा है। आपका विपरीत हो जायेगा, हमारा समीचीन हो जाएगा। कुछ क्षण पहले तू यही जानता था कि वैज्ञानिक नई-नई वस्तु बना रहे हैं। त्रैकालिक, सभी वस्तु पुरानी है। उदाहरण-तेरे पीछे नया मंदिर बन गया, तो देखकर कहते हैं, कि नया मंदिर बन गया दो साल हुए। पत्थर के ऊपर पत्थर दो साल पहले रखे गए। पत्थर कब से हैं? वे पुद्गल के परमाणु कब से हैं? आकार दिए दो साल हो सकते हैं, पर आकारवान दो साल का नहीं है। तू 18 साल का नहीं, तू अनादि-अनंत है, पर्याय का काल 18 साल है।

कल कुंदकुंद स्वामी ने गाथा कही, आचार्य अमृतचंद स्वामी ने टीका कही। उस पर विशेष टीका जयसेन स्वामी कह रहे हैं। पूर्व पक्ष के परिहार रूप आठ गाथा कह रहे हैं।

एक गाथ में पूर्व पक्ष, चार गाथा में निश्चय-व्यवहार का परिहार कथन कर रहे हैं। तीन गाथाओं में प्रस्तावना है। सबसे पहले कोई प्रश्न तो यह कि जीव और शरीर जब एक नहीं होता, तो फिर तीर्थंकर/आचार्यों की स्तुति व्यर्थ हो जायेगी। चंबल में सबसे ज्यादा तिलहन होता है। यहाँ का एक ज्ञानी पहुँचा निमाड़, तो बोल पड़ा 'यहाँ तो मिर्च के ऐसे ढेर लगे हैं जैसे हमारे यहाँ तिलहन के ढेर लगे होते हैं।' वहाँ तिलहन होता नहीं था इसलिये किसान ने कहा, 'पकड़ो।' आठ मुक्के लगे, कुट-पिट कर आ गए। यहाँ आकर बोल पड़े-'यहाँ जैसे तिलहन के ढेर लगते हैं, निमाड़ में मिर्च के ढेर लगते हैं।' यहाँ भी पकड़ लिए गये और 8 मुक्के यहाँ लगे। 16 मुक्के लग गए।

बिना गवाही बोलोगे तो 16 मुक्के खाने पड़ेंगे। क्या वे सही नहीं बोल रहे थे? सत्य बोल रहे थे। तो घूसे क्यों? क्योंकि बिना गवाही बोल रहे थे। एक को साथ में ले लेना था कि जैसा मैं कहूँगा वैसा कहना। जब-तक जीव को वस्तुतत्त्व का निर्णय नहीं, तब-तक वह यही समझता है कि सब जगह तिलहन ही होता है। तत्त्वनिर्णय ऐसे नहीं होता। कुए में बैठ जाओ, तीन काल में तत्त्वनिर्णय नहीं होगा। राजहंस पक्षी मानसरोवर से चला दक्षिण में समुद्र की ओर। रास्ते में शिवपुरी में कुए के पास बैठ गया। झाँककर देखा, कुए में एक मेंढक बैठा था। आवाज लगाई 'कौन हो?' मैं राजहंस पक्षी हूँ, मानसरोवर से आया हूँ। समुद्र की ओर जा रहा हूँ। वह मेंढक पूछता है-'समुद्र कितना बड़ा होता है?' दोनों हाथ फैला दिए, 'इतना बड़ा?' नहीं, इससे भी बड़ा। दोनों पैर भी फैला दिए, 'क्या इतना बड़ा?' नहीं, और बड़ा। पूरे कुए में छलांग लगाई 'क्या इतना बड़ा होता है समुद्र?' नहीं, इससे भी बड़ा। मेंढक को गुस्सा

आ गया। कहता है-

हाथ पसारा, पैर पसारा और पसारा गात्र।

इससे बड़ा समुद्र है, कहन-सुनन की बात।।

हे मेढकराज! कुए से बाहर नहीं आये, कूपमंडूक बनकर बैठा रहेगा तो यही समझेगा कि जो मैंने समझा वही सत्य है। केवली के ज्ञान के आगे सब समाप्त हो जाता है तुम्हारा। तत्त्व कितना बड़ा है? समुद्र कितना बड़ा है? ऊँट कब-तक इतना बड़ा? जब-तक पहाड़ के नीचे नहीं खड़ा। पहाड़ के नीचे ले जाना जरूरी है। यथार्थ मानना, कथन भिन्न है, वस्तुस्वरूप भिन्न है। अभी भी आप भ्रमित हो। वक्ता अपनी कला से श्रोताओं को कैसे ले जाता है? उन्मार्ग पर भी सत्मार्ग पर भी ले जा सकता है।

शुद्ध विमानचालक है वक्ता। गड़बड़ करो तो उड़ा भी ले जाए। वक्ताओं से बचकर रहना। जो स्याद्वाद का कथन करे, उनके पास जरूर बैठना।

आचार्यादि की स्तुति व्यर्थ हो जायेगी, ऐसा अप्रतिबुद्ध शिष्य कहता है। यहाँ अज्ञानी कह रहे हैं उसे। इसलिए यथार्थ मानकर चलना। प्रत्येक साधक को द्रव्यानुयोग का अध्ययन करना चाहिए। ज्ञान के अभाव में जिनवाणी का विरोध मत कर बैठना। ज्ञानी! तत्त्व एकरूप नहीं, अनेकरूप है। एकरूप हो, कि अनेक रूप ?

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत्।।6 स्वं. सं.।।

नानात्व रूप है, एकत्व रूप भी है। ऐसा मत कहना कि नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। पहले तत्त्व को समझना। कैसे होगी? तू ज्ञानी शरीर की स्तुति कर रहा है- 'दो गोरे, दो सांवले, दो हरियल, दो लाल।' हमारी स्तुति ऐसी ही है तो स्तुति चली गई क्या? इतना ही नहीं, देस-कुल-जाई सुद्धा।

तीर्थंकर के बाद कोई पद है तो आचार्य का पद है। देश व कुल की शुद्धि न हो तो आचार्य पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जाता। लोगों ने आचार्य शांतिसागर जी को भी नहीं छोड़ा। दक्षिण में चतुर्थ-पंचम जातियाँ चलती हैं। प्रश्न खड़े कर दिए कि यह आचार्य पद के योग्य नहीं हैं। महाराज को स्वयं समाधान देना पड़ा। मानते हैं कि जाति में ऐसा होता है। हमारे 7 पीढ़ी से शुद्ध हैं। विद्वान यहाँ नमोस्तु महाराज! नमोस्तु! हाँ-जू-हाँ-जू लोग करते हैं लेकिन अकेले में गुटर-गूँ चलती है। सिद्धांतवादी लोग तो चले गए। ऐसे नहीं कि गंगा गए गंगादास, जमुना गए तो जमुनादास। ऐसी रीति-रीति नहीं। जो है सो है। सत्य है। मालूम मैं क्यों सुना रहा हूँ सब विद्वानों से? ये संपर्क में हैं, लोगों से कहेंगे कि बदलना

नहीं। ऐसे-ऐसे विद्वान हुए जिन्हें आगम पर अगाध श्रद्धा थी। एक विद्वान थे, एक कागज लिखने के दो-तीन पैसे मिलते थे। धवला जी की टीका हिन्दी में कर रहे थे। तीन दिन हो गए, एक प्रश्न पर अटके हैं। एक व्यक्ति कहता है, 'आपको तो पृष्ठ के पैसे मिलते हैं। आगे काम बढ़ा लेते।' तत्त्वनिर्णय नहीं तो काम आगे कैसे बढ़ायें? एक दिन शब्दकोश की जरूरत थी, पर पैसे नहीं थे। पत्नी अपनी चूड़ियाँ ले आई, 'इन्हें बेचकर शब्दकोश ले आओ, जिनवाणी की सेवा करो।' इन प्रसंगों को सुनकर हमें सुधरना चाहिए। ऐसे लोग हुए की नहीं? कि उनकी प्रशंसा जैन मुनियों के मुख से हो रही है। रागी-भोगी के मुख से तो कोई भी प्रशंसा प्राप्त कर सकता है। वह वास्तव में प्रशंसनीय है कि मुनियों के मुख से उसकी प्रशंसा निकले। भारत तो आचरण-प्रधान है। तत्त्व ही सम्यक् है। झूठी प्रशंसा करना मतलब उसकी उन्नति को गिरा देना है। वस्तुस्वरूप बतायेंगे नहीं, गिरा देंगे। आचार्य की स्तुति है- 'देस-कुल-जाई सुद्धा' यह भी आचार्य कुंदकुंद ने लिखी है। इसलिए यह सब मिथ्या हो जायेगी।

ऐसा मैं एकांत से मानता हूँ कि देह व आत्मा एक ही है। पूर्व पक्ष में यह गाथा समाप्त हुई। अब आचार्य महाराज ने समाधान दिया-'हे शिष्य!' देखो कितनी सरल संस्कृत है। हे शिष्य! जो तू कह रहा है, वह सत्य नहीं है। घटित नहीं होता। अरे! क्या तू निश्चय-व्यवहार नय के साध्य-साधक भाव को नहीं जानता? जीवद्रव्य व पुद्गल द्रव्य एक है- ऐसा व्यवहार नय कह रहा है। निश्चय अभिप्राय से जीव व देह कभी भी एक नहीं होते। जैसे-स्वर्ण और चाँदी, व्यवहार से, एक होने पर भी निश्चय से भेद ही है। इसी प्रकार देह व जीव भिन्न हैं, ऐसा समझना। इसलिए व्यवहारनय से देह का स्तवन करने से जीव का स्तवन हो जाता है तो व्यवहार से सही है। निश्चयनय से आत्मा तो आत्मा है, ऐसा समझना चाहिए। व्यवहारनय से यह सही है-

'देस कुल जाई सुद्धा' यह स्तुति सही है, परंतु निश्चयनय से आत्मा तो आत्मा है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। उत्तर।।

उत्थानिका - यही बात आगे की गाथा में व्यक्त करते हैं

गाथा - **इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।**
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं।।28।।

अन्वयार्थ - **(जीवात् अन्यम्)** जीव से भिन्न **(इमं पुद्गलमयं देहम्)** इस पुद्गलमय देह की **(स्तुत्वा)** स्तुति करके **(मुनिः)** साधु **(मन्यते खलु)** असल में ऐसा मानता है कि **(मया)** मैंने **(केवली भगवान)** केवली भगवान् की **(स्तुतिः)** स्तुति की और **(वंदितः)** वंदना की।

संस्कृत छाया - **इममन्यं जीवाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनिः।**
मन्यते खलु संस्तुतो मया केवली भगवान्।।28।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज समयसार जी में अध्यात्म के अलौकिक सूत्रों को उद्घाटित करते हुए सूत्र दिया, यह अप्रतिबुद्ध जीव देह और आत्मा को एक स्वीकारता है। जिसे प्रतिबुद्ध पृथक् मानता है। एक की द्रव्यदृष्टि है। एक की पर्याय दृष्टि है। पर्यायार्थिक नय से अनेक प्रकार से कथन किया। जो उभय नय को समझता है-

द्रव्यार्थिक नय के 10 भेद हैं।

पर्यायार्थिक नय के 6 भेद हैं।

समझो, 'आलाप पद्धति' के अध्ययन की आवश्यकता है। आलाप पद्धति अर्थात वचन बोलने की शैली। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से कुंदकुंद स्वामी कथन कर रहे हैं।

पर्यायार्थिक नय भी- शुद्ध पर्यायार्थिक और अशुद्ध पर्यायार्थिक रूप, दो तरह का होता है। द्रप्यार्थिक नय अभेद दृष्टि से कथन करता है, पर्यायार्थिंक नय भेद दृष्टि से कथन करता है। श्रोता को ज्ञान होना चाहिए। पर्यायार्थिक दृष्टि से कथन अवश्य चल रहा है, लेकिन पर्याय द्रव्य से रहित नहीं

है। द्रव्यार्थिक का कथन होगा लेकिन द्रव्य, पर्याय से पृथक् नहीं है। सम्यक्श्रोता को सही नय लगाकर समझना चाहिए। वक्ता के साथ श्रोता को भी ज्ञानी होना चाहिए। अन्यथा जो भी सुनेगा, विपर्यास ही करेगा। सद्भूत और असद्भूत व्यवहारनय, इन नयों को पकड़कर सब भेद कीजिए।

सद्भूत व्यवहारनय के भेद-

(1) शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय

(2) अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय

असद्भूत व्यवहारनय के भेद-

(1) स्वजात्य सद्भूत व्यवहारनय

(2) विजात्य सद्भूत व्यवहारनय

(3) स्वजातिविजात्य सद्भूत व्यवहारनय

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के भेद-

(1) स्वजात्युपचरित असद्भूत व्यवहारनय

(2) विजात्युपचरित असद्भूत व्यवहारनय

(3) स्वजाति-विजात्युपचरित असद्भूत व्यवहारनय

तीर्थंकर व आचार्यभगवंतों के शरीर का स्तवन व्यवहारनय से सम्यक् है, निश्चयनय से असम्यक् है। व्यवहारनय को नहीं स्वीकारोगे तो विकल्प खड़े हो जायेंगे। भवन है, किसका है? निश्चयनय कहेगा ईंट-चूने का। विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहारनय की अपेक्षा घर आपका है। अन्यथा किसी के भी घर में चले जाओगे। स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय अपेक्षा पुत्र स्त्री आदि मेरे हैं। आप भारत के हो, विदेश जाओगे, कोई पूछेगा, कहाँ के हो? क्या कहोगे? कि कहीं के नहीं? भारतीय हैं। स्वजाति-विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से आप भारतीय हैं। इनका अध्ययन नहीं तो तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ मिथ्या हो जायेगा।

यह आगम का कथन है, समयसार अध्यात्म-कथन हैं। दो भाषाएँ हैं- आगम भाषा, अध्यात्म भाषा।

दो नय हैं- आगम नय, अध्यात्म नय।

जो आगम अपेक्षा कथन करे तो आगम नय। अध्यात्म अपेक्षा कथन करे वो अध्यात्म नय। आपकी भक्ति समाप्त नहीं करवाई जा रही, भक्ति को सम्यक् कराया जा रहा है। आगे गाथा आ रही है। जिसे जानते हो तो जानते हो, जो नहीं जानते उसे जानने का प्रयास करो। जो पहली कक्षा में पढ़ाया, वही अगली कक्षा में पढ़ाया जाए तो फिर पढ़ने की क्या आवश्यकता? लेकिन पिछला भूल मत जाना। पर्याय अपेक्षा जीते-जीते अनंत पर्यायें व्यतीत हो गई। ज्ञानी! द्रव्य पर भी तो दृष्टि डालो। 'दो गोरे, दो साँवरे' कहते-कहते काल व्यतीत हो गया। मेरा शरीर मेरा नहीं, तो तीर्थंकर का शरीर तीर्थंकर का कैसे? यह अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से, संश्लेष संबंध से शरीर मेरा है। मैं एक गाँव में पहुँचा, प्रवचन के लिए कहा गया। तो लोग कहते हैं कि हमारे यहाँ तो समयसार का प्रवचन होता है, आप कर सकते हो क्या? हमने कहा कि लाओ समयसार। प्रवचन शुरू किया। मैंने कहा-अमुक नय से क्या कहा है। पण्डित जी बोले- शुद्ध समयसार कहो, नाँय-माँय की नहीं कहो। मैंने कहा- नाँय-माँय की नहीं, शुद्ध सुनो। जो बिना नय के बात करता है, तो वह नाँय-माँय की बात है। जो समयसार जैसे महान ग्रंथ को नय से रहित होकर कहेगा तो विश्वास मानिए, यहाँ-वहाँ की बात ही कहेगा। दो किनारो के बीच जैसे पानी की धारा है, वैसे-ही समयसार की धारा बहती है दो नयों के मध्य में। रत्नत्रय के मध्य में।

यदि तट छोड़ दिए, तो जो बांध भूमि को हरा-भरा किए था, वह बांध तोड़ दोगे तो धर्म की फसल क्षत्-विक्षत् हो जायेगी। मेरा शरीर मेरा नहीं है, हे भगवन्! आपका शरीर आपका नहीं है। यह संश्लेष संबंध कर्म-नोकर्म का है। आज आपकी भाषा में बात नहीं करनी। आत्मा और कर्मों का जो संबंध है, वह संश्लेष संबंध है। एकमेक होने पर भी एकरूप नहीं है। दूध और पानी का संबंध संश्लेष है। आत्मा और कर्म का संबंध अविनाभाव नहीं, संश्लेष संबंध है। दूध के सम्पूर्ण कणों में दूध व पानी एकमेक है, फिर भी एकरूप नहीं है। संसारी आत्मा और कर्म एकरूप दिख रहे हैं। क्रिया-कलाप एक दिखेंगे, पर एक नहीं है। पानी-दूध एक बर्तन में डालोगे तो एकसाथ चलेंगे, हाथ में पकड़ोगे तो स्पर्श साथ में करोगे। अभिन्न होने पर भी भिन्न है। कढ़ाही पर रख दो, मावा बनना प्रारंभ हो जायेगा। खोया कब बना है? जब दूध ने पानी को खो दिया। जब कढ़ाई पर रखा तरल था, पानी वाष्पित होकर पृथक् हो गया, तरल-दूध ठोस हो गया। सूर्य में तपे पत्थर पर दूध की बूँदें डाल देना, सूखी पपड़ी मिलेगी। दूध में कठोरता थी, पानी की तरलता में तरल हो रहा था।

आत्मा से कर्म का संश्लेष संबंध है। 'तपसा निर्जरा च' से पृथक् कर लेते हैं। मोक्ष का अर्थ कर्मों का विनाश है, कि आत्मा का विनाश है? 'मुच' धातु ज्ञान अर्थ में नहीं, त्याग अर्थ में है। जब त्याग, तभी मोक्ष। जो संसार में शब्द चले आ रहे हैं, हम वे ही बोलते चले आ रहे हैं। आचार्य उमास्वामी मोक्षतत्त्व का कथन कर रहे हैं-

बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां 'कृत्स्न कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः' ।(2/10 त. सू.)।

कर्मों का आत्मा से पृथक् होना मोक्ष है। न कर्मों का नाश होता है, न आत्मा का नाश होता है। करुणा करना, मोक्ष के राग में पौद्गलिक कर्मों का नाश मत कर देना। अन्यथा लोगों को कर्म बंधेंगे कैसे? मोक्ष, नाश नहीं, पृथकीकरण है। व्यवहार में कर्म नाश बोल देते हैं। कर्म नाश करना सिद्ध होना नहीं। यह व्यवहार भाषा है। वस्तु का विनाश नहीं होता। एक ही निर्बंधरूप वर्गणाएँ दूसरे को बंधरूप हो गई। जिस शरीर को मैं भोग रहा हूँ, इस शरीर की वर्गणाएँ कितने लोग भोगेंगे? यह भूमि जंगल रूप थी, भवन बन गई। बनना व मिटना परिणमन है। भूमि वही है। अखण्ड में खण्ड किए हैं। दीवारों ने खण्ड किए हैं। खण्ड हटा दो, आकाश अखण्ड है। तेरे स्वार्थों ने आकाश में खण्ड कर डाले। वह दिन कब आयेगा जब दीवारें हट जायें, अखण्ड आकाश दिखे?

दीवार के माध्यम से आकाश में खण्ड कर लिये। कर्म के माध्यम से आत्मा में भेद कर लिया। पुरुष में भेद नहीं है।

'अस्ति पुरुषः चिदात्मा'

स्तवन उस पुरुष का नहीं है जिसका स्तवन तू करता है। यह नाभिराय के पुत्र ऋषभदेव, अश्वसेन के पुत्र पार्श्वनाथ, सिद्धार्थ के पुत्र वर्द्धमान का स्तवन कर रहा है। आँखों से दिखनेवाले पुरुष का स्तवन तो अज्ञानी भी करना जानते हैं। अभव्य भी कर सकता है। आँखों से दिखने वाले पुरुष का स्तवन तो अभव्य भी कर लेता है भोगों के लिए।

जिस पुरुष का स्तवन समयसार कर रहा है, वह है चेतन, चिदात्मा। आँखों से दिखने वाले की वंदना तो अनंत बार की है। ऋषभदेव के अंदर जो पुरुष विराजा है, उनकी वंदना करना समयसार है। देखो! घट कितना ठण्डा है। दूर से देखा तो ठण्डा, कि हाथ लगागो तो ठण्डा है? मिट्टी की आँखें मिट्टी ही दिखेंगी। लोक की व्यवस्था ही ऐसी है, तेरा दोष नहीं। मटका ठण्डा है, कि उसमें भरा पानी ठण्डा है? पानी निकाल दो, अब बताओ, मटका ठण्डा है क्या? समयसार मटके को ठण्डा नहीं कहता। हम मिट्टी नहीं, पानी देखना चाहते हैं। उसका नाम समयसार है। कहता क्या है? कि ठण्डे मटक का पानी ले जाओ।

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत्।
जीवो वर्णादिमज्जीवजल्पनेपि न तन्मयः ।।40 अ.अ.क.।।

इस गहराई को जैनदर्शन ही पकड़ पाया है। आप सुबह दूध लेने गए थे, बाल्टी ले गए थे ना?

दूध की बाल्टी ले गए थे। पानी के गिलास में पानी पिया। दूध की बाल्टी में दूध लाया। पानी का गिलास कहाँ मिलता है? बाजार का नाम बताओ। घी के बर्तन में घी निकाल कर दिया। यहाँ कहेंगे, व्यवहार अभूतार्थ है। घबराना नहीं, सत्यार्थ को समझना पड़ेगा। व्यवहार चलाने के लिए व्यवहार भूतार्थ है। दृष्टि डालो, यह व्यवस्था अभूतार्थ है। उपचार से दूध की बाल्टी है। जिस गिलास से पानी पी रहा था, पानी के संयोग से गिलास पानी का है। बाहर जाते हो, आवाज लगाते हो–'ऐ रिक्शा।' तब भी रुक जाता है। ऐसे-ही व्यवहारनय से की गई अरिहंत की भक्ति भी निश्चय की ओर ले जाती है। ध्रुव सत्य यह है कि मटका स्पर्श करके कहा जा रहा था मटका ठण्डा है। अरिहंत-भक्ति करना, शरीर पकड़कर मत बैठना। प्रतिमा पकड़कर मत बैठना, प्रतिमावान की पूजा करना। यह समयसार है। श्रोता को लगता है मेरा व्यवहार धर्म न चला जाए। वक्ता को लगता है कि भोले भक्त समाप्त हो जायेंगे तो अद्वैत भक्ति प्रारंभ हो जायेगी। भगवान की भक्ति समाप्त, तो निजात्म की भक्ति प्रारंभ हो जायेंगे। 14वें गुणस्थान में विराजे वे भगवान अरिहंत देव, अयोग केवली, वे भी अद्वैत भक्ति में लीन हैं। निज स्वभाव में लीनता अद्वैतभाव है। संसारी हो तो, द्वैत-अद्वैत से रहित नहीं हो। सिद्ध भगवान हैं, वे द्वैत-अद्वैत के शब्द से शून्य हो चुके, लेनिक अद्वैत से शून्य नहीं हैं।

अहमिक्को......

वहाँ भी द्वैत भाव खड़ा है। एक भी है, अनेक भी हैं। कर्म के द्वैतपने से अतीत हैं। द्वैत भाव का अर्थ अनेकरूप चलता है। कर्मरहित हो जाऊँगा तो अद्वैत हो जाऊँगा। आत्मा अद्वैत भाव है। आगम में ऐसे-ऐसे शब्द हैं, कुछ दिन तक शब्दों मात्र में बैठा सकता हूँ। अविरत सम्यग्दृष्टि के पास व्यवहार, व निश्चय रत्नत्रय नहीं हैं। आनंद किसका लूट रहा है? तो निश्चय-व्यवहार की भाषा में लीन है। यह भाषाओं का धर्म नहीं, स्वभाव का धर्म है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि निश्चयनय की भाषा नहीं सुनाओगे तो उठकर चल देंगे। कुछ होते हैं कि यदि कथा-कहानी नहीं तो उठकर चल देंगे।

ज्ञानी! भाषा तो धर्म समझने के लिए है, भाषा समझने के लिए धर्म नहीं है। क्या रहस्य है कि आचार्यमहाराज समयसार पढ़ने का निषेध करते हैं? बिना गुरुमुख के पढ़ोगे तो भटक जाओगे। अपने में लगाने रूप जो है, उसे अपने में लगाना। शरीर का स्तवन आत्मा का स्तवन नहीं, यह कथन निश्चय का है। कुंभ को घृत का कहने से कुंभ घृत का होता है क्या? यह ब्रह्मचारी गोरा, यह साँवला, ऐसा कहने पर भी ब्रह्मचारी गोरा-कााला हो सकता है क्या? ब्रह्मचारी! तेरा ब्रह्म न गोरा है, न साँवला। जीव, वर्णादि रूप कहने से भी वर्णादि रूप नहीं होते निश्चयनय से। करणानुयोग से-कर्म के, रागादि के कर्ता-भोक्ता आप हो तो आप ही गोरे-साँवले हो। नीला-पीला, हरा, लाल, सफेद बल्ब एक कक्ष में जल

रहे थे, बिजली का रंग कैसा है? अभी समझ में आता है। यदि आज कुंदकुंद स्वामी होते तो समयसार को और विस्तार करते, चौगुना शास्त्र बनता। अमृतचन्द्र स्वामी ने टीका लिखी, उस पर जयसेन स्वामी ने टीका लिखी, अब हिन्दी टीका लिखी, अब और सरल चाहिए तो प्रवचन करना पड़ रहे हैं। कुछ दिन में यह प्रवचन समझने भी कठिन हो जायेंगे। ज्ञानी! बिजली का रंग कैसा है? कोई रंग नहीं? बिजली पौद्गलिक है तो वर्ण रहित होती नहीं। जो नीले-पीले दिख रहे हैं, यह काँचों के रंग है; विद्युत का रंग तो जैसा है, वैसा है। जैसे बल्वों के संयोग से विद्युत नाना वर्ण रूप झलक रही है, लेकिन वर्ण एक है। कर्म के निमित्त से दो गोरे, दो साँवले दिख रहे हैं। आत्मा तो जैसी है, वैसी है। वीतरागी तपोधन 'जैसा है वैसे' की खोज में लगे हैं। बाहर की आँखें तो सबकी देख रही हैं। आज आचार्यमहाराज कह रहे हैं- 'हे योगी! नगर के वर्णन से राजा का वर्णन नहीं होता।

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं।। 28 स.सा.।।

सुनों श्रावकों! परम वीतरागता की ओर मुनि को ले जाने के निमित्त से यह ग्रंथ लिखा गया है। श्रावक की प्रधानता नहीं है। शिवपुरी में कोई हजार वर्षों से रहा है, पता चले कि परम्परा महाराष्ट्र की थी, तो रहेगा यहाँ, पर राग महाराष्ट्र में रहेगा कि वंशज वहाँ के थे। यह राग, राग और स्वभाव स्पर्श करता ही है। बुन्देलखण्ड की 7-8 पीढ़ियाँ अमरावती में निवास कर रही हैं।

घर में शुद्ध बुन्देलखण्डी बोलते हैं। राजस्थान के श्रावक शिवपुरी में रह रहे हैं तो घर में भोजन व भाषा राजस्थानी है। महाराष्ट्रीयन भोपाल में हैं तो घर में मराठी भाषा का प्रयोग। परम्परा में बसी-बैठी राग की भाषा, स्वप्न में उसे ही देखते हो। जिसे जाना नहीं है, उसे जानने का नाम समयसार है। परम्परा में तीर्थंकर की पूजा होती है। यह सरल है, कठिन नहीं है। वह परम्परा क्या, जिसमें वंदना से भगवान बनते हैं? उसका नाम है शुद्ध आत्मा की वंदना।

बुन्देलखण्डी नहीं छोड़ पा रहा है। ऐसे-ही वस्त्र उतार कर मुनि बन गया, फिर भी यह धारणा नहीं निकल रही कि शरीर की वंदना से वंदना नहीं होती। मुनि से कह रहे हैं कि द्रव्य मिथ्यात्व छोड़ दिया तो अब भाव मिथ्यात्व का भी त्याग करो। दूध पीते-पीते समय बीत गया। अब लक्ष्य करो कि दूध में घी भी होता है। दूध का घी कैसा होता है? हे योगी! मैं समझाता हूँ। तेरे पक्ष का घात नहीं, तेरे पक्ष को और निर्मलता की ओर ले जा रहे हैं।

यहाँ ऐसा मानता है- जीव से भिन्न जो देह, पुद्गलमयी है, उसका स्तवन करता है। मुनि कहता है मैं तो केवली भगवान की वन्दना कर रहा हूँ। शरीर के सामने खड़े होने पर भी दृष्टि द्रव्य पर है तो

सही है, मैं केवली की वन्दना कर रहा हूँ। सोने-चाँदी को मिला कर सफेद कह रहा है। यह पांडुरपना (सफेद पना) व्यवहार है। सोना सफेद दिख रहा है। एक दिन पूरी शिवपुरी पंचकल्याणक में पीली दिख रही थी, मंदिर पीला हो गया था। यह व्यवहार की भाषा है। सब पीली धोती पहने पूजा कर रहे थे। तो पीला-पीला दिख रहा था। कमेटी के चार लोग आए तो बोले कि पूरी शिवपुरी आ गई। कैसी सफेदी छा गई आपके ऊपर? भूल नहीं, कपड़े की सफेद है, तेरी सफेदी नहीं है। पर्याय पर पुद्‌गल की पर्याय लपेटे। दूसरा राग है नील। तीसरा राग अग्निकाय की हिंसा। त्यागी-व्रती नील नहीं लगाते। सोले के बचे कहाँ? महाराज कोई को नहीं छोड़ते। अरे ज्ञानी! पकड़े ही नहीं हैं। शरीर का वर्णन सफेद, लाल इत्यादि स्तवन करने से आत्मा का वर्णन नहीं हो जाता परमार्थ से।

'दो लाल (लोहित), दो काले, दो हरे, दो सफेद,' केवली को जो स्वतन है वह व्यवहार मात्र है। निश्चयनय से तो शरीर का स्तवन आत्मा का स्तवन अनुत्पन्न ही है। अहो ज्ञानी! अनंतगुणस्वभावी आत्मा के पास, भक्तिस्वभावी आत्मा के पास भी मैं पहुँचा। नैनों ने, पुद्‌गल की आँखों ने पुद्‌गल को ही देखा। चक्रवर्ती आदि को ही देखता है, उसमें विराजी भगवती आत्मा को नहीं देखा।

शांतिनाथ, पंचम चक्रवर्ती, आपको देखकर इतना राग कि अरहनाथ को नहीं देख पाए। भूल गए। कुण्डलपुर गए, बड़े बाबा को ही देखा, पार्श्वनाथ नहीं देखे। आचार्य के मोह में, आचार्य के राग में मुनियों को धक्का दे दिया। बड़े बाबा, छोटे बाबा भेद कर डाले। भेद पर ही दृष्टि जाती है, अभेद पर क्यों नहीं जाती? अभेद तो नवदीक्षित में भी 28 मूलगुण देखेगा। भेद दृष्टि है तो कहेगा कि पुराने महाराज के पास चलते हैं। सम्यग्दृष्टि भगवान की पूजा करने नहीं, अशुभ से बचने के लिए आता है। अमुक जी का मंदिर, यह उनमें नहीं, भगवान तो वीतरागी हैं। सही है महाराज। इतनी धीरे बोल रहा है। असही को ही जोर से बोलना पड़ता है। सही बोलने के लिए नहीं।

यहाँ एकांगी पक्ष नहीं है। आचार्य महाराज बार-बार उभय नय की बात कह रहे हैं। कुंदकुंद योगी बार-बार कह रहे हैं, ताकि कोई भटन न जाए। अब आप नहीं समझ पा रहे तो क्या करें?

पानी का गिलास तब-तक कहता है, जब-तक गिलास में पानी है। जब सोने के गिलास में, तो कहता है कि सोने के गिलास में पानी पीना है। जबलपुर में एक दादाजी सोने के कलश से अभिषेक करते थे। ज्ञानी! इतना मत करना कि सोना-सोना दिखे, भगवान दिखना बंद हो जायें। 28वीं गाथा में व्यवहार पक्ष लेकर मुनिराज को समझाया है। 29वीं में समझा रहे हैं कि यह विषय निश्चय से नहीं लगता। यह देह पुद्‌गलमयी है। आत्मा का स्तवन करने से स्तवन हो जाता है। यह निश्चयनय से नहीं लगता। परंतु जब केवली बनेंगे प्रथम अवस्था में व्यवहार स्तुति करना होगी। पात्र तपाते ही दूध तपता

है। सत्यता क्या है, पात्र तप रहा है कि दूध तप रहा है? पात्र तो पात्र रूप तप रहा है, दूध दूधरूप तप रहा है। जब तपेली तप जाती है, मावा तपेली का नहीं, दूध का बनता है, साग बनाते हो, भगोनी का कौन-सा अशं साग में बनता है? प्रयोजनभूत तत्त्व साग है, मसाला किसमें डालेगा?

हे साधु! गृहस्थ तो भगोनी तपाकर दूध तपाता है, पर साधु को तो वस्त्र आदि उतार कर शरीर तपाना पड़ता है। फिर कषाय को क्षीण करना पड़ता है। आत्मा ही परमात्मा बनती है। शरीर तो बर्तन मात्र है। परंतु बर्तन के बिना साग बनती नहीं। साग खाने तभी मिलती है जब उस बर्तन से रहित होगा। इस देह से हटेगा, तभी भगवान बनेगा। बटलोई तपाने के बाद लक्ष्य बटलोई पर नहीं, लक्ष्य वस्तु पर होना चाहिए। परम दिगम्बर तपोधन शरीर की साधना करते-करते अंतरंग की साधनारूप तपता है। बहिरंग तप में बाह्य को, अंतरंग तप में आत्मा को तपाया जाता है। तप से तप रहे हो, कि कषाय से तप रहे हो?

अंतरंग तप पर लक्ष्यपात करो। 'चेतना' जीव का लक्षण है, कि 'मनुष्य' जीव का लक्षण है? नहीं, 'गुण' जीव का लक्षण है।

'व्यतिकेन वस्तु व्याप्तिः'

वस्तु में भिन्न करके दिखा दे, उसका नाम गुण है। आत्मभूत, अनात्मभूत।

जो केवली के गुण हैं, उनका स्तवन करना ही केवली का स्तवन है निश्चय से। सोने के गुणों को सोने में कहना। तीर्थंकर केवली के शरीर का जो वर्ण है, वह तो शरीर का गुण है, वह निश्चय से उनके गुणों का स्तवन नहीं है। तीर्थंकर के अनंतचतुष्टय आदि गुण ही उनका स्तवन है। शरीर का स्तवन? शरीर तो कई बाद देख चुके हैं।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। उत्तर ।।

उत्थानिका - ऊपर की बात को गाथा से कहते हैं

गाथा - **तं णिच्छये ण जुज्जदिण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।**
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ।। 29 ।।

अन्वयार्थ - (**तत्**) वह स्तवन (**निश्चये**) निश्चय में (**न युज्यते**) ठीक नहीं है (**हि**) क्योंकि (**शरीरगुणाः**) शरीर के गुण (**केवलिनः**) केवली के (**न भवन्ति**) नहीं हैं। (**यः**) जो (**केवलिगुणान्**) केवली के गुणों की (**स्तौति**) स्तुति करता है (**स**) वही (**तत्त्वम्**) परमार्थ से (**केवलिनम्**) केवली की (**स्तौति**) स्तुति करता है।

संस्कृत छाया - **तन्निश्चये न युज्यते न शरीरगुणा हि भवन्ति केवलिनः।**
केवलिगुणान् स्तौति यः स तत्त्वं केवलिनं स्तौति।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी, जिन्होंने ग्रंथराज समयसार जी में अभूतपूर्व सिद्धांत प्रतिपादित किया। आत्मा की उत्कर्षता का चरम कथन समयसार जी में है। शुद्ध दृष्टि का कथन करते हुए, आचार्य महाराज पुनः-पुनः संकेत कर रहे हैं कि शरीर की स्तुति आत्मा की स्तुति नहीं है। जिसे जगत जानता है, उसे समझाने की आवश्यकता नहीं है। जिस आत्मा के ध्रुव अखण्ड स्वभाव को आत्मा ने जाना ही नहीं, उस त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव की व्याख्या इस ग्रंथ में है। जैसे नीले, पीले आदि वर्ण की व्याख्या से देह का ही व्याख्यान होता है, देही का नहीं। ये वर्णादि तो शरीर के लक्षण हैं। आत्मा का लक्षण तो उपयोग है। स्पर्श, रस, गंध आदि जड़ हैं। जड़ का मिश्रण चेतन से, चेतन का मिश्रण जड़ से संभव नहीं। बंध अपेक्षा, देह व आत्मा एकल है। अभेद/अबंध अवस्था में देह भिन्न है, आत्मा भिन्न है। आत्मा अमूर्तिक, देह मूर्तिक-धर्मी है। मूर्त/अमूर्त यह विभाव अपेक्षा कथन है। आत्मा कथंचित् मूर्तिक (कर्म बंध अपेक्षा) है, परंतु स्वभाव अपेक्षा आत्मा अमूर्तिक ही है। इसलिए सर्वप्रथम कथन में अनेकांत लगाना। अनेकांत का अभाव किया तो वस्तुव्यवस्था गड़बड़ा जायेगी।

निश्चय से शरीर का स्तवन करने से केवली का स्तवन नहीं होता, इसका कथन कर रहे हैं। देह का स्तवन करने से तीर्थंकर का स्तवन नहीं होता। शरीर के काले, सफेद आदि वर्ण केवली के नहीं होते। देखो, आप बंध अवस्था में अवश्य हो, अपने ज्ञान को अबंध दशा की ओर ले जाइए। इस आत्मा में अबंधभूत भी ज्ञेय है। आपका बंधभूत भी ज्ञेय है। आप संसारी हो, इसलिए बंधभूत हो। स्वभाव से अमूर्तिक है इसलिए इस दृष्टि में एक जीव द्रव्य ऐसा कि बंध अवस्था में स्वयं में संसार, अबंध अवस्था में स्वयं में मोक्ष दिखाई देता है। स्वभाव दृष्टि नहीं तो संसार अवस्था में मुक्तत्व का वेदन नहीं होगा। वेदन नहीं तो पुरुषार्थ करोगे क्या? बंध के दुःख का जिसे वेदन नहीं, वह बंध में निर्बंध होने का पुरुषार्थ क्यों करेगा। संयम धारण करने के पूर्व अपने बंध के दुःख का ज्ञान होना चाहिए। सम्यक्त्व तभी प्रकट होगा जब जीव को बंध का भान हो। अन्यथा तब-तक मुक्त होने की प्रति इच्छा बनेगी कैसे? वो अपने कपड़े ऊपर खिसका रहे हैं। कुर्ते को ऊपर कर लिया है। क्या उद्देश्य था? जीव से पूछो-पहले कपड़े ऊपर किए, कि पहले गर्मी का अहसास हुआ? गर्मी को हटाना है तो कपड़े ऊपर करने में कष्ट नहीं। यदि विषय-वासना की गर्मी महसूस हो जाती, यदि परिपूर्ण कषायों की गर्मी महसूस हो जाए, तो शरीर पर यह कपड़े रहेंगे नहीं। बंध के कष्ट का भान ही न हो, तो मोक्ष का भूतार्थ पुरुषार्थ जीव कर ही नहीं सकता। शब्दज्ञान करता रहेगा, पर अनुभूति-ज्ञान में जा रही नहीं पायेगा। बंधदशा में बंध का कष्ट महसूस होना चाहिए, उसी का नाम वैराग्य है। 'महाराज! आप अच्छे लगते, इसलिए मुनि बना।' यहाँ तो बंध नहीं, बंधु की वेदना सता रही है। बंध से बचने के लिये महाराज बनना, बंधु के राग में नहीं बनना। ऋषभदेव के साथ 4000 सम्राटों ने दीक्षा ली थी और वे मार्ग से च्युत हो गए। दीक्षा बंधभय से वैराग्य ने नहीं ली थी, बंध के राग में ली थी। स्वामी जा रहे हैं तो हम भी चलें। मोक्षमार्ग बंधु-राग का मार्ग नहीं। बंध से भय होगा तो भूल कर भी संयम में भूल नहीं करेगा। द्रव्यानुयोग तो बहुत गहरा है। अभी इस जीव को बंध का भी ज्ञान नहीं। आत्मभाव व आस्रवभाव पर दृष्टि नहीं तो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा। एक बैल श्रेष्ठ है जिसे बंध का भान है, अतः खूँटे को तोड़ना चाहता है। उसे मोक्ष का ज्ञान है, खूँटे को तोड़ रहा है। रस्सी तोड़ रहा है, घास खा नहीं रहा है। बंध में कष्ट है, मोक्ष में सुख है। खुले मैदान की घास में आनंद है। यहाँ न रस्सी है, न खूँटा है, न पूँछ है, न सींग, फिर-भी कैसा बैल है जिसे बंध का ज्ञान नहीं।

जीव से भिन्न जो देह है, वह पुद्‌गलमय है, उसे स्तुतिकर्ता मुनि व्यवहार से मानता है कि मैंने स्तुति की है अरिहंत भगवान की इस प्रकार जैसे सोना चाँदी एक मिल गया। चाँदी के शक्त्याश अधिक थे, इसलिये व्यवहार से दोनों सफेद दिख रहे हैं, फिर-भी निश्चय से सोना पीला है, चाँदी सफेद है। केवली पुरुष की देह के स्तवन से, व्यवहारनय से, स्तवन होता है, पर निश्चयनय से स्तवन नहीं है।

ऐसा समझना चाहिए।

'तत्स्वभावस्तत्त्वं।' (स.सि.)

जो वस्तु का स्वभाव है, वह तत्त्व है। आवरण कितने भी डाल दीजिए, तत्त्व का विनाश नहीं होता। हे मेघ! सूर्य को ढँक सकते हो, महीने भर आच्छादित कर सकते हो, लेकिन चुनौती है कि सूर्य के तेज का विनाश त्रैकालिक नहीं कर सकते। महीने भर तक ढँक सकते हैं, ध्रुव सत्य है। भव्य आत्मा में कैवल्य को यह कर्म रोक नहीं सकता। मोक्ष होगा ही, घबराना नहीं। हम सब भावी केवली भगवान हैं। यदि भव्य हो तो। लोक अज्ञानी है, नेता राजनेता बनने की सोच में बैठा होता है। अरे! अपनी विभुत्व शक्ति का भान करो। तेरी विभुत्व शक्ति कहाँ खो गई? क्यों कंगाल बना बैठा है इन लोगों के बीच में? तू विभुत्व शक्ति से युक्त है। 47 परमशक्ति हैं तेरे पास। विभुत्व शक्ति के साथ प्रभुत्वशक्ति भी है। बंधक मानकर बैठा है स्वयं को।

राजस्थान में ऊँट बहुत हैं। एक व्यक्ति शाम को ऊँटों को बाँध रहा था। एक ऊँट की रस्सी कम पड़ गई। उस व्यक्ति ने यूँ-ही बनावटी खूँटी ठोकी, गले पर रस्सी बाँधने का नाटक किया। ऊँट भी स्वयं को बंधक मानने लगा। सुबह उसने सारे ऊँट खोले, उस ऊँट से कहा, 'उठो, चलो।' वह बैठा रहा, नहीं उठा, क्योंकि बंधन खुला नहीं, जबकि बंधन था ही नहीं, पर स्वयं को बंध रूप मान रहा है। सत्यता है कि आप बंधे नहीं हो, तब भी बंध रूप अपने को मानकर बैठे हो। ध्रुव सत्य यह है कि तू मानता है कि तेरे पीछे बहुत से लोग, बहुत से संबंधी हैं। हे ज्ञानी! कहीं वे तेरे बारे में सोचते भी न हों, तू अवश्य सोचता है। ये बिना खूँटे, बिना रस्सी कब-तक बंध रहेगा। तू तो विभुत्व शक्ति से युक्त है। निज शक्ति को क्यों नहीं पहचान पा रहा है? सिर पर पर्वत को रखकर फेंकना सरल है लेकिन अपने अंदर की स्वतंत्रता को पहचान पाना कठिन है। ये किशोर बालक है, इसके आगे-पीछे कोई नहीं, फिर भी विकल्प है कि घर जाना है। निर्बन्ध होकर भी बंधे हैं। जो बंध चुके हैं, उनसे बेचारे बंधे हैं। कठिन कोई साधना है तो बाहरी द्रव्य के साथ अंदर का राग छोड़ना कठिन है। शरीर में कोई कमी नहीं, सब व्यर्थ की बाते हैं। ज्ञानी! शरीर में ताकत न होती तो तूने शादी कैसे कर ली? शरीर में शक्ति है, मन में शक्ति नहीं है। राग की कमजोरी सता रही है। आप सब यहाँ आ गए, घर में काम नहीं था क्या आज? क्या हर गर्मी में ऐसे-ही यहाँ बैठते हो? आना था, तो सारे काम हटाकर आ गए क्योंकि समयसार सुनना है। ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव मस्तिष्क से सारी संसारी विभूति हटाकर एकमात्र परमात्मा और निजात्मा पर ध्यान देता है। निर्णय करो। आँखें खोलकर होने वाला धर्म तो पूरी पर्याय किया है, आँखें बंद करके धर्म करना सीखो। खुली आँखों से भगवान की पूजा, वंदना, मुनियों को आहार दान दीजिए। निज तीर्थ

की वंदना बंद आँखों से कीजिए। आँखें बंद हों इससे पहले बंद आँखों का वंदन कर लो। क्या कहते हो कि मनुष्यपर्याय मिली है तो सबकुछ देख लो? वही तो मैं कह रहा हूँ कि मनुष्यपर्याय मिली है तो एक बार देखनहार को देख तो लो। पुरुषार्थ आज से ही प्रारंभ करो, नहीं तो शरीर की ही वंदना करते रहोगे, शरीर ही मिलते रहेंगे। सुन्दर भक्ति करोगे, तो सुन्दर रूप मिलेगा, भक्ति निष्फल नहीं होती। शिव स्वरूप की प्राप्ति भक्ति भाव से नहीं, यह तभी संभव है जब अद्वैत भक्ति में लीन हो जायेगा। द्वैत भक्ति में सुन्दर रूप मिल सकता है, स्वरूप प्राप्ति नहीं। परम्परा कारण द्वैत भक्ति है, परंतु प्राप्ति अद्वैत भक्ति से होती है। व्यवहार भक्ति स्वर्ग, चक्रवर्ती आदि पद दिला सकती है। सम्यक्त्व सहित है, तो परम्परा से मोक्ष का कारण है। व्यवहार भक्ति सम्यक्त्व रहित है तो मोक्ष का कारण भी नहीं है। सम्यग्दृष्टि की भक्ति मोक्ष का कारण है-

'सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होदि संसारकारणं णियमा।
मोक्खस्य होऊ हेउ जह वि णिदाणं ण कुणई ।।404 भाव संग्रह।।

यह पुण्य का बंध है, ऐसा मिथ्या कथन है, जो कहे कि भक्ति तो आस्रव, पुण्य भाव है, संसार ही बढ़ेगा। परमात्मा की भक्ति संसार बढ़ायेगी तो राग-भक्ति मोक्ष दिलायेगी क्या? ऐसा एकांकी कथन प्रमादी करते हैं। भावसंग्रह ग्रंथ में आचार्य देवसेन स्वामी लिख रहे हैं- 'सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होदि संसार कारणं णियमा' सम्यग्दृष्टि का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं है। हाँ, यदि पुण्यक्रिया में निदान करता है तो नियम से संसार बढ़ेगा। शांतिनाथ के चरणों में आकर आकांक्षा की तो नियम से संसार बढ़ेगा। यदि अन्यत्वभाव है तो भक्ति परम्परा से मोक्ष का साधन है। साधन का साधन है। मोक्ष का साधन तो निश्चय भक्ति है। निश्चय भक्ति का साधन व्यवहार भक्ति है। दो साधन में एक साधन है, एक साधकतम कारण, अर्थात् निश्चिय कार्य होता है। निश्चय भक्ति साधकतम कारण है। साधकतम के लिए ही बैठे हो यहाँ, परंतु जो कर रहे हो वह साधकतम नहीं है। कुछ लोगों ने साधन को साध्य मान लिया। साधन बिना साध्य मिलता नहीं, साधन लेकर बैठ जाओगे तो भी साध्य मिलेगा नहीं। गुरु से दीक्षा ली, उपकार मानना पड़ेगा। 24 घंटे गुरु के पुद्गल को देखोगे तो भगवान का ध्यान कब करोगे? जब भक्ति का समय है तो गुरुभक्ति करो। पता चला कि पूरा जीवन फोटो/चित्र में लगा दिया, चारित्र को पाल ही नहीं पाया, जीवन निकल गया। पर्याय की पर्याय से कब-तक चिपके रहोगे? समय मात्र सीधी कहता है। तीर्थंकर-शरीर की वन्दना को बंध कहा जा रहा है परमार्थ से, तुम्हारा पुद्गल तो सामान्य है, इसमें राग, तो क्या होगा? कैसे मोक्ष जाओगे?

'पज्जय-मूढ़ा हि परसमया।' (पवयणसारो)

जब-तक इस पर्याय में चिपका रहेगा, परसमयी है। धन्य हो परम मुनिराज को, परमदशा को। पसीना बहता हो, रक्त बहता हो, पर वह अपने में रत रहता है। तन पर सिगड़ी, तन में सूले चुभाये हों, पर मन में सूल न चुभता हो, उसका नाम समयसार है।

फूल बनकर रहते हों, फूलों पर सोते हों, वह क्या समझेंगे समयसार। फूल (Fool)ही सो पायेगा फूलों पर। भोगों को फूलों पर फूल ही सो पायेगा। ज्ञानी होगा तो चित् स्वरूप भगवानात्मा को निहारता है। समझो तत्त्व को, भूतार्थ-परमार्थ दृष्टि क्या है? देह की वंदना करते-करते अनंत पर्याय व्यतीत हो गई। भगवान की प्रतिमा के सामने बैठकर भगवान के स्वरूप पर दृष्टिपात करो। लोग भगवान के आकार-प्रकार में अटक जाते हैं, यह तो शिल्पकार का कार्य है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं कि सुन्दर देखना है तो जो 18 दोषों से रहित भगवान हैं, वे सुन्दर हैं। सम्यग्दृष्टि जीव शिल्पकार की कला नहीं देखता, सम्यग्दृष्टि जीव तो.....

'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।। 80 पवयणसारो।।

जो अरिहंत की द्रव्य-गुण पर्याय को जानता है और स्वयं की निज द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसका मोह समाप्त हो जाता है। अनंत काल से दर्शन किए, दो गोरे, दो सांवरे। सांवलिया पार्श्वनाथ की जय बोली। लेनि कर्म की काली 148 प्रकृति रहित तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय क्यों नहीं बोलते? लक्ष्य में काला पाषाण, वामा सुत, कमठ के भाई रहे। अब उनकी वंदना करनी है, जो 148 कर्मप्रकृतियों के बंध से मुक्त हो गए। वंदना मत छोड़ देना, अन्यथा समयसार सुनकर और-भी नीचे चले जाओगे। देह कदाचित् एकमेक होती है। जैसे सोना-चाँदी समवर्ती अवस्था में, व्यवहारनय से एकरूप होता है। अष्टधातु की प्रतिमा में अलग-अलग धातुएँ मिश्रित हैं, परंतु भगवान की प्रतिमा एकरूप दिख रही है। धातुरूप सब भिन्न हैं। आत्मा तो आत्मा है, देह तो देह है। इसी प्रकार देह व आत्मा जानना। व्यवहारनय से देह के स्तवन से आत्मा का स्तवन हो जाता है परंतु निश्चयनय से ऐसा नहीं है। देह-पुद्गल का स्तवन करके मैंने केवली की वंदना की, ऐसा मानता है।

निश्चयनय से शरीर का स्तवन केवली का स्तवन नहीं, इसे पुनः कहते हैं। देह का स्तवन केवली का स्तवन नहीं है। जिस रूप शरीर के गुण हैं, शुक्ल, कृष्ण आदि, वे केवली के गुण नहीं है। वस्त्रों के रक्तिम, सफेद, घने, मोटे, होने पर शरीर वैसा होता है क्या? काले कपड़े में शरीर काला होता नहीं। वस्त्रों के नाना रूप होने पर शरीर तद्रूप नहीं हो जाता। शरीर के नाना वर्ण होने पर आत्मा उस रूप नहीं होती। यह वस्त्रों का रंग है, देह का रंग नहीं है। जो देह का रंग है, वह देही का रंग नहीं है।

आप रंगे कहाँ हो? रंग में ही रंगे हो। रंग में न रंगे होते तो....। लंकेश का मरण स्वरूप-दृष्टि के कारण हुआ, कि रूप-दृष्टि के कारण हुआ? प्रेम से पूछ लो, हे रावण! तूने सीता के रूप को देखा। यदि तू सीता के स्वरूप को देख लेता तो सीता में तुझे नारी या नर नहीं, भगवानात्मा दिखती। सत्य बताना, आप किसको देखने गए थे? स्वरूप देखने, कि रूप देखने? कन्या के स्वरूप को देख लेता तो ये रूप न होता। रिश्तेदारों को लेकर गया, मित्रों के साथ गया। ऐसे मित्रों की टोली लेकर जंगल में जाकर स्वरूप देखने लग जाता तो ये स्वरूप देखने नहीं मिलता। किसको देखा? आँखें कहाँ चिपक रही हैं? रूप में।

जितने भोग इन आँखों ने भोगे, उतने किसी इन्द्रिय ने नहीं भोगे। नाक भी सिकोड़ी तो आँखों ने सिकुड़वाई है। काले रूप को देखकर सिकुड़ी थी। नाम देखती है क्या? नाम सिकुड़वाई आँखों ने। आँखों को बन्द करके रखो, पलक बन्द हो जायेंगी। पर विश्वास रखना, बन्द होती नहीं हैं, और-उल्टा होगा। आँख खोलकर तो सामने वाला दिखेगा, आँख बन्द तो न जाने क्या-क्या दिखेगा। पार्श्वनाथ के सामने कम-से-कम आँख खोलकर बैठता तो पार्श्वनाथ दिखते। आँखें बन्द, तो न जाने कौन-कौन-से नाथ दिखते हैं। जब-तक भीतर की आँख खुली है तो आँख खोलकर वंदना करना। भीतर की आँख बन्द तो बन्द करके वंदना करना। जब-तक चित्त चलायमान है तो आँख खोलकर वंदना करना। टी.वी. के सामने दो-दो घण्टे आँख खोलकर बैठा रहता है। भगवान इतने बुरे लगते हैं, भगवान के सामने दो मिनिट भी आया तो आँखें बन्द कर लीं? कुछ न-बने, तो भगवान को देखते रहना। यह तो बड़ी बात है।

'दृष्टं जिनेन्द्र-भवनं भव-ताप-हारि।' (चैत्यालयाष्टक स्तोत्रम्)

अपने घर की छत से मंदिर के शिखर को देख ले तो अनंत भवों के कष्ट समाप्त होते हैं। अभागे वे हैं जो दूर रहते हैं। नई कॉलोनी बनती हो तो पहले पूछते हैं कि मंदिर है कि नहीं। मरण समय मंदिर के पास रहेंगे, जायें या न जा पायें, घंटियों की आवाज सुनाई देगी शिखर देखते रहेंगे। भाग्यवान पुरुष ही मंदिर के पास रहते हैं। पुण्यात्मा जीव को ही ऐसा नियोग मिलता है।

तो केवली का स्तवन कैसे होता है? केवली के जो गुण हैं, अनंत दर्शन आदि, वही केवली का स्तवन है। कृष्ण-शुक्लादि शरीर के स्तवन से, केवली पुरुष का स्तवन निश्चय से नहीं होता। ऐसा जानना चाहिए। ज्ञानियों! अगली गाथा देख लो। अब आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी आचार्य कुंदकुंद से मिल रहे हैं। तो शरीर के स्तवन से, निश्चय से, आत्मा का स्तवन नहीं होता, ऐसा समझा रहे हैं।

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति।। 30 स.सा.।।

हाँ, व्यवहारिक दृष्टांत के माध्यम से आचार्य कह रहे हैं कि जैसे नगर का वर्णन किया तो नगर

के वर्णन से राजा का वर्णन नहीं हुआ। नगर के किले, महल, कोट, दुर्ग, परकोट, बावड़ियों किले, खाई, परिखा का वर्णन चल रहा है। इनके वर्णन से राजा का वर्णन नहीं हो जाता। शरीर का वर्णन करने से कि हे शांतिनाथ भगवान! आपका सुन्दर शरीर हैं, चक्रवर्ती एवं कामदेव हो। 96 हजार रीन, 18 करोड़ घोड़े, 84 लाख हाथी के स्वामी हैं। कामदेव हैं। इतने कथन में वीतराग भगवान का कथन कितना हुआ है? प्रभु! आपने 6 खण्ड का राज्य किया, दिग्विजय की। यह राग का कथन है। यथार्थ गुणों का स्तवन कितना? महाराज! आप सुन्दर हो, सुन्दर उपदेश देते हो। कीर्ति चारों ओर फैल रही है। यह पिच्छि सुन्दर है। यह सारा वर्णन संग अर्थात् परिग्रह का है। यह नहीं कहा। भेदाभेद से मण्डित भगवती आत्मा कितनी सुन्दर लगती है-इसका कथन नहीं किया। महाराज ध्यान कर रहे थे, यह पूछता है-'महाराज! स्वास्थ्य ठीक है?' वे निज में जा रहे थे, तूने शरीर में लगा दिया। पूछना था 'निर्दोष भेदाभेद रत्नत्रय की साधना स्वस्थ है कि नहीं? शरीर के एक-एक अंगुल में 96-96 रोग हैं, वह स्वस्थ नहीं हो सकता; पर भगवती आत्मा स्वस्थ हो सकती है। घूरे अच्छे कभी होते नहीं, घूरे के माध्यम से गेहूँ अच्छे होते हैं। यह शरीर पूरा घूरा है, भगवानात्मा इसके निमित्त से अच्छी हो सकती है। साधु को घूरे के पास मत ले जाना। याद मत दिलाना कि शरीर कमजोर हो गया। पूछना-'रत्नत्रय सबल हुआ कि नहीं?'

'शरीर-माध्यम खलु धर्म-साधनम्।'

देह के गुणों का स्तवन करने से केवली के गुणों का स्तवन नहीं होता।

प्राकारकवलिताम्वरमुपवनराजीनिगीर्ण भूमितलम्।
पिबतीव हि नगरमिदं परिखावलयेन पातालम्।। 25 अ.अ.क.।।

आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने नगर का वर्णन कितना सुन्दर किया है। झांसी नगर के चारों ओर सुरक्षा द्वार हैं, बाड़ी है। तो क्या झांसी में कोई ऊपर तो जाता ही नहीं होगा? चारों ओर दुर्ग हैं। चाहे दुर्ग बनवा लेना, डॉक्टर बुलवा लेना, तलघर में बैठ जाना जहाँ कोई शत्रु नहीं पहुँचेगा, पर यमराज पहुँच जायेगा। काल से नहीं बच पायेगा। क्या लिखा? ऐसा सुन्दर कोट बना है, पूरे आकाश को निगल लिया। उपमा-अलंकार है। ऐसे सुन्दर बगीचे हैं, पूरे भूमितल को निगल लिया। तात्पर्य यह है कि विशाल उपवन है। परखा-बावड़ियाँ इतनी विशाल कि पूरे पाताल को पी लिया। ऐसे नगर का वर्णन करने पर भी, उस नगर में राजा के रहने पर भी, प्राकार, परखा, वन, भवन का वर्णन करने से राजा का वर्णन नहीं हो गया। तिलक लगा लिया, कुण्डल पहन लिए, चश्मा लगा लिया, सुन्दर शरीर बना लिया, तो मात्र शरीर का ही वर्णन होगा, अंतरंग का वर्णन नहीं होगा।

नित्यमविकारसुस्थित सर्वांगमपूर्वसहजलावण्यं।।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति।।26 अ.अ.क.।।

तीर्थंकर के बाह्य स्वरूप का वर्णन, व्यवहार से यह बहुत सुन्दर भक्ति है। निश्चचय कथन में तो सुन्दरता समझ नहीं आ रही है। हे परमेश्वर! आप नित्य ही निर्विकार हैं, शरीर में परिपूर्ण सहज लावण्य है। समुद्र के समान आप गंभीर हैं, ऐसा जिनेन्द्र का रूप जयवंत है। किसका स्तवन? ऐसा तीर्थंकर-शरीर का स्तवन होने पर भी, इस शरीर में अधिष्ठाता होने पर भी, सुन्दर लावण्य शरीर का, स्वात्म भाव से इन सबका अभाव होने से, यह शरीर मात्र का वर्णन हुआ। कुंदकुंद स्वामी की दृष्टि कितनी विशाल है। भगवान बनने के लिए भगवान को भी नहीं देखना पड़ेगा। भगवान देखने से भगवान नहीं बन सकते, तो जगत की नर-नारियों को देखनेवाला भगवान कैसे बनेगा? व्यतिरेक लगाइए। भगवान को देखने वाला परम्परा से, व्यवहार से भगवान बन सकता है। जगत के नर-नारियों को देखनेवाला, भगवान न निश्चय से बन सकता है, न व्यवहार से। जगत के नाना रूपों को देखने से भगवान कैसे बन सकते हो? वह परमार्थ दृष्टि यहाँ लगाइये।

जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
एक्क हिं केम समंति वढ बे खंडा पडियारि।। 129 प.प्र.।।

हे नर! जिसके नैनों में मृगनयनी का निवास हो, उसके हृदय में भगवानात्मा का (ब्रह्म का) निवास कैसे? ब्रह्मधर्म नहीं, तो भगवत्ता कैसे बन सकती है? एक म्यान में दो तलवारें नहीं समातीं। भूतार्थ दृष्टि अपनाइये। ऐसा कैसे कि वस्तु का सेवन चल रहा है और वस्तु में राग न हो? तो कैसे चलेगा? वैसे-ही जैसे कछुए की पीठ के बालों की रस्सी बनाकर आकाश के फूलों का गुलदस्ता बनाकर बंध्या के बेटे को खेलने के लिए दे दिया जाये। अग्नि में कमल खिलते हैं क्या? गाय के सींग में दुग्ध-धारा बहती है क्या? परद्रव्य में राग है तो भगवन् स्वरूप निकलता है क्या? भगवत्स्वरूप प्रकट होने वाला नहीं है।

निश्चयनय से स्तुति कैसे करना चाहिए? 31वीं गाथा आ रही है, गहरी बात, वीतरागी मुनियों को लक्ष्य करके कह रहे हैं। मुनियों कि दशा क्या है? आँखों ने देह के मुनि को अनंत बार देखा, उनकी वंदना अनंत बार की, अभ्यास में है। कल भावों में मुनि की वंदना करेंगे। देह का मुनि आपको दिख रहा है, भाव का मुनि नहीं। ज्यादा नहीं, चौबीसी पूजा देख लो- ''मुनि मन सम उज्जवल नीर''। कवि को गंगा का नीर निर्मल नहीं लगा, कालीसिंध या चंबल का पानी शुद्ध नहीं लगा। कैसा पानी लेकर आया? मुनि मन सम उज्जवल नीर। हे मुनिराज! मैं तन की वंदना नहीं, उस मन की वंदना कर रहा हूँ जिस मन की उपमा कवि ने दी है।

जब भी मुनि बनना, मुनि मन के मुनि बनना। मुनि मन के मुनि नहीं बन पाये तो वन-वन में भटकोगे, लेकिन मुनि नहीं बन पाओगे। कुछ लोग तो मुँह बनाकर बैठ गए। वसन उतारके, वासना से दूर रहना, मुनि है। वासनाओं को उतारकर वसन उतारते हैं। संत नंगे नहीं, नग्न होते हैं, अन्यथा भालू-बंदर है। मुनि नंगे नहीं, नग्न हैं। नंगे तो पालग होते हैं। यह नंगों का नहीं, यह नग्नत्व मार्ग है। यह आकिंचन्य धर्म है। जाओ घर। आँखें बंद करके, खोलके देख लेना कि मुनि कैसा है? अन्यथा वचनों का आनंद कान ही ले पायेंगे। समयसार का आनंद कर्णों से नहीं, अंतःकरण में होता है। बस, जाओ। बस जाओ अंतःकरण में, बस जाओ। बस यही समयसार है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मरुप ही हैं।

उत्थानिका - आगे शिष्य का प्रश्न है कि आत्मा तो शरीर का अधिष्ठाता है, इसलिये शरीर की स्तुति करने से आत्मा का स्ववन निश्चय से क्यों ठीक नहीं हैं? ऐसे प्रश्न की उत्तर रूप गाथा दृष्टान्त सहित कहते हैं।

गाथा - **णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।**
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति।।30।।

अन्वयार्थ - **(यथा)** जैसे **(नगरे)** नगर का **(वर्णिते)** वर्णन करने पर **(राज्ञः वर्णना)** राजा का वर्णन **(नापि कृता)** किया नहीं **(भवति)** होता, उसी तरह **(देह-गुणे स्तूयमाने)** देह के गुणों का स्तवन होने से **(केवलिगुणाः)** केवली के गुण **(स्तुता न)** स्तवन रूप किये नहीं **(भवन्ति)** होते हैं।

संस्कृत छाया - **नगरे वर्णिते यथा नापि राज्ञो वर्णना कृता भवति।**
देहगुणे स्तूयमाने न केवलिगुणाः स्तुता भवन्ति।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी, जिन्होंने ग्रंथराज समयसार जी में अध्यात्म के अनुपम सूत्रों को प्रदान किया है। निश्चय दृष्टि और व्यवहार दृष्टि का विशद् व्याख्यान यहाँ आचार्य महाराज कर रहे हैं। ब्रह्मदृष्टि तो स्वरूपदृष्टि, निश्चयदृष्टि है। बाहर जितनी दृष्टि हैं, परमार्थदृष्टि से वे अब्रह्मदृष्टि हैं। आत्मस्वभाव शील है। आत्म-भाव से भिन्न जहाँ-जहाँ दृष्टि जायेगी, वह कुशीलदृष्टि है। हे योगीश्वर! निज शरीर पर दृष्टि डालना अशील है, तो पर शरीर में शील कैसे? आश्रम में रहते हुए साधु स्वयं ब्रह्मलीन, वह जैसे खरगोश के सींग

ब्रह्मचारियों को आश्रम में रहना चाहिए। आश्रम मतलब ईंट, चूने के मकान में रहने लगना आश्रम नहीं। गुरुचरणों में निवास करना, यही आश्रमवास है। समंतभद्र स्वामी ने तो आश्रमवास को हिंसा कहा है। तृण मात्र परिग्रह का संचय भी जीव करता है तो अहिंसा नहीं। बिना हिंसा के किंचित भी संचय नहीं हो सकता। आरंभ साधन के अभाव में द्रव्य आता नहीं। जब अर्थरूप दृष्टि है, तो निजात्मरूप दृष्टि का अभाव हो ही जाता है। जहाँ निर्ग्रन्थ दशा का अध्ययन प्रारंभ, वहाँ निस्संग दशा का पहले अध्ययन

होता है। निस्संग दशा नहीं है, तब-तक निर्ग्रंथ दशा नहीं आ सकती। निस्संगता यानि परिग्रह से रहित अवस्था। जहाँ परिग्रह, वहाँ निस्संगता नहीं। 12वें गुणस्थानवर्ती मुनि निर्ग्रंथ होते हैं, उससे पहले 'निर्ग्रंथ' संज्ञा नहीं। सामान्य कथन की अपेक्षा, ये वर्तमान के मुनि निर्ग्रंथ हैं। ये वस्त्र आदि से रहित हैं, इसलिए निर्ग्रंथ हैं। 12वें गुणस्थान में मोहनीय कर्म की गाँठ समाप्त, इसलिए निर्ग्रन्थ। वर्तमान में ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिए बाहरी प्रपंचों से दूर रहना पड़ेगा। संगता में निर्ग्रन्थता संभव नहीं। सच्चे निर्ग्रंथ का कथन करेंगे जिनवाणी के अनुसार, तो ऐसा ही कहना पड़ेगा। ईंट-चूने का मार्ग निर्ग्रन्थों का मार्ग नहीं है। एक शिविर में एक साधक माला बनाना सिखा रहे थे। विकल्प आया कि निर्ग्रंथ जीव किंचित भी 'ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तः' से हटकर काम करेगा तो वह निज मार्ग से च्युत हो चुका है। जिनका मार्ग है वे कर सकते हैं। श्रावक कर सकते हैं, निर्ग्रंथ मुनि नहीं कर सकते। सिलना, बुनना आदि साधकों के काम नहीं। आर्यिकायें भी नहीं कर सकतीं।

अहो! इस जीव ने इस जिनदीक्षा को भी अनेक बार धारण किया है। ध्यान रखना, इस विषय को बहुत अच्छे से समझना है, क्योंकि कहीं-कहीं इन विषयों को लेकर त्यागियों के प्रति अश्रद्धा खड़ी हो जाती है। त्याग-मार्ग अश्रद्धा का मार्ग होता ही नहीं। निर्ग्रंथ मुद्रा को अनेक बार धारण किया, पर अनेक बार निर्ग्रंथ नहीं बना। हे ज्ञानी! 32 भव से अधिक निर्ग्रंथ मुनि बन नहीं सकता। जिनने भावलिंग धारण किया है। द्रव्यलिंग के साथ, तो 32 भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं। क्यों? द्रव्य लिंग के अभाव में भावलिंग हो सकता है क्या? नहीं हो सकता। मुझे खुशी है कि इस बात को अच्छे से समझ तो चुके हैं। इन विषयों को प्रसंगवश समझ लेना। भावना और भाव, इन दोनों में बहुत अंतर है। भावना 'भाव' नहीं होती। जो यों कहता है कि मैंने मुनि बनने के भाव किए हैं अतः मैं भावमुनि हूँ ये जो बैठे हुए हैं, द्रव्य मुनि। एक ब्रह्मचारी आए- मैं भाव से मुनि तो भावलिंगी, आप द्रव्य से मुनि तो द्रव्यलिंगी। हे मिथ्यादृष्टि! ऐसा मिथ्या भाषण करके तीर्थंकर-शासन को नष्ट मत कर देना। जहाँ जायेगा पैर धुलवायेगा, पूजा करवायेगा, नमोस्तु करवायेगा क्योंकि भावलिंगी हैं।

जो भी पण्डित विदेश जायें, प्रभावना करना, बहुत अच्छी बात, पर इतनी करुणा करना कि वहाँ कोई आपको जैन साधु नाम से पुकारे तो मना कर देना, क्योंकि तुम साधु नहीं। यदि तुमने अपनी पहचान साधु रूप में दी, तो महावीर का साधुपना समाप्त हो जायेगा। प्रभावना करना, महावीर के भेष को विकृत मत कर देना। हमारे जिनशासन में एक धागे को भी स्वीकार नहीं किया। बालक अकलंक-निकलंक देव से प्रश्न करो। उपसर्ग आया कहा गया कि प्रतिमा को नाको। एक धागा ड़ालकर निकल गए। सग्रंथ नहीं, निर्ग्रंथ वंदना है जिनशासन में।

अभिषेक करते हो तब श्री जी पर कपड़ा नहीं रखो। प्रक्षाल बाद में कर लो। कपड़ा नीचे रखो।

आसन पर कुछ बातें समझने की हैं, सँभलने की हैं। नगर में निर्ग्रंथ मुनि विराजमान हैं कदाचित् आहार देने हैं, तो मुनि के कमरे में कपड़े मत बदलना, अन्यथा आपके प्रमाद में मुनि का अवर्णवाद हो सकता है। आप कपड़े छोड़कर चले गए, श्रावक पहुँचे, भाव था कि मैं तो देखकर वंदना करूँगा, लेकिन कपड़े देखते ही भाव आयेगा कि यह कपड़े प्रयोग करते होंगे। तो मुनि का अवर्णवाद हो गया।

भगवान के परिसर में व्यर्थ का सामान नहीं होना चाहिए। घी, दीपक, कपड़े आदि अलग कक्ष में रखना चाहिए। कोई दर्शन करने आए, मात्र शांतिनाथ भगवान दिखें, और-कुछ नहीं। आपने कभी एक डॉक्टर का कक्ष देखा? मक्खी भिनकती हैं क्या? चिन्मय चैतन्य भगवानात्मा को पाने जिस वैद्य के पास आए हो तो वहाँ परम स्वच्छता होनी चाहिए। बहिरंग अवस्था से अंतरंग अवस्था पर प्रभाव पड़ता है। न पड़ता तो यह क्यों लिखा गया कि

'द्रव्यस्य शुद्धि मधिगम्य यथानुरूपं'

द्रव्यशुद्धि तो भावशुद्धि का साधन है। द्रव्य की शुद्धि भी होनी चाहिए। जब-तक द्रव्य शुद्धि नहीं तो भावशुद्धि कैसी? भेष का, मुद्रा का प्रभाव पड़ता है। वकील, कोर्ट में काले कपड़े पहनकर पहुँचता है। जैसे वकालत का भेष है, वैसे-ही कर्मों से वकालत का भेष यह अरिहंत मुद्रा है। जो जीव यों कहे कि भावलिंग है, द्रव्यलिंग नहीं। द्रव्यलिंग के लिए भाव लिंग होना चाहिए, कि भावलिंग के लिए द्रव्यलिंग अनिवार्य है? फल के लिए फूल आना आवश्यक है, कि फूल के लिए फल की आवश्यकता है? तत्त्व समझिए। फल आ चुका, तो फूल की आवश्यकता क्या? भावलिंग आ चुका, तो द्रव्यलिंग की आवश्यकता क्या? द्रव्यलिंग के बिना भावलिंग होता है- यह जैन आम्नाय का सूत्र नहीं, यह श्वेतपट्ट आम्नाय से आया है।

स्वाध्याय करो, 'पुरुषार्थ देशना' पढ़ो, क्यों? जितने द्रव्यलिंग-भावलिंग संबंधी प्रकरण हैं, आचार्य अमृतचंद्र महाराज ने सबका वर्णन स्पष्ट किया है। अब तक आप सेवा के श्रावक थे, फिर कभी साधु का मन चलायमान हो जाए तो भावों की वैय्यावृत्ति कर सकते हो न? एक बालक गड्ढे में गिर जाए तो तू देखना रहेगा न? नहीं, मैं गिरते बालक को अपनी शक्ति सहित उठाऊँगा। कोई धर्मात्मा हमारे बीच का है, धर्ममार्ग से च्युत हो रहा है, तो उठायेंगे। हाथ-पैर की वैय्यावृत्ति लाखों ने की। अब चारित्र की, भावों की वैय्यावृत्ति मुझे करना है। भावना और भावलिंग, इन दो के बीच में बैठा है द्रव्य लिंग। ज्ञानी! वैराग्य साधु को होता है, कि श्रावक को होता है? वैराग्य रागी को होता है, कि विरागी को? रागी को ही तो वैराग्य होगा। जब रागी वैराग्य भावना को प्राप्त होता है तो साधु बनने के परिणाम करता है।

साधु बनने के परिणाम, इसका नाम भावना है। जो भाव पूर्व में कभी न हुए, उन भावों का होना

है भावना। ऐसे निर्मल भावों का होना है भावना। सोलह-कारण भावना। पहले हुई होती तो अलग से 16 कारण के नाम क्यों होते? तीर्थंकरप्रकृति में कारण हैं। 12 भावनाएँ, ये माँ हैं वैराग्य की जननी हैं। जो परिणाम भव नाश के हों उसका नाम है भावना। इसके अलावा अन्य कोई भाव न बने उसका नाम भावना। भावना होती है तो तत्पदार्थ की प्राप्ति का पुरुषार्थ करता है। वह पुरुषार्थ द्रव्यलिंग है। उसका नाम चारित्र है। द्रव्यलिंगी धारण करके शुद्धि-विशुद्धि पूर्वक जो निरतिचार पालन करता है उसका नाम भावलिंग है।

आला लगाने से डॉक्टर होते हैं, कि उसे हटाने से डॉक्टर की पहचान होती है? आला लटकाने से डॉक्टर वास्तव में होगा ही क्या? लड़का लटकायेगा तो डॉक्टर हो गया क्या? मुनि महाराज सामायिक कर रहे थे, पागल आया, पिच्छि-कमण्डल उठा लिया, तो वह मुनि बन गया क्या? जैसे कोई लड़का गले में आला डाल लेने से डॉक्टर नहीं, डॉक्टरी पढ़नी पढ़ेगी, द्रव्य निक्षेप का डॉक्टर है। डॉक्टरी पढ़ रहा था तब भी। जब डॉक्टर बन जायेगा, तो रोगी को दूर से देखकर जान जायेगा कि रोगी है। जैन आयुर्वेद ग्रंथ 'कल्याणकारक' में आचार्यों ने कहा है यदि कोई रोगी का संबंधी रोते-रोते आया है 'पिताजी बीमार हैं' तो हाथ-पैर तोड़ने मत जाना। निमित्त-शास्त्र कहता है कि रोते-रोते आया है, तुम जाने लगे, रास्ते में सूखी लकड़ी-कण्डा मिले, तो शांति से लौट आना। जैसे रिष्ट-अरिष्ट हैं, तो आयुर्वेद शास्त्र में रिष्ट का वर्णन है। सच्चा वैद्य नियम से आधा ज्योतिषी होगा, अन्यथा वैद्य नहीं है। क्यों? हाथ से पैसे खींचेगा। यह नहीं कहेगा कि निर्धन का परिवार है, सदस्य जाने वाला है, क्यों पैसे बर्बाद कर रहे हो? सच्चा वैद्य वही जो अनुभव से उपचार करता है। इसी प्रकार पिच्छि-कमण्डल द्रव्य उपकरण बाह्य मुद्रा है। पाँच पापों का भावपूर्वक त्याग यह द्रव्य आचरण है। करणानुयोग कहेगा- अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया लोभ का उदयाभावी क्षय, देशघाति प्रकृति संज्वलन का उदय होने पर जो परिणाम जीव के हैं, उसका नाम भाव मुनि है। ऐसा तभी होगा जब मुनि होंगे। अन्यथा, अन्यथानुपपत्ति/मुनिमुद्रा में ही भावलिंग, तथानुपपत्ति। यह लिंग मस्ती का नहीं।

आगम-अध्ययन करना है तो अध्यापक, वकील, इंजीनियर से अधिक मेहनत करनी पड़ेगी, तब कहीं आगम को समझ पाओगे। तू तो 5-10 साल में इंजीनियर बन जायेगा। मुनि को स्नातक की डिग्री बड़ी मुश्किल से मिलती है। तेरहवें गुणस्थान में बढ़िया कॉलेज मिला है, मैंने एडमिशन ले लिया है। इस काल में डिग्री नहीं मिलेगी। भय नहीं है। एक बार जिनलिंग को प्राप्त कर लिया है तो भरोसा है कि नियम से स्नातक बनेगा। 13वाँ गुणस्थान स्नातक का, 14वाँ गुणस्थान स्नातकोत्तर का है। 13वें-14वें गुणस्थानवर्ती मुनि ही स्नातक मुनि होते हैं। बस पुरी पढ़ाई हो गई। सब हो गया।

ध्यान रखो, बिना द्रव्यलिंग के भावलिंग होता नहीं। किस द्रव्यलिंग में भावलिंग पल रहा है, आप

जान सकते नहीं। बाह्य अवस्था देखकर सर्वथा मत कहना, अन्यथा मुनि अवस्था व जैन कथन विवादित हो जायेंगे। पंचमकाल के अंत तक भावलिंगी श्रमण रहेंगे। अंत में वीरांगज नाम के मुनि, सर्वश्री नामकी, आर्यिका, अग्निल और पंगुश्री नामक श्रावक और श्राविका होंगे। यह चुतर्विध संघ होगा। कल्की होगा, आहार में से टेक्स माँगेगा। मुनि पंचमकाल का अंत निकट जान आहार छोड़ देंगे। धर्म का लोप होगा। पंचमकाल समाप्ति को प्राप्त होगा। राजा को देव नष्ट कर देगा। जब-तक घर में सिकी रोटी मिल रही है, तब-तक प्रेम से देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करते रहना। यह 'त्रिलोयपण्णत्ति' में यतिवृषभ स्वामी ने लिखा है। सबसे प्राचीन ग्रंथ है तिलोयपण्णत्ति। ऐसे तपोधन जिननं अपने शरीर को देखने का भी त्याग कर दिया। गात्र-मात्र परिग्रह। 'नियमसार' का नाम सुना है? अलौकिक ग्रंथ है कुंदकुंद स्वामी का। पद्मप्रभमलधारि देव कह रहे हैं टीका में, 'गात्र मात्र परिग्रह है।'

पिच्छि, कमण्डल को उपकरण ही स्वीकारना। इसका राग भी बंध का ही कारण है तो अन्य राग, बंध का कारण कैसे नहीं होगा? जो कहते हैं पिच्छि-कमण्डल के ढेर लग गए, ध्यान रखना, सच्चा भावलिंगी तपोधन अनंत बार मुनि नहीं बनता। 'महाराज! पं. दौलतराम ने 'मुनि व्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायो' लिखा है।' पण्डित जी ने ठीक लिखा, तुम समझ नहीं पा रहे हो। मुनि व्रत धार अनंत बार। यह कहाँ लिखा कि मुनि अनंत बार ग्रैवेयक गया? जो मुनि नहीं बना, मात्र मुनिव्रत धारण कर लिया, वह अनंतबार ग्रीवक जाता है। सच्चा मुनि 32 भव से अधिक नहीं रहता संसार में। मुनि कभी निगोद नहीं जाता। मुनि निगोद जायेगा तो मोक्ष कौन जायेगा? आप लोग जाओगे क्या?

ध्यान दो, शिवपुरी में बाहर के लोग आने से डरते हैं, क्यों? क्षेत्र लुटेरा है। बताओ किस क्षेत्र में किस व्यक्ति को लूटा? किस भूमिप्रदेश ने किसी व्यक्ति को लूटा है, आप बताइये। प्रमाणपत्र हो तो लाओ। भूमि नहीं लूटती, प्रदेश नहीं लूटता, खड़े लुटेरों ने लूटा है। भूमि व्यर्थ में बदनाम हो गई। ऐसे-ही मुनि निगोद नहीं जाते, जो मुनि बनकर मुनि नहीं रह पाते वे निगोद जाते हैं। मुनि निगोद नहीं जाता। मुनि निगोद जायेगा तो शिवालय कौन जायेगा?

बहुत अच्छा हुआ जो 31वीं गाथा आपके बीच हो रही है। जो करना, आप करो। ध्यान रखना, गुरु किसके? मुनिराज पहले बने कि भाई बंधु पहले थे? भैया था तो प्रेम से बोलता था। मुनिराज बनकर आ गया तो पाप करके आ गया क्या जो तू पूछ नहीं रहा? करुणा/दया की दृष्टि से तो निहारो। आश्चर्य है कि गाय को पानी पिलाते हो, मुनि निकलें तो देखना पसंद नहीं। थोड़ा सँभलो, समझो। पहले भाई-बंधु था, मुनि आकाश से नहीं टपके। आपका भइया गड़बड़ करे तो सँभालते हो कि नहीं? यह तो हमारे गुरु की मुद्रा में आए हैं, हम अपने गुरु की मुद्रा को बदनाम नहीं होने देंगे। एकांत में समझायेंगे-महाराज! यह आपकी मुद्रा नहीं। मुद्रा का ध्यान रखो। ऐसा काम नहीं करना अन्यथा अप्रभावना हो जायेगी।

मालूम, 4000 सम्राटों ने दीक्षा ली थी, भगवान ध्यान में थे तब अन्य मुनिवेषधारियों ने अनर्गल प्रवृत्ति प्रारंभ कर दी, तब आकाशवाणी हुई थी–'भेष परिवर्तन कर लीजिए, दिगम्बर भेष में नदी का पानी नहीं पी सकते।' कभी मुनि बन जाये तो तीर्थंकर के भेष में चंदा-चिट्ठा नहीं करना। कपड़े पहन लो। इतने कठिन उपदेश की भी आवश्यकता है। ये श्रावक ही देते हैं और ये ही हँसी उड़ाते हैं। प्रभाव कैसा पड़ता है?

आज सुबह चन्द्रप्रभु जिनालय के दर्शन करने गए थे। एक बालक रास्ते में कहता है महाराज! आपके पास कुछ सामग्री रख जायें? क्या सामग्री? बाहर से भक्त आते हैं तो भेंट देने के लिए पेन, डायरी आदि। मेरा मौन था, मुझे उत्तर नहीं देना पड़ा, दूसरा बालक कहता है–अपने महाराज ऐसे नहीं हैं, कुछ नहीं लाने का। अब कल्पना करो, बच्चों में इस प्रकार की बातें प्रारंभ हो गई हैं। सत्यता यह है कि सत्यार्थ मार्ग सबको सुहावना लगता है। अभूतार्थ दृष्टि का निर्वाह तो करना पड़ता है, पर निर्वाह करने के भाव नहीं होते। ये तपोधन, धरती के देवता हमारे गुरु हैं। आपके गुरु की बाहर कोई चर्चा प्रशंसा करे, आप अपरिचित बने बैठे थे यात्रा में वह कहे साधु तो मात्र यही भेष है, तो तुम्हारा मन गद्गद् हो कि गुरु की चर्चा सर्वत्र हो रही है। जैन श्रावक की पहचान प्रशंसा भी होती है।

विदेशों में अच्छे कपड़े, टाई से पहचान नहीं होगी। छन्ना लगाकर पानी पी रहे होगे तो लोग कहेंगे जैन है। पहचान बनाना है। इतने कपड़े लेकर जाते हो, एक छन्ना नहीं ले जा सकते क्या? नियम ले लिया, तो रूमाल ले लिया और जहर पी लिया। उसी से पसीना पोंछ लिया, नाक पोंछ लिया। छन्ना तो छन्ना। है। बच्चे के कपड़े फट गए तो छन्ना बना लिया। घर के काम में भी उपयोग मत करना। कारण समझो। दुनिया का पसीना छप चुका हो, धो भी लो तो भी गंदा है। स्वच्छ होना चाहिए। प्रमाद आपका है, दोष पर को लगाते हो। चंदोवा नहीं लगाना। क्यों? काला हो जाता है तो बेकार लगते हैं। चंदोवा चेतन है क्या? तुम्हें धोना चाहिए। भौतिकता छा गई है, संयम नहीं छाया है। कोई भी साधु आए, आपको चंदोवा बाँधकर ही भोजन कराना है। सामान्य श्रावक को चौक पूरकर भोजन कराते हो। 7 स्थानों पर चंदोवा होने का विधान है। ओखली पर, चूल्हे पर, शयनकक्ष में, स्नानागार में, मंदिर में, पीसने के स्थान पर, पानी के स्थान पर। विद्वानों को सिखाना चाहिये। याद रहे आगम कथन है, यह रूढ़ि नहीं। यदि ईंट-चूने के मकान हैं, तब भी। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि पक्के मकान हैं इसलिये सब चलता है। याद करो, माँ प्रतिदिन का भोजन बनाती तो चौके में जाने को नहीं मिलता था। आपकी आने वाली पीढ़ी कभी नहीं कह नहीं पायेगी कि हमारी माँ हमें चौके में नहीं जाने देती थी। आप तो चप्पल पहन कर जाते हो। चौके में सोले में चप्पल नहीं पहनी जाती। यह जैनदर्शन की परम्परा नहीं है। भौतिक युग, जीवन में, बहुत समय तक नहीं चलता। बाद में वही पुरानी परम्परा चलती है। भजन करते-करते भोजन

बनाते थे तो भोजन करने वाले के परिणाम अच्छे होते थे। आज टी.वी. के सामने भोजन पकाना, खाना, तो परिणाम अच्छे कैसे होंगे? टी.वी. देखते-देखते भोजन नहीं करने का यह नियम ले लेना। अशुभ चित्र भोजन करते समय देखोगे तो जब-तक भोजन पेट में रहेगा, तब-तक वैसे ही भाव रहेंगे। व्यवस्था भंग मत करना, नियम अपना है, दूसरे को परेशान मत करना। टी.वी. चलती हो, परीक्षा की घड़ियाँ हैं, वहीं बैठकर भोजन करना, आँख मत उठाकर देखना। यथार्थ मानकर चलना। संयम अपना है।

चीटियों को देखा? जब चलती है, तो पंक्तिबद्ध कतार में चलती हैं। कतार में चलें, तो कोई दौड़कर आ रहा होगा तो रुक जायेगा। रक्षा हो गई। अलग से चलेगा तो गया। चीटियों से सीखना। चलो तो अपनी लाइन में, समाज की लाइन में चलो। बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराष्ट्र में बारामति में वाचना चल रही थी। ऐसे-ही व्यक्ति सी.डी. बनाकर ले जाते थे, पूरे शहर में दिखाते थे। पान के ठेले पर कुछ अजैन बंधु खड़े थे, हम लोग सुबह जिनालय के दर्शन करने गए। वे बोले-भगवानात्मा आ गए। बस, ज्ञानी! ऐसे संस्कार आ जायें। चेतन, नाम ही न देखे। चेतन भगवान देखे। घर की चर्चायें बदल जायेंगी। बच्चे भूल जायें नानी की कहानी। कहें माँ! कहो समयसार की कथा।

अब निश्चय की बात करते हैं। जिसमें ज्ञेय-ज्ञायक का संकर दोष नहीं है उसे छोड़ते हुए। परज्ञेयों में ज्ञायक जाए तो संकर दोष है। निज ज्ञेय में, निज ज्ञायक, निज को जाने। पर संग्रहित होकर अभी तक तो संकर/मिश्र स्थिति थी। दो गोरे, दो साँवले, कर्म सापेक्षता को लिए थी। योगी की वंदना, परमात्मा की वंदना, कैसे करें? अब नहीं कह रहे दिगम्बर तपोधन को नमोस्तु। लिंग देहाश्रित है, भेष-देहाश्रित है। भगवान भावाश्रित हैं। इसलिए देहाश्रित को छोड़ दिया।

जो इंदिये जिणित्ता, णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खुल जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।। 31 स.सा.।।

उन साधु को नमस्कार हो। नमस्कार तो कर लिया करो तुरंत।

'महासाहू-महासाह-महासाह दिगम्बरा'

ऐसी बात सीख लो। लोक में कोई महा साधु हैं तो दिगम्बर हैं।

'जिणो देवो-जिणो जिणो। देव हैं तो जिनेन्द्रदेव हैं।

'दया धम्मो-दया धम्मो, दया धम्मो, दया सदा।' धर्म है तो दया है।

देव जिन हैं, साधु हैं, दिगम्बर हैं, दया है, धर्म है। तीनों दिख जायें तो सिर टेक लेना। यदि ये तीन न हों तो सिर मत झुकाना। बड़ा कठोर शासन है। यही कारण है कि मानने वाले मुट्ठी भर बचे

हैं। यहाँ मृदुलता को कोई स्थान नहीं है। अन्यथा यहाँ भीड़ लगी मिलती। जैन साधु कहीं-कहीं ही मिलते हैं। यह मत सोचना कि कम हैं। हीरे-मोती की दुकानें कम ही होती हैं। ज्ञानी! भाजीमंडी जैसी भीड़ सराफे में नहीं होती। समयसार वही समझेगा जो समयसार का पात्र होगा। लोगों के आने का विषय नहीं, आत्मलोक में अवलोकन करने वालों का विषय है। तीर्थंकर महावीर से मिल लेना। वक्ता दो थे, श्रोता एक था। पर्याय में दश भव पहले सिंह थे, मृग को पंजा मार दिया। वक्ता दो थे, श्रोता एक। प्रवचन हुए। अद्भूत प्रवचन। एक क्षण में शेर श्रावक बन गया। हे भावी भगवान्! अहिंसा का नांद करने वाले भावी भगवान! तुम्हें यह शोभा नहीं देता। इतना कहना था कि आँसू प्रारंभ हो गए, हाथ जुड़ गए। स्वरूप संबोधन हो गया।

उपदेश के लिए माइक नहीं, भीड़ नहीं चाहिए। एक भटकता मिल जाए, दे देना उपदेश, हो गया तत्त्व-उपदेश। यह नहीं कि कोई मर रहा है तो कहे कि पहले माइक लाओ। वक्ता में करुणा होनी चाहिए। डॉक्टर वही वक्ता हो सकता है। डॉक्टर है कि यमराज? लाते जाओ, मरते जाओ। मरीज आया-'सीरियस है। मर जायेगा।' डॉक्टर कुशल वक्ता होते हैं। वक्ता में करुणादृष्टि होनी चाहिए। वक्तव्य दिखाने की दृष्टि नहीं होनी चाहिए। कुंदकुंद स्वामी ने संस्कृत क्यों नहीं लिखी? प्रकृति की भाषा, जनमानस की भाषा में उपदेश दिया। जनमानस समझ ले। विद्वत्ता दिखलाने की भावना नहीं थी। झट से सुनो। झट अर्थात् जल्दी। तुम प्राकृत भी जानते हो। जानमानस की भाषा प्राकृत न होती तो झट से कैसे समझ गए। फासू पानी शुद्ध प्राकृत भाषा का शब्द है। भाषा का विनाश नहीं हुआ। भाषा कहीं-न-कहीं विराजमान है। इसलिए अल्पश्रोता भी हों, तब भी तत्त्व का उपदेश देना। क्या पता कौन भव्य सुधर गए। इसलिए कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं-

जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है। जो ज्ञान स्वभाव में लीन हैं। जो ज्ञानस्वभावी आत्मा को जानते हैं, वे निश्चय से जितेन्द्रिय हैं। वे ही निश्चय से साधु हैं। स्वभाव में लीन हैं। आपको स्वभाव दिखाई नहीं देता, विभाव भी तो दिखाई नहीं देता। नगर में सुबह 9 बजे कोई साधु आयें, कहें, पहले स्वभाव देखना है। नहीं, पहले आहार करवाना। आहार करवाते-करवाते ही स्वभाव का ज्ञान हो जायेगा। चेलनी ने कितना बड़ा काम किया। आसन लगाया। पुष्पडाल और वारिषेण को बैठाया। वारिषेण लकड़ी के सिंहासन पर बैठे। 'मेरा बेटा च्युत नहीं हुआ। कोई कारण होना चाहिए।' त्यागी की चर्या कराना। स्वभाव तो पता चल जाता है। चिंतन करना, यथार्थ में सत्यार्थ में मार्ग कैसा होना चाहिए? मेरा स्वभाव ऐसा कब होगा?

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। निश्चय स्तुति ।।

उत्थानिका - अब जिस तरह तीर्थंकर केवली की निश्चय स्तुति हो सकती है उसकी रीति से कहते हैं उसमें भी पहले ज्ञेय ज्ञायक के संकर दोष का परिहार करके स्तुति करते हैं।

गाथा - **जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं आदं।**
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहु ।।31।।

अन्वयार्थ - **(यः)** जो **(इन्द्रियाणि)** इंद्रियों को **(जित्वा)** जीतकर **(ज्ञानस्वभावाधिकम्)** ज्ञान स्वभाव द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक **(आत्मानम्)** आत्मा को **(जानाति)** जानता है **(तं खलु)** उसको नियम से **(ये निश्चिताः साधवः)** जो निश्चयनय में स्थित साधु लोक है। **(ते)** वे **(जितेन्द्रियम्)** जितेन्द्रिय ऐसा **(भणन्ति)** कहते हैं।

संस्कृत छाया - **यः इन्द्रियाणि जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानं।**
तं खलु जितेन्द्रियं ते भणन्ति ये निश्चिताः साधवः ।।

समय देशना

भारतीय तत्त्वमनीषा में अध्यात्म सर्वोपरीय है। जहाँ सारे जगत ने विचारकों को जन्म दिया, भारतभूमि ने शुष्क विचारों को जन्म न देकर आचार को जन्म दिया। यह विचारकों की उपासना नहीं, आचरण की उपासना है।

जैन वाङ्मय में समयसार ग्रंथ अलौकिक ग्रंथ है। शरीर और संसार के बारे में ज्ञान अनंत बार प्राप्त किया है, पर जो ज्ञान प्राप्त कर रहा है, उस ज्ञाता का ज्ञान कराने वाला समयसार है। ऐसी कोई वस्तु अवश्य होनी चाहिए जो शरीर के अंदर है। मृत्यु के बाद शरीर के अंदर जड़त्व की संज्ञा प्राप्त हो रही है। उससे पहले शरीर में क्या था, जिसे डॉक्टर पकड़ नहीं पा रहे हैं? वह विज्ञान-ज्ञान-घन जो है, उसी का नाम आत्मा है। जितनी आवाज आ रही थीं शिवपुरी.......... अशोकनगर .... भोपाल.........सागर...........सत्य यह है कि पानी कुए से आया है, बर्तन भिन्न-भिन्न हैं। यदि बर्तन को हटा दिया जाए तो सभी पानी कितने हैं? यह रूपों के भेद हैं। नगरों, पंथों, संतों, जातियों के भेद

हैं। आत्मा अखण्ड, अभेद, एक है। जिस दिन अभेद को समझलेंगे, सारा विश्व एक हो जायेगा। आज अस्त्र-शस्त्र को हटाने की आवश्यकता है। सारे विश्व के मस्तक को स्वच्छ करने की आवश्यकता है। शरीर के डॉक्टर तन को ही स्वच्छ कर पायेंगे। मन स्वस्थ हो जाए तो आतंक समाप्त हो जाए। हृदय परिवर्तन की आवश्यकता है। आश्चर्य देखो। 18-19 वर्ष के नवयुवकों के अंतस् में भावना भर दी गई है कि मर जाना मिट जाना। जब मिट जाना मर जाना सिखा सकते हैं तो मनीषा यह क्यों भूल गईं कि मरने-मिटने की सीख दी जा सकती है, तो संत, अर्हंत बनने की शिक्षा भी दी जा सकती है। प्रत्येक विद्यालय में आवश्यकता है। शांति से सम्पूर्ण साम्प्रदायिकता को छोड़ दें। पंथ/जाति में भेद होते हैं, परन्तु जीव में भेद नहीं होता।आत्मा को दृष्टि में रखकर भावना रखी जाए-'सत्वेषु मैत्रिम्' प्राणी-मात्र के प्रति मैत्री। चैतन्य अखण्ड आत्मा है।

कह रहे हैं कि समयसार गहन ग्रंथ है जबकि समयसार जैसा सहज ग्रंथ नहीं है। सहज ग्रंथ को सामान्य लोग ही पढ़ते हैं। इस ग्रंथ को एक किसान भी समझता है। क्या किसान को मालूम नहीं है कि बीज में वृक्ष है? यदि किसान को मालूम नहीं, तो वह पागल नहीं कि आषाढ़ से चैत्र तक मेहनत करता है। जैसे किसान को बीज में वृक्ष आँखों से दिखाई नहीं देता, पर वृक्ष है, इसी का नाम द्रव्यदृष्टि है। निर्ग्रन्थ इन ग्रंथों में भगवानात्मा को देखता है। एक किसान को क्या कभी खेत की मेढ़ पर रोटी खाते देखा है? आत्मा की गहराई में जायें, इससे पहले कुछ समझ लो। तूने देखा? नहीं देखा। मैंने देखा है। एक किसान मेंढ़ पर रोटी खाता है। यह सबको लगता है कि किसान रोटी खा रहा है। दृष्टि गंभीर है। खेत में हल रखा है, मुख में ग्रास है। एक आँख हल पर है। आने वाले देखकर चले जाते हैं कि हल-बैल की रखवाली कर रहा है। पर तुझे मालूम नहीं कि किसान के नेत्रों में गोदाम भरा दिख रहा है। मुख में ग्रास रखते हुए भी लहलहाती फसल देख रहा है। जगत को मुनि बैठे दिखते हों, योगी को भगवान बनते दिखाई देते हैं। हल ही चलाते रहें। हल में हल ही न हो तो हल क्यों? समझ रहे हो? एक किसान इतना ज्ञानी है कि हल तब चलाता है, जब हल में हल पाता है। आप इसलिए आए हो, कि हल में हल होगा। हल तो होना चाहिए। सत्य यह है कि भवितव्यता कोई टालता नहीं। काललब्धि जहाँ होगी। अनुभव करो, परम सिद्धत्व दशा की अनुभूति क्या होगी? जब इस भवन में प्रवेश करते हो तो शरीर के भेद दिखाई देते हैं, पर स्वभाव कर भेद दिखाई नहीं देता। टोड़ी-फतेहपुर में 8 घर हैं जैनों के, उपदेश हजारों लोग सुनते थे। पर-पर में सूत्र लिखे हैं। धर्म, सम्प्रदाय का नहीं, धर्म आत्मा का स्वभाव है। जिसके हृदय में जागृत, तो धर्म लाने की आवश्यकता नहीं। भेद नहीं, एंवभूत नय की आवश्यकता है। द्वादशांग है, जिनवाणी है। यह धर्म तराजू वालों का नहीं है। क्षत्रियों से उद्घाटित हुआ है। ब्राह्मणों ने इसे पोषित किया है, तुम्हें मिल गया। तीर्थंकर क्षत्रिय थे, गौतम ब्राह्मण थे। जिस संस्कृति को वेदों में

क्षत्रिय संस्कृति कहा है।

जैन संस्कृति तो क्षत्रिय संस्कृति है। जैन मुनियों को वेदों में वातरसायन कहा है। पानी में सड़ांध हो सकती है, वायु में सड़ांध नहीं होती। निर्ग्रंथ योगी वही होता है जो गमन करता है, बहता रहता है। स्थायित्व जहाँ प्रारंभ हो जायेगा तो सड़ांध प्रारंभ हो जायेगी। दो दिन से समयसार में निश्चय स्तुति चल रही है। वीतराग मुनि की सभा में जायें, तो मुनि बने या न बने, इतना सीख लें, पीठ पर इत्र की बोतलें लेकर बेचने वाला निकलता है। खरीद वही पाते हैं जिनके पास टका है। खरीद पाओ या न खरीद पाओ लेकिन पता चल जाता है कि सेंट की गंध कैसी है। गंधी की पेटी की सुगंध से पता चल जाता है कि पेटी में क्या है। साधु के चरणों में बैठने से असाधु के भाव भी साधुरूप हो जायें तो वह साधु है। आज ध्वनित होता है कि भगवान महावीर की वाणी आज भी जीवित है। यथार्थ मानकर चलना, शांति का जब भी अनुभव होगा, तत्त्व के चिंतन से ही होगा। भटक/भ्रमण कहीं भी कर ले, जब भी शांति का प्रारंभ होगा तो स्वयं के निर्णय से होगा। पर के निर्णय से कभी शांति नहीं मिलती। जितने माता-पिता बैठे हैं, कभी बेटे की शादी मत करा देना। मुझे मालूम है, आपने नहीं करवाई। आप शादी करवाओगे, तो यदि फल लड़ेंगे तो कहेंगे कि पिता ने जबरदस्ती फँसा दिया। ज्ञानी! पिता निमित्त बना, पर निर्णय किसका था? तुम कह नहीं सकते कि जबरदस्ती किया। मन स्वयं का था। पर, पद दृष्टि डाल सकते हो, स्वयं के निर्णय पर किसे दोष दोगे। परेशानी खरीदी, स्वयं का निर्णय था। स्वामी नहीं, सच्चा सेवक बन चुका है। उन माताओं का परम सौभाग्य है जिनको विधायकों जैसे नौकर मिले हों। पूरे देश में घूमते, चुनाव लड़ा, मेहनत से विधायक बना। देवी से पूछना पति घर नहीं पहुँच पाया, तू विधायक की पत्नि बन चुकी थी। यह संबंधकारक है। जब संबंधकारक से, दूसरे ने मेहनत की, श्रेय किसी और को मिला। संबंधकारक हट जाएगा तो निज का श्रेय निज को ही मिलेगा। इसी का नाम निःश्रेयस होगा। पर-संबंध में अभ्युदय सुख हो सकता है, निःश्रेयस सुख नहीं होता। संबंध में सब अपने दिखाई देते हैं। तुम सबके साथ वात्सल्य से रह ही सकोगे, पर जा नहीं सकोगे। जिस दिन जाओगे, अकेले ही जाओगे। परिवार, कुटुंब, देश, राष्ट्र के साथ रहो, पर समयसार कह रहा है कि अपने साथ रहो। नारायण श्रीकृष्ण ने समरभूमि में अर्जुन को उपदेश दिया-

हे पार्थ! निहारो सबको ''सत्य यही है। तू जो विचार कर रहा है, विचार शून्यता का है, कि जो अविचारी है वो ही अविकारी है? जो-जो विचार कर रहे हैं, वे सब विकारी हैं। जहाँ विचार का विकार समाप्त, उसका नाम है तेरहवाँ गुणस्थान। 13वें गुणस्थान में कोई विचार/मन नहीं।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी लिख रहे हैं-

जो निश्चय से निर्बंध पर्याय के वश हैं,वही भूतार्थ से आत्मा का स्वरूप है (एक छोटा सा शब्द इतना विशाल है)

'या खलु निर्बन्ध।'

सब बातें छोड़ दो

एवंभूत नय पर आ जाओ। अब नहीं कहूँगा कि सरदारजी हैं या विधायक हैं। सब बर्तन हैं। बर्तन समाप्त हो जायें तो पानी एक है। कब-तक बर्तन रखे रहोंगे? एक कुए से एक जैन ने पानी निकाला, एक क्षत्रिय ने पानी निकाला, ब्राह्मण ने पानी निकाला। तीनों कहते हैं कि आपको मेरे घर का पानी पीना है। पर व्यक्ति विद्वान था, कहता है, तुम सब पानी लेकर आओ। वहीं बैठकर पानी पिऊँगा जहाँ से निकाला था। वहाँ जाकर एक बड़ा बर्तन रख दिया। सारा पानी बर्तन में रख दो। पानी किसका था? बर्तनों ने ऐसी वर्तना कर दी कि भेद खड़े हो गए। पानी एक था। यहाँ युवा भी हैं, वृद्ध भी, माता, बहनें सब हैं। सत्य बताना, इस समय तू कौन है? बेटा, पिता या श्रोता? बस, साधुचरण एक ऐसा स्थान है जहाँ पिता-पुत्र, भाई-बहिन, सारे रिश्ते समाप्त। मात्र भक्त रह जाता है। वही भगवान बनता है। भूल जाना मैं क्या हूँ। जब-तक मैं हूँ, तब-तक कुछ नहीं हूँ। 'कुछ' निकल जायेगा, तो 'सब कुछ' बन जायेगा।

ऐसे रहस्यमयी सिद्धांत इस ग्रंथ में एक-एक पंक्ति में हैं। जब बैठकर सुनते हो तो इतने मग्न हो जाते हो, ग्रंथकर्ता कितना निमग्न होगा? कुंदकुंद स्वामी से मिलो, फिर महावीर से मिल लेना, प्रभु! आपका कैवल्य कैसा होगा? श्रोताओं! सब संज्ञायें समाप्त हो गयीं।

आपका प्रश्न है, एक बालक का नाम रख दिया- श्याम। जब जन्म हुआ था तो नाम क्या था? इतना समझ में आ गया तो यहाँ आना सार्थक हो गया। माँ प्रसूति कर रही थी तब बेटे का नाम क्या था? ध्रुव सत्य बोलने वाली माँ होगी, तो आपको भी नाम मालूम था क्या? माँ! सत्य बताना, जब प्रसूति कर रही थी, तो पीड़ा देख रही थी कि बेटे की मुस्कान देख रही थी? जननी प्रसूतिकाल में सोच रही थी कि कब यह बाहर निकल जाए। तब कोई राग नहीं था। पिता भी नहीं कह रहा था कि कोई मेरा बेटा है। जन्म लेते ही कहता है कि कोई अच्छा बालक जन्मा है, जीव आ गया। जन्म में तो सत्य था। जीव उस समय चाहे कोई तेरा नाम देकर गाली दे रहा था, चाहे प्रशंसा कर रहा था। उस बेटे को शब्द सुनाई दे रहे थे, तब भी कोई असर नहीं था। तेरा सत्य रूप क्या है? यह तेरा नाम, संज्ञा तेरा रूप है कि संज्ञान तेरा रूप है? माता-पिता ने संज्ञा आप पर थोप दीं, इतना मस्त हो गया कि कोई गाली दे तो आँखें लाल करता है। तू तो जो है, सो है। अब कैसे कहोगे कि समयसार समझ नहीं आता? हर नगर में गुरुमुख

से समयसार का अध्ययन होना चाहिए। पता होना चाहिए कि मेरा स्वरूप क्या है? संज्ञान करो, संज्ञायें तेरी नहीं हैं। संज्ञा माता-पिता ने थोप दी तो अब उनमें मस्त हो गया। उनकी संज्ञा के पीछे रोना पड़ रहा है। यह क्यों हो रहा है?

इस अज्ञान-अविद्या को प्राप्त जीव बंधपर्याय को प्राप्त हुआ है। एक क्षण को विचार करो। पर घर में जाकर घड़ी देखते हो कि कब अपने घर जाऊँ। पर घर में घड़ी देखो, लेकिन निज घर में जाऊँ तो देखना कि यही रहूँ। यथार्थ मानना, जब से शांतिनाथ को देखा, मन हटता नहीं है। विचार करना, प्रभु! जगत में कोटि-कोटि के द्रव्यों से तो कोटि बार मिले, हृदय को शांति मिल जाए तो कोटि-कोटि द्रव्य से अधिक महत्वपूर्ण है। जैसी आस्था आज दिखाई दे रही है गुरुचरणों में, सदा बनाकर रखना। श्रद्धा/आस्था होती है तो सफलता अवश्य मिलती है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी एक अलौकिक आत्मवैभव को प्रकट करानेवाले ग्रंथराज समयसार की 31वीं गाथा में परम निश्चय स्थिति का कथन करते हुए, जितेन्द्रिय योगी की दशा का व्याख्यान कर रहे हैं। जिन्होंने इन्द्रियों के विषयों को जीत लिया है, अतीन्द्रिय ज्ञायकस्वभाव के रसिक हैं, वे ही योगीश्वर जितेन्द्रिय हैं। ज्ञान की जो धारा है, उस ज्ञानधारा में अखण्डता का जो विखण्डन हो रहा है, उस अखण्ड धारा से जो खण्ड-खण्ड हो रहा है, खण्ड-खण्ड का जो वेदन कर रहा है, वह परभावों का संकरपना है। अखण्ड ज्ञानधारा में भिन्न ज्ञेयों का अभाव हो जाना। निज ज्ञेय को ही निज में डाले। निज प्रमाता, निज प्रमाण से निज प्रमेय को निज में जाने, ऐसी निज ज्ञान की अनुभूति है। यही शुद्ध जितेन्द्रिय योगी का स्वरूप है। जैसे तपा हुआ तवा पानी की पड़ी हुई बंद को चारों ओर से शीघ्र ही खींच लेता है। समरसी योग में बैठा योगी सम्पूर्ण स्वभाव को परभावों से निज को खींच लेता है। वही निश्चय शुद्धात्मा है। परंतु

य: खलु निरवधिबंधपर्यायवशेन..........।। 31 टीका।।

सावधानी से एक-एक शब्द पर ध्यान दो। 31वीं गाथा की टीका सूक्ष्म होते हुए भी इतनी विशाल है, घनत्व के रूप में व्याख्या है। शब्दब्रह्म को संजोकर रखा है।

इस जीव ने आज तक क्या किया? हर विषय की सीमा की, लेकिन निज विकारी भावों की कोई सीमा नहीं की। भाई-भाई झगड़े, तो सीमा बना ली, अवधि बना ली। भाई ने आँगन में जाने की सीमा बना ली। शरीर से नहीं जा रहा, पर भाई की सम्पत्ति पर दृष्टि जा रही है। उसकी सीमा बांधो। पाँच इन्द्रिय के अव्रत भाव पर दृष्टि जा रही, उसकी सीमा बांधे। पड़ोसी की सम्पत्ति पर दृष्टि जा रही, इसकी सीमा बांधे।

अनादि बंध पर्याय वशेन.........।

अनादि बंध की पर्याय के वश से। कैसी पर्याय? नरवधि (जिसकी सीमा ही नहीं है)। समयसार ग्रंथ कह रहा है कि मेरे सुनने से कल्याण नहीं, जब-तक अपनी असीम इच्छाओं को सीमित नहीं करेगा। मुझे (समयसार) सुनकर मेरे स्वरूप को जान सकता है लेकिन मेरे स्वरूप को जानकर अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता। जब-तक भोगों की सीमा नहीं, मुझे सुनना तेरे कर्ण का विषय है। मैं तो

शब्दब्रह्म से ऊपर हूँ। तेरा निज ज्ञान, निज ज्ञेय में मात्र अखण्ड रहेगा तो स्वरूप में जायेगा। विषयों में ज्ञान को खण्ड मत होने दीजिए। अभी केवलज्ञान नहीं, मति-श्रुत ज्ञान की बात कर रहा हूँ। मति-श्रुत ज्ञान अखण्ड ज्ञान। मैं शब्दों में बता नहीं पा रहा हूँ। मति-श्रुत ज्ञान, इन पर्यायों को गौण कीजिए। मात्र ज्ञान, अखण्ड ज्ञान। झारी से पानी की अखण्ड धारा श्री जी पर करते समय पानी की धारा टूटती है कि नहीं? शांतिधारा अखण्ड होती है। जरा भी टूटे तो खण्ड हो गया। जिस जीव ने निज ज्ञान को चक्षु इन्द्रिय, कर्ण इन्द्रिय आदि में लगाया, खण्ड हो गया। देह के साधनों में लगाया, विषयों में लगाया, मनोज्ञ-अमनोज्ञ इन्द्रियविषयों में लगाया, तो खण्ड हो गया। जहाँ पर ज्ञेय के लिए स्थान नहीं। निज ज्ञाता निज ज्ञान में निज ज्ञेय को जान रहा है, वही अखण्ड ज्ञान है। यहीं पर शुद्धोपयोग की धारा है। शुद्ध लवण का स्वाद चखा क्या? मैं ही प्रमाता, मैं ही प्रमेय, मैं ही प्रमाण, मैं ही प्रमिति जहाँ होऊँगा, वहीं ज्ञान अखण्ड है। मैं ही ज्ञेय, ज्ञाता, ज्ञप्ति। ज्ञान जहाँ होगा, वह अखण्ड ज्ञान होगा। खींच कर लाना होगा आपको। शास्त्रों के पृष्ठों को पलटना भी खण्ड ज्ञान, अनुयोगों पर दृष्टि डालना भी खण्ड ज्ञान, चिंतवन भी खण्ड ज्ञान। अखण्ड ज्ञान क्या?

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किंचि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवेझाणं ।। 56 वृ.द्र.सं.।।

जहाँ चिंतन मत करो, जाप मत करो। कुछ भी चिंतन नहीं जाप नहीं। स्थिर हो जाओ। आत्मा को आत्मा में स्थिर कर लो। यही परम ध्यान, अखण्ड ध्यान है। आज आप मुनि की अध्यात्मलीनता को सुनो। धन्य हों योगीश्वर। जहाँ मुनिराज की देह व पिच्छि-कमण्डल की बात नहीं। वह तो देहाश्रित प्रवृत्ति है। इस जीव ने अनंत बार देखी। देहाश्रित को तो अनेक बार किया था। आत्माश्रित 48 मिनिट उत्कृष्ट ध्यान लग जाए, अखण्ड में चला जाय, तो कैवल्य ज्योति प्रकट हो जायेगी। यहाँ अभी नय मत बोलना। प्रमाण शब्द भी मत बोलना। अब नय-प्रमाण शब्द का जाल भी बिछाओगे, तो ज्ञान की धारा खण्ड हो जायेगी। नयातीत स्वरूप अखण्ड ध्यान है। अब यहाँ नय के पक्षपात को भी छोड़ दीजिए। हे योगीश्वर! जब गृहस्थ था, तब जनक-जननी के संबंधों को तोड़ा, तो साधुवेष को प्राप्त हो सका। कितना कठिन होता है निर्णय लेना सामने कोठियाँ, भरी-भरी थीं, खाली हो रही हैं। जिस भवन में रहते थे, उस घर की छत पर घूमो। ध्यान से आप देख रहे हैं। घर में हूँ। माता-पिता ढूँढ़ रहे हैं 'बेटा कहाँ गया? दिखता नहीं।' माता-पिता को छोड़कर निकल पड़ा। यहाँ बैठकर वहाँ का चिंतन करो। सूने पड़े होंगे भवन। सजाया था, सूने हो चुके। मेरे आने पर घर के कमरे सूने हो गए। तन पिंजड़े में बैठा आत्मराम, उसमें बैठे मोह-शत्रु से अपने चेतन-भवन को सूना करके देख। सूने में आनंद है। सूने में जो आनंद नहीं, वह सूने में आनंद है।

सूने में स्वयं से चर्चा होती है। स्वयं से चर्चा करनी है तो सूने में चले जाओ। सूने में जाओगे तो शून्य हो जाओगे। यही ज्ञान की अखण्ड धारा है। अद्वैत भाव है। एकमात्र ज्ञाता ही दिखे। ज्ञाता ही जाना पहचाना जाए। ज्ञाता को ही भोगा/वेदा जाए। यथार्थ मानिए, जब ऐसी शून्यता का अनुभव करेगा, तो कहीं यह जीव अपने आत्म-तत्त्व को किंचित् समझ करेगा। बाहर की कोई चर्चा हो नहीं रही, तब भी आनंद आ रहा है। आनंद किसका? सब रसों से हटकर जो नीरस हो जाए, उसे ही नीरसी स्वभाव का मान। नवरस न हों साहित्य के, षट्रस न हों विषयों के। उसी का नाम अखण्डज्ञानधारा है। ये सारे भोजन/साहित्य/विषय/रस रागरूप हैं। स्वानुभूति का रस वीतरागभूत है। आज किसी का नाम लेने का भी समय नहीं दिख रहा, वह भी बाधक दिखाई दे रहा है। सूने मकान में जल रहा दीप तो दीप मात्र है। दीप तो दीप है, ज्योति तो ज्योति है। किसका दीप? कोई देखने वाला नहीं दीप को। विकल्प नहीं, कोई देखे या न देखे। मैं ज्योतिर्मय हूँ। यही वैराग्य है। यह भवन कोई मुझे सुनने-देखने वाला नहीं। दीप! तू तो जाज्वल्यमान है। तू जगत को दिखाई दे रहा है। जगत तेरे से देख रहा है। वह केवलज्ञान है। देखने, दिखाने की भावना है जब-तक, अखण्ड ज्ञान नहीं है। प्रवचन/उपदेश अखण्ड ज्ञानधारा नहीं। तू ही वक्ता होगा, तू ही श्रोता होगा। वचनों का विसर्जन होगा, तब तू सच्चा प्रवचनकार बनेगा। कुछ समझ आए या न आए, यह समझ आ रहा है कि कुछ हो रहा है। यह बाहर की नहीं, भीतर की बात है।

'या खलु......।'

जो निश्चय से निरवधि बंधपर्याय के वश है। आज तक बंध पर्याय की सीमा को नहीं देखा। जो असीम बंध था, उसे सीमित करके देखने का प्रयास भी नहीं किया।

यह न पार्श्वनाथ, न महावीर, न विशुद्धसागर, न विरागसागर का, किसी संज्ञा का व्याख्यान नहीं। संज्ञान का, मात्र ध्रुव आत्मा का व्याख्यान है। ज्ञानी! यह जो व्याख्या है, सीधी अंदर की व्याख्या है। अमृतचन्द्र स्वामी को समझने के लिए बहुत मस्तिष्क चाहिए। जिन्होंने सम्पूर्ण स्व-पर विभाव को निर्मल भेदज्ञान के अभ्यास की कुशलता से पापपिण्ड का खण्डन किया। बिना कुशलता के तुम पाप नहीं कर पाते हो तो बिना कुशलता के पाप का छेद जैसे कर पाओगे? बिना कुशलता पाप नहीं होता। भगवानात्मा के ज्ञान को तूने पाप में कैसे लगाया? कैसे व्यापार करना पड़ता है? छल करता है। अर्थ कमाते समय अर्थ पर कोई दृष्टि नहीं जाती। ठण्डे मस्तिष्क से सुनो। सुबह से दौड़ा, अपने ही पैरों से संध्या को घर पहुँचना है। साधन नहीं है, उन्हीं पैरों से उतना ही वापस चलना है। सूर्य अस्त होने वाला है, पहुँचो कैसे पहुँचते हो। दिन में न पहुँचे तो लुट जाओगे। जिन पैरों से तू दौड़कर चल दिया था, संध्या बेला हो गई, मालूम नहीं कितने प्रदेशों को पैरों से नाप चुका है। वापस जाने के लिये दूसरे पैर नहीं आयेंगे। पीछे पहुँचो। कैसे जाओगे?

जिन कर्मों से चलकर आये थे, कितनी कुशलता से दौड़ रहे थे। समय पर तभी पहुँच पाओगे, अधिक मेहनत करनी पड़ेगी। मन, तन, वचन से दौड़ की। बहुत बंध किया है। कुशलता नहीं है। उसी कुशलता से बंध छोड़ने का कौशल दिखाइये। योगीश्वर! आप धन्य हो। जैसे बंध के काल में धर्म पर ध्यान नहीं देना पड़ता। धर्म पर ध्यान चला जायेगा तो अच्छे से बंध नहीं हो पायेगा। अच्छे से नरक-निगोद नहीं जा पाओगे। निर्बंध होने के लिए पापों पर ध्यान बिल्कुल नहीं देना होगा। जरा भी पापों पर ध्यान दिया तो निर्बंध नहीं हो सकेगा। कहाँ पड़ा है हमारा सूक्ष्म ज्ञान? समयसार को एकांकी कह कर पेटियों में बंद करवा दिया। तात्पर्य यह कि ज्ञान के बीच में एक विषय स्पर्श कर रहा है कि ऐसी वस्तु है जो अंदर जा नहीं रही, पर है। अभी समझ नहीं। जब बड़ हो जायेगा, उदय में आ जायेगी काले समय पर। समय समस्त पर (विभाव) को निर्मल भेद (अभ्यास) से कुशलतापूर्वक प्राप्त होते हुए स्फुटित (प्रकट) हुआ है। सूक्ष्म चित्-स्वभाव है, उसे प्राप्त करते हुए, उसके आलंबन के बल से, जो शरीर है, देह है, ठहरो! क्या किया मैंने? उस शरीर के परिणामों को ओहो! शरीर के परिणाम में इतना मस्त, इतना उन्मत्त हुआ जीव कि अपने ज्ञान में जब शरीर को जाना, अपने ज्ञान से शरीर को जाना, तब इस जीव ने शरीर व आत्मा में भेद ही नहीं समझा। और निहारो। ज्ञानी! दूध पी रहा था, दूध पीते-पीते इसने दूध में और स्वयं में भेद नहीं समझा। दूध के स्वभाव में आत्मस्वाद निहार रहा था। आनंद आ रहा है। यह स्वाद दूध का है कि ज्ञान का? दूध से स्वाद में ज्ञान को ले जा रहा था। उसमें आत्मा का स्वाद नहीं था। उन्मत्त हो गया। आत्म-आनंद आ गया। बेटा! आनंद आ गया? किसका आनंद आया? दूध पिया रसना से, रोमांच हुआ सर्वांग में, आत्म-प्रदेशों में। ज्ञानियों! एक जीव ने स्त्री का स्पर्श एक अंग से किया, सभी अंगों में रोमांच। हे मूढ़! ज्ञानबुद्धि दुर्बुद्धि हो गई। जो अनुभूति ले रहा था दूध पीने में, इसके ज्ञान से पूछिए, कर क्या रहा था? खण्ड था कि अखण्ड था? 'शरीर परिणामानि-' शरीरभूत/शरीर प्रमाण जो द्रव्येन्द्रिय है, उस द्रव्येन्द्रिय और आत्मा के बीच कोई भेद नहीं समझ रहा था। योगीश्वर तो देह व आत्मा में भेद करते हुए, प्रतिसमय खण्ड-खण्ड से अनाकर्षित होते हुए, चित्त की शक्ति के द्वारा उत्पन्न भावेन्द्रिय, द्रव्य-इन्द्रिय को खण्ड-खण्ड कर निहारो।

ये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इस ध्रुवधामी, ज्ञायक, आत्मा का स्वरूप नहीं है। पाँचों इन्द्रियाँ ज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा का स्वरूप नहीं हैं। ऐसा योगी, इन्द्रियों के मध्य में बैठा हुआ भी उनसे शून्य हो, वह द्रव्येन्द्रिय का जितेन्द्रिय है। क्या बात करते हो? मंदिर में बैठा सामायिक कर रहा है, बढ़िया सुन्दर पंखा चल रहा है। दुनिया देखे कि माला चल रही है, स्पर्शन पर ध्यान है, हवा आ रही है। माला फेरते-फेरते भोग क्यों भोग रहा है? तेरे से अच्छा वो कि भोग भोगते-भोगते माला फेरता। कम-से -कम भोगी तो कहलाता। माला फेरता। स्पर्शन इन्द्रिय भोग रहा, योगी कहला रहा है। कहाँ

कूलर, ए.सी.? दूर की बातें हो चुकीं। निहारो वस्तुस्वरूप को। हे योगी! जिनालय में वंदना कर रहा था, कोई श्रावक पुष्प छोड़कर चला गया। तेरी दृष्टि पुष्प सुगंध पर जा रही है। तीर्थंकरके पादमूल में बैठा घ्राण इन्द्रिय का भोग भोग रहा है। बगीचे के पास से निकला, लम्बी श्वास ले ली, अच्छी सुगंध आ रही है। जूही, मालती की सुगंध आ रही है। स्वात्मानुभूति की सुगंध जा चुकी है। बगल में संगीत चल रहा था, माला चल रही थी, कान पहुँच गए। सामायिक चल रही थी या कर्ण इन्द्रिय का विषय चल रहा था? पाटा कठोर है, खुरदुरा है, चुभ रही है मिट्टी। हे योगी! तू जितेन्द्रिय है, स्पर्श इन्द्रिय का भोग हो रहा है। तुम समयसार सुन रहो हो। अब यहाँ किसी योगी को मत लाना। तन के योगी का व्याख्यान नहीं। कल्पना कीजिए, दिगम्बर मुनिचर्याक्या होगी? हृदय में गूँजता है-

धण्णा ते भयवंता।

वे भगवंत धन्य हों।

ऐसे खोटे काल में भी कैसे आप अपने को सँभालते हैं? बिलखते बालक को माँ कैसे सँभालती है। दो बालक एकसाथ हो जायें तो कैसे सँभालते हो?

हे मुनीश्वर! द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय दोनों संतान को तुम सँभालो, निज स्वात्मानुभूति की संतति को दृढ़ करो। यह झूठ नहीं चलता कि भाव विशुद्ध हैं, द्रव्य चलने दो। यह मायाचारी है। भावों की विशुद्धि होगी तो द्रव्यशुद्धि नियम से होगी। इतने वर्षों से ज्ञानियों ने धोखे में रखा। 50 वर्षों से ग्रंथ खोला नहीं, एकांत में यह ग्रंथ चला गया। खण्डन किया, कभी मण्डन नहीं किया। भूल की, पूरी पर्याय गिरा दी। इनके प्रवचन में हजारों की भीड़ है। पण्डित जी आज क्या कह रहे हैं, यह भाव नहीं आए। जिसका खण्डन कर रहे हो, गद्दी पर मण्डन करके बता दो। एक प्रसन्न होकर चला जा रहा था, हम पीछे शक्ति को नष्ट कर रहे थे।

पता नहीं यह वाचना विदिशा से कितने सदियों तक चलेगी। श्रीमंत सेठ आ गए। यह सब शास्त्र, विदिशा की वाचना पढ़ रहे हो। आज ज्ञानी आ गए। महाराज! द्रव्य नष्ट हो जायेगा, द्रव्यदृष्टि का व्याख्यान नष्ट नस होने पाए। ऐसी दृष्टि बनती है तो लगता है कि तत्त्व के प्रति जिज्ञासा/पिपासा है। सोच बदलिए। सोच को शौच कहिए। जगत की शुचितायें नष्ट हो जायेंगी, सोच में शुचिता आ गई तो परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा।

द्रव्येन्द्रिय का कथन समाप्त हुआ, भावेन्द्रिय का कथन प्रारंभ कर रहे हैं। भावेन्द्रियों में ये ग्राही, मैं ग्राहक का संबंध ही मेरे अखण्ड ज्ञान को नष्ट कर रहा था। हे भगवान! अब अपने ज्ञान में आपको भी ग्राही नहीं मानता तो रागी-द्वेषी पाखण्डी को ग्राही कैसे बना लूँ? पंचपरमेष्ठी भी अखण्ड दशा में

ग्राही नहीं, तो पाँच पापदशा ग्राही कैसे होगी? शुद्ध स्वभाव ऐसा ही है। पंचपरमेष्ठी बाद में छोड़ना, पहले पाँच पाप छोड़ना। पंचपरमेष्ठी स्वतः छूट जायेंगे जब तू अपने निज ज्ञायकस्वभाव में चला जायेगा। परमेष्ठी छोड़ बैठा, पाप छोड़ नहीं पाया तो नरक में चला जायेगा।

ग्राही-ग्राहक लक्षण के संबंध की निकटता के कारण, उसके साथ एकरूप होते हुए नहीं हुए भी, क्या मान बैठा? जो ग्राहक हैं, ग्राही है, उसमें भेद नहीं। एकीभूत हो गया। काम क्रोध भाव को परभाव कब कहा? परभाव कहता तो पुष्टि के लिए दुनियाँ की नारियों को, नरों को क्यों देखता? भूल कितनी बड़ी चल रही है। तेरे अशुभ भाव जब तेरे भाव नहीं, तो पर की पर्याय तेरा स्वभाव कैसा? धिक्कार हो, ऐसा गहन तत्त्व को जानने वाला भी व्रतों से डगमगा जाए। स्खलित हो जाए, तो सारा ज्ञान थोथा है। नियम धारण न कर पाए तो सारा ज्ञान थोथा है। ऐसा तत्त्व की गहराई में डूब जाये। जगत से मन पागल हो जाना चाहिए था, निज में डूब जाना चाहिए था।

नीरज जी आए। एक दिन को आए थे, 15 दिन रुके रहे। मात्र समयसार के लिए। सभा में आँसू टपका रहे थे, क्या हो गया? पता नहीं जीव को किस दशा का भान हुआ है। यथार्थ मानना। बोले 'महाराज! यह व्याख्यान मेरे व्याख्येय में चला जाए तो मेरे सारे पास धुल जायें। समझ भिन्न विषय है, ज्ञान भिन्न विषय है। सब ऊपर का ज्ञान चल रहा है। पानी, पत्थर पर चला जाए तो मृदु हो जाती है। जैसे पानी की बूँदें मिट्‌टी में पड़े तो धान्य उग जाए। ज्ञान की धारा निज चैतन्य की मृदु भूमि में पड़ जाए तो वैराग्य, वीतरागता की फसल प्रारंभ हो जाए।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि निज चैतन्य की शक्ति से स्वयं अनुभव करके असंगता को प्राप्त कर लेते हैं योगीश्वर, वे जितेन्द्रिय हैं। भावेन्द्रिय के द्वारा जो ग्रहण किया गया है पंचेन्द्रिय विकार, स्वतः (बिना किसी परभाव के निमित्त के) पृथक्केण। यह नहीं खाऊँगा, वह नहीं खाऊँगा, कहते बहुत दिन हो गए। खाना-पीना छोड़े दिन बीत गए। इन्द्रियों को निज ही नहीं स्वीकारना, इसका नाम जितेन्द्रिय है। खाना-पीना छोड़ दिया, इन्द्रिय का जो राग था उसे भी नहीं छोड़ा। एक जीव ने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। नारी को नारी कहने का त्याग नहीं किया। कहता है मेरी पत्नी है, हमने ब्रह्मचर्य ले लिया। अभी भी व्रत पूर्ण नहीं। धर्म-पत्नी को देख रहे हो, पत्नी-भाव छिपा है तो तन का ही व्रत है, मन में अब्रह्म भाव है। कहने का अब्रह्म भाव मौजूद है। यह परमार्थदृष्टि है। इन्द्रियों का सेवन छोड़ दिया, पर इन्द्रियों के अस्तित्व का सेवन नहीं छोड़ा। धन्य हैं वे योगीश्वर, इन्द्रियों के अस्तित्व के सेवन का भी त्याग कर दिया। वे जितेन्द्रिय हैं। 12वें गुणस्थानवर्ती योगीश्वर की दशा, इन्द्रियों की सत्ता होने पर भी, दोनों इन्द्रियों (द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय) के मौजूद होने पर भी इन्द्रियों का सेवन नहीं कर रहे हैं। तू दर्पण में चेहरा देख नहीं रहा, अपने चेहरे व शरीर का ही भोग कर रहा है। आनंद न आता होता तो कौन-सा पागल

है जो पंद्रह-पंद्रह मिनिट तक दर्पण में स्वयं को देख रहा था? यानि पर का चेहरा सीधा भोगा, अपना देख नहीं सकता तो दर्पण में देख रहा है। ब्रह्मचारी दर्पण देखे, तो ब्रह्म नहीं है। शरीर की शोभा दिखे तो अब्रह्म हो गया। स्व शरीर का संस्कार अब्रह्म है। तत्त्व की बात कीजिए। आप सबसे पहले सभा में आए, क्रीम आदि लगा कर आए तो भोग भोग करके आए हो। वासना में उपासना नहीं होती और उपासना में वासना नहीं होती। बहुत से त्यागी ऐसे कि शरीर के भोग का त्याग कर दिया, पर निज शरीर के भोग का त्याग किया ही नहीं।

शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द -मनः प्रवीचाराः ।। 8/4 त.सू. ।।

यह सूत्र देव ही नहीं, मनुष्यों में भी लगता है। देखकर, स्पर्श देखकर, गीत-संगीत, शब्द सुनकर भी संतुष्टि मिलती है। मोबाइल पर घण्टों-घण्टों शब्दों से विषय सेवन कर रहा था। मोबाइल से तन का मिलन कम होता है। आँखों, शब्दों का मिलन अब्रह्म ही है। मोबाइल पर बात नहीं कर रहा, आँखें बन्द हैं, कान से नहीं सुन रहा, ऐसा बैठा है जैसे शुद्धोपयोग में लीन है। जैसे पर नारी का ध्यान कर रहा है। ज्ञानी! मुक्तिवधू का ध्यान कर लेता तो पुद्गल में न फँसना पड़ता। परम सत्य ये है। अभी 31वीं गाथा ही चल रही है। भीतर क्या होगा, आप स्वयं समझिए। समझ राह हूँ कि लोग इसे पढ़ने का निषेध क्यों करते हैं? मुझे मालूम है। गुरुमुख से पढ़ना। सग्रंथ क्या निर्ग्रंथ को समझेंगे? निर्ग्रंथों की वाणी है।

स्वानुभूति से भावेन्द्रिय से जो ग्रहण किया। स्पर्शन इन्द्रिय आदि के जो पदार्थ हैं, सबको पृथक् कर देना। इससे जो संकर दोष था, उसका अभाव हो जाता है। भावेन्द्रियों को भी परभावों से हटाकर रहता है, तो संकर दोष टलता है। निज ज्ञान में पर का चेहरा देखता रहेगा, तब-तक तेरे ज्ञान में संकर दोष लगता रहेगा। कर्मनिर्जरा, शरीर साधना से अधिक नहीं, अंदन के भावों से अधिक होती है। सुबह से प्रवचन सुनने के लिए इतनी मेहनत करनी पड़ती है न? तत्त्व सुनने में इतनी ताकत, तो तत्त्वानुभूति में कितनी ताकत चाहिए? वही ताकत का कारण निर्जरा है, जो मस्तिष्क को इतना एकाग्र करदें, तो मस्तिष्क परिवर्तन हो ही जायेगा। यही जितेन्द्रिय होने का साधन है, पंचमकाल में साधना, तत्त्वबोध, तत्त्वसाधना, स्वाध्याय करना चाहिए। टंकोत्कीर्ण यह अध्यात्म का सुंदर शब्द, टंकोत्कीर्ण, परमानंद शालिनी, ज्ञानानंद मालिनी यह टंकोत्कीर्ण आत्मा है। जैसे टाँकी से टाँक कर परमात्मा की प्रतिमा बनाई जाती है, वैसे-ही यह स्थिर हो गया, चलायमान होने वाला नहीं है।

भेदविज्ञान की टाँकी, स्वात्मानुभूति की छैनी से सम्पूर्ण परभावों को हटाकर निज स्वात्मभाव को जाना है। ऐसा टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभाव है। यह सारे विश्व से पृथक् है नित्य ही अनेक तत्त्वों से प्रकाशमान को प्राप्त होता हुआ। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी क्या कह रहे हैं? मेरे से मत पूछो। एक स्वतः सिद्ध है।

परमार्थ सत्ता, भगवानात्मा ज्ञानस्वभावी है। उसकी सत्ता स्वतः सिद्ध है, वह सम्पूर्ण द्रव्यों से भिन्न है। यह स्वत:सिद्ध है। भगवानात्मा परभावों से भिन्न है।

'आत्मास्वभावं परभाव भिन्नं।'

आत्मा का स्वभाव स्वत:सिद्ध है, परभावों से भिन्न हे। मिट्टी से युक्त स्वर्ण में शुद्ध स्वर्ण देखिए। मिट्टियाँ सोना नहीं हैं। शुद्ध स्वभाव को निहारिये। वे परम योगीश्वर निज ध्यान में विराजते-विराजते निहारते हैं कि मेरा आत्मा द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध है। मेरी आत्मा परभावों से भिन्न है। जो ऐसा चिंतन करते हैं, वे ही निश्चय से जिन हैं। यह एक निश्चय स्तुति हुई। एक निश्चय स्तुति में तुम्हारा ऊपर से नीचे तक पसीना-पसीना हो गया। हे मुमुक्षु! इतने सारे प्रकरण को सुनते-सुनते क्या अनुभव किया? जाति, पंथ, संत आदि के विकल्प क्या निज स्वरूप में किंचित् सहकारी हैं? पिच्छि-कमण्डल के बिना साधु बन नहीं सकता। पिच्छि-कमण्डल का राग रहेगा तो मुनि बनकर नहीं रहेगा। तो दुनियाँ से राग करने वाला कि मेरा संघ, गच्छ में, श्रेष्ठ/ज्येष्ठ, मात्र असमाधि का कारण बनेगा, निज कल्याण में सहायक नहीं होगा। श्रावका हो, फिर भी प्रपंचों से दूर रहना। वाचना को तभी सफल समझना, इस बात को याद रखन।

कोई भी त्यागी आए तो वंदना। पर वंदना के राग-द्वेष में बंध नहीं करूँगा। हम नई परम्पराओं को यहाँ स्थापित नहीं कर रहे। नई परम्परा तब बनायें जब महाश्रमण महावीर की परम्परा समाप्त हो जायेगी। कोई आए, पूछ लेना 'महावीर की परम्परा के हो कि नहीं?' उनकी ताकत नहीं है 'नहीं' कहने की। न कह दें तो 'स्वामी' शब्द भी समाप्त कर देना। कहें महावीर की परम्परा का हूँ, तो कहना-भेद समाप्त, सब मुनि एक हैं। श्रवणबेलगोला में 250 मुनि एकसाथ रहे। विश्व में कोई परम्परा जीवित रहेगी तो महावीर की रहेगी। पंचमकाल समाप्त, तो उनकी भी परम्परा समाप्त हो जायेगी। जब तीर्थंकर की परंपरा नहीं बची, ये अज्ञानी परम्परा में पड़े हैं। यह है समयसार।

संघों में समयसार की वाचना होनी चाहिए। जनक-जननी का राग छोड़ बैठे, गण-गच्छ के राग में और क्लेश कर बैठे, तो संक्लेश में समाधि नहीं होती। बस इतना ध्यान रखना, प्रार्थना करना कि अब यह पर्याय न मिले। बस, सब काम हो जायेगा, मोक्ष मिल जायेगा।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने समयसार जी ग्रंथ में अध्यात्म विद्या के अनुपम सूत्र प्रदान किए हैं। जहाँ जीव भौतिकज्ञान को ही सर्वस्व मान रहा था, लोक-अलोक के विषय में भ्रमित था, जड़-चेतन के भेद से शून्य हो रहा था, उस अवस्था को कुंदकुंद स्वामी ने अपने आप में निहारकर आत्मा के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया। जीव का लक्षण है उपयोग। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये पुद्गल का लक्षण है। इन अवस्थाओं को न समझता हुआ जीव अपने ज्ञान की पराकाष्ठा यही मान बैठा था कि बाह्य द्रव्यों को जानना ही श्रेष्ठ है। ज्ञानी! बाह्य को न जानकर निज आत्मद्रव्य को पहचान लेना ही ज्ञान है। क्षयोपशम ज्ञान है। जिस ओर ले जाओ, वैसा होगा। पानी तो पानी है। पानी प्यास बुझाता है, कीचड़ भी करता है। पानी मल को साफ करता है, पानी मल को बिखेरता भी है। हे ज्ञानी! पानी के संयोग से कीचड़ छपती है, धुलती भी है। ज्ञान तो ज्ञान है। ज्ञाता जैसा प्रयोग करना चाहे, ज्ञान वैसा है। ज्ञान तो ज्ञान है। ज्ञान में न गुण हैं, न दोष हैं। ज्ञान में कोई गुण हैं ही नहीं। बहुत अच्छे से समझना। यह तत्त्व की सैद्धान्तिक चर्चा है। नींबू के अंदर खट्टापन क्या है? नींबू है, कि नींबू का गुण है? खट्टापन नींबू का गुण है। खट्टेपन का गुण क्या है? जैसे नींबू का गुण तो खट्टा है।

'निर्गुणा गुणाः' (त.सू.)

गुण वही होता है, जिसका कोई गुण नहीं होता। गुण हैं, तो वह गुण नहीं है। आपने, एक को टी.आई. कह दिया, एक को कलेक्टर कह दिया। इतने सारों को क्यों नहीं बोला? दोनों को एक गुण से ग्रहण किया है। ये गुण उनमें हैं, इसलिए ऐसा कहा। उसका भी कोई गुण है क्या? ज्ञान आत्मा का गुण है, ज्ञान से आत्मा पहचानी जाती है। गुण वही कहलाता है जिससे द्रव्य की पहचान हो। गुण का भी गुण हो जायेगा तो गुण नहीं बचेगा।

जीव! तू उपयोगमयी है। ज्ञान! तेरा कोई गुण/दोष नहीं है। ज्ञाता ज्ञान का जैसा प्रयोग करना चाहे वैसा प्रयोग होता है। चाहे पानी को नाली में डालो चाहे मुख में डालो, पानी का धर्म बहना है। पेट में पहुँचने पर भी पानी अपने धर्म का अभाव नहीं करेगा। वह धर्म का त्याग नहीं करता। रागी पुरुष संतुष्ट हो रहा है कि मैंने पानी पिया है। पानी कहता है कि मैं अपने धर्म का त्याग नहीं करूँगा। तू पेट में रख ले, पर मैं पेट में रहूँगा नहीं। अशुचिमय उदर में पहुँचकर भी पानी ने अपनी शुचिता को नहीं छोड़ा, वही

पानी नाली में, फिर नदी से होते हुए पुनः गिलास में आ गया। ऊर्जा का विनाश नहीं होता। यह जैनधर्म के सिद्धांत हैं। ऊर्जा का परिवर्तन होता है। ज्ञान का विनाश नहीं होता, पर्याय बदलती है। यदि ज्ञान का विनाश, तो जीवद्रव्य का नाश हो जायेगा। आटे में पानी डाला था, रोटी बनाई, पानी वाष्पित हो गया, उसका भी विनाश नहीं हुआ। बटलोई में वाष्प उड़ती दिखाई देती है। ढक्कन पर पानी मिलता है, ऐसा क्यों? जो वाष्पित हुआ था, वही ढक्कन पर दिखाई दे रहा है। जो वाष्पित हुआ था वही मेघ बनकर बरस रहा है। द्रव्य का विनाश नहीं। जीव को समझाने पुद्गल का आश्रय लिया जाता है, पुद्गल को समझाने जीव का आश्रय लिया जाता है। यह शैलियां है। व्यवस्था स्वतंत्र हैं। वस्तुस्वरूप एक है। आर्द्र आत्माएँ हैं वे संसार में भ्रमण कर रही हैं। राग से भोगी आत्मायें, कर्मों से आर्द्र आत्मायें ऊपर-नीचे होती रहती हैं। वाष्पित हुआ पानी नीचे की ओर जाता है, कि ऊपर की ओर? ध्यान रखना। हर वस्तु ऊपर जाना चाहती है। दीपक भी जलाओ तो लौ ऊपर ही जाती है। एरण्ड का बीज जब चटकता है, तो दाना ऊपर जाता है। काष्ठ कितना भी वजनदार हो, नदी में फेंक देना, तैरने लगेगा। तेल की पीपे को लेकर नदी में डुबकी लगाना, खोलकर छोड़ देना। तुम बाद में ऊपर आओगे, तेल पहले ऊपर आ जायेगा।

तुंबुरुं तृणकाष्ठं च तैलं जलमुपागतम्।
स्वभावादूर्ध्वमायाति, रेफस्यैतादृशी गतिः ।।1।।

ये स्वभाव से ही ऊपर आ जाते हैं। जैसे रेफ ऊपर जाती है। अर्हत् स्वरूपी आत्मा, शुद्धात्मा, नियम से ऊर्ध्वस्वभावी ही होती है।

'विससोढगई।' (वृ.द्र.सं)

तुमड़ी पानी में नीचे कब-तक? जब-तक मिट्टी का लेप है। उस पर से मिट्टी हटती जाए तो तुमड़ी ऊपर आ जाए। कर्म लेप हट जाए तो स्वभाव ऊर्ध्वगमन है। अग्नि से वाष्पित हुआ पानी ऊपर जाता है। ध्यान की अग्नि पर वाष्पित आत्मा ऊर्ध्वगमन करती है। नीचे जाना आत्मा का स्वभाव नहीं है। यह सापेक्ष-सौपादिक दशा है। जितेन्द्रियपने का अभाव ही संसार है। जितेन्द्रिय भाव ही संसारातीत होने का सोपान है। ज्ञान गुण है। गुण का गुण होता नहीं है। ज्ञान का कोई गुण नहीं है, कोई दोष नहीं है। ज्ञाता में गुण, दोष है। गुण में दोष नहीं है। आत्मा में द्वेष/राग न होता तो आपको दोपहरी में लेकर कौन आ गया? अपने विचार किया था, कि कोई तुझे लेकर आ गया? क्या शिवपुरी में सिनेमा हॉल नहीं है? ज्ञाता जैसा चाहे, ज्ञान उसके लिए वैसा सहकारी है। तपती दोपहरी में मित्रों के साथ ताश खेलना, सिनेमा जाना पसंद नहीं किया। भाव आया कि समयसार सुनने जाऊँगा। पता है कि कठिन विषय चल रहा है, फिर भी बैठा है। यह ज्ञान का विषय नहीं। कठिन विषय सुन रहा है, यह श्रद्धा का विषय है।

आए तुम ज्ञान से हो, पर ज्ञान लेकर नहीं आया है। विश्वास रखना, ज्ञान आपको लेकर नहीं आया। लेकर आई है श्रद्धा। श्रद्धा के साथ ज्ञान आया है। श्रद्धा जैसी रहेगी, ज्ञान वैसा बहेगा। नाली जैसी होगी, पानी वैसा बहेगा। पानी, सीधा/टेढ़ा नहीं होता। ज्ञान न सम्यक् होता है न मिथ्या। जैसी श्रद्धा की नाली होगी, ज्ञान का रूप वैसा होगा। विषयों में आस्था/श्रद्धा है तो ज्ञान विषयों के साधन प्राप्त करा देगा। श्रद्धा/दृष्टि दर्शन की है तो ज्ञान दर्शन करा देगा। इसके ज्ञान ने इंजीनियर बनाया, कि ज्ञान ने बीए, कराया? अंदर जो सोचा था, तद्‌रूप ज्ञान की धारा बही है। ज्ञान/श्रद्धान को पृथक करो। आगम-ज्ञान का मतलब समझो। माताओं! गेहूँ बीनती हो कि नहीं? निकालती कंकड़ हैं, कहती हैं गेहूँ बीन रही हूँ। गेहूँ से कंकड़ अलग करना जानती हो। तत्त्वज्ञान से, आत्मा में एकमेक होने वाले त्रिगुण तीनों (दर्शन, ज्ञान, चारित्र) को भिन्न-भिन्न कर दिखा देता है, पर एक होता है।

श्रद्धा जैसी होगी, ज्ञान वैसा होगा। रुचि जैसी, प्रीति वैसी होगी। रुचि व प्रीति जैसी, वैसा ही ज्ञान होगा। एक ही दिन दो यात्रायें निकल रही थीं, दोनों एक जैसे सजे थे। दोनों बग्घी में बैठे थे, आगे बैण्ड-बाजे बज रहे थे। एक मुड़ गई मंदिर की ओर, एक चली आई धर्मशाला की ओर। एक की दीक्षा थी, एक की शादी थी। दोनों सजे दूल्हे जैसे थे। मुड़ कैसे गए? श्रद्धा जैसी थी। दो लोग दो मोटर साईकिल पर जा रहे थे। आपकी गाड़ी यहाँ मुड़ गई मंदिर की ओर, एक मुड़ गई मदिरालय की ओर। गाड़ी ने क्या किया? गाड़ी ने आपको मोड़ा, कि आपने गाड़ी को मोड़ा? भ्रम निकाल देना कि शरीर पाप करता है, इन्द्रियाँ पाप करती हैं। ज्ञानी! आत्मा मोड़ता है। ज्ञान नीचे गिराता या उठाता नहीं। ज्ञान मध्यस्थ है। रुचि जैसी होती है, वैसा ज्ञान लगता है। गिराने-उठाने का कार्य जिसका है उसका नाम श्रद्धान है।

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।। 43 इष्टो.।।

जिसका चित्त जहाँ निवास कर रहा है, वह वहीं रमण को प्राप्त होता है, अन्यत्र जाता ही नहीं है। सम्मेदशिखर की भूमि पर जाकर भी वंदना नहीं करेगा, विषयों के सेवन की खोज करेगा। ऐसे भी पापीजीव मिलेंगे जो मंदिर आकर भी विषयों के साधन खोजेंगे। शांतिनाथ को देखते-देखते भी कितने विषयों को देखता है। नव-नवोड़ा 4 सुन्दरियों के बीच बैठकर भी सुन्दरी को नहीं देखता था। एक तीर्थंकर के पादमूल में भी तीर्थंकर को नहीं देखता। जम्बूकुमार ने, जो अंतिम केवली हुए, मथुरा से निर्वाण प्राप्त किया। माता-पिता ने 4 सेठकन्याओं से विवाह करवा दिया। वह चारों नववधू बनकर आ गईं, पर जम्बूकुमार ने पूर्व ही कह दिया था थ्क सुबह दीक्षा ले लूँगा। नवस्त्री के बीच किसका मन नहीं पिघलता? नवनीत (मक्खन)व अग्नि का संयोग है। ये। कितनी भी पौष की सर्दी हो, तो भी पिघलेगा। स्त्री अग्नि के समान है, पुरुष मक्खन है। धन्य हो, चार नवस्त्रियों के बीच में बैठा हो, जो अपने हाव-

भाव प्रकट कर रही हों। झरोखे से देख रही थी माँ। सोच रही थी कि स्त्री से कौन नहीं पिघलता? शादी कराकर तो आओ। जम्बूस्वामी क्या कह रहे थे- मैंने आपके माता-पिता को समाचार दे दिया था कि मैं सुबह दीक्षा ले लूँगा। घड़ियाँ, घड़ियाँ देख रही थीं। लड़कियाँ भी सोच रही थी। 12, 1 बज गए। स्वामिन्! यह अवस्था सन्यास की नहीं, यह मधुर-मधुर रसपान की बेला है। योगी कह रहा था, मधुर-मधुर बेला है निज रमणी से मिलने की। इस बेला को छोड़ दूँगा तो संध्या ढल जायेगी, शरीर समाप्त हो जायेगा। आश्चर्य। संयोग से एक डाकू को पता चलता है कि सेठपुत्र का विवाह हुआ है, घर भरा है। डाका डालने के लिए आता है। एक झरोखे से देख रहा था कि सब सो जायें तो चोरी करूँ। चोर और माँ की भेंट हो गई। माँ पूछती है, कौन हो? वह कहता है 'सच पूछो तो दो मिनिट पहले मैं चोर था। माँ! मैं डाका डालने आया हूँ। धिक्कार हो, वह वमन कर रहा है, मैं चाँट रहा हूँ। वह मेरा गुरु है। मैं जाता हूँ यहाँ से।

माँ के सभी प्रयास निष्फल हो गए। प्रातः बेला हुई, मंगल गान हुए। कन्याओं ने कहा कि हमारा परम सौभाग्य है। रागी से शादी होती तो व्यभिचार में लिप्त हो जाती। अब जो परिणति तुम्हारी, वह हमारी। चारों आर्यिका बन गईं। आस्था संयम की थी, तो नारियाँ भी क्या कर सकी? माता-पिता कुछ न कर सके। सूर्य कि किरणें स्फुटित हुईं, सूर्य चल दिया सूर्य के पास। सबने दीक्षा ली। आचार्यमहाराज के पास पहले से ही एक मुनि बैठे थे। माँ कहती है, 'मुझे यह मुनि कुछ पहचाने से लग रहे हैं।' वे मुनिमहाराज कहते हैं- 'ठीक कह रही हो। मैं वही चोर हूँ, रात्रि में आपके यहाँ चोरी करने गया था। आपके बेटे की वैराग्य दशा देखकर मुझे वैराग्य हो गया।'

ज्ञान तटस्थ है। ज्ञान की धारा क्या करेगी? परिपूर्ण सुनिश्चितता से यह सूत्र स्थापित कर लेना। चित्त को चंचल या स्थिर करना हमारे हाथ में है। हम चित्त के साथ रस न लें तो चित्त चंचल नहीं हो सकता। रस लेना प्रारंभ, तो पाप प्रारंभ। इन्द्रियाँ पाप के लिए प्रेरित नहीं करतीं। जिस पाप के लिए जीव स्थिर करता है, स्वयं उस पाप का चिंतन करता है। पाप करने गोलियाँ खाता है। इन्द्रियाँ पाप करा रही हैं, कि ज्ञान पाप करा रहा है, कि तेरी रुचि पाप करा रही है? पाषाण की देव/कुदेव की प्रतिमा सम्यक्त्व में नहीं डालती, क्योंकि परद्रव्य है। किसी कुदेव/सुदेव की प्रतिमा ने नहीं बुलाया होगा। रुचि तो श्रद्धा का विषय है, सम्यक्/मिथ्यात्व का विषय नहीं है। ज्ञाता को शुद्ध मान रहा है, मुमुक्षु! इन्द्रियों को या ज्ञान को दोष मत देना। दोष/धन्यवाद देना तो ज्ञाता को देना।

देश पर कोई शत्रु देश आक्रमण करता है तो सबसे पहले प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति दौड़े नहीं जाते, ये सैनिक पहले जायेंगे। ये बेचारे अपने सैनिकों के साथ युद्ध करेंगे। जिस दिन विजयश्री घोषणा होगी तो प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति के नाम घोषणा होगी। इनके हाथों से अस्त्र चलेंगे, हाथ होंगे, पर अधिकार नहीं

होंगे। जब भी इन्द्रियाँ पाप/पुण्य करेंगी तो कर्ता ज्ञाता होगा। इन्द्रियाँ नहीं होंगी। आप युद्ध करेंगे, पहचान किसकी होगी? देश का सम्राट कौन है? इन्द्रियों की पहचान नहीं होगी। सैनिक समरभूमि में बिछ जायेंगे, स्वामी जीतेगा। इन्द्रियाँ यहीं रह जायेंगी, ज्ञाता (आत्माराम) भोगेगा। इन्द्रियाँ निर्दोष हैं, ज्ञाता दोषी है।

प्रश्न उठेगा, ज्ञान की स्थिति क्या रही? ज्ञानी! ज्ञान तो ज्ञान है। ज्ञान गुण है। गुण तो गुण है। जब पर्याय से कथन करें तो ज्ञाता अशुद्ध होगा, तो उस समय ज्ञान भी अशुद्ध होगा। पर्यायों को गौण करके कथन करें, तो ज्ञान शुद्ध है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आत्मा का गुण नहीं। आत्मा का गुण है तो ज्ञान है। ये ज्ञान गुण की पर्यायें हैं। इसलिए ज्ञान और दर्शन, यहाँ 'श्रद्धा' वाला दर्शन नहीं, देखनेवाला दर्शन लेना। ज्ञान से पहले सामान्य सत्ता का अवलोकन, उस दर्शन को ग्रहण करना। ज्ञान गुण त्रैकालिक रहेगा। सम्यक्/मिथ्या त्रैकालिक नहीं है, श्रद्धा त्रैकालिक है। सुदेव पर श्रद्धासम्यक्रूप है। कुदेव पर श्रद्धा मिथ्यात्वरूप है। नेत्र दो हैं, गोलक दो नहीं हैं। कौवे की आँख दो, पर गोलक एक होता है। दाँई से देखे तो बाँई बन्द, बाँई से देखे तो दाँई बन्द। ऐसे-ही श्रद्धा की सम्यक् और मिथ्या दो अवस्थायें हैं, पर श्रद्धा गुण एक है। मिथ्यात्व में जायेगी तो सम्यक् की आँख बन्द, सम्यक्त्व में जायेगी तो मिथ्यात्व की आँख बन्द जो लोगों का भ्रम है कि संयम तो पर्यायदृष्टि है, ऐसा बोलनेवाला पहला मिथ्यादृष्टि है। संयमी की पर्याय होती है। संयम पर्यायदृष्टि नहीं, पर्याय में संयम है। संयम तो परिणाम दृष्टि है। असंयम पर्यायदृष्टि नहीं, परिणाम दृष्टि है। तेरे पुण्य का उदय तीव्र चल रहा है जो ये विषय चल रहा है। समय को पर्यायदृष्टि कहकर गर्त में जा रहा है। रात में दूध पीता है, शुद्धात्मा की बात हो रही है। जो संयम को पर्यायदृष्टि कहता है तो-

'पज्जयमूढ़ा हि परसमया।। (पवयणसारो)

संयम/असंयम पर्यायदृष्टि नहीं, परिणामदृष्टि है। तेरे दो सुन्दर बेटे बैठे हुए हैं, कहता है मैं तो ब्रह्मचारी हूँ। पर्यायदृष्टि थी। पाप पर्याय ने किए, हमने कुछ किया नहीं। भ्रम। तूने कुछ किया नहीं, दो लाल बगल में हैं। कह रहा है कि मेरी आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। शरीर के दोष, शरीर ने पाप किया, मैं शुद्ध हूँ। क्या मैं ठीक बोला रहा हूँ? ज्ञानी! मैं तेरे पिताजी की ओर से बोल रहा हूँ, भटकना मत, बिल्कुल गलत बोल रहा हूँ। पर्याय पुण्य-पाप करती तो पाप पर्याय के साथ जाते, तो पर्याय जलती, तो पाप भी जल जाते। पापी/पुण्यात्मा पर्याय नहीं, पर्यायी है, आत्मा है। जो यों कह रहे हैं कि पर्याय पाप करती है, यह जीवों को मिथ्यात्व में डाला जा रहा है। ध्रुव सत्य है, पर्याय से पाप किए जा रहे हैं, पर्यायी पाप करने वाला है। चश्मा देख रहा है, कि चश्में से देख रहे हो? जहाँ कह देते चश्मा देख रहा है, तो फँस जाते। चश्मा देख रहा है, तो अंधे को लगा दो, देखना शुरू। आँखें देख रही हैं, कि आँखों से देख

रहे हो? आँखे देखती होती तो आत्मा निकल जायेगी तो देखना चाहिए, और दूसरे को लगा दो तो दिखने लगेगा? पाप करने वाला कोई है तो उसका नाम आत्मा है, जिसे मैंने ज्ञाता कहा था।

तत्त्व को कितना चिंतन चाहिए। गहराई से चिंतन करोगे तो सत्य मिलेगा, अन्यथा भ्रम में रहोगे। जितेन्द्रिय आत्मा ही होगी, दोष किसका? ज्ञान तो ज्ञान है। ज्ञान में गुण/दोष नहीं। ज्ञाता में गुण हैं, ज्ञाता में दोष हैं। पर्याय पापी नहीं, पर्याय से पाप हो रहा है। उपचार कथन से पर्याय पापी है। अब्रह्मभाव शरीर ने किए, कि इन्द्रियों ने किए, कि आत्मा ने किए? शरीर के माध्यम से रसास्वादन करेगा तो बंध शरीर को नहीं, आत्मा को होगा। रुचि जैसी होती है, ज्ञान की गति वैसी होती है। जिनको समयसार सुनने की रुचि है, तो उसकी गति मंदिर की ओर हो गई। सिनेमा की रुचि, तो वहाँ गति हो गई। जैसी गति वर्तमान की होगी, रुचि के अनुरूप वैसी भविष्य की पर्याय होगी। कहता रहेगा कि पुद्गल का परिणमन चल रहा है, मालूम चला कि नरक चला गया। पुद्गल का परिणमन तो चल ही रहा है, कहने से बन्द होगा नहीं। एक महीने पहले जैसा था, वैसा नहीं बचा। सही है कि नहीं? बस इतना समझ आ गया तो ज्ञानी हो गया। 26 मई को हम आए थे। एक महीना जीवन का कम हो चुका है। लो, दो-तीन मिनिट और कम हो गए। ऑक्सीजन लगाते हैं, कहते हैं कि पाँच मिनिट बचे हैं। तब मुझे पाँच मिनिट की कीमत समझ में आती है।

यहाँ पर्याय की पर्याय नष्ट की तो समझ नहीं आ रहा। यहाँ-वहाँ की गप्पों में समय व्यर्थ खो दिया। गाड़ी चालू कर ली, ब्रेक लगा दिया, इंजन चालू है, पेट्रोल जल रहा है। स्टार्ट है तो तेल तो जलेगा, चाहे तुम चलो या न चलो। आयुकर्म तो नष्ट होगा। घर के विद्युत के मीटर के नंबर देखे कि नहीं? जितने पंखे, कूलर चलेंगे, मीटर उतना भागेगा। पिताजी ज्ञानी हैं, मीटर में यहाँ-वहाँ के तार फिट कर दिए। हे मुमुक्षु! आयुकर्म के मीटर को बन्द नहीं कर सकता। तेरे हाथ में आयुकर्म का मीटर होता तो सबसे पहले तार लगाता। तुम्हारे हाथ में नहीं है। बिना तार का मीटर है, तीर्थंकर को भी नहीं छोड़ता। तेज भागता है। कोई तार काम नहीं आयेंगे।

कसाई को, शत्रु को करुणा आ सकती है, यमराज को करुणा नहीं आती। माता-पिता, पत्नी बिलखे, वह कहता है कि मेरा समय हो गया। करुणा नहीं तो तुरंत धर्म में गति कर देना चाहिए। वे परम योगीश्वर पर को दोष नहीं देते, पर को नहीं सँभालते। स्वानुभव से निज को सँभालते हैं। वे ही जितेन्द्रिय हैं।

टीका-देह के स्तवन से निश्चय स्तुति नहीं होती, तो कैसे होती है?

द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के द्वारा जीतकर जो शुद्धात्मा को जानता है, वह जिन है। जिन्होंने

द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय को जीत लिया है, वे ही जिन हैं। जिन ही हैं देव जिनके, वह जैन हैं। जिन हमारे देव हैं जिन्होंने विषय-कषाय/इन्द्रियों को जीत लिया है। जिन हैं देव जिनके, वे जैन हैं। एक शब्द गूँजना चाहिए 'हम जैन हैं।' अपत्यर्थ में देखते हैं। ऐसे पंचेन्द्रिय विषयों का जो भी सेवन होगा, वह संवेदन से होगा। मैं भिन्न हूँ, पर भिन्न है। इन्द्रिय-सुखानूभूति तो रागानुभूति है। रागानुभूति भी विषयानुभूति है। वह भी स्वसंवेदन है। ज्ञेय को ज्ञाता ही निज ज्ञान से वेदता है। वही ही संवेदन है। वीतराग अनुभूति को अभेद रूप स्वीकारता है। बाहर की आँख बन्द कर रहा, खोल रहा है। कैसा ज्ञानी है? चर्म-चक्षु बन्द कर लो, विवेक का नेत्र खोल लो।

निहारो, स्वयं से प्रश्न करो। राग तो राग है। राग स्वभाव नहीं, राग विभाव है। मुझे भ्रमित किया है। स्वभाव नहीं, विभाव ने। स्वरूप ने नहीं, रूप ने। ज्ञान ने नहीं, अज्ञान ने भ्रमित किया है। स्वभाव नहीं, विभाव ने। स्वरूप ने नहीं, रूप ने। ज्ञान ने नहीं, अज्ञान ने भ्रमित किया है। ज्ञाता जान ज्ञान से। खुली आँख होते हुए भी अंधा कैसे हो गया? विषयों में लिप्त कैसे हो गया? इन्द्रियविषयसुख तो शरीर को नष्ट करने वाले हैं, उनमें लिप्त कैसे हो गया? मिले नहीं, तो इच्छाओं में जल रहा था। मिले, तो समझ नहीं आया, क्या हुआ? इन्द्रियाँ शिथिल, तो पश्चात्ताप कर लिया। त्रैकालिक कष्ट दे रहा है। शब्दों का भेदविज्ञान अनंतबार किया, पर भेदविज्ञान नहीं हुआ।

जब जानता नहीं था, तो जानता था। ज्ञानी! निज स्वभाव है कहाँ? विभाव को हटा दो, वही तो निज स्वभाव है। आपको मालूम नहीं, ऐसी क्लास में मैं भी बैठा हूँ। ये निज स्वभाव वाली। बड़ा अच्छा लगता है। ज्ञानियों ने पकड़ लिया, बोले, चलो जयपुर। मैंने कहा कि मुझे जाना है शिवपुर। 5-6 लम्बे-लम्बे व्यक्ति आए, चलो जयपुर, तू बढ़िया पण्डित बनेगा।

ज्ञानी! मुझे महाराज बनना है। ऐसे छोड़ दिया जैसे बनारस में जब पण्डा पकड़ लेते हैं, तब कह दो कि जैन हूँ, तो छोड़ देते हैं। छोड़ दिया। चले जाते तो ऐसे ही फँसे मिलते जैसे पण्डित जी फँसे हैं। लगता है कि जिसने पकड़ा था उसे आदमी की पहचान करना आता होगा। मैं तो छोटा-सा था। यदि वह मिलता तो उसका सम्मान करवाता क्योंकि उसे आदमी की पहचान करना आता है। मेरी अभी भी पकड़ होती है। एक ज्ञानी कह रहे थे, (मुमुक्षु थे ऐसा लगता है) 'आपका अपहरण करके जंगल में ले जायें, वहाँ आप कहो और मैं सुनूँ। ज्ञानी! यहीं सुनो। नहीं, मेरे ग्रुप में बिठायेंगे। हमारे ग्रुप में, हमारे जैन बनकर बैठो। विदिशा गए तो दो महीने मुनिभक्त कम हो गए। कारण कि जिस मंदिर में वाचना हो रही थी, वह शुद्ध मुमुक्षुमण्डल का मंदिर था। मुनिभक्त क्या बोले? सोनगढ़ियों के महाराज आए हैं। छुप-छुपकर आए देखने कि इनके महाराज कैसे होते हैं। बाद में समझ आया कि भाषा वैसी है, पर बात आगम की करते हैं। शैली नहीं, बात पकड़ना। वे कहें कि हमारे महाराज हैं, नहीं, तुम कहो कि हमारे

महाराज नहीं तो किसके महाराज हैं? जब-तक स्वसंवेदन भाव नहीं जगेगा, भेद-विज्ञान की जागृति नहीं होगी। वह निश्चय स्तुति है। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय। पाँच इन्द्रियविषयों को जीतकर परिपूर्ण शुद्धात्मा को जानता, मानता और अनुभव करता है, वह साधु जितेन्द्रिय है। निश्चयनय से स्पर्श आदि पाँच इन्द्रियविषय (द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय) का जीव के साथ संकर संबंध है। परभावों में लिप्तता, यह संकर भाव है। इसे परम समाधि बल से जो जीतते हैं, वे ही जिन हैं। ऐसी प्रथम निश्चय स्तुति मानना चाहिए। जो इन्द्रियविषयों की संकरता को जीते, वह ही सच्चे जिन हैं। गुणों की वंदना है। अब मत कहना दो गोरे, दो सांवरे। यह बात गौण कर दी। जिसने द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय को जीत लिया है, वही जिन है। ऐसा समझना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। निश्चय स्तुति ।।

उत्थानिका - आगे भाव्य भावक संकर दोष दूर कर स्तुति कहते हैं।

गाथा - **जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं।**
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति।। 32।।

अन्वयार्थ - **(यः तु)** जो मुनि **(मोहम्)** मोह को **(जित्वा)** जीत कर **(आत्मानम्)** अपने आत्मा को **(ज्ञानस्वभावाधिकम्)** ज्ञान स्वभाव से अन्य द्रव्यभावों से अधिक **(जानाति)** जानता है **(तं साधुम्)** उस मुनि को **(परमार्थविज्ञायकाः)** परमार्थ के जानने वाले **(जितमोहं)** जितमोह ऐसा **(विदन्ति)** जानते हैं- कहते हैं।

संस्कृत छाया - **यो मोहं तु जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।**
तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका विदन्ति।।

समय देशना

ग्रंथराज समयसार जी में आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी निश्चय स्तुति का वर्णन कर रहे हैं। इस जीव ने अनेक बार बाहर का स्तवन बाहर से किया, पर यह व्यवहार भक्ति को भी व्यवहार से नहीं कर सका। उसमें भी जो लक्ष्य होना चाहिए, उससे भ्रमित होकर अलक्ष्य की ओर चला गया। व्यवहार भक्ति में ''दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।'' यह दृष्टि है तो व्यवहार भक्ति है। हे नाथ! मैं आपकी अर्चना करता हूँ, वंदना करता हूँ, पूजन करता हूँ, क्यों? दुःखों का क्षय हो। पर दुःखों का क्षय कैसे होगा? जब कर्मों का क्षय होगा। कर्म का क्षय कैसे होगा? जब बोधि की प्राप्ति होगी। बोधि की प्राप्ति उसे ही होगी, जिसकी समाधि होगी। साम्य दृष्टि नहीं है तो सम्यग्दृष्टि नहीं, तो बोधि नहीं, तो-फिर समाधि कैसे? समाधिकरण हो और सुगति में गमन हो। और हे जिनेन्द्र! आपके गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो। यदि यह लक्ष्य सहित भक्ति है, तो ही व्यवहार भक्ति है। यदि लक्ष्य नहीं, (कहीं पाठ पढ़ रहा है, मन कहीं-और जा रहा है) तो व्यवहार भक्ति भी नहीं है।

यस्मात्क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।। 38 कल्याणमंदिर स्तोत्रम्।।

जो क्रिया भाव से शून्य है, वह फलित नहीं होगी। व्यवहार भक्ति हो तो कैसी हो? वीणा के तार टूट गए तो भुजा से नस निकालकर भक्ति की थी रावण ने। यह है व्यवहार भक्ति। पाठ कर रहा था, मच्छर बैठ जाए, फिर क्या करेगा? तेरी व्यवहार भक्ति भी नहीं है। मच्छर भगाने में समय लगा। अखण्डता में खण्ड हुआ। तारतम्य में भेद-विच्छेद हुआ। निश्चय भक्ति तो निरंतर है। अखण्ड निज ज्ञान में निज ज्ञेय का लीन हो जाना, इसका नाम निश्चय भक्ति है। निहारो। व्यवहार भक्ति भी कितनी है? मंदिर आए, नए कपड़े पहनकर। नए कपड़े पहनकर आया तो फिर देखो, नमस्कार कैसे करता है? भगवान को सलूट मारता है। वस्त्र ज्यादा कीमती थे, कि परमात्मा की आराधना ज्यादा कीमती थी? उस दिन पता चलता है कि राग ज्यादा किसमें है। धूल छप भी जाती, तो धूल में धूल छपती। इसलिए, ज्ञानियों! कहना भिन्न विषय है, होना भिन्न है। व्यवहार भक्ति भी कितनी कर पा रहे हो? सोने के आभूषण धारण करना है तो सोना ही खरीद कर लाना पड़ेगा। लोहे से सोने के आभूषण बनते हैं क्या? जो व्यवहार भक्ति में संतुष्ट हो गया, निश्चय पर दृष्टि ही नहीं गई, तो-फिर निश्चय को प्राप्त हो ही नहीं सकता क्योंकि संतुष्ट हो चुका। ऐसे-ही व्यापारी होता है तो आमदनी कितनी भी हो, फिर भी संतुष्ट नहीं होता, प्रयास करता रहता है। ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव प्रत्येक क्रिया में परमार्थ दृष्टि रखता है। परमार्थ दृष्टि नहीं तो व्यवहार भी नहीं, व्यवहाराभास है। उतना ही व्यवहार 'व्यवहार' है, जिसमें परमार्थदृष्टि है। शेष व्यवहाराभास है। आभासों में कितना जीवन निकल गया। सत्यार्थ को सुनता ही नहीं। पर्याय के स्तवन में पर्यायी पर दृष्टि होना आवश्यक है। अन्यथा भव का अभिनंदन है, भवातीत होने का प्रयोजन नहीं है। भव का अभिनंदन कितनी बार किया? कितनों के गले में माला डाली, कितनों से गले में माला डलवाई? माला किसमें? मनुष्य भव में न? अभिनंदन भव का है। हे भवाभिनंदी! भवातीत होने का विचार नहीं है क्या?

कई दिन तैयारी चलती है, कई वर्षों श्रम होता है, तब अभिनंदन ग्रंथ तैयार होता है। जब-तक प्रिंट होकर सभा में नहीं आ जाता, तब-तक अनवरत धारा चलती है। मन में सदैव यही सोचता है कि मेरा अभिनंदन होने वाला है, मेरा अभिनंदन ग्रंथ छप रहा है। हाथ जोड़ता है कि मेरी प्रशंसा में दो शब्द लिख देना। यदि यह सब न सोचता तो प्रशंसनीय था। प्रशंसा पाने का मन करे, यही अप्रशंसनीय का लक्षण है। प्रशंसा का मन नहीं, तो इससे बड़ा प्रशंसनीय नहीं। भवातीत होने की दृष्टि है तो कहेगा कि सत्य यही है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंक स्वामी, आचार्य कुंदकुंद स्वामी जैसे महान आचार्यों के अभिनंदन ग्रंथ नहीं छपे। जो कुछ नहीं जानते, उनके अभिनंदन ग्रंथ छपना है। यह पर्याय का अभिनंदन है। हमने दूसरे के अभिनंदन ग्रंथ नहीं पढ़े। मेरे पास भी ये ग्रंथ आए। मुझे तो जिनवाणी में आनंद आता है, अभिनंदन ग्रंथ में आनंद नहीं। तो मेरे अभिनंदन ग्रंथ को कौन पढ़ेगा? रत्नत्रय की

आराधना ही आत्मा का सबसे बड़ा अभिनंदन है। यही परमार्थदृष्टि है।

प्रशंसा के पत्र मिल जायें, आवश्यक नहीं वह प्रशंसा का पात्र हो। जो प्रशंसा का पात्र है, आवश्यक नहीं उसे प्रशंसापात्र मिलना ही चाहिए। रखेगा कहाँ? प्रशंसापत्र गले में टाँग कर चलेगा क्या? नहीं। पत्रों पर विश्वास कम होता है, पात्रता पर ज्यादा होता है। सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु जीव प्रशंसापत्र पर नहीं, प्रशंसा की पात्रता पर जाता है। कुंदकुंद स्वामी 38वीं गाथा में कह रहे हैं हे मुनिराज! निर्मोही रहो। मोह सहित निर्ग्रंथपना भी संसारपना है। मोहरहित श्रावकपना भी मोक्षपना है। मिथ्या मोह रहित श्रावक मोक्षमार्गी है, मिथ्यामोह सहित ये मुनि संसारमार्गी हैं। भाव मत बिगाड़ना। ऐसा सोचना कि मुनि बनूँगा, पर निर्मोही बनूँगा। फिर नहीं कहना पिताजी को बुला दो।

कथा सुनो। समयसार में जब-जब इस कथा पर मेरी दृष्टि जाती है। यथार्थ बताऊँ, आपको नहीं सुनाता, दोहराता हूँ, स्वयं को सुनाने। वीतरागी तपोधन कैसे होते हैं। वे श्रमण। गहन अटवी में साधनारत ध्यानस्थ खड़े हैं। सिंह, व्याघ्र की दहाड़े आ रही हैं। नरसिंह खड़े हैं। चारों ओर लता और बेलें चढ़ गई हैं। नियोग देखो, माँ उसी जंगल से गुजरती है। बेटी को साथ लिए है। फलदान करने जा रही थी दलबल के साथ है। महारानी, बियावान से गुजर रही थी। मांगलिक कार्य में मुनि दिख जायें तो मन कितना गद्‌गद हो जाता है और यदि वह मुनि स्वयं का बेटा हो तो हृदय और गद्‌गद्‌ हो जाता है। माँ कहती है 'स्वामिन्! नमोस्तु।' एक क्षण को राग झलक गया। 'महाराज! आपकी भगिनी का आज फलदान है। जंगल में कोई लुटरे तो नहीं हैं?' जबकि उससे कुछ देर पहले चोरों का पूरा गिरोह मुनिचरणों में नमस्कार करके गया था। एक चोर ने कहा- 'ये तपोधन हैं, इन्हें कंचन व कामिनी से प्रयोजन नहीं, इन्हें रहने दीजिए।' माँ-बेटी नमस्कार कर थोड़े आगे चले, माँ-बेटी को उन्हीं डाकुओं ने पकड़ लिया, सारा द्रव्य छीन लिया। माँ, बेटी बिलख रही हैं। डाकू सरदार कहता है- देखा, मैंने कहा था न, मुनिराज के दर्शन कर लो, काम बना कि नहीं? सरदार के शब्द माँ के कानों, में पड़े, ऐसा बोल रहे हैं। माँ कहती है, 'सरदार! अपनी कटार मुझे दे दो। मैं अपनी अशुद्ध कोख को चीरना चाहती हूँ।' क्यों? जिस मुनि का नाम ले रहे हो, वह मुनि मेरा बेटा है। वह बेटा जो बहन की भी रक्षा नहीं कर सका। ऐसे कलंकी को मैंने कोख में रखा। सरदार चरणों में गिर गया। नहीं, माँ! यह तेरी कोख कलंकी नहीं है। मैं डाकू अवश्य हूँ, पर पापी नहीं हूँ। मंदिर की देहरी पहले पुजती है, मूर्ति बाद में पुजाती है। हे माँ! तेरे चरण छूता हूँ जो ऐसे पुत्र को जन्म दिया। उनको माँ-बहिन का राग नहीं आया। यह पकड़ो संपत्ति। बहन मेरी है। कहाँ जाना है, मैं ले चलता हूँ।

मुनिपना क्या है? नगर/घर का कोई व्यक्ति आ जाए तो घण्टों बतियाने बैठ जाए, यह मुनिपना नहीं है। माँ, बहिन के हित पर भी दृष्टि नहीं, यह है निर्मोही मुनिभाव। अन्यथा 'क्या हो रहा है? कैसा

हो रहा है? क्या कर रहे हो? लो, महाराज! समाचार पढ़ो।' समाचारी कर नहीं रहे मुनियों की। समाचार पत्र पढ़ना निर्ग्रंथ मुनि का किंचित् भी धर्म नहीं है। समय ही नहीं है इतना। समाचारपत्र में होता भी क्या है? अमुक मर गए, डाकू न डकैती की, कहीं हिंसा हो गई। कहीं एकाध लाइन धर्म की, उसके बहाने पूरा पेपर पढ़ लिया। यथार्थ मानना कि यह प्रमाद है, बंधस्थान है। बंधस्थान से बचने के लिये मुनि बने हैं। जानबूझकर बंधस्थान पकड़ना, प्रज्ञा की न्यूनता है। मुनि बने, ब्रह्मचारी बने, शौक था कि बंध से बचने के लिये बने? यदि बंधस्थान से बचने के लिये बने, तो पढ़ना है तो तो गोम्मटसार जीवकाण्ड पढ़ो। लब्धिसार, क्षपणासार ग्रंथ पढ़ो। जब मैं पढ़ रहा था, पढ़ते समय शरीर में रोमांच होता था। जानकर जीव ऐसे परिणाम क्यों करता है? इन ग्रंथों में भावों/परिणामों मात्र का वर्णन है। ज्ञानी! भावों की दशा को निहारो। बंध से बचने के लिए आए थे, कोई जीव गुरु से छिपकर गलती करे तो गुरु का क्या जाता है? वे तो बंध से बचने का उपाय बता रहे थे। तुम छुपकर करो, क्योंकि तुझे बंध का भय नहीं है।

विरागसागर महाराज जी तो अहमदाबाद में हैं, मैं शिवपुरी में हूँ। दीक्षा दे दी, कर्त्तव्य पूरा कर दिया, वे क्या करेंगे? ज्ञानी बनने के लिए बने हो तो बनकर रहो। यह सूत्र यथार्थ में कितना अच्छा लगता जब तुम पिच्छि-कमण्डल लिए यहाँ बैठे होते। मुनि बनकर सुनता तो कैसा लगता? बनना शुरू कर दो, बन जाओगे।

तीर्थंकर का ध्वज तीर्थंकर की मुद्रा है। राष्ट्र का ध्वज, राज्य का प्रतीक है। जरा भी झुक गया तो काम बिगड़ता है। शरीर ध्वस्त हो जाए, पर ध्वज नीचे न होने पाये। यथार्थ बताऊँ कि न मुझे व्यक्ति पर राग है, न द्वेष है। तीर्थंकर महावीर के शासन पर अनुराग है। मेरी पर्याय की वजह से तीर्थंकर का शासन न बिगड़ जाए। मैं शाश्वत नहीं, महावीर शाश्वत नहीं, श्रमण संस्कृति शाश्वत है। वह जयवंत रहे, उसमें दोष न लगे, वह ध्वस्त न हो जाए। इससे बड़ा दीन कौन जो अरिहंत के शासन में हीनता का व्यवहार करता है? कष्ट सहन कर लेना, पर धर्म पर आँच नहीं आने देना। अपने माध्यम से जिनशासन पर किंचित भी कलंक लगता हो तो लगानेवाले को ही आस्रव होगा ऐसा मत सोचना।

दिगम्बर मुनि स्नान नहीं करता, कारण क्या है? सबने सुना कि पानी बिखरता है तो हिंसा होती है। सत्य इतना ही नहीं, हेतु और-भी है। भिण्ड में आचार्यश्री ने दीक्षा दी। शरीर तो शरीर है, बदलता रहता है। शरीर का परिणमन है। चातुर्मास करने के बाद विहार हुआ। प्रथम दिन का विहार था। शरीर धूप में चमक रहे थे। गाँव के लोग कह रहे थे कि ऐसा लगता है जैसे हल्दी चढ़ी है, शादी होने जा रही है, कैसे चमक रहे है? आचार्यश्री सही कह रहे हैं। संयम की हल्दी है, मुक्तिवधू के साथ शादी करने जा रहे हैं।

शरीर जितना स्वच्छ होगा, जितना चमकेगा, तो सुन्दर दिखेगा। तेरे शरीर की सुन्दरता देखकर नारी का मन मचल गया तो दोष तुझे लगेगा। इसलिए तन मलिन रखो। हमारे निमित्त से दूसरे के परिणाम भी खराब न होने पाएँ। गहरा है जैनदर्शन। आपके शरीर के निमित्त से किसी के परिणाम गड़बड़ हुए तो ध्यान रखना, अप्रभावना होती है। अप्रभावना मिथ्यात्व का कारण है। सम्यग्दर्शन का अंग है प्रभावना।

रोज पूजा करता था, फिर आना बन्द कर दिया। क्यों? दो दादा पूजा के समय लड़ रहे थे। अरे! बाद में एक दूसरे को समझा लेना। मंदिर में छोटे-छोटे बच्चों के समाने झगड़ना मत। वह कहते हैं कि यह क्या धर्म है इनका? आपसे नहीं, हमारे पास सब बोल जाते हैं। और तो क्या, माता-पिता की भी शिकायत कर जाते हैं कि पिताजी गुटखा खाते हैं, महाराज! त्याग करवा दो। छोटे बच्चे को भी अच्छा नहीं लग रहा तुम्हारा गुटखा खाना। तुम्हारे गुटखे से वह प्रसन्न नहीं है।

बंध का कोई साधन है, परपरिणति बंध का प्रबल कारण है। निर्मोही मुनि कैसे होते है? बहन की विडम्बना पर भी आँखे न खोलें। सामर्थ्य नहीं, तो छुपाने का कार्य मत करो। होगा वही। यह मेरी गलती है। सत्यार्थ वही है जो आगम में लिखा है। परीक्षा देने गया, परिणाम भी आ गया, मन कर रहा है कि क्या करूँ। बातें छोड़ो। बनता था तो इतने भोले नहीं कि जानकर नहीं लिखा। कोई जीव कहे कि जानकर नहीं किया। नहीं चाहते थे तो गलती हुई कैसे? जानकर घर बसाया, कि अज्ञानता में बसाया? जानकर किया है, तो बंध भी होगा। जानकर ही घर से निकलना भी पड़ेगा। यह नहीं कहना कि काललब्धि। होनहार आ जायेगी तो मुनि बन जाऊँगा। ये पुरानी बातें हैं। संज्ञी हो, पंचेन्द्रिय हो, जाग्रत हो, पर्याप्तक हो, कर्मभूमिया हो, यही तो काललब्धि है। अब कहो धीरे-से कि पुरुषार्थ नहीं चल रहा। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'सिद्धि' में काललब्धि की परिभाषा की है।

ऐसे मुनि को नमस्कार करो। गात्र-मात्र परिग्रह धारी, धरती के देवता! नमोस्तु! मुझे मोक्ष की भी आकांक्षा नहीं। सच्चे मुनि बन जाओगे तो मोक्ष तेरी मुट्ठी में है। मोक्ष से मोक्ष नहीं होता, मुनि बनने से मोक्ष होता है। मोक्ष से तो मोक्ष है ही। तभी तो तुम संसार में दिख रहे हो। मोक्ष से तुम्हारा मोक्ष न होता तो संसार में होते क्या? मोक्ष तभी होगा जब मुनि बन जाओगे। ये पण्डित जी ऐसे हैं कि पहले बिजली, फिर बादल जैसे गरजते हैं। सुनने के बाद समझा कि तुम्हारा मोक्ष से मोक्ष चल रहा है, सिद्धों का संसार से मोक्ष चल रहा है। खेल शब्दों का है। जिसे रस्सी/सांकल नहीं बांध पाती, उसे शब्द बांध देते हैं। सारा जगत शब्दों से बंधा है। साधु ऐसे बनों कि असंयम से बचो।

ज्ञानस्वभावी मानते हैं आत्मा को। उस ज्ञानस्वभावी आत्मा से जो अन्य द्रव्य है, वह पर द्रव्य है।

ऐसे जित-मोही साधु परमार्थ को जाननेवाले हैं, वे कहलाते हैं जितमोही। आत्मा का प्रबल शत्रु मोह है।

मोहेन-संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्पादार्थानां, यथा मदन-कोद्रवैः ।। 7 इष्टो. ।।

मादक कोदों को खाने वाले को, यानि मद्यपायी को विवेक नहीं रहता। मोही को भी धर्म का विवेक नहीं रहता। निश्चय की बात नहीं कह रहा। ज्ञानी! व्यवहार का धर्म इतना कठिन है, निश्चय तो बहुत बड़ी बात है। व्यापार के काल में कोई व्यक्ति आ जाए, अच्छी दुकान चल रही हो, सच बताना, कैसा लगता है? बातों में मन लगता है क्या? विद्यार्थी पढ़ने में मन लग रहा हो, कोई आ जाए, तो बातें करता है क्या? विद्यार्थी जैसे परीक्षा की तैयारी करता है, ऐसे-ही मुनि भी प्रतिक्षण आत्मपरीक्षा की तैयारी करता है। मेरे जीवन में प्रतिक्षण, प्रतिपल एक-एक परीक्षा होती है। गाँव-गाँव में परीक्षा, घर-घर में परीक्षा देनी पड़ती है। आप भोजन करते हो, कितने लोग देखने आते हैं। आपको लगता है कि आहार हो रहा है, पर शुद्ध परीक्षा है। ये परीक्षा परिणाम आज मस्ती से, मोहल्लों में खोलते हैं। साधु की चलते-फिरते, उठते-बैठते, देखते परीक्षा होती है। बातें करते-करते परीक्षा होती है। शब्दशैली कैसी है? झुकाव किस ओर है? श्रावक सब समझते हैं, सब आचार्य हैं। आप क्या परीक्षा दे पाओगे? आपकी स्नातक की डिग्री सामान्य है। यह स्नातक डिग्री पाने पता नहीं कितने भव लगेंगे। तैयारी चल रही है। तब-तक पढ़ाई बन्द नहीं होगी जब-तक केवली नहीं हो जाऊँगा। बहुत अच्छा है, आज हो तो इतना सोचने को मिलता है। आपको लगता है। कि आपको सुना रहे हैं। ये बातें आपके पक्ष की हैं क्या? एक भी नहीं हैं। कुए में झाँक कर बोलो, क्या सुनाई देता है? वीतरागी तपोधन उपदेश भी ऐसे देते हैं कि प्रतिध्वनि स्वयं सुनाई दे। मैं ऐसा हूँ कि नहीं? परमार्थ से जानते हैं।

यहाँ पर मुनि के सामर्थ्य से प्रकट हुए भावों के द्वारा स्थिर हो जाओ। समझ में तभी आयेगा जब उपयोग एक जगह होगा। कार्य कारण विपर्यास करोगे तो किंचित् भी समझ नहीं आयेगा। कलम हाथ में दे दी जाए, उससे कान खुजायें। कलम के साथ व्यभिचार कर रहा कि नहीं? यह कार्य-कारण विपर्यास है। ज्ञानावरण कर्म का बंध होगा। समयसार चल रहा है, बातें करोगे तो कार्य-कारण विपर्यास। जिस काल में जो काम कर रहे हो, उसमें तन्मय हो जाओ। जो समझने का विचार लेकर आयेगा, तो समझेगा, दूसरा काम नहीं करेगा। भाव्य-भावक भाव कठिन है। ध्यान दो, भावक तो भावक है, भाव्य नहीं है। कारक हेतु और ज्ञायक हेतु। नेत्र इन्द्रियाँ कारक हेतु हैं, ज्ञायक हेतु नहीं। हम आँख से देखते तो हैं, पर आँख देखती नहीं है। कारक हेतु देह है, ज्ञायक हेतु आत्मा है। ज्ञानी! ये 5 इन्द्रिय विषय, जिसमें मोहित हुआ प्राणी क्लेश करता है, दोष इन्द्रियों को देता है। जो व्रत पालन नहीं करते, कहते हैं कि इन्द्रियाँ परेशान करती हैं। नहीं, इन्द्रियाँ कारक हैं, ज्ञायक नहीं। इन्द्रिय वश करो, यह भाषा स्थूल

है। आत्मा को वश करना चाहिए। हे आत्मा! तू आत्मा को ही वश करना। ज्ञायक हेतु है, कि कारक हेतु है? जीवन में ये शब्द पहली बार कान में पड़ रहे हैं। पता तो चले कि जिनवाणी के शब्द पड़ रहे हैं, कितने मनोहर हैं। कारण हेतु है, इन्द्रियाँ कर्ता हेतु नहीं है।

जब आचार्य महाराज बड़े-बड़े विद्वानों से बातें करते थे, तब हम चेहरा देखते थे। हे ज्ञानी! समझ नहीं आ रहा कि तू श्रेष्ठ है। किस चेहरे को करके, क्या कहा जा रहा है।

भावक और भाव्य। भावक-करण है। भाव्य-क्रियाभूत कर्ता है। यह परद्रव्य, पर इन्द्रियाँ भावक हैं; आत्मा भाव्य है। अज्ञानी जीव भाव्य-भावक में भेद नहीं कर पा रहा है। सुनो ध्यान से। अच्छा लग रहा है क्या मौसम अच्छा है? किसे अच्छा लग रहा है। मौसम तो मौसम है। स्पर्श इन्द्रिय से वेदन किया। मौसम इन्द्रियाँ और तू वेदक, एकभूत होकर अनुभव में आ रहे हैं, जबकि तीनों भिन्न थे। संकर दोष चल रहा है। बुद्धि में संकर चल रहा है। समयसार ग्रंथ और सिद्धांत ग्रंथ एकसाथ विराजमान कीजिए। एक से बंध निहारिये, एक से बंध स्वभाव को निहारिये।

एक कह रहा कि परिणाम कितने सूक्ष्म, बंध हो रहा है।

एक कह रहा है कि बंध कैसे हो रहा है?

भाव्य-भावक भाव में अभेद दृष्टि, यही मिथ्यादृष्टि है। अमृतचन्द्र स्वामी की टीका की शब्दावलियाँ भी कठिन हो चली हैं। यह निश्चय स्तुति है। पढ़ने/सुनने वालों, समझने वालें को इतनी कठिन लग रही है तो इस निश्चय स्तुति की अनुभूति खेलते-खाते नहीं होने वाली। लक्ष्य ही नहीं, तो प्राप्त कैसे? निश्चय की भावना ही नहीं, तो निश्चय की प्राप्ति कैसे? कब सोचा '**ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम्, परमानंद स्वरूपोऽहम्।**

मैं ज्ञायकस्वभावी हूँ। समय ही नहीं है तुम्हारे पास। कितने भी विकार भरे हों, बैठ जाना। मैं विकारभाव रहित हूँ। आत्मा अविकारी है। विकार विकार्य है। विकार निज कार्य नहीं है। कहता है कि समय ही नहीं मिला। उल्टा किया। जैसे ही समय मिला, विकारों को समय दिय। भीड़ में ठीक-ठीक रहा, एकांत में गया तो पाप में डूब गया। जीवन को बनाने या बिगाड़ने का एक ही स्थान है, एकांत। भगवान एकांत में बनते हैं, पापी भी खोजता है एकांत। एकांत में पाप करता है। जीवन बनेगा एकांत में। स्वयं में चिंतन/वार्ता एकांत में ही होती है। बिगड़ोगे भी तो भी एकांत में। परिपूर्ण सोचने के लिए समय मिल जाता है पाप करने के लिए। एकांत में गुटखा खाना सीखता है। बोलो, कब-कब चिंतन किया? ठीक है, महाराज! आप आ गए तो मैं यहाँ बैठा हूँ। आप नहीं होते तो हम भी यहाँ नहीं बैठते। 'समय' के लिए समय ही नहीं है। परसमयों के लिए पूरा समय है।

ज्ञानी! सामायिक में कुछ कर लिया करो। पाँच मिनिट भी कर लिया करो। शक्ति कम नहीं होती। चिंतन कर लिया करो कि मैं अविकारी हूँ। कितने सुन्दर शब्द प्रयोग कर रहे हैं आचार्यश्री। इससे भिन्न करती हुई आत्मा पर भाव के व्यावर्तन से, मोह को हटाकरके, उसको (मोह को) तिरस्कृत कर दो और भाव्य-भावक इन्द्रियविषय जो आत्मा को भावक हैं, आत्मा को भावित कर रहे हैं, इन्हें छोड़ दो। 'महाराज! क्या करूँ? कोई कुछ कह दे तो भाव बिगड़ जाते हैं। क्या करें? पुराने संस्कार हैं।' तुझे कोटि-कोटि धिक्कार। पुराने संस्कार कहके संतुष्ट हो रहा है। 'क्या करूँ, महाराज! भाव बिगड़ जाते हैं।' स्वीकार कर क्यों रहे हो? कल आहार देने आना। जो मुझे नहीं लेना तो अंजुलि बन्द कर लूँगा। देने की ताकत किसी की नहीं। जैसे आहार में अंजुलि बन्द कर लेते हैं, तो बातों में कर्ण-अंजुलि बन्द क्यों नहीं करते? क्यों प्रेम से पी रहे हो? पर की अशुभ बातों को भी प्रेम से पीते हो। महाराज! जगत ऐसा ही है। अब समझो। 32वीं गाथा की टीका में अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं। मुनिराज ऐसे बैठ जायें तो परेशान हो जायेंगे। क्या करूँ? हिल-डुल भी नहीं सकता। परंतु समझ में आयेगा। मेरी आत्मा का स्वरूप कैसा है? दो संतान एकसाथ उत्पन्न हुई। एक ब्राह्मण, एक शुद्र के यहाँ चली गई। एक मदिरा स्पर्श में पाप, एक मदिरा स्नान से पुण्य मानता है। दोनों का जन्म कहाँ हुआ? दोनों को जाति का भान हो जाए कि जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ है। ध्यान रखो।

व्यवहार पक्ष में लिप्त परभावों की मदिरा में डूबकर संतुष्ट है।

निश्चय यह कि जहाँ जन्मा है, ज्ञान हो जाए, तो परभावों की मदिरा से दूर हो जाये।

इससे कठिन भाषा होगी क्या? परमार्थशून्य व्यवहार तो मोह की मदिरा है। बस ऐसे बैठे रहो 24 घण्टे। स्वयं सुनने, स्वयं सुनाने वाला हो, तब बैठो। ग्रंथों, निर्ग्रंथों का अवलंबन भी परभाव है। दोनों के आलम्बन से रहित होकर बैठना, इसका नाम सच्चा निर्ग्रंथ है। न हिलने, न डुलने को स्थान है। हिले-डुले तो आस्रव है। पलक झपकते तब-तक आस्रव है। काययोग की भी स्थिरता नहीं है। मोह अलग हो जाए तो सब समाप्त हो जाये।

भाव्य-भावक भाव। निज भाव्य-भावक का एक होना स्वीकार है। पर भाव्य-भावक में एकत्वपना लिए है, वह संकर दोष है। जितना ये लिखा है, उतना मैं बता नहीं रहा, क्यों? शब्दों में शक्ति नहीं है। मैं तो आनंद लूट रहा हूँ, पर बता नहीं सकता। शब्द क्षीण हो चुके हैं। जो स्वरूप है, उसका परिपूर्ण कथन शब्दों के द्वारा संभव नहीं। मुख जो कहता है, नय से कहता है। जो कथ्य है, वह प्रमाण है। तिरस्कार कर दो इसका।

टंकोत्कीर्ण परमज्ञायकस्वभाव पर लक्ष्य करो। विश्व के ऊपर तैर रहा है, जो नित्य ही अंतर में

प्रकाशमान है। स्वतः उद्योत/प्रकाशमान है। स्वतः सिद्ध है, ज्ञानस्वरूपी भगवानात्मा/भगवत्ता वह स्वतः सिद्ध है। उसे क्या सिद्ध करना? तू जैसा है, वैसा ही है। जैसा सिद्धालय में बैठे सिद्ध भगवान । परंतु मोह का संकर भाव है। शैवाल जानते हो? पानी में काई छा जाती है तो पानी दिखता नहीं है। कर्मों के शैवाल में निज ध्रुवात्मा दिखाई नहीं देता। पर प्यास होना चाहिए। पूछ-पूछ कर ताप नहीं करता। भेदविज्ञान से यूँ अंजुलि बना करके पी लेता है। प्यास होना चाहिए। जब तू भूमि के नीचे से पानी निकालना जानता है, तेरा नीर तो बहुत पास में है। जब शक्ति मिल जाए तब खींच लेना। जान तो लो कि भूमि में पानी है। इंजीनियर कैसे श्रीफल हाथ में लेकर पानी खोजता है? ज्ञानी! श्रीफल लेकर देख ले कि तेरी भूमि में पानी कहाँ है। यहाँ इस भूमि में सब जगह पानी है, सूखा है ही नहीं।

पर-द्रव्यों तक के स्वभाव-भाव से भिन्न है तेरी भगवानात्म। परद्रव्यों/परभावों से भिन्न जो आत्मा को देखता है, वही निश्चय से जितमोह है। यह दूसरी निश्चय स्तुति है। इतना ही नहीं, मोह पद के परिवर्तन में 16 सूत्र बनाना। राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, पांच इन्द्रिय। इन 16 सूत्रों पर से दृष्टि हटाना पड़ेगी। जब-तक इनसे भिन्न नहीं, तब-तक भगवत् स्वरूप प्रकट नहीं होगा। इनकी पृथक् व्याख्या करनी चाहिए। इसके अलावा और-भी विचार करना चाहिए।

आज चिंतन करना इन 16 सूत्रों से आत्मा की रक्षा करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज समयसार जी में अध्यात्म की पराकाष्ठा का व्याख्यान किया है। जिस योगी को यह अनुभव में आ रहा हो कि व्याख्यान-व्याख्येय भाव भी विभाव भाव है। जब-तक यह भाव है, तब-तक बंधभाव है, आस्रवभाव है। लेकिन यह आस्रव परम्परा से निरास्रव का कारण है। इसे ऐसे ही मानकर चलना कि एक पैर में चुभा काँटा है, एक हाथ में लिया काँटा है। दोनों काँटे हैं। काँटे तो काँटे की दृष्टि से हेयभूत हैं। पैर का काँटा पीड़ा दे रहा है, हाथ का काँटा पीड़ा दूर कर रहा है। जो हाथ में काँटा लिए हो, उसे फेंक देना चाहिए कि पैर के काँटे को निकालना चाहिए? जब काँटा निकल जाए तब क्या हाथ के काँटे को जेब में रख लेना चाहिए? अरे! उसने उपकार किया है न? एक आस्रव विषयकषायजन्य होता है, वह कष्ट देता है। एक आस्रव परमेष्ठी की आराधनाजन्य है, वह कष्ट हटाता है। दोनों काँटे छूट जायेंगे। जब-तक बंध दशा से इस संसार में हैं, अशुभ दशा का काँटा निकालने के लिये शुभ दशा के काँटे की आवश्यकता है। पैर का काँटा दूर, तो हाथ का छूट जाएगा। यही निश्चय-व्यवहार है। परंतु काँटे दोनों हैं। आस्रव दोनों हैं।

चारों गतियाँ संसार ही हैं। मनुष्य और देव, इन दोनों को दुलार से निहारते हैं। तिर्यंच, नारकी को दुःखी रूप में देखते हो। पर संसारचक्र की दृष्टि से चारों समान हैं। नारकत्व, मनुष्यत्व सब संसार है। जब-तक भगवत् दशा की प्राप्ति नहीं, तब-तक चक्र चल रहा है। यही भूल कर रहा है। पीड़ा में पीड़ित होता है, किंचित सुख मिला तो संतुष्ट हो गया। जो संसार के सुखों में सतुंष्टि है, वही तो नरक का सेतु/द्वार है। इतना ही नहीं, इतना तक बोल पड़ता है कि मैं तेरे बिना रह नहीं सकता हूँ। अरे! ऐसा क्यों? ऐसा कहो कि तेरे बिना राग पूरा नहीं होता। राग बुलवा रहा है। मैं 'मैं' हूँ, तू 'तू' है। हे रागी! जैसा राग मेरे प्रति है, ऐसा स्वयं के प्रति हो जाए तो स्वयंभू बन जाए। क्यों राग कर रहा है? पर चमड़ी का राग है। गोरी चमड़ी देखकर अनुरक्त हो गया। कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं कि भगवान के चरणों का राग जब संसार का कारण है, तो पर की चमड़ी का राग संसार का कारण क्यों नहीं होगा? परमात्मा के चरणों का राग तो परम्परा से मोक्ष का कारण है। पर चमड़ी का राग तो संसार का ही कारण है। कोई तेरे काम नहीं आयेगा, निज परिणामों की निर्मलता ही तेरे काम आयेगी। जरूरी नहीं कि घर जाकर ही चिंतन करो। यह भी राग की दशा है। वर्तमान में टोड़ी में जन्म हुआ तो स्वयं को टोड़ी का कहता है। पता नहीं कौन-सी पर्याय में कहाँ था। जितने बैठे हैं, बिरले ही होंगे जो शिवपुरी के हों। सब बारे-बारे हैं। बड़े

प्रेम से आपसे पूछता हूँ, जब इस पर्याय में जहाँ जन्में थे वहाँ से चलकर यहाँ आ गए, इस भव में ही बदल गए तो पता नहीं भवों-भवों में कहाँ से आए हो। जहाँ समय मिले भगवान का नाम ले लेना।

ये सब बंध के साधन हैं। भाव्य-भावक भाव पर ध्यान दो, समयसार में आ जाइए। यह मोह भावक है। यह आत्मा भाव्य है। मोह से भावित हुई आत्मा परभावों में लिप्त हो रही है भाव्य-भावक भाव को भूल करके। मैं ही भाव्य था, मैं ही भावक था। पर भाव्य-भावक ने मेरे भाव्य को विकृत कर दिया। बहुत दूर चलना पड़ेगा। उठ ही नहीं पा रहे हो, जबकि चलना दूर है। मस्तक पर एक वजन रखा है। वजन नहीं दबा कर रखे हैं। वह वजन उठने नहीं देता। संत-महंत बनने के बाद भी मस्तक उठा नहीं, तो यहीं रह जाओगे। बहुत दूर चलना पड़ेगा। बुद्धि में आता है कि मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं। यह संपत्ति मेरी है, यह विपत्ति मेरी है। ओहो! विपत्ति को भी अपनी कहता है। मित्र को मित्र कहने वाले बहुत हैं। ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि मैं उससे बोलता नहीं, वह मेरा शत्रु है। इतना राग कि शत्रु में भी मेरापन है। जब तुम्हारे हैं ही, तो शत्रु शब्द हटा दो। प्रेम से कहता है कि वे हमारे शत्रु हैं। 'शत्रु' शब्द हट जाए, मात्र 'तुम्हारे' रह जायें। अहो ज्ञानी! मस्तक उठाइये। यह समयसार है, जहाँ आप बैठे हो उससे बहुत ऊँचा है। मैं भाव्य, मैं ही भावक हूँ। मैंने क्या किया? मोह को भावक बनाया, मैं भाव्य हो गया। यह संकर दोष है। स्वयं की ही राग दशा, मेरी दशा नहीं है। हे ज्ञानी! मीठा बनते देखा कभी? शुद्ध बूरे वाला, शुद्ध शक्कर का। शुद्ध शक्कर को कढ़ाई में डाले है और कह रहा है कि डबरा की शुद्ध शक्कर की मिठाई बना रहा हूँ। शब्द है, तो ऊपर से हटा क्या रहा है? शुद्ध शक्कर थी, तो मैल कहाँ से आ रहा है? मैल शक्कर का ही है। है, तो निकल कैसे रहा है? जो जिसका होता है, उससे अलग नहीं होता।

शक्कर शुद्ध ही है, तो मैल किसका? मैल शक्कर में था कि नहीं? जो अज्ञानी जीव अपने रागादिक भावों को परभाव कहता है, वह भ्रमित है। जो जीव रागादिक को निजभाव कहता है, वह अज्ञानी है। शक्कर शुद्ध होती तो मैल उठा कैसे? शक्कर अशुद्ध होती तो शक्कर घर में रखी कैसे? जो मैल आया है, वह शक्कर में था कि बाहर से आया? आपने शक्कर के मैल को क्या समझा? बाहर से कंकड़ गिर जाए तो दुनियाँ ने कचरा समझा। दाने-दाने में छिपा था कचरा तो दिखा नहीं था। दिगम्बर साधु सीधी कारखाने की शक्कर नहीं लेते। श्रावक घर में फिर से बनाते हैं।

सारे जगत के जीव आत्मा को शुद्धात्मा समझ बैठे। जैसे शक्कर के चमकते दानों में मल छिपा है, रागी आत्मा में राग का मल छिपा हुआ है। जब कढ़ाई में गला, तो उतरने लगेगा। ऐसे-ही ध्यान की अग्नि से चारित्र की चम्मच से चलायेगा, तब पता चलेगा जो राग भाव है, जिसे तू अपना-अपना चिल्ला रहा है। ये मेरा भक्त, यह मेरे पिता, यह मेरा बालक, ये मेरे गुरु हैं। यह सुनना कितना बढ़िया लग रहा

है। भो ज्ञानी! जैसे कारखाने की शक्कर के दाने चमकते हैं, मीठे लगते हैं, फिर भी खटास है। ऐसे-ही मेरे-मेरे के भाव हैं। राग भाव की खटास है। इसे डालो कढ़ाई में, उतरते दिखेगा। रागभाव निज भाव नहीं है। ज्ञानी पुरुष, शक्कर के मल की तरह, राग भाव को भी परभाव कहकर बाहर निकालता है। खरीद कर लाया था तो पैसे शक्कर के साथ मल के भी देकर आया था, अब स्वयं ही कढ़ाई से निकाल कर फेंक रहा है। जब-जब पर्याय धारण करता है, पुण्य के द्रव्य का प्रयोग विषय-कषायों के मैल में भी लगता है। जब तू शक्कर खरीद कर लाया तो थैली में लेकर आए थे कि नहीं? कौन व्यापारी जो थैली मुफ़्त में देता हो? आप लेते हो कि नहीं? शक्कर के तुलने में कागज तुला। यह स्थूल विषय है, दिख रहा है। शक्कर के कण-कण में मल था, तुझे दिखा नहीं।

पूर्व पर्याय के पुण्य से तू मनुष्य बना है, तो शरीर में मल-मूत्रादि मिले कि नहीं? आँखें खोलते ही दुनियाँ कहती है कि पुण्य से पुरुष बना। उसी पुण्य का द्रव्य मल-मूत्र में भी लगा है। और स्पष्ट करूँ? इस भवन में बाथरूम/शौचालय बनाये हैं। मंदिर भी बना है। जिस जीव ने इस परिसर के लिए दान दिया है, वह दान का कण, दुनियाँ कहती है मंदिर में लगा है, पर शौचालय में भी लगा है। जितना पवित्र द्रव्य था, वेदी में लगा है। अपवित्र द्रव्य शौचालय में लगा। प्रसन्न होकर दिया था। जहाँ मल विसर्जित हो रहा है, वहाँ कीड़े उत्पन्न हो रहे हैं, हिंसा हो रही है कि नहीं? मंदिर में दिया मंदिर के लिए कितना लगा? पूर्व पर्याय में तूने पुण्य कमाया था तो मनुष्य बना। माँ के उदर में जब था तभी से तेरे उदर में मल उत्पन्न होने लगा था। ऐसा करो, कम-से-कम, पुण्य का द्रव्य मल-मूत्र में तो न जाए। अब सोचना पड़ेगा। पुण्य तो मात्र अरिहंत का बचता है। जो मल-मूत्र में जाना समाप्त हो जाता है। देखो! यह चिंतन की धारा है। साथ में चलो। वह पुण्य जिसमें सप्त धातु का अभाव हो जाता है, मल-मूत्र समाप्त हो जाता है। यह हमारा शरीर है। जब मैं भोजन करता हूँ तो पूरा भोजन मेरे लिए ही नहीं होता। शरीर में कृमि/कीड़े हैं। तुम खाते हो, तो उन्हें भी मिलता है, परंतु इसमें तुम्हें पुण्यबंध नहीं। तुम उनके लिए नहीं, अपने लिए ही खाते हो। पर कहाँ-कहाँ जा रहा है? अज्ञानी जीव पहले भोजन बिगाड़ता है, फिर भूमि बिगाड़ता है। धन्य हैं अरिहंत परमेष्ठी, जो न आहार करते हैं न निहार। न भोजन बिगाड़ते हैं, न भूमि। नहीं कहूँगा धन मिले। वह दिन कब मिले जब भोजन भी न बिगाड़ूँ, भूमि भी न बिगाड़ूँ। ऐसा दिन आ जाए। यही अरिहंत दशा है। जहाँ न आहार है न निहार।

भाव्य-भावक भाव, जैसे गणित का सूत्र होता है। आप वकील हो न? हर केस के लिए नया न्याय बनाना पड़ता है क्या? पुरानी पोथियाँ देखकर नया केस निपटाते हो। गणित का सूत्र एक होता है, सवाल अनेक होते हैं। प्रज्ञा होना चाहिए। सवाल रटे, वह अज्ञानी है। ज्ञानी छात्र सवाल नहीं, सूत्र रटता है। यह समयसार ग्रंथ अध्यात्म का सूत्र ग्रंथ है, इसे सीखकर अध्यात्म लगाना चाहिए। गम्भीर सूत्र दे दिया

भाव्य-भावक भाव। जैसे शक्कर का मल भावक है, शक्कर भाव्य है। शक्कर के दानों को चाव से खाना। खाना जानते हो तो बताओ स्वाद कैसा? जैसा है, वैसा है। शक्कर मीठी ही है, कि खट्टी भी है? मीठी ही है तो, गुड़, खाण्ड, शक्कर, मिश्री, ये भेद क्या हैं? फिर छोटे दाने की, बड़े दाने की, महाराष्ट्र की, कि डबरा की? तत्त्व को कितने गहरे से समझ पायेंगे। मीठी ही होती है क्या, कि खट्टी भी? दूध मीठा ही होता है, कि क्षारीय भी होता है? दूध भी क्षारीय होता है। शक्कर के मैल को हटाने में समर्थ तो दूध ही है। शक्कर के मल को (खटास को) दूध से दूर करते हो। दूध में भी मैल होता है। बाहर का नहीं, दूध में अंदर मल होता है। जो आत्मा को त्रैकालिक शुद्ध कहते हैं, उन्हें समझाना चाहता हूँ। दूध प्रेम से पीते हो, उसमें भी मल लगा रहता है।

लगता है कि समयसार वही समझ सकता है जो देहात में रहा है। उसे देहाती होना चाहिए। उत्कृष्ट विद्वान हुए तो देहात में ही हुए हैं। आचार्य शांतिसागर गाँव में हुए। आचार्य देशभूषण का गाँव देखा। पहला मुनि जिन्होंने संसद भवन में उपदेश दिया। घर ऐसा है, आश्चर्य करोगे। टूटी-फूटी टपरिया है। सही है, घूरे से ही अच्छी फसल होती है। देशभूषण महाराज उत्कृष्ट साधु हुए।

दूध के मल को किसी ने देखा क्या? पर मल कब निकलता है? आत्मा का मल कब निकलेगा? दूध को दही, मक्खन बना लो तब-तक भी मल नहीं दिखता। नवनीत को अग्नि पर रखा, तब मल निकलता है। यदि वह मही रह जायेगा घी में, तो घी सड़ जायेगा। छोटी-छोटी बातें हमें पता है, तुम्हें पता नहीं। जैसे दूध में मल समझ नहीं आता, प्रक्रिया बढ़ाओ तो दूध में मल निकलता है। हे संसारी! तुम भगवानात्मा-भगवानात्मा चिल्ला रहे हो, जबकि तुम्हारी आत्मा में मल है। ध्यानाग्नि में रखोगे तो कर्मों का मल निकलने लगेगा। पूरा हटेगा तो शुद्ध बन जाओगे।

हे मुमुक्षु! तूने दूध के मल, शक्कर के मल को निकालना सीखा, लेकिन निकालने वाले के मल को निकालना नहीं सीखा तो क्या सीखा? ज्ञानी! गोरस की अंतिम पर्याय घृत है। आत्मा की अंतिम पर्याय सिद्ध पर्याय है। अरिहंत मक्खन हैं, घी नहीं हैं। शुद्ध घी तो सिद्धालय में है। ज्ञानी! आज हाथ धोये कि नहीं? हाथ धो लिए न? साफ हैं न? एक गिलास पानी लाओ, डालो पानी। साफ दिखते हैं, तो साफ हैं क्या? धुले हुए पर भी पानी गंदा हो जायेगा। निहारिए। जो संसार में स्वयं को साफ कह रहे हैं, देखो, पानी से साफ नहीं हो सकते। पुनः-पुनः पानी गंदा होगा। जो साफ होने लायक है, उसकी सफाई नहीं कर रहे। जो साफ होता नहीं, उसे साफ कर रहे हो। नदियों में कितना भी स्नान करो। नारायण कृष्ण से पूछो। तुमड़ी दी थी, पाण्डुपुत्रों ने तूमडी को अनेक बार नहलाया, पर वह कड़वी ही रही। पानी से तूमड़ी की कड़वाहट नहीं निकली, तेरे तन की कड़वाहट क्या निकलेगी?

भाव्य-भावक भाव पर ध्यान दो। मोह, जिसे अज्ञानी आत्मा का स्वभाव कहता है, वह भी पर है। जैसे शक्कर का मैल हटाया जाता है, रागभाव आत्मा का विभाव है। वह भी स्वभाव-भाव नहीं है। इससे स्वयं हटा जाता है, वह स्वभाव नहीं है। शक्कर में मैल की तरह, मोहनीय कर्म का सहकारी कारण होने के कारण आत्मा का स्वभाव-भाव नहीं। आत्मा को मोहित कर रहा है। यह भावक-भाव विभाव है। आत्मा मोहित हो रही है, संकर भाव है। तो भाव्य-भावक स्वभाव क्या है? एक ज्ञान की अखण्ड धारा है, शुद्ध धारा है।

कभी साग खाई? आज दाल बनी थी, कैसी लगी? दाल अच्छी लगी, कि उसमें बघार अच्छा लगा? दाल में तड़का लग जाए तो दाल का रूप बदल जाए। दाल अच्छी लगी, कि तड़का अच्छा लगा? स्वाद किसमें था? बघार में था, तो वही पीना था। समझो! स्वाद किसमें ले रहा है? बघार में, कि दाल में? और उसमें नमक न हो तो? शुद्ध स्वाद चखा ही नहीं। तड़के के मिश्रण में तड़क रहे हैं। शुद्ध दाल का स्वाद कैसा होता है? रागी भोगी ने परभावों को राग को आनंद मान लिया। निश्चयनय की भी भाषा राग की भाषा है। तड़के की भाषा का आनंद लूट रहे हो। शुद्ध दाल का स्वाद चखा ही नहीं। सब मिश्र (संकर) भावों का स्वाद लूट रहे हैं। शुद्ध स्वाद चखा ही नहीं।

आगम में भी संकर नाम का दोष है। संकर, व्यतिकर आदि आठ दोष होते हैं। कथन-कथन में पर कथन मिला दो, संकर दोष हो गया। निश्चय का कथन व्यवहार में, व्यवहार का कथन निश्चय में मिला दो तो संकर हो गया। संकर बीज खाने वाले बेचारे संकर ही करते हो। ज्ञानी! संकरता हटाओ। जड़ी बेचते हो, कि बूटी बेचते हो? सब त्रिफला खाने वाले हैं। न बहेड़े का, न हरड़ का, न आँवले का स्वाद ले पाया। मिलाकर कहता है चूर्ण है। तीनों की सत्ता स्वतंत्र है, वह देखता नहीं। संकर है। ये कहता है, देखो मैं अच्छा लगता हूँ। तन की चमकन को चमकन कहता है। शरीर के गोरेपन को अपना गोरा कहना, संकर है। संकर में अन्य नहीं, मिश्र भाव है। मिश्र भाव कभी आनंददायी नहीं होता। एक ने भी संकर का त्याग किया तो तीर्थंकर बन जाएगा। संकर अर्थात् मिश्र भाव।

भाव्य-भावक संकर दोष का परिहार करके कहते हैं- शक्कर में भी मल है। शुद्ध बूरा खाना सीखो। चरणानुयोग भी तो देखो। आचरण भी देखो। कितनी भी शुद्धि से आई हो, पर फिर भी बूरा बनाना। बुराई निकल गई, उसका नाम बूरा। शुद्ध, संकर दोष रहित, आहार करो। बच्चे बीमार होते हैं, बुराई माताओं की। बच्चे हैं, अटपटे-चटपटे खाने के भाव होते हैं। आप घरपर खिलाओ। जो बच्चा चाट के ठेले पर खड़ा है, तो फोटो खींचना इसकी। माँ को स्वादिष्ट भोजन बनाना नहीं आता इसलिए बेटा चाट के ठेले पर खड़ा है। ऐसा खिलाओ कि बेटा भूल जाए ठेले-मेले। राम सब पाना चाहते हैं, पर दशरथ नहीं बनना चाहते। दशरथ कभी राम को ठेले पर नहीं ले गए। आज तो माता-पिता बच्चों को

ठेले पर भी साथ में ले जाते हैं। राम देखना है तो, दशरथ बनकर तपस्या करनी पड़ेगी। जिन्होंने मोह को जीता है।

ज्ञान की एकाग्रतारूप, शुद्ध-आत्मज्ञानरूप तत्त्व को जानते-मानते हैं, भाते हैं, ऐसे साधु परमार्थ को पाते हैं। ऐसे साधु मोह से रहित है। परमार्थ से कहते हैं, यह द्वितीय स्तुति है। भाव्य-भावक संकर दोष से रहित, यह निश्चय स्तुति है। वह कैसे घटित होता है? भाव्य यानि राग से परिणत आत्मा। भाव्य-भावक भाव शुद्ध जीव के साथ संकर संबंध है। यही दोष है। उस दोष के लिए, सबसे पहले आत्मबल से उसका परिहार कर देते हैं। ऐसा दूसरा भावार्थ जानना चाहिए। राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, पाँच इन्द्रिय विषय, इनको पृथक् करना आवश्यक है। 16 सूत्र हैं, उन्हें समझना चाहिए। और भी असंख्यातलोकप्रमाण दोष हैं।

पर तेरे भाव असंख्यातलोकप्रमाण हैं। कितने प्रकार की चोरी का भाव आता है। बिजली के तारों पर नंगे तार डालता है। क्या यह शासन की चोरी नहीं है? वकालत पर टाइम पर नहीं पहुँचे, लोग परेशान हो रहे हैं, क्या यह चोरी नहीं है? पड़ोस से आटा माँग कर लाए तो ठांस-ठांस कर भर लाए, देने गए तो पोला-पोला दे आए। ज्ञानी! मोह को कहाँ जीतेंगे? 12वें गुणस्थान में। कषाय-क्षय अपेक्षा लगाना। क्षपक श्रेणी अपेक्षा, जितमोह को कहते हैं। बेटे को मिठाई नहीं दी, हाथ घुमाया, हउआ ले गया, उसने डिब्बे में रखते देख लिया। आप मंदिर गए, वह सारी मिठाई खा गया। माँ पूछती है-डिब्बा खाली कैसे? माँ! उस माँ का बेटा हूँ जिसने मिठाई हऊआ को खिलाई थी। माँ! मिठाई हऊआ ले गया।

इस प्रकार और भी असंख्यातलोकप्रमाण स्वभाव जानना चाहिए।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। निश्चय स्तुति ।।

उत्थानिका - आगे भाव्य-भावक भाव के अभाव द्वारा निश्चय स्तुति कहते हैं।

गाथा - **जिदमोहस्स दुजइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।**
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहि।।33।।

अन्वयार्थ - **(जितमोहस्य तु साधोः)** जिसने मोह को जीत लिया है ऐसे साधु के **(यदा)** जिस समय **(क्षीणो मोहः)** मोह क्षीण सत्ता में से नाश **(भवेत्)** होता है **(तदा)** उस समय **(निश्चयचविद्भिः)** निश्चय के जानने वाले **(खलु)** निश्चयकर **(सः)** उस साधु को **(क्षीण मोहः)** क्षीणमोह ऐसे नाम से **(भण्यते)** कहते हैं।

संस्कृत छाया - **जितमोहस्य तु यदा क्षीणो मोहो भवेत्साधोः।**
तदा खलु लाीणमोहो भण्यते स निश्चयचविद्भिः।।33।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने समयसार जी ग्रंथ में निश्चय स्तुति और व्यवहार स्तुति का व्याख्यान करते हुए संकेत दिया कि परमार्थ दृष्टि है निश्चय स्तुति और पर्याय दृष्टि है व्यवहार स्तुति। भूतार्थ से देखें तो निश्चय स्तुति ही प्रधान है। गुणों की प्रधानता से कथन किया तो निश्चय स्तुति पर्याय की स्तुति-व्यवहार की स्तुति। राग-द्वेष आदि 16 स्थानों का व्याख्यान यहाँ बार-बार कह रहे हैं, क्या करना चाहिए? जब-तक इस आत्मा में राग-भाव है, तब-तक भाव्य अशुद्ध है। भावक का प्रभाव भाव्य पड़ रहा है। भावक के लिए भाव्य से भिन्न होने की आवश्यकता है। इस राग ने भाव्य के लिए कितना भावित किया। जैसे रूई पर रखी अग्नि की ज्वाला, रूई को झुलसाने में, प्रभाव दिखलाए बिना रहती नहीं है। राग की ज्वाला आत्मा को विकृत किए बिना छोड़ती नहीं। राग से आत्मा प्रभावित हो रही है। इस भावक के माध्यम से भाव्य इतना भावित हुआ कि अपने यथार्थ स्वरूप को भूल गया। यहाँ आगम कहेगा- भाव्य अहो उन हेतुओं से रक्षा करो, जिन हेतुओं से भावक आप पर हावी हो रहा है। बहुत सारे कार्य भाव्य चहाता नहीं है, पर फिर भी करता है। पर कर रहा है, यह भावक की ही महिमा नहीं, भाव्य की भी कमी है, ढीलापन है। भाव्य चाहता नहीं, फिर भी भावित हो रहा है। कहीं-न-कहीं कमजोरी

है। यदि कोई जीव यों कहे कि गृहस्थी में रहना पंसद नहीं, पर रहना पड़ रहा है। यह जो रहना पड़ रहा है, आपकी कमजोरी है। आप बातें कमजोरी की भाषा में ही कहेंगे। आप ऐसे भी कह सकते हैं कि गृहस्थी बसाई, निभाना पड़ेगा। यह सब राग की भाषा है। जब तू स्वतंत्र है, कि सबकी सत्ता स्वतंत्र है, अब बताइए कि भावक से भावित क्यों हो रहा है? कमजोरी है। माना कि तेरा बेटा मुनि नहीं बनने देता, बेटा तो मुख से कह रहा है कि मुनि मत बनिए। बेटे के राग में मुनि नहीं बन रहे, यह बात झूठी है। तुझे तो मकान से, दुकान से भी राग है जो कभी बोलता नहीं है। सम्मेद-शिखर सिद्धभूमि के दर्शन करने गया था, तुझे वहाँ भी अच्छा नहीं लगा, घर वापस आ गया। भावक से भावित हो रहा है। यह भावक का नहीं, भाव्य का दोष है। जो नगर की सुन्दरता है, वह नगर की सुन्दरता अनेकानेक लोगों के नगरों में बने भवनों, दुकानों से है। अनेक-अनेक विभिन्न तालाब, बगीचे आदि से है। उद्यान हों, बगीचे हों, बावड़ियाँ, तालाब हों, इनसे नगर की शोभा है। एक-एक वस्तु का एक-एक मालिक है। जब शिवपुरी का नाम आये तो वर्णन करता हैं कि मेरी शिवपुरी इतनी सुन्दर है। जबकि प्रत्येक कण स्वतंत्र था। तू तो शिवपुरी का स्वामी नहीं, पर आस्रव चल रहा है। मेरी शिवपुरी सुन्दर, तू कितनी शिवपुरी का है? जब खड़ा होता है दुकान के समाने, तो यही कहता है कि मैं अमुक व्यक्ति की दुकान के सामने था। तब भी कहता है कि शिवपुरी हमारी कितनी सुन्दर है। हे भाव्य! भावक स्वतंत्र था, भावकों से ऐसा भावित हुआ, कि तिर्यंचगति के तिर्यंच में भी राग था। घर के द्वारे बैठने वाले श्वान को भी अपना कहता है। मेरा कुत्ता है, मेरी गाय है ये। तिर्यंच कह रहा है कि मैं अपनी गति में स्वतंत्र हूँ। तू कितनी गतियों की गतियों को अपना मान बैठा है? राग। दूसरा हेतु है द्वेष। जब राग की सिद्धि नहीं होती, तो द्वेष चलता है। ज्ञानी! भगवान से प्रार्थना करना-हे नाथ ! किसी के राग न होने पाए। राग हो गया, राग की पूर्ति न हो पाई, तो द्वेष होगा। कमठ का, पार्श्वनाथ से क्या बैर था? सगा भाई था मरूभूति, कमठ ने उसकी पत्नी के शील को भंग किया। उल्टा शत्रु बन गया।

जो व्याख्या यहाँ चल रही है, इस व्याख्या में जीने की इच्छा है तो न किसी से अधिक राग रखना, द्वेष किसी से भी नहीं रखना और भाषा बदलना। प्रेम भी नहीं रखना। प्रेम तो वासना से ग्रसित होता है। कामना से ग्रसित स्नेह भी राग से ग्रसित होता है। एकमात्र वात्सल्य है, ये अनुराग से युक्त होता है। वात्सल्य भाव तो व्यवहार सम्यक्त्व का अंग है। वह वात्सल्य अनपेक्ष भाव होता। अपेतकेतवा है। अर्थात् माया-धर्म से शून्य है। राग में दृष्टि रहती है कि इनसे हमारे राग की पुष्टि होती है तो हम इनके और ये हमारे हैं। दृष्टि नहीं, तो दूर रहो। वात्सल्य में दूरी या पास नहीं। मैं अरिहंत-भक्त हूँ, तुम भी हो। बस इतना ही संबंध है। कौन किसका? मात्र श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध है।

दूसरा भंग है- द्वेष। जैसे अग्नि प्रज्जावलित होती है, वैसे द्वेष भी। आपके द्वेष की चिंगारियाँ

आपकी आँखों के सामने दिखाई भी देती हैं। तीव्र द्वेष से तो इतनी गर्मी की कि स्वयं को पतंगे उड़ते दिखाई देते हैं। द्वेष में न गुरु-शिष्य दिखाई देते हैं, न भाई-भाई दिखाई देते हैं। इस द्वेषभाव से भी आत्मा भावित हुई है। एक-एक हेतु नहीं, अनेक हेतुओं के कारण संसार में भटका है। जरा-सी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई तो क्रोध आ गया। यह सौपादिक था। जब-जब क्रोध किया, तो पर उपाधि से ग्रसित होकर किया। बहुत सुन्दर सूत्र है- उपेक्षा यानि अपनी स्वतंत्रता को मत खोना। उपेक्षा भाव से जीना सीख लोगे तो कषाय से रक्षा हो जायेगी। उपेक्षा भाव में नहीं जियोंगे, तो कषाय होगी। संबंध स्थापित किया कि परेशानियाँ प्रारंभ। क्रोध-कषाय के आवेश में जब व्यवहार के भवन झुलस गए, तो निश्चय का भवन सुरक्षित कैसे? क्रोध में तन जल रहा है, तो चेतन सुरक्षित कैसे होगा? क्रोध आए तो अपना ही हाथ पकड़ कर देखना। शरीर इतना गरम है। बिजली की बड़ी लाईन देखी। जिनकी आवाज आ रही है। जब आवाज इतनी तेज है, तो स्पर्श करना कितना तेज होगा। अंतरंग में कषाय है तो आत्मा को शुद्धात्मा कहने के पहले उन 16 विषयों पर ध्यान दो। क्रोधकषाय में क्या-क्या नहीं किया? उत्पन्न भी किसने किया? हे भाव्य! तू भावित न होता तो भावक क्या करता? आप भावित हुए कि नहीं हुए? तू भावित हुआ है। भावक की गलती बाद में कहना। चेतन-चेतन तो दूर, तू तो जड़ से भावित हुआ है। तेरे चश्में में एक बालक ने कंकड़ मार दिया। कंकड़ का धर्म था वह चश्में के पार हो गया। काँच का धर्म था, अतः वह टूट गया। तेरा धर्म क्या था? यही समझने की जरूरत है। भिन्न पुद्गल ने भिन्न पुद्गल पर प्रहार किया, तू भिन्न था। जब प्रिय द्रव्य का विनाश होने पर भी क्षमाभाव का विनाश नहीं हो, इसका नाम शुद्ध भाव्य-भावक भाव है। यह क्रोध तो अंदर जलने वाले अग्नि है। लौ दिखाई नहीं देती। कण्डे की अग्नि है, अंदर-अंदर झुलसा देगी।

मान ऐसा है, मधुर-मुधर स्मृतियों से भरा है। हे मानव! खोखला तो तुझे मान ने किया है। सत्य जानता है, कहना नहीं चाहता। क्यों? मान है। क्या तुझे अपनी गलितयाँ मालूम नहीं हैं? मानकषाय के पीछे गुरुचरणों में आलोचना नहीं कर पाता है। जितनी दूसरी की गलती हैं उससे कई गुनी गलती हम किए होते हैं। हे मान! मैं मर भी जाऊँगा, पर तेरे कारण कषाय को ही प्राप्त होऊँगा, सार नहीं पाऊँगा। करनी करके आता है, बताता नहीं है क्योंकि अभी लोग मुझे अच्छा कहते हैं, फिर अच्छा नहीं कहेंगे। आँख में फुली हो जाए तो मोटा काँच का चश्मा लगाकर छुपा लोगे। आँख से पूछो, फुली है कि नहीं? आँख से पूछना, अपनी आँख से छुप रही है क्या? स्वयं से गलती छुपा नहीं पायेगा। यह मानकषाय दूसरे की गलती को तो बहुत अच्छे से परखता है, अपनी गलती पर बहुत अच्छे से परत चढ़ाता है।

भगवत् स्वरूप को समझना है तो इसे भी समझते चलो। छल-कपट के भाव मन में आ रहे हों तो समझ में नहीं आते क्या? छल-कपट की तीव्रता तिर्यंच गति में हैं। छल-कपट में मनुष्य के भाव

तिर्यंच समान होते हैं। बंध-अपकर्ष-काल आ गया तो द्रव्य तिर्यंच की प्राप्ति हो जाएगी। तिर्यंच का शरीर जब बने तब बने, भाव तो पशु के कितनी बार बन गये? छुप-छुप कर पाप किया है, क्या पाप छुपा सकते हो? छिपा नहीं पाओगे, खुलेगा रहस्य। गुजिया साँचे के अंदर बनती है, पर साँचे में रह नहीं पाती। साँची बात ऐसी है। साँचे में आओगे तो बाहर तो आना ही पड़ेगा। जैसा साँचा होगा, वैसा आकार होगा। जैसा हृदय का साँचा होगा, वैसा तेरा द्रव्य पर्याय का आकार मिलेगा। छोटा पाप तो छोटा, बड़ा तो बड़ा (गुजिया के साँचे की तरह) पृच्छना करो स्वयं से।

लोभ-इसने क्या से क्या कर दिया।

मान का लोभ, सम्मान का लोभ। लोभ ने तो मान, माया, क्रोध सब करा दिया। किसको ज्ञात नहीं कि मैं (स्वयं) लोभ कर रहा हूँ? अपने द्रव्य को खर्च नहीं करना चाहते, परंतु परद्रव्य के हरण का विचार मत कर। लोभ ने स्वयं का द्रव्य संचय किया, पर के द्रव्य का हरण किया, लोभ ने व्यभिचारी बनाया। ज्ञानियों ने मात्र आत्मा-पुद्गल की चर्चा को द्रव्यदृष्टि समझ लिया है। इन भंगे पर भी विचार कीजिए।

जब लोभ में होते हो तो अविश्वास का जन्म होता है। पिता पर बेटा, पत्नि पर पति विश्वास नहीं करते। माँ! क्या सत्य जीवन जिया? पति के घर में पति की जेब से पैसे निकाले हैं। जिसने जीवन, तन, वेतन दिया, उसे तुमने दगा दिया। पैसे जेब से निकाले। ये छोटी बातें हैं, इन्हें लोग पाप नहीं मानते। ज्ञानी! पाप तो पाप है। घर में रखे द्रव्य को उठाकर दौड़े कि नहीं? दौड़े। भले ही मिठाई उठाई, पाप तो पाप है। सोचो, पवित्र जीवन कितने लोगों को मिलेगा? दो लोग पूजन कर रहे थे, थाली में बादाम एक ही थी। पूजन करते-करते बादाम पहले उठाकर चढ़ा दी। पाप तो पाप है। छानो, जो स्वयं को शुद्ध कह रहे हैं, कर्मों से शुद्ध कब होंगे? विषय भिन्न है। कर्मों से पूछिए, तुम शुद्ध कैसे हो? अकेले में मस्ती से बैठा था, कोई दिख गया तो सिकुड़ गया। कितना भोला था। बंध कहता है हम तो 24 घण्टे साथ रहते हैं। किंचित् भी गलत किया, कर्म कहते हैं हम आ गए। क्रोधादि भाव किए, कर्म आ गए। जैसा कर्मबंध हुआ, वैसा नोकर्मबंध हो गया। देश में कितने गोरे, काले, टेढ़े, मेढ़े मुँह के लोग होंगे। उल्टे-सीधे चेहरे वाले लोग मिलें तो ग्लानि मत करना। गुझिया टेढ़ी है, कि साँचा? गुझिया पहले बनी कि साँचा? शरीर तिरछा क्यों? साँचे तिरछे थे तो शरीर टेढ़ा बना। जिनकी दुर्बुद्धियाँ थी, मस्तिष्क टेढ़े थे, आज बुद्धि नहीं चल रही है। इसी पर्याय का इसी पर्याय में देखने को मिल रहा है। मस्तिष्क की नस फट गई। साँची समझना, साँचा सँभाल कर रखना। नोकर्म तो बनी अवस्था है, साँचा तो भावकर्म है। भावकर्म जैसा होगा, नोकर्म वैसा बनेगा

मन से क्या कहना? विषय-कषाय दृष्ट, श्रुत, अनुभूत इनमें ही तो चल रहा है। विषय-कषाय को देखा, तुरंत चिपका। जो देखे, सुने नहीं, अनुभव किए थे, उनकी स्मृतियों में जीवन बेकार कर दिया। सोच-सोच कर शुचिता गई। हे बालक! तू कराटे सीख रहा था, सोच रहा था मैं सीख रहा हूँ, कोई सामने आएगा तो ऐसे कर दूँगा। कर पाए या न कर पाए, कर्म तो कर लिए हैं। कितने कराटे खेलो, आस्रव जारी है। मन! सोचो-सोचो, समयसार चल रहा है। कितना शैवाल है, कितनी कारोंच है इस मन के ऊपर। पवित्र स्थान पर भी पवित्र नहीं रह पा रहा है। परमात्मा बनने कितनी पवित्रता की आवश्यकता है। साधु बनने, इंसान बनने के लिए इतनी पवित्रता की आवश्यकता होती है, तो परमात्मा बनने के लिए कितनी पवित्रता की आवश्यकता होगी? स्वयं खोजिए, अपने लोचन से आलोचना करो।

मल दुर्गंधित है तो मालूम हर शौचालय में सबसे ऊपर मुख खुला होता है। जब अंदर की गैस विकृत हो जाती है। तो मुख से निकलती है। भाषा इतनी दुर्गंधित, तो भाव कितने खोटे होंगे? भावों की अशुद्धि के बिना अशुद्ध शब्द बोलते नहीं हैं। जो देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अशुभ भाषण करता है, उसकी आत्मा मल का पिण्ड बनी हुई है, जो भाषा के रूप में मल-भाव निकाल रही है। बहुत सीखना पड़ेगा समयसार के लिए।

'जिनके वचन मुखचन्द्र तें अमृत झरें'

बर्फ की सिल्ली भी ठेले पर सामने से निकलती है तो शीतलता महसूस होती है। जिसके हृदय में तत्त्वज्ञान समाविष्ट हो, तो शब्दों में मधुर तत्त्व ही झलकता है भाषा निर्मल होनी चाहिए। मौन अधिक रखो। कम बोलोगे तो बचकर रहोगे। अधिक से अधिक मौन रहो। तोता पिंजड़े में क्यों? अधिक बोलता है, नकल करता है। मनुष्य की भाषा में बोला, तो पिंजड़े में है। जगत की भाषा की नकल की, तो जगत के पिंजड़े में बन्द होना पड़ता है। इसलिए अधिक नहीं बोलना। आपको भाषा समझ आ रही है। यह बहुत बड़ी बात है। जो माँ रोटी परोसती है तो घी लगाती है। जरा-सी घी लेती है, चार-चार रोटी चुपड़ लेती है। माँ! घी मैं ऐसी कौन-सी बात कि जरा-सा घी में चार रोटी चुपड़ लेती हो? और बातें इतनी देर से चुपड़ी-चुपड़ी कर रही है। घी तो जड़ है, परद्रव्य है, ये समाप्त हो जायेगा तो कुछ नहीं गया। भाषावर्गणा व्यर्थ में प्रयोग की, तो एकेन्द्रिय वनस्पति बन गए, तो बोल भी नहीं पाओगे। घी जैसे प्रयोग करते हो, ऐसे-ही कम बोलना है। लोग कुछ भी कहें, एक उत्तर देना है। कम बोलोगे तो लोग कीमत करेंगे। अधिक बोलने वालों की कीमत नहीं होती। ढक्कन पैक है तो सब खोलकर देखना चाहते हैं कि अंदर क्या है? ढक्कन खुला है तो कोई देखना पसंद नहीं करता कि क्या है। पड़ा रहता है। आगम में वचन-संयम पर सबसे ज्यादा बल दिया। सत्य व्रत, सत्य अणुव्रत, सत्य महाव्रत, भाषा समिति, वचन गुप्ति। वाणी संयम है, ज्ञानी! तो प्राणी संयम पल जायेगा। प्राणी संयम है, वाणी संयम नहीं, तो पता

नहीं कितने जीवों का घात हो जाये। द्रोपदी से पूछना, वाणी-असंयम के कारण तलवारें उठ गई। मौन ले लेना, पर ऐसा जीभ मत हिलना कि घर का नाश हो जाए। वह सत्य भी सत्य नहीं जिसे बोलने से अनेक के प्राण चले जायें। इसलिए वचन-संयम पर ध्यान देना। वह सत्य 'सत्य' नहीं जिससे सत्य ही ऊपर चला जाये।

काय- सँभाल इसको। धन्य हैं योगी करवट भी बदलना है तो उठकर स्थान एवं शरीर का मार्जन करते हैं, फिर लेटते हैं। इतने में तो नींद ही समाप्त हो जाती है। खुजली होती है तो पहले मार्जन करते हैं फिर हाथ लगाते हैं। यह सूखी लकड़ी नहीं कि जहाँ चाहे लुड़कती जाए। काययोग को सँभालते हैं। आप तो चाहे जहाँ बैठ जाओ। एक दूसरे के शरीर का स्पर्श मात्र भी हिंसा है। कल्पना करो, धर्म क्या होगा? स्पर्श मात्र भी हिंसा है। परम अहिंसा की प्राप्ति कैसे होगी? आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने लिखा-

पुव्वं जो पंचिंदिय तणु-मण वचिहत्थ पाय मुंडाओ।
पुच्छा सिर मुंडाओ सिवगदिपहणायगो होदि।। 76 र.सा.।।

हे योगीश्वर! भस्म लगाकर सिर मुड़ाने से पहले हाथ-पैर, मन-वचन-काय का मुण्डन करो, फिर सिर मुंडाओ यदि शिवपथ का पथिक होना है तो।

श्रोत- ये नहीं खाता, वो नहीं खाता, यह नियम ले लिया। यह भी नियम ले लेना कि यही नहीं सुनूँगा, वह नहीं सुनूँगा। कोई आ गया सुनाने तो हम सुनने बैठ गए। प्रश्न करो। घर में झाड़ू लगाई, कचड़ा टोकरी में रख दिया। क्या वह कचरा आप स्वीकार करोगे? अपने स्वच्छ कमरे में कचरा रखना पसंद करोगे? अपने कक्ष में किसी का कचरा डलवाना पसंद नहीं, तो मनरूपी स्वच्छ कक्ष में पर की निंदा के कचरे को क्यों डलवाते हो? जहाँ चित्त में समयसार रखा है, वहाँ गंदी बातें क्यों? सुनाना है तो तत्त्व की बातें करो। आलोचक कभी प्रशंसनीय नहीं होते। निंदा करने वाला निंदनीय ही है। जिसकी निंदा हो रही है, जरूरी नहीं कि वह निंदनीय ही हो। ईर्ष्यावश भी निंदा कर सकता है।

श्रोत- क्या-क्या नहीं सुना? अतः को उद्वेलित कर दिया। जनसम्पर्क साधुजीवन का शत्रु है। एक चौराहे पर एक मुनिराज ध्यान मग्न थे। दो पथिक निकले। कहते हैं- 'यह अपने देश के सम्राट हैं। जब यह राजा थे तो शासन बढ़िया चलता था, पर बेटे सँभाल नहीं पाये, शत्रु ने आक्रमण कर दिया।' पिच्छि-कमण्डल बगल में रखा है, धर्म्यध्यान में लीन थे, परंतु चक्रव्यूह की रचना प्रारंभ हो गई। अचानक ही हाथ उठा, पिच्छि पर गया। श्रेणिक कहता है- नमोस्तु, महारा। 'धिक्कार; मैं कहाँ चला गया? न शत्रु मेरा, न पुत्र मेरा।' तुरंत मुड़े और क्षण-मात्र में बोधि को प्राप्त हो गए। इसलिए मुनि के पास जाओा तो जोर से कहना 'नमोस्तु', वे सोचेंगे मैं क्या कह रहा हूँ? नहीं, यह मेरा स्वरूप नहीं है।

स्थितिकरण के बहुत भेद हैं। शांतिसागर महाराज के संघ में एक मुनिराज की समाधि चल रही थी। रात में पानी माँगने लगे। आप होते तो कहते पिलाओ पाना। आचार्य शांतिसागर स्वयं पहुँचे-हे क्षपकराज! नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु । 'भगवन्! आप मुझे नमोस्तु क्यों कर रहे हैं? मैं तो आपका शिष्य हूँ।' आचार्यभगवन् कहते हैं- आप समाधिस्थ हैं। रत्नत्रय फल की ओर जा रहे हैं। मैं तो पालन कर रहा हूँ। क्षपक कहते हैं- 'पानी नहीं चाहिए। मिल गई जिनवाणी। गुरुवाणी मिल गई। हो गया पानी।' वचन ऐसे बोले कि सबको आनंदित कर दें। स्थितिकरण भी ऐसे विवेकपूर्वक करो।

नैन- नैन दौड़ रहे हैं, नैनों की दौड़ को वश करो। विश्व को दिखा रही हैं आँखें। बाहर को देखने का यंत्र आँखें हैं। आँखों से भी आँखें न मिलायें, वे ही आत्मदर्शी हैं।

घ्राण- क्या सुगंध क्या दुर्गंध। शरीर से अधिक दुर्गंध कहाँ? इस छोटे-से जीवन में कितने डिब्बे खाली किए पाउडर के? जैसा है, वैसा ही है। अम्मा जब लगाने लगे तब कहना कि ठहरो, मेरा सहज सुन्दरता पर यह असुन्दरता मत लपेटिए। एक घ्राण इन्द्रिय के वश हुए भौंरे से पूछो, फूल में मर गया। सूँघने के चक्कर में दबकर मर गया।

रसना- इसका तो क्या कहना। चटपटा खाने के लिये कितने ठेलों पर जाकर घूमकर आ गया। कितना द्रव्य कितना धान्य विश्व में उगता है, सारा चट कर गया। जिह्वा कितनी मुलायम होती है, सब चला जाता है। इन्द्रियों में प्रबल इंद्रिय है रसना, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत, कर्मों में मोहनीय कर्म, गुप्तियों में मनोगुप्ति है। इन पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य है।

समाधि की भावना है तो रसना पर नियंत्रण अनिवार्य है। अंत समय में स्त्री पसंद नहीं आती, वासना रसना नहीं सताती है। अंदर जा नहीं रहा, पच नहीं रहा, फिर भी खाना-खाना चिल्ला रहा है। आकर खाने में कीड़ा हो गया। सोते हो तो खाना खाते हो क्या? नियम ले लो, जब-तक सोयेंगे, खाना नहीं खायेंगे। सोते-सोते यदि ऊपर चला गया तो खाते-खाते तो नहीं जायेगा। चारपाई पर पहुँच कर खाने का त्याग कर देना। जैन हो, रात्रि में दाना-पानी मुख में रखना नहीं। दुर्भाग्यशाली यह भी नियम नहीं ले सका। आयुबंध हो गया तो यह भी नियम नहीं ले सकता।

स्पर्श- ओहो! यह नरम है, यह कठोर है। जगत को स्पर्श कर लिया, संतुष्ट नहीं हुआ। चर्म का स्पर्श कभी धर्म का साधन नहीं बनेगा। इन 16 स्थानों से आत्मा भावित नहीं है तो समझना भावी भगवान हूँ। अन्यथा भाव्य-भावक भाव है। अंतरंग में झाँक कर देखना। भगवान! कोई सहारा हो न हो, आत्मा का इतना सहारा हो जाए कि इन 16 स्थानों से रक्षा हो जाए।

जिदमोहस्स दुजइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं।। 33 स.सा.।।

वन्दना उन परम योगीश्वरों की जो बंध की बाधाओं से निर्बाध हो चुके हैं। बंध का प्रबल हेतु-सेतु कोई है, तो मोह। यह उस दशा का कथन चल रहा है। न चेला काम आएगा, न चेली काम आयेगी। देह मेरा देह नहीं तो परदेह मेरा देह कैसे? हे विदेही आत्मन्! विदेही होना है तो देह से भिन्न स्वयं को निहारना होगा। देह राग है। यह विदेही हो नहीं सकता। देह में तू बैठा है, तो विदेही कैसे? परमाणु मात्र भी देह में राग है तो विदेही दशा संभव नहीं। 'मैं तो सहन कर रहा हूँ, मेरे बड़े भाइयों का क्या होगा?' बड़े भैया सिद्ध हो गए, तुम बड़े भैया के राग में सर्वार्थसिद्धि में खड़े रह गए। धन्य हो।

माताओं! बताओ, कितने शरीरों का राग है? पति के शरीर की तीव्र चिंता है। बेटे, बेटियों, रिश्तेदारों के शरीरों की चिंता है। तेरी चिंता चिता का कार्य करेगी, चेतन का किंचित् भी कार्य नहीं करेगी। मोह की शक्ति बड़ी है। मेरे बिना कुछ नहीं हो सकता। ये नारी पर्याय, उभय रूप से संसार का कारण है। स्वयं राग में, और तेरे राग में कितने लोग लगे हैं, इनसे इस पर्याय की तेरी श्रेष्ठता है। इनसे रहित आर्यिका माता है जो गर्भ ढोये बिना जगत की माता कहलाती हैं। महाराज! ऐसा लग रहा है कि निकलूँ किस द्वार से? एक द्वार धैर्य का द्वार है, उस द्वार से निकल जाना। श्री को छोड़ जाना, घी को गले से लगाकर ले जाना। साम्यभाव को हृदय में निवास कराना। चले जाना। पीछे मुड़कर नहीं आना । जिन्होंने मोह को जीत लिया है वे 12वें गुणस्थानवर्ती योगीश्वर, मुनि, निर्ग्रंथ, वे क्षीण-मोह साधुपरमेष्ठी हैं।

पूरा समयसार श्रमणों से भरा है। श्रावकों! तुम तो अध्ययन का श्रम करो, परंतु पात्रता श्रमण की ही है, यह निश्चय से जानो। इसलिए, ज्ञानी! निज में बैठकर चिंतन प्रतिपल करो। क्रोध, मान, माया, लोभ क्षीण हो। कामभाव क्षीण हो। क्षीणाभाव भी न हो। क्षीणाक्षीण यह शुद्ध दशा नहीं है। आज चिंतन करना, 16 स्थानों से आत्मा की रक्षा हो।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। प्रव्याख्यान का स्वरूप ।।

उत्थानिका - आगे कहते हैं कि इस तरह यह अज्ञानी जीव अनादि के मोह की संतान से निरुपण किया। जो आत्मा और शरीर का एकत्व उसके संस्कार से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था, सो अब तत्त्वज्ञान स्वरूप ज्योति के प्रकट होने से, नेत्र के विकार की तरह अच्छी तरह उघड़ गया है पटल रूप आवरण-कर्म जिसका, ऐसा प्रतिबुद्ध हुआ, तब साक्षात् देखने वाला अपने को अपने से ही जान (श्रद्धान) कर उसके आचरण करने का इच्छुक हुआ पूछता है कि इस आत्माराम के अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान (त्यागना) क्या है? उसका समाधान आचार्य करते हैं-

गाथा - **सव्वे भावे जह्मा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।**
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं।। 34।।

अन्वयार्थ - **(यस्मात्)** जिस कारण **(सर्वान् भावान)** अपने सिवाय सभी पदार्थ **(परान्)** पर हैं **(इति ज्ञात्वा)** ऐसा जानकर **(प्रत्याख्याति)** त्यागता है **(तस्मात्)** इस कारण **(ज्ञानं)** पर हैं यह जानना ही **(प्रत्याख्यानं)** प्रत्याख्यान है **(नियमात्)** यह नियम से जानना। अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है, दूसरा कुछ नहीं है।

संस्कृत छाया - **सर्वान् भावान् यस्मात्प्रत्याख्याति परामिति ज्ञात्वा।**
तस्मात्प्रत्याख्यानं ज्ञानं नियमात् ज्ञातव्यम्।। 34।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज समयसार जी में अध्यात्मविद्या के अमूल्य रहस्यों को उद्घाटित करते हुए यहाँ सूत्र दिया-

भाव्य-भावक भाव, मिश्र भाव और अमिश्र भाव। मैं ही भावक, मैं ही भाव्य हूँ, यह अमिश्र भाव। राग-मोह के वश हुआ यह आत्मा, मिश्र भाव यानि स्वयं के राग-द्वेष परिणाम स्वयं से हो रहे हैं। व्यवहारनय से जिसे (राग-द्वेष को) जीव का ही विभाव भाव कहा जायेगा। लेकिन निश्चयनय से हे जीव! विभाव भाव भी तेरा निज भाव नहीं है, परभाव है।

विभावपरभाव क्यों है? क्योंकि स्वभाव जो होता है उसका अभाव नहीं होता, परंतु रागादि का अभाव होते देखा जाता है। जिसका अभाव होता है, वह निज स्वभाव होता ही नहीं है। यह रागादि भाव परसापेक्ष हैं। ज्ञानी! यह काषायिक भाव परसापेक्षिक हैं। पर के निमित्त के अभाव में कषाय भाव आता नहीं। यदि कोई यों कहे- मैं तो एकांत में बैठा था, तब भी मुझे कामादि विकार सता रहे थे। वहाँ तो कोई विकार सताने वाला था ही नहीं। ज्ञानी! कैसे नहीं था? कर्मबंध था और वह सापेक्ष था। उसके (कर्म) उदय में विकारी भाव आये हैं, इसलिए विकारी भाव निरपेक्ष भाव होता ही नहीं है और स्वभावभाव परभाव की अपेक्षा घटता ही नहीं है। ज्ञानी! विभावभाव निरपेक्ष भाव नहीं है। स्वभावभाव सापेक्ष भाव नहीं है।

आत्मा में जो विभाव भाव हो रहे हैं, अज्ञ पुरुष कहता है कि यह तो मेरे ही परिणाम हैं। ज्ञानी! तेरे परिणाम अवश्य हैं, परंतु परभाव का संयोग नहीं होता तो अशुभ भाव होते ही नहीं।

'अनादि संबंधे च।' (त.सू.)

कर्मों का संबंध अनादि से है। इतने घुल-मिल गए हो कि उसे भिन्न मानते ही कहाँ। अपनी स्वतंत्र पहचान को पहचान नहीं रहे। प्रतिदिन देवदर्शन, पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन नहीं करना, यह तुम्हारी पहचान है। अन्य कोई तुम्हारी पहचान नहीं है। वेष-भूषा तो सामान्य लोगों के जैसी है। तुम अपनी पहचान मिटा रहे हो। कोई पानी छानते दिखे, तो पहचान होती है कि जैनी है। जैसे आप सावद्य कार्यों में घुल-मिल गए, पहचान तुम्हारी दिख नहीं रही है, ऐसे-ही कर्मों से तुम्हारी आत्मा ऐसे घुल-मिल गई है कि जीव विभावभाव को विभाव स्वीकार कर ही नहीं पा रहा है। भगवती आत्मा में कर्म इतने स्थापित हो चुके हैं कि यह जीव कर्म को भिन्न मानता ही नहीं है। द्रव्यकर्म को तो फिर भी भिन्न मान लेता है, भावकर्म को भिन्न मानता ही नहीं है। ज्ञानी! ध्यान से समझना, बहुत सारे लोगों के मन में प्रश्न आ रहे होंगे कि- 'महाराज! भावकर्म तो आत्मा का ही हैं।' मैं कब कह रहा हूँ आत्मा का नहीं है,

'लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम्।'(18/2 त.सू.)

जो भावेन्द्रिय है, वह भाव आत्मा का होने पर भी आत्मा का स्वभाव नहीं है। यदि भावेन्द्रिय आत्मा का स्वभाव है, तो फिर भावेन्द्रिय की सत्ता सिद्ध भगवान में भी होना चाहिए। हे मुमुक्षु! द्रव्येन्द्रिय तेरा स्वभाव हो ही नहीं सकती है, जब भावेन्द्रिय ही तेरा स्वभाव नहीं है। पर मैंने पूरी पर्याय किस पर नष्ट की? द्रव्येन्द्रिय से विषयों का सेवन किया और भावेन्द्रिय के राग में पूरी पर्याय को नष्ट किया है। इसलिए ध्यान दो, द्रव्यकर्म मेरे नहीं, भावकर्म भी मेरे नहीं हैं। जो मैं होता हूँ, वह मेरे से भिन्न होता

है। पानी को कितना भी उबालना, परंतु उसे गर्म करके रख नहीं सकते। कितनी ही भट्टियों पर खौला लेना, नीचे उतारना, ठण्डा नियम से होगा। ज्ञानी! विभाव जीवंत रहता नहीं, विभाव को शांत होना ही पड़ता है और स्वभाव की त्रैकालिकता का अभाव कभी नहीं होता। पानी जो खौल रहा था, वह सौपादिक था। जो विकार मन में आ रहे हैं, वे स्वभाव नहीं, सौपादिक हैं। जितना शांत बैठ सकते हो, उतना अशांत नहीं बैठ सकते। जितना अविकारी रह सकते हो, उतना विकारी नहीं रह सकते। अविकारी रहने पर पश्चात्ताप नहीं आता पर, एक क्षण को भी विकारी होने पर, दूसरे क्षण शांत होने पर पश्चात्ताप आता है। जब भी गुस्सा आए, गुस्सा शांत होने पर स्वयं पर गुस्सा आती है कि नहीं? 'हाय! मैंने गुस्सा क्यों किया? मैंने अच्छा नहीं किया।' हृदय से पूछो "विकारी भाव पश्चात्ताप का ही साधन है", "अविकारी भाव आनंद का ही साधन है।" इसलिए यहाँ आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं-

जैसे कोई छली पुरुष आ जाए, तो उसका तिरस्कार कर देना चाहिए। जैसे तू तुझे ठगने वाले पुरुष का तिरस्कार कर देता है, वैसे-ही तुझे तेरे विकारी भावों का तिरस्कार कर देना चाहिए। अविकार तो अविकार्य है। विकार तो विकार्य है। अविकार कभी विकार्य होते नहीं। विकार तभी होता है, जब विकार्य होते हैं। विकार किसी के हाथ से होते नहीं हैं, उसे विकारी किया जाता है। विकारित नहीं किया जाए तो विकार्य होते नहीं। कहीं-न-कहीं विकार उत्पन्न कराये गए हैं। बिना विकार उत्पन्न कराये किसी के हाथ से विकार्य होते नहीं।

ध्यान दो! द्रव्यकर्म पर, नोकर्म पर तो हर व्यक्ति की दृष्टि जा रही है, पर भावकर्म भी तेरा स्वभाव नहीं है, इस बात को समझिए। क्या अब कह पाओगे 'महाराज! मैंने किसी की कन्या को देखा ही नहीं, किसी पुरुष को देखा ही नहीं?' फिर विकार क्यों आ रहे हैं? हे ज्ञानी! बिना सौपाधिक दशा के विकार आते नहीं। तूने देखा नहीं है, यह तू आँखों की बात कह रहा है, आत्मा की बात नहीं कह रहा। जो विकार आ रहे हैं, मन में, उनके पीछे भावकर्म, द्रव्यकर्म रखे हैं कि नहीं? तो जब परवस्तु का राग सता रहा है, छूटोगे कैसे? ज्ञानी! विकार आये हैं द्रव्यकर्म से, भावकर्म में बदल जायें फिर भी अपने पुरुषार्थ से भावकर्म के अनुसार नोकर्म को मत ले जाना। इसका नाम संयम है। द्रव्यकर्म ने धक्का लगाया, भाव-कर्म बिगड़ने लग गए। भावकर्म बिगड़ भी जाएँ, तो नोकर्म को नहीं बिगड़ने देना। नोकर्म को सँभाल लेना। नोकर्म सँभल गए तो भावकर्म को ठण्डा होने में देर नहीं लगेगी। तुझे गुस्सा आ रही है, हे ज्ञानी! गुस्सा आई, भावकर्म बिगड़ चुका है, चेहरा तमतमा रहा है, द्रव्यकर्म भी आ रहे हैं, जा रहे हैं, सबकुछ हो रहा है, लेकिन नोकर्म को थोड़ा दूर रखना, यानि-शरीर को थोड़ा दूर रखना। तमतमा रहा है, सँभल जायेगा, लेकिन हाथ चल गए, तो ठीक होना कठिन हो जाएगा। उत्कृष्ट यह है कि भावकर्म को ही पकड़ कर रखना और यदि भावकर्म खिसक जाए तो नोकर्म को पकड़ कर रखना।

भावकर्म का स्खलित होना एक अतिचार हुआ, लेकिन नोकर्म ही चलायमान हो गया तो अनाचार हो जायेगा।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की दृष्टि अद्भुत है। यह 33वीं गाथा की व्याख्या कर रहे है, भूमिका समझना, जब तत्त्व में इतने गहरे बैठता है योगी, जैसे कोई विशाल समुद्र में डुबकियाँ लगाये बार-बार, तब कहीं उसको एक-दो मोती मिलते हैं। ऐसे-ही साधक अपने जीवन में अनेक बार अपने अंदर में गहरी डुबकी लगाये, तब कहीं कदाचित् एक-आध सेकण्ड की, असंख्यात भेद प्रमाण काल तक, सुख की अनुभूति का माणिक्य प्राप्त होता है।

पन्ना में हीरे निकलते हैं। बड़े-बड़े कुए जैसी खदानें हैं, खोदने वाला मशीनें लगाता है। बड़ी-बड़ी चट्टान तोड़ता है। कभी कहीं विशाल खदान में एकाध छोटा-सा हीरा निकलता है। जैसे आप अनाज बीनते हो, ऐसे बेचारे अनेकानेक कंकड़ बीनते हैं, तब कहीं कदाचित् एक हीरा मिलता है। एक कंकड़ (हीरे) के लिए कितनी खुदाई करनी पड़ती है। ऐसे-ही रत्नत्रय की आराधना करते हुए साधक कितनी बार ऊँचा कितनी बार नीचा होता है। परिणाम ऊपर-नीचे, घड़ी के पेंडुलम की तरह, होते रहते हैं। तब कहीं एक-समय-प्रमाण भी जो स्वानुभूति का हीरा स्पर्श कर लेता है, बस, समझ लो कि अब मोक्ष होगा-ही-होगा। सम्यक्त्व की कणिका मिल गई तो एक-समय-प्रमाण भी तो समझ लो, अर्द्धपुद्गल परावर्तन के अंदर नियम से मोक्ष होगा। इस समयसार ग्रंथ को सुनते-सुनते, भावों में तारतम्यता बनती है। ज्ञानी! झूला झूले कभी? बिजली के झूले पर ऊपर जाते समय कैसा लगता है? वह अनुभूति तो झूले पर चढ़नेवाला जीव ही ले सकता है। ऐसे-ही रत्नत्रय के झूले पर चढ़नेवाले जीव की अवस्था वह होती है, जब ऊपर चढ़ते हैं, तो क्या अनुभूति होती है और जब झूला नीचे आता है, तो कितना डर लगता है। बस, गुणस्थान नीचे गिरता है तो कैसा लगता है? वह तारों को झूला है, यह बिन तारों का झूला है। परिणामों की दशा है। इसलिए भाव्य-भावक भाव में जो भावकर्म है। मोह आदि परिणाम जिनके हैं, वे भी तेरे स्वभाव नहीं हैं। और सिद्धांत क्या बनायेंगे? 'जिनका अभाव होता है, वे स्वभाव होते नहीं और जो स्वभाव होता है, उसका अभाव होता नहीं।'

अग्नि का स्वभाव उष्णता है, वह उष्णता से रहित कभी होगी नहीं। जल का स्वभाव शीतलता है, वह शीतलता से रहित कभी होगा नहीं। कितना भी खौला लो, समय पर ठण्डा हो जाता है। कोई कषाय करते, पाप करते दिख जाए, उसको देखकर अपने परिणाम खराब करना नहीं। यही विचार करना कि बेचारे का अशुभ कर्म का उदय चल रहा है। इसलिए खोटे कर्म कर रहा है, जब पुण्योदय आयेगा तो यही अशुभ करने वाला जीव जो अशुद्ध हैं उसे शुद्ध करके सिद्ध बना देना। इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव को भी गाली मत देना। मिथ्यात्व हेय तो है, पर तुम्हारी गाली लगने वाली नहीं है।

विभाव हेय है, पर गाली देने लायक नहीं है। किंचित भी उपादेय नहीं, पर फिर भी गाली देने लायक नहीं। क्यों? मिथ्यात्व तो हेय है ही, पर गाली देना उपादेय नहीं। वाणी को मिथ्या क्यों कर रहे हो? वचन गलत बोल रहे हो, वह भी असत्य है। अशुभ सुनने से, राग-द्वेष में, जिसकी दृष्टि में विकार भाव न आते हों, उसका नाम तत्त्वज्ञानी है। शुभ-अशुभ में, सम्यक्-मिथ्यात्व में, दुःख-सुख में जिसे क्लेश भाव न आता हो, ज्ञायक-भाव आता हो, हेय-उपादेय का भाव आता हो, उसका नाम सम्यग्ज्ञानी है।

ज्ञानी! यदि तुझे काँटा चुभ गया और तुझे काँटे पर गुस्सा आया है, कष्ट काँटे ने दिया क्या तुझे? काँटे पर ये जो गुस्सा कर रहा है, तो गुस्सा करना चाहिए कि नहीं? यदि गुस्सा कर रहा है, तो काँटा तो चुभा ही है, पर तू काँटे से बड़ा काँटा। काँटा तो जड़ है, उसे क्या पता। सावधानी तुझे बरतना चाहिए, कि उसे? उसने अपना धर्म नहीं छोड़ा, उसका काम तो चुभना ही था। यदि तुम देखकर नहीं चले, तो दोष तुम्हारा है और अब यदि गुस्सा भी कर रहे हो तो यह प्रमाणपत्र दे दिया कि जड़ पर गुस्सा कर रहा है। ज्ञानी! पूर्व में बंध किया तो काँटा चुभा, अब पुनः बंध हो रहा है, तो न जाने और कितने काँटे तुम बुला लोगे। सम्यग्दृष्टि जीव तो जीर्ण कर्मों की निर्जरा करता है, अभिनव कर्मों को निमंत्रण नहीं देता, उसका नाम ज्ञानीजीव होता है। हम ऐसे अज्ञानी कि जरा-सी विषमता आई तो लाल-पीले हो गए। वह जीर्ण कर्म तो उदय में आया ही था, अभिनव को और बुला लिया, सो आगे की तैयारी करो। क्यों ज्ञानी! गुस्सा आता है न? नहीं आनी चाहिए न? उससे बोल देना कि अब नहीं आना। गुस्सा करते-करते यह पंचमकाल में ले आया, अब उससे कहना कि अब कहाँ ले जाना है? कितनों को छटवें काल में जाना है? नहीं जाना चाहते तो अभिनव कर्मों को निमंत्रण मत देना। उन अभिनव कर्मों का जन्म बड़े प्रेम से होता है। भावकर्म ही तेरे मचल जाते हैं तो द्रव्यकर्म अपने आप आ जाते हैं। इसलिए आचार्यभगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं- धन्य हों परम योगीश्वर। 12वें गुणस्थान में पहुँचे, अहो-अहो, पहले गुणस्थान से चढ़ने में कितना श्रम करना पड़ता है और 11वें गुणस्थान को लांघ कर 12वें में कैसे पहुँचे और अब वापस नीचे कभी नहीं आयेंगे। उस जीव से पूछना कि चतुर्थ गुणस्थान में कितने-कितने श्रम करके पहुँचा और फिर 10वें गुणस्थान तक पहुँचकर 11वें में पहुँचा और वापस नीचे आ गया।

हे परिणाम! इस जगत में कोई सबसे बड़ा शत्रु है तो तुम ही हो। 11वें गुणस्थान का स्पर्श किया हो, उस योगी की स्थिति को तो निहारो। ज्ञानी! चट्टान सिर पर उठाकर कहीं पटक आना सरल है, परंतु मन के परिणाम एक समय के लिए भी अच्छे रखना कठिन है। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि कैसे आप इस काल में घर से निकल कर यहाँ आये हो। यहाँ आने के लिए इतनी व्यवस्था करके आये हो, तो जो 11वें गुणस्थान में पहुँचा होगा उसने कितनी व्यवस्था की होगी? फिर भी ध्यान रखना, भले ही

वापस पहले गुणस्थान में आ जाए लेकिन, हेय नहीं है। कोई नेता 3-4 बार हार जाए, फिर भी रुकता नहीं है क्योंकि सबसे परिचय तो हो ही जाता है, एक दिन मौका पाकर जीत भी जाता है। ऐसे-ही जिसने 11वें गुणस्थान का स्पर्श किया है, धन्य है वह योगी। विश्वास रखना, चन्द समय में वह शिवालय की यात्रा करेगा। भ्रम निकाल देना। यथार्थ बताऊँ, समयसार के सामने यह सब बातें फीकी लगती हैं। आना मत छोड़ देना, आप तो अपनी शुभ क्रियायें जारी रखना। पर विश्वास रखना, यह एक ऐसा ग्रंथ है जो सीधा स्पर्श करता है और बीच के सब भावों को शून्य कर देता है।

सीधा कोई श्रावक मुनिदीक्षा ले सकता है कि नहीं? मुनि बन जाता है, भ्रम निकाल देना। क्रम से चलना चाहिए। यह तुम्हारी शक्ति की पहचान है। इसका मतलब यह नहीं कि क्रम से ही चलना चाहिए। इधर समरभूमि में युद्ध किया, उधर विरक्ति आ गई, हाथी पर बैठे-बैठे केशलुंचन हो गए। राजा मधु। हे ज्ञानी! जब धनुष-बाण चला रहे होंगे, तो कितने क्रूर परिणाम रहे होंगे? परंतु समय कैसे बदल गया? प्रथम गुणस्थान से सीधा 7वें गुणस्थान का स्पर्श करता है जीव और दूसरे समय, ज्ञानी, कैवल्य को प्राप्त करता है, कहो तीसरे समय में निर्वाण को प्राप्त कर ले सीधा समयसार को स्पर्श किया और फिर नीचे देखा ही नहीं। ध्यान रखना, ज्ञानी! घोड़े की आँख में पट्टी लगाकर रखना। धन्य हो आपको, सबकुछ मालूम है। घोड़ा इधर-उधर दौड़ेगा तो दुर्घटना हो जायेगी। सीधा देखे तो मार्ग प्राप्त कर लेगा। ज्ञानी! इधर-उधर देखा तो दुर्घटना हो गयी। ओहो! समयसार तो रोड़ पर लिखा है-

'दृष्टि हटी, दुर्घटना घटी।'

मुमुक्षु! दृष्टि हटी, दुर्घटना घटी। बस पढ़ लिया था।

यह निश्चय स्तुति चल रही है। एक-एक पंक्ति में आचार्यभगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कितना तत्त्व उड़ेल देते हैं। ज्ञानी! आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की एक-एक पंक्ति बहुत बड़ी सीढ़ी है। इतना विषय भरा है कि चिंतन करने समय मिल जाए तो फिर समय ही नहीं बचे।

यहाँ, निश्चय से, पूर्व के कथन की अपेक्षा से, मोह का तिरस्कार करके, जैसे-तुम अपने अनिष्ट का तिरस्कार कर देते हो, वैसे। ज्ञानी! सत्यता यह है कि तुमने मोह को कभी अनिष्ट माना ही नहीं। द्वेषरूप मोह को तो दुनियाँ अनिष्ट मानती है पर, रागरूप मोह को तो अनिष्ट नहीं मानते। मोह के अभाव में किसी को शत्रु या मित्र कहा जा सकता है क्या? यथार्थ समझना, शत्रुरूप मोह को तो हेय बोला, मित्ररूप मोह को उपादेय माना, जबकि दोनों हेय ही थे। बंधक दोनों हैं। समझिए-पुण्य-उदय को शुभ और पाप-उदय को अशुभ कहते हो। ज्ञानी वही है जो पुण्य-पाप उदय दोनों को हेय मानता है। देखो, समयसार दोनों को हेय मानता है। श्रद्धापूर्वक दोनों को हेय नहीं मानेगा, तो यह मुझे भी मालूम है कि

दोनों में महान अंतर है। एक इन्द्रिय-सुख-रूप, एक इन्द्रिय-दुःख-रूप फलित हो रहा है। पर मुमुक्षु! दोनों से संसार ही बढ़ रहा है। सुकृत करने के निषेध से नहीं कह रहे हैं। जो सुकृत के उदय में भोगों में लिप्तता है, वह वह 'किंपाक फल' यानि विष फल है।

सुन्दर दिखता है, पर खाने से मरण कराता है। घोड़े का मल देखा? दूर से कितना चमकता है? पर हाथ मत लगा देना। तेरे साबुन के साबुन घिस जायेंगे पर उसकी गंध नहीं जाती। जैसे घोड़े का मल चमकता है, ऐसे-ही, भावकर्म व द्रव्यकर्म का उदय पुण्यरूप जो है वह लगता तो मधुर है, पर उसका सेवन करने से ऐसी दुर्गंध आती है बंध की, कि तेरी पीढ़ी-दर-पीढ़ी भवों की संतान निकल जाती है, पर दुर्गंध नहीं जाती। इसलिए ही पंचमकाल में आ गए हो।

धन्य हों वे योगीश्वर, जो चमक को न देखकरके दुर्गंध को जान लिया, स्पर्श तक नहीं किया। जैसा उदित हुआ ज्ञानस्वभाव, उससे भिन्न आत्मा को संवेदित करता हुआ, स्पर्शित करता हुआ, मोह को जीतने पर, जब स्वभाव भाव की भावना की सुन्दरता का आलम्बन लेता है, तब मोह की संतान का अत्यंत विनाश कर लेता है। निज भावना के बल से यह योगी मोह की संतान का अत्यंत विनाश कर देता है। हे मुमुक्षु! अब तो आप भाषा समझने लगे हो। करेंच की फली आती है। करेंच की फली का स्वभाव कैसा होता है? तूने करेंच की फली को तोड़ दिया, पर मोह को नहीं तोड़ पाया। करेंच की फली को यदि एक बार तेरे शरीर पर फेर दिया तो बस हो गया काम। न खा पाओगे न सो पाओगे। और हेतु सुनो। पढ़ा-लिखा ज्यादा ज्ञानी, कि घुमक्कड़ ज्यादा ज्ञानी? साधु अनादि से ज्ञानी होते हैं, क्या कारण हैं? घुमक्कड़ हैं, घाट-घाट का पानी पिये हुए होते हैं। घुमक्कड़ का ज्ञान बहुत बड़ा होता है। करेंच की फली के रोम जहाँ झर जायें तो खुजली होती है। भोगों की करेंच की फली लगी है।

बहोरीबंद की ओर हमारा विहार चल रहा था, एक किसान खेत के मेढ़ के पास आग लगा रहा था। मैंने कहा व्यर्थ में अग्नि जलाकर बंध कर रहा है। मेरे साथ जो बालक थे, पूछने लगे 'दादा! अग्नि क्यों लगा रहे हो?' वह बोला-'बेटा! ये करेंच की फलियाँ हैं, नष्ट कर रहा हूँ । जड़मूल से जला रहा हैं।' ज्ञानी! भोगों की करेंच की फली आत्मा को खुजला रही है। उसमें आग क्यों नहीं लगा रहे हो? संसार की सारी विद्यायें करेंच की फलियाँ हैं।

उस किसान से कहा कि जला क्यों रहे हो? मिट्टी डाल दो तो दब जायेंगी।' वह कहता है, 'दिख नहीं रहा? आषाढ़ का महीना है, पानी गिरेगा तो यह अंकुरित हो जायेंगी।' ज्ञानी! इन विषय-कषाय को दबाना नहीं है। उपशम नहीं करना है, जलाना है। इसलिए क्षीणमोह में दबाया नहीं, जलाया जाता है। दबाओगे तो 11वें से वापस आ गया। वे मुनिराज, मोह का अत्यंत विनाश करके, क्षीण मोह होने

पर वही भाव्य-भावक-भाव का अभाव करके, भगवत्स्वरूप टंकोत्कीर्ण भाव को प्राप्त करके, क्षीणमोह हो गए। यह तीसरी निश्चय स्तुति हुई।

जिन्होंने भाव्य-भावक भाव का अभाव करके क्षीणमोह गुणस्थान को प्राप्त किया है, ऐसी भगवती-आत्मा जयवंत हो। तू कहाँ-कहाँ जा रहा है?

'तेरी कृपा से सारे काम हो रहे हैं'

यह व्यवहार की भाषा थी, और गहरे में चले गए तो मिथ्यात्व की भाषा बन जायेगी। जब मात्र 'भक्ति' शब्द अवशेष रहा, तो व्यवहार भक्ति है। जब वह भक्ति साकांक्षित हो गई और साकांक्षता में आकांक्षा की पूर्ति नहीं हुई, तो वही तेरी भाषा मिथ्यात्व कहलाएगी। ज्ञानी! सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं, अतिचार पाँच हैं। उसमें आकांक्षा नाम का अतिचार है कि नहीं? सुनो, सम्यग्दृष्टि जीव निकांक्षित भाव से भक्ति करता है। आकांक्षा अतिचार है। मिथ्यात्व अतिचार नहीं है, परंतु यह भी देखा जाता है- बहुत भक्तिभाव से आप आये और व्यापारी हृदय बनाकर आये कि हे भगवान्! आपकी कृपा से मेरा यह कार्य सिद्ध हो जाए। और मैं आपके मस्तक पर छत्र चढ़ाता हूँ। हे ज्ञानी! इस भावना से आया और छत्र चढ़ाता, लेकिन क्या करे, वर्तमान की क्रिया पुण्यरूप थी। आगम कहता है कि जो तीर्थंकर को छत्र चढ़ाया है, वह तीनलोक का छत्रपति बनता है, लेकिन क्या करूँ, तेरा पूर्व का पाप इतना प्रबल था कि वर्तमान का पुण्य भी फेल हो गया। परंतु तू भावना लेकर आया था, काम नहीं हुआ, तो कहता है- भगवान में कोई शक्ति नहीं। शक्ति होती तो मेरा काम हो जाता। अपने स्वार्थ के पीछे तूने भगवान की अनंत शक्ति पर प्रश्न खड़ा कर दिया। अरे! ऐसा क्यों नहीं कहता- मेरा पाप का तीव्र उदय था, इसलिये काम नहीं बना? इसलिए भक्ति तो करो, कर्मक्षय होंगे, शंका नहीं। यदि राग माँगे, तो राग माँगने के पीछे भगवान की भक्ति कम नहीं होगी। देव यहाँ मुझसे सामने खड़े होकर कहे-महाराज! मैं अभी इस घण्टी को आकाश में उड़ाता हूँ। ठीक है, तू उड़ा सकता है, तेरा वैक्रियक शरीर है। लेकिन फिर भी मैं तुझे नमस्कार नहीं करूँगा। आप करोगे कि नहीं? यदि कहे कि तुझे आकाश में उठा दूँगा, फिर नमस्कार करोगे कि नहीं? सुनो, चमत्कार भिन्न विषय है, मोक्षमार्ग भिन्न विषय है। अन्यथा हे देव! तू देव बना क्यों? सिद्ध क्यों नहीं बना? तेरी देव क्रिया तो हो सकती है, पर तू तीर्थंकर नहीं है। हे देव! तू विक्रिया से चमत्कार कर सकता है, पर मैं उसे नमस्कार करता हूँ जो आत्मा से कर्मों को निकाल ले। हे देव! मेरा शुभाशुभ मेरे कर्मों से होगा, तेरे चमत्कार से नहीं होगा। सीता ने कब कहा था आओ, देव! अग्नि से मेरी रक्षा करो? सीता के शील में ताकत थी तो देवों को भी सोचना पड़ गया कि चलो, शीलवती की रक्षा करनी है। अब यह मत कहना कि शनिवार है तो वहाँ जाना पड़ेगा। अरे ज्ञानी! परिग्रह उतर जाए तो सारे ग्रह उतर जायें। यह कहा जाता है कि धर्म की प्रभावना हो रही है, परंतु सत्य यह

है कि जिनशासन की अप्रभावना हो रही है। धर्म के नाम पर कर्तावाद खड़ा कर रहे हो। हमारा दर्शन कर्तावादी अथवा ईश्वरवादी नहीं, अकर्तावादी है। धर्म के नाम पर तीर्थंकर की नहीं, अन्य की आराधना अधिक की है। ज्ञानी! पुण्यास्रव जिनेन्द्र की भक्ति से होता है और जिसका पुण्य है उसका कोई कुछ नहीं कर सकता।

भगवान के चरणों में आकर यह कहना कि मेरे भूत उतर जायें, यह ठीक है, लेकिन भूतों की पूजा न करें।

भत्तीए जिणवराणं खीयदि जं पुव्वसंचियं कम्मं।
आयरिय पसाएण य विज्जा-मंताय सिज्झंति।। 571 मूलाचार।।

जब कर्मक्षय भक्ति से होगा, तो भगवान की भक्ति क्यों न करें अन्य की क्यों करें? ज्ञानी! आचार्य समन्तभद्र को जो पढ़ लेगा तो ऐसे ही बोलेगा।

देवागमन-भोयान-चामरादि-विभूतयः।
माया-विष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्।। 1 आ.मी.।।

भगवान महावीर स्वामी कह रहे हैं- हे समन्तभद्र! मेरे पास छत्र, चमर आदि अनेक विभूतियाँ हैं, मेरे पास जगत् के सब लोग आ रहे हैं, तुम मुझे नमस्कार क्यों नहीं कर रहे? समन्तभद्र स्वामी कहते हैं- आपका गमन चाहे आकाश में हो, चाहे देव आयें, चाहे चमर आदि विभूति हो, हे नाथ! मैं तब भी नमस्कार नहीं करूँगा। क्यों? हे नाथ! ये विभूति तो इन्द्रजालिया के द्वारा बनाया गया इन्द्रजाल भी हो सकता है। तो क्या मैं इन्द्रजालिया को नमस्कार करूँ?

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।
भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी ने ग्रंथराज समयसार में आत्मा का जो स्वरूप कथन किया, वह अलौकिक है। जब जीव निज ज्ञान को निज ज्ञेय में लगा लेता है, वही ध्रुव विवेकज्ञान है। जीव जहाँ ज्ञान का प्रयोग विषयों में लगा लेता है, यह अविवेक दृष्टि है। गंभीरता से विषय को समझने की आवश्यकता है। सामान्य रूप से देखने पर ज्ञान और विवेक एक-सा लगता है, परंतु ज्ञान तो ज्ञान है। ज्ञान के साथ आत्मा का जो ज्ञायकभाव है, उसके साथ जो परिणतिरूप परिणाम हैं, वे परिणाम ही अविवेकरूप एवं विवेकरूप हैं। ज्ञान मध्यस्थ है, ज्ञान तटस्थ है। ज्ञाता के अंदर ज्ञान का उपयोग करने का जो भाव है, वह जैसा होगा, ज्ञान वैसा कार्यकारी है। यहाँ पकड़ने की आवश्यकता है।

ज्ञान की पर्याय मति श्रुत आदि हैं, यह तो बदलती रहती हैं, परंतु ज्ञान नहीं बदलता, ज्ञाता वही है जिसने अज्ञ दशा में कार्य किया है। अज्ञ और विज्ञ दोनों संज्ञायें किसमें हैं? ज्ञान में नहीं, ज्ञाता में। अज्ञ पुरुष है, विज्ञ पुरुष है। जिस विषय को नहीं जान पा रहा, उस विषय में अज्ञ हो गया और जिस विषय को जान पा रहा है, उस विषय में विज्ञ हो गया। पर ज्ञानी! अज्ञ ही हो विज्ञ हो जाता है, विज्ञ ही तो अज्ञ हो जाता है। क्षयोपशम ज्ञान है, इसमें हानि-वृद्धि होती रहती है। जो बहुत बड़े पण्डित थे, वो भी जीवन में अंतिम दशाओं में अज्ञानी होते देख गए और जो कुछ नहीं जानता था, वह पण्डित बन गया। क्षयोपशम में शक्ति थी, उसकी अभिव्यक्ति का समय आ गया। ज्ञानी! बालक पुरुष है कि नहीं? लेकिन अभी पुरुष नहीं, बालक बोलते हो। परंतु पुरुष जन्म से है। अभी पुरुष नहीं कहा जा रहा क्योंकि बालक है। ज्ञानी! ज्ञान तो आत्मा का ध्रुव त्रैकालिक गुण है, वह आत्मा से भिन्न कभी होता नहीं। बाहर से ज्ञान आता नहीं। जैसे बालक का पुरुषत्व कोई बाहर से लाकर प्रकट नहीं करेगा, वैसे-ही ज्ञान स्वतः प्रकट होता है। निमित्त निमित्तरूप है। उपादान, योग्यता स्ययं की है। विवेक भी परनिमित्तिक नहीं है। सुना! तत्त्व को जानना, तत्त्व का निर्णय कर लेना। विवेक-बुद्धि जागृत होगी। एक व्यक्ति बीमार हुआ, कहता है, मुझे बम्बई ले चलो। एक अन्य व्यक्ति बीमार हुआ, कहता है महाराज के पास ले चलो। एक का ज्ञान कहाँ काम कर रहा था? यहाँ, विवेक काम कर रहा है। जो ज्ञान का उपयोग उपादेय वस्तु में जा रहा है, वह विवेक ज्ञान है और जो ज्ञान का उपयोग हेय वस्तु में जा रहा है, वह वास्तव में विवेक नहीं, अविवेक है। उन दोनों के बीच में जो है, उसका नाम ज्ञाता है। जिसमें यह उत्पादव व्यय हो रहा है, वह ध्रौव्य है।

कोई बालक बदलेगा कि नहीं? क्या बदल ही जायेगा? बदला नहीं ,तो साठ वर्ष का कैसे हो गया? बदल ही गया, तो साठ वर्ष का कौन हो गया? तत्त्व पकड़िए।

'सिद्धिरनेकांतात्'

मिट्‌टी का पिण्ड है, घट बनेगा। मिट्‌टी बदली कि नहीं? नहीं बदली, तो घट क्या है? बदल ही गई क्या? बदल गई होती, तो मिट्‌टी का घट कैसा? मिट्‌टी मिट कर भी नहीं मिटी, इसलिए तो मिट्‌टी है। जिसने इस मत को समझ लिया, तो सारे विकल्प समाप्त।

पर्यायदृष्टि से बदला है, द्रव्यदृष्टि से नहीं बदला है। ध्रुव वही है जिसमें उत्पाद-व्यय चल रहा है। अज्ञानियों ने द्रव्य को पर्याय से भिन्न समझ लिया। यहाँ मिथ्यात्व छा गया है। 'पर्याय अशुद्ध, द्रव्य शुद्ध है' यह कथन आगम-विरुद्ध है, क्योंकि जैसी पर्याय होगी, वैसा द्रव्य होाग और जैसा द्रव्य होगा, वैसी पर्याय होगी। ये अंगुली द्रव्य है, सीधी इसकी पर्याय है। अज्ञानियों ने समझा पर्याय बदलती है, द्रव्य का कुछ नहीं होता, तो द्रव्य को टेढ़ा किए बिना अंगुली की पर्याय व्रक करके दिखाइए मुझे। पर्याय द्रव्य में होती है, कि पर्याय में होती है, कि द्रव्य और पर्याय भिन्न होती है? द्रव्य की पर्याय है, कि पर्याय का द्रव्य है?

पज्जयविजुलुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति।। 12 प.का.सं.।।

द्रव्यरहित पर्याय, पर्याय रहित द्रव्य नहीं होता। ऐसा महाश्रमण अर्हत् भट्‌टारक महावीर ने कहा है। जो कर्मों को भट्‌ट करें, वे ही भट्‌टारक हैं। यदि द्रव्य पर्याय से और पर्याय द्रव्य से रहित हो जायेगी, तो फिर सत् क्या होगा? पर्याय की परिभाषा क्या है? द्रव्य की सभी अवस्थायें पर्याय हैं, यदि आप ऐसा कहते हो, तो फिर यह अवस्थायें कौन-सी वस्तु हैं? अब आप बोल रहे हो कि अवस्थायें यानि पर्याय। तो फिर पर्याया क्या है? ज्ञानी! इन अभिनव ज्ञानियों से बच कर रहना।

ज्ञानी! द्रव्य-गुण-पर्याय की परिभाषा देखिए- जो सत् है- 'उत्पाद्-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्' और 'सत् द्रव्य का लक्षण है'। जो द्रवणशील हो, परिणमनशील हो, उसका नाम द्रव्य है। जो परिणमन हो रहा है, वह ही पर्याय हैं, तो फिर पर्याय की परिभाषा क्या है?

'द्रव्य विकारो पर्यायः'

गुण विकारो पर्यायः

द्रव्य के/गुण के विकार का नाम पर्याय है। ऐसा ध्वनित होता है कि तत्त्व का कितना गहरा चिंतन

करने की आवश्यकता है। जो द्रव्य का विकार है, वह ही पर्याय है, तो पर्याय क्या द्रव्य से हटकर होगी? द्रव्य क्या पर्याय से हटकर होगा? गुण तो सबके साथ है।

द्रव्यार्थिक नय है, पर्यायार्थिक नय है; गुणार्थिक नाम का कोई नय नहीं है। जीव चाहे मनुष्य हो, चाहे देव हो, परंतु जीव ज्ञान से रहित कब होगा? कभी नहीं। प्रत्येक द्रव्य एवं पर्याय गुण से युक्त होती है। इन आँखों से देख नहीं सकते। आप अपनी आँखों से परमाणु को भी नहीं देख सकते। परमाणु अविभाज्य है। परमाणु द्रव्यानुयोग का विषय है। करणानुयोग कहेगा-कर्म की प्रकृति कैसी, लोक की व्यवस्था कैसी? लेकिन द्रव्य के स्वरूप का व्याख्यान जब भी होगा, द्रव्यानुयोग से होगा। तून द्रव्यानुयोग का स्वरूप नहीं समझा। छह द्रव्यों का ज्ञाता ही द्रव्यानुयोग का ज्ञाता हो सकता है।

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं बिना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।।42 क.क्षा.।।

जैसा है, वैसा ही कहना। विपरीतता से, न्यूनता से, अधिकता से रहित कथन होना चाहिए। तत्त्व में किंचित भी न्यूनता अधिकता का कथन किया, तो मिथ्यात्व में चला जायेगा। वाहनचालक अपनी गद्दी पर कितनी सावधानी से बैठता है? जरा भी गड़बड़ हो तो छलाँग लगा देगा। यह गणधर परमेष्ठी की गद्दी है ।इस पर सहसा ही मत बैठ जाना और यदि बैठो तो उतना ही कथन करना जितना सम्यक् हो।

इन खुली आँखों से शुद्ध पुद्गल को नहीं जाना जा सकता है, तो इन खुली आँखों से शुद्ध आत्मा को कैसे जाना जा सकता है? हम पुद्गल को तो श्रुत से जानते हैं, आत्मा को श्रुत व अनुभव से जानते हैं। वर्तमान में ये जीव पुद्गलद्रव्य की शुद्ध पर्याय को नहीं देख पा रहा है, तो हे ज्ञानी! जीवद्रव्य की शुद्ध पर्याय को कहाँ देख पायेगा? द्रव्य की नहीं, पर्याय की बात कर रहा हूँ। विश्वास रखना स्कंध रहे और परमाणु न हो, क्या यह संभव है? जब स्कंध है, तो उसमें परमाणु को सत्ता तो है ही, तो क्या स्कंध परमाणु है? जैसे स्कंध में परमाणु की सत्ता है, ऐसे-ही ज्ञानियों! इस जीवद्रव्य में शुद्ध द्रव्य की सत्ता है। पर स्कंध तो स्कंध है, परमाणु तो परमाणु है। शक्ति तो शक्ति है, अभिव्यक्ति तो अभिव्यक्ति है। जो परमाणु स्कंधरूप होने जा रहा है, वह कारण परमाणु है और जो परमाणु परमाणुरूप है, वह कार्य परमाणु है।

कार्य-कारण भाव को समझो। सम्यग्दृष्टि जीव ही तो अरिहंत बनेगा, सिद्धबनेगा। साक्षात् निकटता की अपेक्षा से अरिहंत परमात्मा हैं कारण परमात्मा और सिद्ध परमात्मा है कार्य परमात्मा।

बिना कारण कभी कार्य होता नहीं। अरिहंत बने बिना क्या कोई जीव सिद्ध बन पायेगा? ज्ञानी! कारण परमात्मा कार्य परमात्मा तो हो सकता है पर, कारण यदि नहीं, तो वह जीव नहीं हो सकता। क्योंकि परमात्मा प्रकट होता है, परमात्मा कोई आत्मा का स्वभाव नहीं होता है। परमात्मा पर्याय है जीवद्रव्य की। ज्ञान-दर्शन स्वभाव है आत्मा का, लेकिन परमात्मा त्रैकालिक नहीं होता, आत्मा त्रैकालिक होती है। हे ज्ञानी! परमात्मा तो बनता है, परंतु आत्मा कब बनी? महावीर के परमात्मा बनने की तिथि मेरे पास, आदिनाथ के परमात्मा बनने की तिथि मेरे पास है, चाहे तो कुण्डली तक बनवा लो। परंतु आत्मा के बनने की तिथि क्या आपके पास है?

ज्ञानी! आप कह रहे हो- कारण जीव, कार्य जीव। इसमें कुछ जोड़ते, तो काम बन जाता। कार्य परमात्मा और कारण परमात्मा तो होता है, पर कार्य जीव और कारण जीव नाम की कोई वस्तु नहीं है। जिस दिन कारण जीव और कार्य जीव हो जायेगा, उस दिन जीव की उत्पत्ति मानना पड़ जायेगी।

हे मुमुक्षु! औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक भाव का जन्म होता है, लेकिन पारिणामिक भाव अजन्मा होता है, त्रैकालिक होता है। हे औदयिक ! तुम अपना नाटक दिखाकर चले जाते हो, हे क्षायोपशमिक तुम भी नश जाओगे। औपशमिक भी नष्ट होगा। क्षायिक! तुम भी उत्पन्न होते हो, तुम थे नहीं। ज्ञानी! क्षायिकभाव त्रैकालिक नहीं, तो परमात्मा त्रैकालिक कैसा? क्षायिकभाव का प्रकटीकरण ही तो परमात्मा है। देखो! कहने के लिए सीखना नहीं पड़ता। जो सीखकर कहेगा, वह आगम नहीं कह पायेगा। आगम को सीखना नहीं पड़ता, आगम का ज्ञान किया जाता है। परमात्मा बनने के उपरांत त्रैकालिक रहेगा पर, परमात्मा त्रैकालिक था नहीं। जब मैं परमात्मा को ही त्रैकालिक मानने को तैयार नहीं हूँ, तो त्रैकाल्य द्रव्य का रचयिता कहाँ से आ गया?

बड़े-बड़े ज्ञानी श्रमणसंस्कृति की बातों को सुनकर रो पड़े कि हाय मेरा तो सब कुछ गया। परमात्मा की सत्ता को तो वे मानते हैं, पर, परमात्मा की विराट सत्ता को भी त्रैकालिक नहीं मानते। हम एक परमात्मा को त्रैकालिक नहीं मानते पर, परमात्मा की परम्परा त्रैकालिक है। पीछे का भी ध्यान रखना। गाड़ी में एक आईना आगे लगा होता है, एक पीछे, क्यों? क्या काँच चेहरा देखने के लिए लगा है? ज्ञानी! आगे का भी दिखे, पीछे का भी दिखे। ज्ञानी! दो काँच लगाकर बोलना चाहिए। आगे का भी ध्यान रखें, पीछे का भी ध्यान रखें। जो बोल चुके उसका ध्यान रखे, आगे क्या बोलना है उसका भी ध्यान रखे। पर तुम्हारे बोलने से कोई सिद्धांत तो समाप्त नहीं हो रहा है, इसका ध्यान रखना। अपनी सत्ता में श्रद्धा में इतने विश्वस्त होकर बोलना कि अच्छे से बोलना। मिथ्यात्व तो रोएगा-ही-रोएगा।

ज्ञानी! जब इस पर्याय में इतना राग हो गया कि छूटने लग जाए तो रोता है, जिसने अनंत काल

से मिथ्यात्व को अपने हृदय में रखा वह छूटेगा तो रोएगा कि नहीं रोएगा? चिल्लायेगा क्यों नहीं? किसे मालूम नहीं कि जिनागम में 'क्रमबद्ध' शब्द का प्रयोग नहीं? फिर क्यों इसका प्रचार कर रहे हो? मिथ्यात्व छूट जायेगा तो रोएगा। मुनियों के अलावा आचार्यों के आठ विशिष्ट मूलगुण होते हैं। उत्पीड़ित नाम का एक गुण होता है। इतना उत्पीड़ित कर दिया कि शिष्य की सारी गाँठ निकाल दी।

ज्ञानी! सभी भावों में पारिणामिक भाव की महान सत्ता है।

'जीव भव्याभव्यत्वानि च।' (2/7 त.सू.)

जैसे गणित के सूत्र सब जगह प्रयोग होते हैं, ऐसे-ही 'तत्त्वार्थसूत्र' सब जगह प्रयोग होता है। सूत्र का नाम ही है कि जो सब जगह घटित हो। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व का कभी जन्म नहीं होता। इसलिए-आए राम, गए राम और आत्मा राम सदा राम। ध्यान रखना, परम ध्यान की जब चर्या प्रारंभ होती है, तो परमात्मा के ध्यान की चर्चा समाप्त हो जाती है। परमात्मा तभी बनोगे, जब परमात्मा का ध्यान भी समाप्त हो जायेगा। तत्त्वार्थ ऐसा-ही है। लेकिन जब-तक उस भूमिका तक नहीं पहुँचे, परमात्मा का ध्यान 6वें गुणस्थान तक करना। परमात्मा का ध्यान नहीं करना पड़ता 7वें गुणस्थान के आगे, क्योंकि वह त्रैकालिक नहीं। आत्मा का ध्यान करना पड़ता है, वह त्रैकालिक है। ज्ञानी! मंदिर आना मत छोड़ देना। तुम सब दिगम्बर मुनि होते तो बात कुछ-और होती। फिर ये जो मुझे बीच-बीच में कहना पड़ता है कि ऐसा करना मत छोड़ देना, वह न कहना पड़ता। फिर भूमिका ही दूसरी होती। नहीं। आत्मा का ध्यान करना पड़ता है, वह त्रैकालिक है। ज्ञानी! मंदिर आना मत छोड़ देना। तुम सब दिगम्बर मुनि होते तो बात कुछ-और होती। फिर ये जो मुझे बीच-बीच में कहना पड़ता है कि ऐसा करना मत छोड़ देना, वह न कहना पड़ता। फिर भूमिका ही दूसरी होती। फिर इन सब बातों में समय बर्बाद नहीं होता। जब भी तू सिद्ध बनेगा, सिद्धों की आराधना से बनेगा। जब भी परमात्मा बनेगा, आत्मा की आराधना से बनेगा। परंतु जब भी तू सिद्ध बनेगा, आत्मा की आराधना करने के पहले सिद्धों की आराधना करनी पड़ेगी।

हे मुमुक्षु! जब-तक पिच्छि-कमण्डल रहेगा, तब-तक निर्वाण नहीं होगा। जब-तक पिच्छि-कमण्डल का बोझ ढोते रहोगे, तब-तक निर्वाण नहीं होगा। जब पिच्छि-कमण्डल लेंगे, तब व्यवहार के मुनि होंगे। जब पिच्छि-कमण्डल पास रखे होंगे, और वे साधु ध्यान करेंगे, तब पिच्छि तो पिच्छि में होगी, कमण्डल भी कमण्डल में होगा, मुनिराज भी मुनिराज में होंगे। कारण परमात्मा ही कार्य परमात्मा होता है।

कारण शुद्ध जीव- अशुद्ध जीव है।

कार्य शुद्ध जीव-परमात्मा है।

जो-जो बहिरात्मा भव्यजीव हैं, वे कारण हैं अंतरात्मा के लिए। जो-जो अन्तरात्मा हैं, वे कारण हैं परमात्मा के लिए। जो-जो परमात्मा हैं, वे कार्यभूत हैं। ऐसा कारण-कार्य समझना। विवेक लगाना। सर्वत्र विवेक की आवश्यकता है। तत्त्वज्ञान के लिए, तत्त्व निर्णय के लिए तत्त्वज्ञों का समागम अनिवार्य है। वे लोग हमारे लिए बहुत अनुपकारी हैं जो हमारी सीमाओं को न जानते हुए, हमारी योग्यताओं को न जानते हुए, हमें योग्यताओं के ऊपर बिठा देते हैं। मैं समझ ही नहीं पाया कि मैं ज्ञानी बना कि नहीं बना? लोागें ने ज्ञानी कहना प्रारंभ कर दिया और फिर मैंने ज्ञान पर दृष्टि ही नहीं डाली। और जब ज्ञानी के पास पहुँचे तो पता चला कि हम अज्ञानी ही बने रहे। यह बहुत बड़ी भूल चल रही है। किसी का अनादर मत कर देना। किसी की योग्यता से अधिक प्रशंसा मत कर देना। वह आगे के पद पर बैठ जायेगा तो पद की गरिमा का नाश कर देगा।

आचार्यभगवन् बार-बार कह रहे हैं श्रद्धान को दृढ़ रखो। जब सम्यक् श्रद्धान होता है, तब जगत की परिस्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। बाहर वाले नहीं, आचार्यमहाराज कह रहे हैं- ऐसा भी हो सकता है कि किसी जीव ने जिनदीक्षा ले ली, परन्तु मन में मिथ्यात्व की गाँठ बैठी रही।

आज सूर्यग्रहण पड़ रहा है, आज तो आहार को नहीं उठेंगे, सब अशुद्ध हो गया है। अथवा बाद में उठेंगे। ज्ञानी! जब भोजन में ग्रहण पड़ गया, तो कुए में भी पड़ गया जिसमें पानी था। आटे में, हर वस्तु में ग्रहण पड़ गया। हाथों पर भी ग्रहण पड़ गया। क्या-क्या बदलेगा? दीक्षा ले ली? परंतु अंदर की मिथ्यात्व प्रकृति नहीं निकली। इसलिए जो दीक्षा लेने आए हैं, उनसे सब धीरे-से पूछ लेना चाहिए कि खाने में क्या अच्छा लगता है? तुम्हारी रुचि किस ओर है? विषय का झुकाव किस ओर है? फिर कहना कि इसको हटा कर आओ। अन्यथा कपड़े उतर जायेंगे, मिथ्यात्व नहीं उतर पायेगा।

ज्ञानी! कण-कण स्वतंत्र है। मेरा कर्म मेरा है। अन्य कर्म मेरा कुछ नहीं करता। भगवान ने नहीं; जो कुछ किया, मैंने किया है।

कारण परमाणु- कार्य परमाणु

कारण परमात्मा-कार्य परमात्मा

विभाव व्यंजन पर्याय में अरिहंत अवस्था का जीव कारण परमात्मा है।

स्वभाव व्यंजन पर्याय में अशरीर सिद्ध भगवान, यह कार्यपरमात्मा है और भावमोक्ष की अपेक्षा अरिहंतपरमेष्ठी कार्यपरमात्मा हैं और 12वें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती मुनिराज कारणपरमात्मा

हैं। सिद्धभगवान, कारणपरमात्मा नहीं, कार्यपरमात्मा ही हैं। उससे आगे कुछ होता ही नहीं। परम-पारिणामिक भाव प्रकट हो चुका है। अभी पारिणामिक भाव हैं। सिद्ध भगवान परम-पारिणामिक भाव हैं। जो अशुद्ध जीव था, वह शुद्ध हो गया, अब अशुद्ध नहीं होगा। जीवत्व भाव तो त्रैकालिक है, वह प्रकट नहीं होता। जीवत्व भाव न कारण है, न कार्य है। जीवत्व भाव में जो परिणाम हैं, वे कारण और कार्य हैं। जीवत्व तो जीवत्व है। अशुद्ध चेतना ही शुद्ध चेतना होता है, चेतना का विनाश नहीं होता।

'त्रैकाल्य द्रव्य षट्कम्'

तीनों कालों में 6 द्रव्य त्रैकालिक हैं। इनका न कोई कर्ता है, न हर्ता है, न रक्षक है। राग सहित जीव जब विरागता को प्राप्त करता है, तो कारण है। जब वीतरागता की सिद्धि कर लेता है, सिद्ध बन जाता है, तो कार्य है। कारण-कार्य भाव त्रैकालिक है। जीवत्व भाव भी त्रैकालिक है। परमनिश्चयनय से कारणकार्य का अभाव है, वही परम स्वभाव है।

ज्ञानी! रोटी बनाई कभी? चौकी-बेलन-लोई। रोटी बन रही है, वह कार्य है। जो रोटी बन जायेगी, उसे खाया जायेगा कि बनाया जायेगा? इसी प्रकार, ज्ञानी! सिद्धों को बनाया नहीं जायेगा, अब तो अनुभूति लेना है। रोटी में लोई का अभाव नहीं मानोगे तो सिद्धों में भी संसार पर्याय मानना पड़ जायेगी। भूतप्रज्ञापननय तो लगा सकते हो कि रोटी में भी लोई है, लेकिन वर्तमान में रोटी में लोई नहीं है। सिद्धों में भी संसार है भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा, परंतु सिद्ध संसारी नहीं हैं।

'प्रमेयरत्नमाला न्याय का अच्छा ग्रंथ है।'

शब्द कभी नहीं कहते मेरा यह अर्थ है। वह तो वक्ता उसका जैसा अर्थ चाहे कर लेता है। शब्द बेचारे क्या करें? भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी लिख गए, आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने विस्तार किया, जयसेन स्वामी ने टीका की, ऐसा होने के उपरांत भी जो व्याख्याता लोग हैं वे अपनी न कहें, तो करुणा हो जाए। भगवान महावीर स्वामी आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने प्रश्न कर रहे हैं- हे समन्तभद्र! मेरा शासन इतना महान है, फिर इसे मानने वाले इतने कम क्यों हैं? आचार्य समन्तभ्रद स्वामी सुन्दर उत्तर देते हैं- नाथ!

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा, श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ।। 5 युक्त्यनुशासन।।

भगवन्! पंचमकाल काला है। काल काला होता, तो-भी चिंता नहीं थी। यहाँ लोगों के चित्त भी काले हैं। मन का सुनना-सुनाना चाहते हैं। श्रोता व प्रवक्ता नयज्ञान से शून्य हैं। हे नाथ! आपकी शासन

लक्ष्मी तो विशाल है, महान है, पर वक्ता व श्रोता की कलुषता के कारण इस शासन को माननेवाले कम रह गए हैं।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

मनीषियों आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी ने जैन वाङ्मय में समयसार एक ऐसा अभूतपूर्व ग्रंथ प्रदान किया जो कि आज अध्यात्म की दृष्टि से विश्वपूज्यता को प्राप्त है। जब भी अध्यात्म की चर्चा होगी, तो कुंदकुंद देव का ये महान ग्रंथ खुलेगा। अशरीरी जीव का कथन करने वाला, अनेक जीवों के मुँह की पट्टियाँ हटवाने वाला वह समयसार ग्रंथ है। पर यथार्थ मानकर चलना, पट्टी फेंकने के साथ एकांत की यह पट्टी हट जाती तो आज अखण्ड दिगम्बर जैन समाज में आनंद की लहर होती। आचार्य देवसेन स्वामी की नयचक्र की दृष्टि को स्वीकारना पड़ेगा। एक नय वाला जीव एकाक्षी होता है। यात्रा पर निकलते समय एक आँख वाला व्यक्ति दिख जाए तो अपशकुन मानता है। ज्ञानी! जो शिवालय की यात्रा पर निकला, यदि नय की एक आँख फोड़ कर चलेगा तो यात्रा में अपशकुन हो गया। मोक्षमार्ग की यात्रा उसी सम्यक् है जिसके पास निश्चय और व्यवहार की दो आँखें हों। इन दो नयों से निहारने की आवश्यकता है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी, भाव्य-भावक भाव का कथन करते हुए, तीसरी निश्चय स्तुति प्रारंभ कर रहे हैं। परमार्थ दृष्टि जब-तक नहीं है, तब-तक सम्पूर्ण दृष्टि लोकदृष्टि तो हो सकती है, पर यह लोकोत्तराचार का मार्ग है। ध्यान देना-लोक में माता-पिता के चरण-स्पर्श करने को धर्म माना जाता है। अतिथि आया, आपके चरणस्पर्श किए। आप थोड़ा उठे, बोले। यह धर्म हो जाएगा तो परमात्मा के चरण-स्पर्श करना क्या होगा? यदि माता के, पिता के चरण स्पर्श करना व्यवहार धर्म कहा जायेगा, तो भगवान के चरण स्पर्श करना कौन-सा व्यवहार धर्म कहा जाएगा? तो फिर आपको यहाँ शब्द जोड़ना पड़ गया कि माता-पिता के चरण स्पर्श करना व्यवहार धर्म नहीं, लोकव्यवहार है। 'धर्म' संज्ञा तो परमेष्ठी से ही प्रारंभ होती है। जब-तक परमेष्ठी नहीं हैं, तब-तक धर्म नहीं है। परमेष्ठी का सम्मान करना लोकोत्तराचार है। माता-पिता या अतिथि का सम्मान करना लोकाचार है। एक जगह से उठाया, दूसरी जगह विराजमान किया, लेकिन ऐसे संस्कार अनादि से थे कि भगवान के चरण स्पर्श करना ही परिपूर्ण मोक्ष मान बैठा। फिर भ गवान कुंदकुंद स्वामी को समयसार में लिखना पड़ा कि-यह साधन है, साध्य नहीं। साधन 'साधन' है, साधन के बिना साध्य नहीं होता, पर साधन 'साध्य' नहीं होता। साधन 'साध्य' हो जायेगा, तो साध्य की सिद्धि क्या होगी? मनीषियो! पंचपरमेष्ठी की आराधना 'साधन' तो है, पर 'साध्य' नहीं है। निज शुद्धात्मा की आराधना साध्यभूत है। परमेष्ठी की आराधना

साधन बने, तब आपकी निज आत्मा साध्य है। जब निज आत्मा साधन बनेगी, तब सिद्ध-अवस्था साध्य होगी। आप एक मार्ग को पार कर गए, परन्तु दूसरे मार्ग पर स्थिर हो गए, लेकिन उसके आगे भी चलना है। ज्ञानी! तू गाड़ी से मंदिर आया, वह गाड़ी बाहर क्यों रखकर आया? गाड़ी ने उपकार किया है, तो उसे बगल में बिठाना था? जब महाराज मिल गए, तब गाड़ी को देखेगा कि महाराज को? मुमुक्षु! इतना ही तो तत्त्व है। जब-तक साध्य न मिले, तब-तक साधन को नहीं छोड़ देना और जब साध्य मिल जाए, तो साधन को पकड़े मत बैठे रहना।

सम्यग्दृष्टि जीव आराध्य की आराधना करता है, आराधना के लिए नहीं, आराध्य बनने के लिए। और जो आराधना के लिए आराधना करता है, वह सच्चा आराधक ही नहीं है। आराधना के लिए आराधना नहीं। राध = अपराध से रहित अवस्था शुद्धात्मस्वभाव है। चाहे निश्चय एकांकी हो, चाहे व्यवहार एकांकी हो, दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। साध्य के लिए हम साधन का आलम्बन लेते हैं। निश्चय की भाषा, व्यवहार की भाषा साध्य नहीं है, दोनों भाषाएँ साधन हैं। ज्ञानी लोग भाषाओं में विसंवाद करने लग गए और जो आराध्यभूत शुद्धात्मा थी, उस पर दृष्टि ही नहीं गई। हृदय को टटोल लीजिए। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम साधन की ही सेवा में तो नहीं लगे?

जब देह से देही निकल जायेगा, तब साध्य की सिद्धि करेगा। इस देह को यहीं छोड़कर जायेगा। जब तेरी देह ही साथ नहीं जायेगी, तो जगत के प्रपंच साथ कैसे जायेंगे? आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि परम साध्य की सिद्धि चाहते हो तो सब भाषाएँ भूल जाओ। परम सत्ता जो है, वह सत्स्वरूप है। उस सत् स्वरूप सत्ता की सिद्धि चाहिए तो असत् स्वरूप सत्ता से आपको राग हटाना होगा। जब-तक देह में रहेगा। तो 'दे दो, दे दो' शब्द रहेगा। देह से अलग होने पर यह सब हट जायेगा। यह सहज नहीं है। सहज तो सहज है। सहज को समझने के लिये सहज होना पड़ेगा। असहज से हटना पड़ेगा। पानी उष्ण है, यह सहज है कि असहज है? असहज है, सोपाधिक है। अग्नि का संयोग न होता तो वह उष्ण न होता। सच बताना, पानी उष्ण है, कि अग्नि उष्ण है? पानी उष्ण हुआ, यह सोपाधिक है, पर अंगुलि डालोगे तो जलेगी। क्या उस पर तुम्हारा गर्म होना सहज है? समयसार का ज्ञान होता तो शायद किसी के घर के बर्तन न फूटते। मुमुक्षु! ध्यान दो, नरक में जाने के लिए बहुत-कुछ चाहिए सिद्ध बनने के लिये कुछ नहीं चाहिए। जो सब जोड़ रखा है, बस उसे छोड़ दीजिए। यह सहज है।

'सहजानंद स्वरूपोऽहम्'

जो सहज स्वरूप है, वह निरूपादिक है। असहज स्वरूप सोपादिक है। सहज स्वरूप के लिए किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं होती है और असहज स्वरूप के लिए पर संयोग की

आवश्यकता है। बेटा पिता से पूछना-हे तात्! ब्रह्मचर्य में लीन होने के लिए साथ में संसार के कितने लोग कितनी नारियाँ चाहिए? अब्रह्म के लिए कितने चाहिए। ब्रह्मानंद सहज है, अब्रह्म असहज है। जिसे संसार के लोगों ने सहज कह दिया है, वह असहज है।

जहाँ-जहाँ पर का संयोग है, जो-जो परसापेक्षी द्वैत है, वह असहज भाव है। निरपेक्ष भाव ही सहज भाव है।

गृहस्थी/परिग्रह छोड़ना बड़ी बात नहीं है। जब-तक आत्मा में लगे हुए आठ कर्म परिग्रह हैं, उनका अभाव नहीं होगा, तब-तक पूर्ण सहज भाव नहीं है। ज्ञानावरणी परिग्रह, दर्शनावरणी परिग्रह, आठों कर्म परिग्रह हैं। ये मुमुक्षु तीर्थंकर के पादमूल में आते हैं, कहते हैं- मेरा मोक्ष हो जाए। फिर धीरे-से कहते हैं- सुख-शांति से रहें, यश की वृद्धि हो। धिक्कार हो, तीर्थंकर के पादमूल में बैठा 148 कर्मप्रकृति में से यश नामकर्म माँग रहा है, बंध माँग रहा है, कर्म माँग रहा है। कह रहा था, 'भगवान! मेरे कर्म कट जायें' और माँग क्या रहा है? यानि धर्म का मर्म मालूम नहीं। नियोग का मिल जाना, यह पुण्य का फल तो हो सकता है, पर संयोग का मिलना पुण्य नहीं है। परभावों का मिलना पुण्यफल है, पुण्य नहीं। जो वैभव मिला है, यह फल हो सकता है, लेकिन यह पुण्य नहीं है। किसी की जेब में पैसे हैं, पुण्य से मिले कि नहीं? उन पैसों से पान खा लिया, तो पुण्य हुआ कि पाप? जितने पुण्यवान हैं जगत में बड़े-बड़े, सब पापात्मा हैं। जितना ज्यादा द्रव्य मिला, पुण्य से मिला, उस द्रव्य को मदिरालय में वेश्यालय में ले जा रहा है। इतने द्रव्य का प्रयोग वहीं कर सकता है, जिसमे पास होगा। प्रबल पुण्यात्मा ही सातवें नरक जा सकता है, क्षीण पुण्यात्मा नहीं जा सकता। जो जीव सर्वार्थसिद्धि जाने की शक्ति रखता है, सिद्ध बनने की शक्ति रखता है, ऐसा जीव ही सातवें नकर जा पायेगा। उत्कृष्ट संहनन पापी को नहीं, पुण्यात्मा को मिलता है, लेकिन पुण्य करने से नरक नहीं जाता। पुण्य के फल में लीन होकर जो पुण्य का दुरुपयोग करता है, वह नरक जाता है। पुण्य का सदुपयोग कर ले तो सिद्ध बनेगा, पुरुषार्थ कम रहा तो सर्वार्थसिद्धि आदि जायेगा।

पुण्य को सहज कहके दुरुपयोग मत कर लेना। 'महाराज! क्या करूँ? उम्र है, इसलिए विकार आ रहे हैं। सहज है।' ज्ञानी! यह सहज नहीं है, विकारी भाव है। अविकारी भाव को प्राप्त होना है तो तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को समझना पड़ेगा। द्रव्यानुयोग में कई रहस्य निहित हैं, बहुत गहरा है समयसार। बेटे के ताने, पत्नी के शब्द सहन करने की सामर्थ्य आ जायेगी तो साधु बनने की योग्यता आ जायेगी। पड़ोसी की गाली सुन लेना बहुत बड़ी बात नहीं, बेटे की गाली सुनना जानता होगा उससे बात कर रहा हूँ। पर की बातें सहन करना दुनियाँ जानती है, घर के लोगों की बात सहन करके बताओ। इतने उपसर्ग

महापुरुषों पर हुए, बाहर का व्यक्ति नहीं था, सब घर के थे। ज्ञानी! बचकर रहना। जैसे पड़ोसी के साथ रहते हो, सबसे ऐसे-ही मिलना। बाहर से मिलकर रहना, अंदर से अकेले रहना। ज्ञानी! समयसार बांचा है, अब वाचना मत, पाचना करना कि वास्तव में है क्या? जहाँ त्याग का भी त्याग कराया जाए, उसका नाम समयसार है। लोग भ्रमित हो गए। लोगों ने त्याग का ही त्याग कर दिया, संयम को छोड़ दिया। जो गहरी बात थी, उसे सुनो-

माना कोई व्यक्ति मुनि बन गए। और फिर चर्चा करें, मेरा इतना बड़ा परिवार था, धन था, इतनी भूमि थी, सबको ठोकर मारकर आ गया। ज्ञानी! ठोकर अच्छे से नहीं लगी। त्याग के राग का त्याग कीजिए, इसका नाम समयसार है। तूने पता नहीं कितने रसगुल्ले, पुड़ी, बालूशाही खाई, सुबह त्याग करके आए तो बताते नहीं हो। त्याग की कथा बार-बार मत करना, इसका नाम त्याग है। जितना समय खाने में नहीं लगाया, उतना त्याग का बखान करने में लगा दिया। उतनी देर में एक माला फेर लेता तो पुण्य कर लेता। आचार्यभगवन् क्या कह रहे हैं? क्या करे बेचारा? संतान तो इसी भव में छूट जाती है, मोह की संतान को जन्म दिया है, वह नहीं छूट रही है। जो संतान किसी को दिखाई नहीं दे रही है, उस संतान को पकड़े हुए है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वमी कह रहे हैं-

जो अनादि से मोह की संतान है, उसके वश हुआ जीव तल्लीन हो रहा है। मैं-मैं। पर की पर्याय में 'मैं-मैं' कर रहे हैं। उनके गले पर छुरियाँ चल रही हैं। छोड़ दो 'मैं' शब्द को। तुम शब्द तो जो है, सो है। घर-घर में समयसार पहुँच जाए तो कितनी शांति पहुँच जाए। बरसना, गरजना, तड़कना नहीं। अनादि से आत्मा शरीर के संस्कार में ऐसे लीन हुआ, कौन? अप्रतिबुद्ध /बुद्धिविहीन। जीव के नेत्र परजो विकार पड़ा था- उसे हटा दिया जाए तो पुनः दिखना प्रारंभ हो जाता है। जैसे मेघों के पटल के विघटित हो जाने पर पदार्थ दिखाई देना प्रारंभ हो जाता है। उसी तरह अप्रतिबुद्ध जीव के मोह का पट हट जाने पर कैवल्य ज्योति प्रकट हो जाती है।

इसीलिए कहते हैं- किसी को हीनता की दृष्टि से नहीं देखना। असिद्ध ही सिद्ध होता है, सिद्ध तो सिद्ध है ही। क्या लिख रहे हैं आचार्य महाराज?....

जो अप्रतिबुद्ध है, वही प्रतिबुद्ध होता है। किसी भी मिथ्यादृष्टि के प्रति भी ग्लानि मत लाना। घ्नोर मिथ्यादृष्टि जीव थे, उनकी पूजा कर रहे हो आप। गौतम स्वामी को नमोस्तु कह रहे कि नहीं? तीर्थंकर महावीर से पूछो-मारीचि की पर्याय में तीर्थंकर आदिनाथ के समवसरण से उठकर चले गए थे कि नहीं? किसी के प्रति अशुभ भाव मत लाना। ज्ञानी! जिनवाणी जब मिथ्यादृष्टि के प्रति अशुभ भाव लाने का निषेध कर रही है, तो धर्मात्माओं के प्रति अशुभ विचार लाने के लिए जिनवाणी कहती है क्या?

कभी नहीं कहती। ज्ञानी! यह लेखनी जड़ द्रव्य है, यदि इसके प्रति भी अशुभ भाव किए हैं तो चेतन को बंध हुआ है। बहुत-सा आस्रव-बंध जीव व्यर्थ में करता है। चार व्यक्तियों ने एकसाथ जाकर आम चूसा और कहने लगे कि बड़ा आनंद आ गया। देखो, एक तो तुमने चूसने में राग किया और चारों ही चूस रहे थे तो कहने की क्या आवश्यकता पड़ गई? अपनी-अपनी अनुभूति में रहो। व्यर्थ का आस्रव, व्यर्थ का बंध क्यों?

आनंद तो आया है, पर तब-तक आनंद नहीं आता जब-तक बता नहीं लेते। जो आनंद खाने में नहीं आया, वह बताने में आया है।

जब वह जीव प्रतिबुद्ध होता है तो स्वयं जानता है, स्वयं श्रद्धान करता है, और आचरण करने की कामना करता है। विश्वास रखना, निमित्त बहुत मिल जायेंगे, परंतु स्वयं का विवेक जब-तक काम नहीं करता, कुछ नहीं होता। श्रीराम से पूछना, 6 महीने लक्ष्मण को लिए घूमते रहे। दुनियाँ ने समझाया, समझ में नहीं आई। जब कषाय का काल पूरा हो गया, तब समझ आई। बाहर के गुरु की भी तभी सुनता है, जब अंदर का गुरु निर्मल होता है। अंदर का गुरु निर्मल नहीं तो तीर्थंकर जैसे गुरु मिल गए, पर जाग्रत नहीं हुआ। काललब्धि नहीं थी। और जब उपादान जाग्रत हुआ, तो सिंह की पर्याय में दो मुनियों का उपदेश (निमित्त) भी कार्यकारी हो गया। ज्ञानी! किसी भी त्यागी का उपदेश चल रहा हो, बैठकर सुन लेना, क्योंकि क्या पता कब किसके शब्द कार्यकारी बन जायें।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी क्या कह रहे हैं? बहुत राम आए, बहुत राग गए, पर आत्मा राम सदा राम। यही तत्त्वदृष्टि है कि परमात्मा तो परमात्मा हैं, वे हुए हैं, यह आत्मा हुई नहीं है, यह त्रैकालिक है। जब भी परमात्मा बनूँगा, तो परमात्मा का आश्रय छोड़ना पड़ेगा, आत्मा का आश्रय लेना पड़ेगा। आचार्यभगवन कह रह हैं- स्वात्मा राम का आश्रय लेकर अन्य द्रव्यों का प्रत्याख्यान करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण।।

उत्थानिका - आगे पूछते हैं कि ज्ञाता के प्रत्याख्यान ज्ञान ही कहा गया है, इसका दृष्टान्त क्या है? उसके रूप दृष्टान्त को गाथा द्वारा व्यक्त कर कहते हैं-

गाथा - **जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि।**
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी।। 35।।

अन्वयार्थ - **(यथा नाम)** जैसे लोक में **(कोऽपि पुरुषः)** कोई पुरुष **(परद्रव्यम् इति ज्ञात्वा)** पर पर वस्तु को ऐसा जानता है कि यह परवस्तु है तब ऐसा ज्ञान **(त्यजति)** परवस्तु को त्यागता है **(तथा)** उसी तरह **(ज्ञानी)** ज्ञानी **(सर्वान्)** सब **(परभावान्)** परद्रव्यों के भावों को **(ज्ञात्वा)** ये परभाव हैं ऐसा जानकर **(विमुञ्चति)** उनको छोड़ता है।

संस्कृत छाया - **यथा नाम कोऽपि पुरुषः परद्रव्यमिति ज्ञात्वा त्यजति।**
तथा सर्वान् परभावान् ज्ञात्वा विमुञ्चति ज्ञानी।। 34।।

समय देशना

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी समयसार जी ग्रंथ में आत्मा के सत्यार्थ स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं। उस परम त्याग की महिमा का कथन जहाँ त्याग के विकल्प का भी त्याग हो गया है। वस्तु को छोड़ देना और छोड़ देने के उपरांत पुनः पुनः ध्यान रखना कि मैंने ऐसी-ऐसी सामग्री छोड़ी, ज्ञानी! सामग्री तो छूट गई, पर तू सामग्री से नहीं छूट पाया। इसलिए सत्यार्थ यही है कि वस्तु छोड़ने के साथ-साथ वस्तु से छूटना अनिवार्य है। यदि आपने वस्तु छोड़ भी दी, लेकिन आप वस्तु से नहीं छूटे, तो ध्यान रखना, कर्म से नहीं छूट पाओगे। यह समयसार है। जब-तक उभय त्याग नहीं है, तब-तक परम त्याग संज्ञा नहीं है। अंतरंग त्याग, बहिरंग त्याग और त्याग की परम दशा यह है कि जब हो जाए त्याग का भी त्याग। मैंने इतना छोड़ा, इस इतने पन का त्याग जब-तक नहीं होगा, तब-तक परम त्याग नहीं होगा। यह भाव-यति का वर्णन चल रहा है। धन्य हों वे यतीश्वर, जब सारा जगत विषयों की नाली में क्रीड़ा करता हो, उस समय आप निजात्मानुभूति के सरोवर में स्नान करते हो।

ये सारा जगत विषयों की नाली का कीड़ा बन कैसा बिलख रहा है? वे हंसराज जो निजानंद के सरोवर में लवलीन होकरके स्वानुभूति के नीर का पान कर रहे हों, वह धन्य दशा मुनिवर की है। जगत के सम्पूर्ण आनंद जगत की सम्पूर्ण अवस्थाओं में लिए जा सकते हैं, पर निजानंद का आनंद एकमात्र निर्ग्रंथ दशा में है। हर व्यवस्था का भेष है। निज में निज से मिलने का जो भेष है, इसका नाम श्रमण दशा है। इस श्रमण दशा को पुद्गल के टुकड़ों में नष्ट नहीं करना है। जगत के प्रपंच तो हम किसी भी दशा में रच सकते हैं, पर प्रपंचातीत होने के लिए यह दिगम्बर दशा है। अर्हंत लिंग है, जिन लिंग है, यही पाखण्डी लिंग है। लिंग तो देहाश्रित हो सकते हैं, पर निर्ग्रंथ स्वभाव देहाश्रित नहीं, यह आत्माश्रित है, यह पाखण्डी लिंग है। बताओ पाखण्डी होता कौन है। जिसने अपने सारे पापों को खण्ड करना प्रारंभ कर दिया हो वह पाखण्डी है। जो कर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने में लगा है वही तो परम भट्टारक है वही तो पाखण्डी है, जिसने त्याग के विकल्प को भी त्याग दिया है। ऐसा परम धर्म जहाँ से प्रकट होता हो। आत्मा को आत्मा जाननेवाली कोई परम दशा है, वह जिनलिंग है। जगत को जाननेवाले लोक में अनेक हैं, पर जाननहार को जाननेवाला जगत में एक है, वह जिनलिंग है। हर व्यक्ति की ड्रेस होती है। चिकित्सक, सैनिक, वकील का भेष होता है। ऐसे-ही मुक्ति-वनिता से मिलने का कोई भेष है। किसी भी मुद्रा में मुक्ति-वनिता से वरण नहीं हो सकता। चर्चायें/वार्ता हो सकती हैं। जब भी वरण होगा, जिनमुद्रा से ही होगा।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।। 23 सुत्तपाहुड।।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी 'अष्ट पाहुड़' ग्रंथ में कह रहे हैं-

हे वस्त्रधारियो! वस्त्र के साथ सिद्धि का संयोग होता ही नहीं है, जिनशासन में चाहे तीर्थंकर भी क्यों न हों। यह निर्ग्रंथता ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं। ज्ञानी! उन उन्मार्गों से सत्यार्थता की प्राप्ति संभव नहीं है। राजमार्ग पर ही चलना पड़ेगा। उन्मार्ग तो बीच की गलियाँ हैं, बीच की कुलियाँ हैं। राजमार्ग यानि राज्य की ओर ले जाएगा और राज्य तेरा सिद्धालय है, ध्रुवधाम मेरा, यह वर्तमान के धाम नहीं। ध्रुवधाम इस आत्मा का ज्ञायकभाव में लीन सिद्धशिला है, जहाँ से वापस नहीं आना पड़ता। बस, उस ध्रुवधाम पर जानेवाले सब पथिक बैठे हैं, सब पथिक हैं। सम्मेदशिखर की वंदना को कोई जीव जाए तो विशेष भाव बनता हैं कि मैं तीर्थयात्री हूँ, तीर्थयात्रा पर जा रहा हूँ। यदि कोई भेजने जाता है तो कहते हैं तीर्थयात्री जा रहे हैं। सिद्धभूमि की वंदना को जा रहे हैं, इसलिए सम्मान करते हैं कि यूह तो सिद्ध बनने जा रहे हैं। धन्य हो, तुम तो सिद्धयात्री हो। इतने निर्मल भाव होने चाहिए। अहो! दुनियाँ धर्म को खोजती है, हम तो धर्म ही हैं। धर्म है कहाँ? पर्वतों पर, नदियों में, वृक्षों पर, खेतों में नहीं। धर्म आत्मा

में है।

'न धर्मों धार्मिकैर्विना'

धर्म धर्मात्मा के बिना नहीं होता है। जो धर्मात्मा को स्वीकार नहीं कर पायेगा, वह धर्म को क्या स्वीकार करेगा? धर्म कहाँ है? धर्मात्मा में। धर्मात्मा क्या है? वही तो आत्मा है।

जो चिद्रूप है, चिद्शक्ति है। चिद्शक्ति का ध्यान करो। पूरा विषय तुम्हारे रूप हो बतानेवाला नहीं चल रहा इस समय। तुम्हारे स्वरूप को बतानेवाला चल रहा है। स्वरूप की प्राप्ति जिन रूप से होगी, वह आप 'मूलाचार' के पास जाओ, श्रावकाचार के पास जाओ, रूप को प्राप्त करके। स्वरूप कैसा होना चाहिए? 'समयसार' के पास जाओ। त्याग का भी त्याग करो। अज्ञानी न समझे तो उनकी भूल। मुनिराज थे और कपड़े पहन कर बैठ जायें, इसमें समयसार की भूल है कि तुम्हारी भूल? कहा है- त्याग का भी त्याग करो, उसका मतलब समझना था। जो त्याग तुमने किया है, उसके राग का भी त्याग करो। मैं मुनि हूँ, मैं श्रावक हूँ। यह 'हूँ' भी तुझे ध्यान नहीं करने देगा। यह ऐसे-ही समझना कि यह देहाश्रित दशा है। उपशम भाव ही संयम भाव है। जहाँ-जहाँ उपशम भाव का अभाव है, वह संयमाभाव है। शंका नहीं करना इसमें। भाव मुनि बनना है। उपशम भाव ही संयम भाव है। अन्यथा संयमाभास है। आभास की परिभाषा-

ततोन्यत् तदाभासा

जो उससे अन्य कहा जा रहा है, पर है नहीं, उसका नाम आभास है। यह परीक्षामुख ग्रंथ का सूत्र है। यानि समयसार ग्रंथ के लिए न्याय तो पढ़ना ही पड़ेगा। जो बिना न्याय पढ़े समयसार पढ़ेगा-पढ़ायेगा, वह स्व पर का बैरी है। खुद भटकेगा, दूसरे को भटकायेगा। और समयसार तत्त्व को जाने बिना संयम धारण करेगा, वह निजात्मा का बैरी है। क्यों? वर्तमान के सुख जानकर छोड़ बैठा, भविष्य में कोई दिख नहीं रहा, क्यों? साधना कर नहीं रहा, ज्ञानी! तू उभय लोक से च्युत हो गया। बहुत सँभल कर सुनना, धीमे-धीमे स्वभाव से सुनोगे तो पूरा-पूरा समझ में आएगा। ज्ञानी! मत कहो कभी अपने को अज्ञानी। आत्मद्रव्य कभी अज्ञानी होता ही नहीं। यह समयसार है, निगोदिया भी ज्ञानी है। ज्ञानगुण से युक्त है, इसलिए ज्ञानी है। छद्मस्थ अवस्था से तो 12वें गुणस्थान तक अज्ञानी दशा है। 13वें गुणस्थान में फिर ज्ञानी संज्ञा है। सम्यग्दृष्टि से कथन करेंगे तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। संयम अपेक्षा कथन करेंगे तो निश्चय अपेक्षा 6वें गुणस्थान तक अज्ञानी है, सातवें गुणस्थानवर्ती ज्ञानी हैं। लेकिन आत्मस्वभाव का कथन करोगे तो प्राणिमात्र ज्ञानी है। उस ज्ञान दशा को, परम तत्त्व को समझना है तो अब छोटी-छोटी बातों पर ध्यान कम देना होगा। रहस्यों में प्रवेश करना है। यह तो ऐसा

ज्ञान है- कभी झूले पर बैठे? जब झूला ऊपर जाता है, झूला उतरता कैसे है? क्या दोनों की अनुभूति बता सकते हो? यह चारित्र के झूले हैं, इसमें बैठा झूलनेवाला पलकियों पर बैठा तो सबको दिखता है,ऊपर जाते और नीचे आते सबको दिखता है, पर अंदर क्या हो रहा है, किसी को नहीं दिखता। और ऊपर जाने या नीचे आने को नहीं बैठा जाता। जो अंदर अनुभूति होती है, उसी के लिए बैठा जाता है। यदि मेले में गया, झूले पर नहीं बैठ पाया, तो मेले का क्या आनंद? जिनराज के मेले में आए मुनिराज यदि निजानंद के झूले की अनुभूति न ले पायें, तो उस मेले में जाने से क्या लाभ? शिशु से लेकर बूढ़े तक हर व्यक्ति अपनी पर्याय का आनंद ले रहा है। किसान का बेटा भी खेत में पिता के साथ खेती का आनंद लेता है, वह भी हल की मुठिया पकड़ लेता है। जिनवाणी का नीर बरसता हो और उसमें लीन होकरके निज रस को न चख सके, उस जीव को जिनलिंग धारण करके क्या लाभ है?

इसलिए आचार्य कुंदकुंद देव ने कहा-ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

तीर्थंकर/आचार्य के देह की स्तुति निरर्थक होती है, इस प्रकार पूर्व पक्ष के माध्यम से, जीव देह से एकत्व करके, शिष्य यहाँ पर प्रश्न करता है- प्रश्न करने की शैली देखो-

'हे भगवन्! रागादि का प्रत्याख्यान क्या है, स्वामिन्! मैं जानना चाहता हूँ।' कोई न भी बताना चाहता हो, फिर भी तुम्हारे प्रश्न की शैली ऐसी मधुर होनी चाहिए कि उनका भी मौन खुल पड़े। प्रश्न में माधुर्य गुण होना चाहिए। प्रश्न में माधुर्य गुण नहीं है तो उत्तर मधुर आ नहीं सकता। प्रश्न पूछने पर उत्तर देते हैं। जानते हैं कि जो संवेदन ज्ञान है, वह आत्मा ही है। ऐसा कहते हैं, ज्ञानियों! जरा ठहर जाओ, स्पष्ट कर लो। जो-जो ज्ञान है, वह आत्मा ही है और जो-जो आत्मा है, वह ज्ञानी ही है। जो-जो अग्नि है, वह उष्ण ही है और जो उष्ण है, वह अग्नि है। ज्ञानी! गुणगुणी से पृथक् कब होते हैं? संज्ञा लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भिन्नत्व है, अधिकरण अपेक्षा अभिन्नतव है। अब, ज्ञानी! ऐसा है कि यदि इन शब्दों का प्रयोग न करें तो हम आपको अध्यात्म समझायेंगे किस भाषा में? आपको अभ्यास तो करना ही पड़ेगा। बार-बार सुनोगे तो समझ में आना प्रारंभ हो जाएगा। सुनिए-

आपने यह देखा। क्या देखा, किससे देखा, किससे जाना? आत्मा से जाना, कि ज्ञान से जाना? यदि ऐसा कह दो कि आत्मा से जाना, तो क्या दोष? यदि आप यह कह दो कि ज्ञान से जाना, तो क्या दोष है? यह व्यवहार पक्ष, यह निश्चय पक्ष। भाषा का ज्ञान नहीं, इसलिए दोनों झगड़ते हैं। वस्तुस्वरूप पर दृष्टि नहीं है। यदि आत्मा से जानना कहो, तो यह गुण गुणी में अभेद कथन है और आत्मा ने ज्ञान से जाना, यह गुण-गुणी में भेद कथन है। यह बहुत बड़ी समस्या का हल हो रहा है। किससे जाना? आत्मा से जाना। किससे जाना? ज्ञान से जाना। दोनों बातें बोलिए आप। भेद कथन है ज्ञान से जाना, अभेद

कथन है आत्मा से जाना। अथवा कर्तृत्व दृष्टि से आत्मा से जाना। करण दृष्टि से ज्ञान से जाना। आत्मा में पेन को ज्ञान से जाना। कर्ता कौन? आत्मा। करण कौन? पेन। किसको जाना? करण कौन? ज्ञान। कर्ता ने कर्म को करण से जाना। आत्मा में पेन को ज्ञान से जाना। ओहो! क्या आत्मा ने आत्मा को नहीं जाना? आत्मा ने आत्मा को आत्मा से जाना। आत्मा ही कर्ता, आत्मा ही कर्म, आत्मा ही करण। अभेद कारक, भेदकारक, उभय कारक से वही वस्तुस्वरूप का बोध होता है। ये आपके दर्शन, न्याय, अध्यात्म की शब्दावलियाँ हैं। जिस भाषा की वस्तु है, उसे उस भाषा में कहोगे तभी तो आनंद आएगा। जो स्वसंवेदन ज्ञान है, वह आत्मा ही है। आत्मा स्व पर संवेदी है। ज्ञान स्व पर प्रकाशक है। यह आत्मा ज्ञानगुण से पर का भी संवेदन करती है, स्व का भी संवेदन करती है। इसलिए जो- जो जाना जाता है, वह आत्मा से ही जाना जाता है। जो-जो जानती है, वह आत्मा ही जानती है। जाननाहार देखनहार आत्मा है। यह देह-इन्द्रियाँ बहिरंग करण तो हैं, अंतरंग करण नहीं हैं। आँख से देखा जाता है, कि आँख देखती है? मतलब है कि देखनहार कोई-और है। यदि आँखें देखती होती, तो मृतक की क्यों नहीं देखती? तथा किसी-और को लगा दी जाती हैं तो पुनः देखने लगती हैं। देखने वाली आँखें नहीं हैं। आँखों से देखा तो जाता है, लेकिन देखनहार आँखें नहीं, आत्मा है। इन्द्रियाँ करण तो हैं, इन्द्रियाँ कर्ता नहीं हैं। रसना से भोगा तो जाता है, रसना भोगती नहीं। भटक नहीं जाना। मैं कुछ नहीं करता, यह पुद्गल का परिणमन है। हे अज्ञानी! यह पुद्गल का परिणमन नहीं, यह तेरा कर्त्तत्व भाव है। रसना खाती है, कि रसना से खाया जाता है? तो खानेवाला कौन हैं? जो आत्मा की विभाव दशा है, वह ही खाती है। शुद्धात्मा खाती नहीं, अशुद्धात्मा ही खाती है। इसलिए स्वभाव दृष्टि से आत्मा तो अनसन स्वभावी है। अहो! यह अनशन-स्वभावी होने पर भी असन क्यों कर रही है? राग दृष्टि है। सुबह मिले, शाम को न मिले और त्याग न हो, तो ऐसे चूहे बिलबिलाते हैं। वहाँ कहो-

'चिद्पिण्ड चेतन रसरसायन स्वरूपोऽहम्।'
'अनसन स्वरूपोऽहम्'

आत्म जिस समय विभाव में परिणमन कर रही है, उस समय ही स्वभाव का ज्ञान रखती है। यदि आप किसी को क्रोध में गाली दे रहे हो, क्रोध में गाली अवश्य दे रहे हो, पर आपको ये भी ज्ञान है कि मैं गलत कर रहा हूँ, क्षमा धर्म है। ऐसे-ही विभाव में विराजी आत्मा, जब विभाव की मंद दशा होती है तब यही आत्मा स्वभाव पर लक्ष्य करती है और स्वभाव पर लक्ष्य करके ही स्वभाव को प्राप्त करती है। यदि किसी ने ऐसा मान लिया कि मैं तो विभाव में हूँ, मैं तो स्वभाव में जा नहीं सकता हूँ, ज्ञानी! सत्यार्थ यह है कि तेरा पुरुषार्थ ही उस ओर नहीं है। तू तो यहीं शांत हो चुका है।

एक बात ध्यान रखना जीवन में, चाहे बाल हो युवा हो अथवा वृद्ध हो, उत्साह शक्ति मत छोड़

देना। जिस 28 साल के युवा के पास उत्साह शक्ति का अभाव है, वह 80 वर्ष के बूढ़े से भी बूढ़ा है। जिस 80 वर्षीय के पास उत्साह शक्ति है, उसका तन बूढ़ा हो सकता है, आत्मबल बूढ़ा नहीं है। मोक्ष सर्वथा तन की शक्ति से नहीं, चेतन की उत्साह शक्ति से भी हो सकता है। तन आलंबन है। मन गिर जाए तो कुछ नहीं कर सकता। और जिसके मन में उत्साह शक्ति है, उत्साह शक्ति यानि हवा। टनों-टनों माल कौन ढो रहा है? टायर ट्यूब। भले ही टायर-ट्यूब को खूब ठोको, पर उसके अंदर जो भरी है उसे निकाल दो, फिर खींचो कैसे खिंचता है? जैसे ट्यूब के अंदर भरी वायु टनों-टनों माल खींच ले जाती है। और क्या? सारा-का-सारा लोक टिका है वायु पर। तीन वातवलय-घनवात वलय, घनोदधि वातवलय और तनु वातवलय। बस, जिस पुरुष के हृदय में उत्साह शक्ति की वायु है, वह कर्म के वजन को ढोकरके सिद्धालय में भेज देता है और जिनकी उत्साह शक्ति की हवा निकल गई, उनकी हवा तो निकल गई, उनकी हवा तो निकल गई। निज चिद्शक्ति का भान होना चाहिए। जिन प्रभुत्व शक्ति का भान होना चाहिए। यही है ज्ञानी! द्रव्यदृष्टि।

कभी तुम्हारा नाती गिर जाए तो डाँटते हो, मारते हो, कि ऐसा कहते हो बुन्देलखण्डी में कि घोड़ा कूदा, तू तो राजा बेटा है, उठ जा? क्या बोलते हो? वो प्रसन्न होकर उठ जाता है। जैसे गिरते बालक को राजा-बेटा कहते हो, ऐसे-ही भटकती भगवानात्मा को समयसार भगवान कहता है। कि बेटा तू भटक मत जाना। अपने आप को गिरा हुआ ही मत मानो, आप भी भगवानात्मा हो। घोर पाप करते हुए भी ऐसे जीव हैं जो भगवान का नाम ले रहे हैं, पर पाप छोड़ नहीं रहे। जान रहा है मैं पाप कर रहा हूँ, पर कषाय की तीव्रता में छोड़ नहीं रहा। जब कषाय का उदय मंद होता है, तो रोने लगता है, हाय! मेंने ये क्या किया? ज्ञानी! यह रोना करने के पहले आ जाता तो कषाय करता क्यों? मुमुक्षु! पाप करने से पहले रो लेते तो बाद में रोना नहीं पड़ता। प्रत्याख्यान धर्म है, इसलिए- मिथ्यात्व आदि पर-स्वभाव हैं ऐसा जानकर छोड़ता है। बिना जाने छोड़ेगा कैसे?

'बिना जाने तें दोष गुणन को कैसे तजिए गहिए।'

मुमुक्षुओं! दोषों का भी ज्ञान होना चाहिए, गुणों का भी ज्ञान होना चाहिए। गुणों को उपादेय दृष्टि से, दोषों को हेय दृष्टि से। गुण उपादेय हैं, दोष हेय हैं; परंतु ज्ञेय तो गुण व दोष दोनों ही हैं। अरे भक्षाभक्ष्य का ज्ञान नहीं होगा तो अभक्ष्य कैसे छोड़ेगा? जानने से बंध नहीं होता, भोगने से बंध होता है। मुट्ठी का जहर मृत्यु का कारण नहीं होता, परंतु मुख में रखोगे तो मृत्यु होगी। ऐसे-ही वस्तु को जानने-देखने से बंध नहीं होता। वस्तु में जो राग होता है, उससे बंध होता है। यदि समयसार में रहना है तो सँभल कर सुनना होगा। आपका कैमरा खराब हो जाए तो हथौड़े से सुधारोगे क्या? नहीं।

जितनी नाजुक वस्तु होती है, उसके सुधारने के उपकरण भी उतने ही नाजुक रहते हैं। घड़ी सुधारने वाला कैसे पैनी-पैनी सुइयों से घड़ी सुधारता है? जब व्यवहार संयम की बात आए, तो तुम हथौड़े पटक लेना और जब निश्चय संयम की बात आए, तो तुम पैनी-पैनी चिमटियों से काम करना। यह भीतर की घड़ी है, इसे अंदर से सँभालना पड़ता है। घड़ी खराब हो जाए तो फैक दोगे क्या? तुम इतने पैसे वाले कब से हो गये? ऐसे-ही मुमुक्षुओं! किसी जीव के परिणाम खराब हो जाएँ तो फेंका नहीं जाता, सँभाला जाता है। यही कारण है कि रागियों के बीच में समाधि नहीं होती। अभी से मुनिसंघ की तलाश कर लेना। साम्यभाव का होना भी समाधि है।

इसलिए जो निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान है, वही प्रत्याख्यान है। ऐसा निश्चय से जानना चाहिए। जो जानते हैं, समझते हैं और अनुभव करते हैं। यहाँ ऐसा तात्पर्य/अर्थ समझना। परमसमाधि काल में स्वसंवेदन ज्ञान के बल से जो निजशुद्धात्मा का अनुभव करते हैं, वह निश्चय प्रत्याख्यान है और वाह्य वस्तु का त्याग करते हैं, यह व्यवहार प्रत्याख्यान है। निज स्वरूप का वेदन करना, निजात्मा की अनुभूति लेना, यह निश्चय प्रत्याख्यान है और बाह्य वस्तु का त्याग, यह व्यवहार प्रत्याख्यान है। समयसार है निश्चय प्रत्याख्यान, मूलाचार है व्यवहार प्रत्याख्यान ।

इस प्रकार से आचार्य जयसेन स्वामी की टीका हुई। अब आचार्य कुंदकुंद स्वामी क्या कह रहे हैं, देखिए-

ज्ञाता का जो प्रत्याख्यान कहा है, उसका दृष्टांत क्या है? ध्यान से पढ़ना, वही आनंददायी गाथा है।

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी।। 35 स.सा.।।

हे ज्ञानी! समयसार में अज्ञानी के लिए कुछ नहीं बताया गया। यह ज्ञानियों का ग्रंथ है और ज्ञानियों के लिए है। हे ज्ञानी! जैसे कोई पुरुष परद्रव्य को जानकर तुरंत छोड़ देता है- जैसे किसी के गले में पुष्पों की माला है, वो पुष्पों की माला कोई उतारकर आपको पहनाए, तो उतरन की माला पहनोगे क्या? एक फूल डाली से आ रहा है, तो जेब में रख लेता है, सुगंध लेता है। एक कोई पुष्प किसी की अर्थी पर फेंका गया हो और उठाकर तेरे हाथ पर रख दे, तो कहता है कि यह अर्थी का फूल है। क्यों, कितनी देर हाथ पर रखोगे? अर्थी पर रखे पुष्प को अपने हाथ पर रखना तू पसंद नहीं करता, भोगों की अर्थी पर रखे पिण्ड को तू कैसे पकड़ रहा है? धिक्कार हो। जिस करनी को करता है उस करनी को स्वयं यहाँ आँखों से देखना प्रारंभ कर दे तो तू स्वयं ग्लानि से भर जाएगा। जिन हाथों से जिनवाणी के पृष्ठ

पलटे हों, जिनेन्द्र का अभिषेक किया हो, उन हाथों से कैसे रमणियों के हाथ पकड़ते हो? तुम्हें धिक्कार हो। सुनो समयसार। जिस लोटे से अरिहंत का अभिषेक हो जाए, उस लोटे से पानी नहीं पीते और जिन हाथों से अरिहंत का अभिषेक हो जाए, उन हाथों से पाप कैसे करता है? किसी को नहीं, अपने आप को देखना, यही समयसार है। वस्तुस्वरूप ऐसा है, जिस जीव को जहाँ राग होता है, वहाँ अपने राग की वस्तु के त्याग की बात नहीं करता। राग में रंगा व्यक्ति शुद्ध समयसार को कह नहीं पाता, क्योंकि यदि वह शुद्ध समयसार को कहने लग जाएगा तो बेचारे का भेष उल्टा दिखने लग जाएगा। इसलिए कह नहीं पाता, जानता तो है। यह तो अशरीरी भगवन्स्वरूप को कहनेवाला ग्रंथ है। ध्रुव सत्य है कि जो जैसा होगा, व्याख्यान वैसा ही करेगा। श्मशान के फूलों को मत उठाओ। ज्ञानी! पर की भोगी हुई वस्तु को क्यों तू स्पर्श कर रहा है? वमन को कौन ग्रहण करेगा? ध्यान रखना, त्यागियो! जिसे छोड़कर आए हो, उसे मत देखना। बहुत बड़ी साधना न कर पाओ तो मत करना, पर छोड़े हुए को मत देखना। मुझे बहुत अच्छे से याद है, आपको बताए देता हूँ। मुझे याद ही है, पर आपको अनुभव भी है।

भगवान का अभिषेक करने मैं कुए से जल लेने गया था। पानी खींच रहा था उसी समय में एक दूल्हा जा रहा था, चार पुरुष उसके ऊपर चादर खींचे थे। निकासी हो रही थी। जैसे निर्ग्रन्थ योगी ईर्यापथ से चलता है, ऐसे-ही वह चल रहा था। वह योगी तो मुक्ति-वधू को देखता है, पर वह वधू को देख रहा था। वह चला जा रहा था, पीछे मातायें मांगलिक गीत गा रहीं थी, कहती हैं बेटे! पीछे मुड़कर मत देखना। क्योंकि पीछे दिखेगा तो अपशगुन हो जाएगा। जब संसार की वधू का वरण करने जाए तो पीछे मुड़कर कैसे देख सकते हैं? त्यागियों! घर परिवार की स्मृति में नहीं, स्वात्मरमणी की स्मृति में डूबना।

तुम वीर की संतान हो, वीर बनकर जीना। कितने सुगंधित पुष्प होते हैं, लेकिन दूसरे के गले की माला कोई नहीं पहनता। इसी प्रकार जितने भी विकारी/अशुभ भाव हैं, उन सबको जानकरके कि मेरी आत्मा का ध्रुवधाम ज्ञायकभाव वह नहीं है, वह ज्ञानी परभावों को छोड़ देता है। जैसे कोई पुरुष परद्रव्य जानकर छोड़ देता है कि आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्

दो बाँस पर रस्सी खिंची थी, नट चढ़ गया थाली लेकरके। चल रहा था रस्सी पर। नट को हजारों लोगों ने देखा पर सच बताना, उस नट से नीचे खड़े में से कितनों को देखा? हे नट! तुझे देखें दर्शक, तो आनंद-ही-आनंद और तूने देख लिया किसी को, तो बस। रागी देखें वीतरागी को तो उन्हें परमानंद हो जाए। यदि वीतरागी कहीं रागी को देखने लग जाए तो उनका परमानंद गया। भक्त भगवान को देखते रहें, बहुत अच्छी बात; पर जो भगवान भक्त को देखने आ जायें, उन भगवान को मैं तो नमोस्तु नहीं करूँगा। आप करोगे क्या? क्योंकि जो भगवान होगा, वह देखने नहीं आएगा और जो देखने आएगा, वह भगवान नहीं होगा। भगवान देखने नहीं आता, भगवान के ज्ञान में दिखता है। इसलिए रागियों को तो

बराबर आना चाहिए, लेकिन वैरागियों को सुरक्षित रहना चाहिए। अन्यथा नट का खेल 'खेल' हो जाएगा।

न किसी ने किसी को नष्ट किया, न उत्पन्न किया। मोह ही कर सकोगे, परंतु मोहवान को बचा नहीं सकोगे। मोही को भी नहीं बचा पाओगे। मोह मेरा धर्म नहीं है, सोपादिक है। उन्मत्तता पुरुष में है, कि मदिरा में है? यदि पुरुष में है, तो बिना मदिरा के क्यों नहीं उचकता? यदि मदिरा में उन्मत्तता है, तो बोतलें क्यों नहीं उचकती हैं? मद किसमें है? ज्ञानी! मिश्रधारा ही मद है। यह भगवानात्मा मोह करती नहीं, कर्म मोह करते नहीं, तो मोह करता कौन है? ज्ञानी! यह जीव की मिश्रधारा (विभावधारा) है। भोजन कौन कर रहा है- देह या आत्मा? यदि आत्मा कर रही है, तो सिद्धों को थाली लेकर जाइए? यदि शरीर कर रहा है, तो मुर्दे को भोजन कराइये? तो-फिर भोजन कर कौन रहा है? यह जीव की राग दशा, विभाव दशा, मिश्र दशा जो है वह भोजन कर रही है। और यह भी मत कह देना कि आत्मा भोजन नहीं करती। शुद्धात्मा नहीं खाती, परंतु सुख-दुःख की अनुभूति आत्मा ही लेती है। विषय को समझना। इन लोगों ने क्या धारणा बना ली? बोले- पुद्गल का परिणमन पुद्गल में चल रहा है, आत्मा तो अनशन-स्वभावी है, वह तो खाती ही नहीं है। हे अज्ञानियों! तुम जैनी भी नहीं बचे। तुमने जिनागम का दुरुपयोग कर डाला। कर्तृत्व भाव, भोक्तत्व भाव, यह पुद्गल का भाव है कि आत्मा का भाव है?

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सा विस्सोऽढगई।। 2 द्र.सं.।।

ये 9 अधिकार पुद्गल के हैं, कि जीव के हैं? जीव के हैं। सुनो, भट्ट आचार्य अकलंक स्वामी 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' में कहते हैं- हे जीव! यदि तू ऐसा कहता है कि इन्द्रियाँ खातीं हैं, तो आत्मा के निकलने के बाद इन्द्रियाँ रहती हैं उनको सेवन करना चाहिए? व्याकरण की दृष्टि से समझना चाहिए। इन्द्रियाँ करण तो हैं, इन्द्रियाँ कर्ता नहीं हैं। रसना से चखा तो जाता है, पर रसना इंद्रिय चखती नहीं है। हे मुमुक्षु! यदि शरीर पाप करता है तो, पाप का बंध किसे होता है? यदि शरीर पाप करता है तो, आस्रव-बंध शरीर को होगा। जब शरीर छूट जाएगा, तो पाप भी शरीर में रह जाएगा और जब शरीर के संस्कार होंगे तो पाप के भी संस्कार हो जायेंगे, इसकी आत्मा तो शुद्ध चिन्मयी हो जाएगी। यानि कोई संसारी बचेगा नहीं, पुनर्भव होगा नहीं और जब संसार का अभाव हो जाएगा, तो मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा।

समयसार जैसा अलौकिक ग्रंथ सुनते-सुनते भी मिथ्यात्व नहीं छूटा, यदि ऐसी धारणा है तो। तू सदाशिव मत में चला गया। अकलंक स्वामी कह रहे हैं- घृत गर्म है, कि अग्नि गर्म है? अंगुलि को घी जला रहा है, कि अग्नि जला रही है? अग्नि से घी जलता है, कि घी से अंगुलि जलती है? हे मुमुक्षु!

ठीक भी होगी तो घी से होगी। गर्म घी को प्लास्टिक की छन्नी से छाना तो छन्नीं वहीं पिघल जाएगी। दुग्ध कितना भी गर्म होगा, पर घना गर्म नहीं होता; परंतु घी में घनत्व शक्ति होती है अतः वह प्लास्टिक की छन्नी पिघल जाएगी। आचार्य अकलंक स्वामी कह रहे हैं- वास्तव में घी का धर्म तो शीतल है, अग्नि के संयोग से उष्ण है। ऐसे-ही आत्मा का धर्म तो शीतल स्वभाव है, पर कर्म का संयोग है। कौन से कर्म का संयोग है? द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म। तो बंध किसे हुआ और पाप किसने किया? देखो कितना बड़ा भ्रम बैठा है? समयसार ग्रंथ भले कम हो पाए, परंतु अंदर की ग्रंथि निकल जाए, यही समयसार है। सम्यग्दर्शन पहला समयसार है। शरीर यदि पाप करता तो, शरीर से ही पूजा करते हो, जाप देते हो, मुनियों को आहार देते हो। पुण्य शरीर कर रहा है तो पुण्य के फलस्वरूप यह शरीर ही स्वर्ग चला जाएगा और नरक जाएगा तो शरीर जाएगा। तुम्हारा यह सिद्धांत जैनत्व से शून्य है। पाप इन्द्रियों से नहीं, पाप करानेवाली आत्मा है। यदि इन्द्रियाँ पाप करती तो, अंधे का एक पाप चला गया, गूँगे का एक और पाप चला गया। 'इन्द्रियाँ पाप नहीं करतीं'- ('तत्त्वार्थ राजवार्तिक' 5वाँ अध्याय) इन्द्रियाँ कोई पाप नहीं करती। इन्द्रियाँ करण-साधन हैं, कर्ता-साधन इन्द्रियाँ नहीं, आत्मा है। पूरा जैनदर्शन आत्मा पर टिका है और आपने आत्मा को हटा दिया, ज्ञानी! कुछ नहीं बचेगा। समय यानि आत्मा, समय यानि आगम, समय यानि जैनधर्म। समय हो गया। कथनशैली में भिन्न/अभिन्न दोनों कथन हो सकते हैं। आत्मा को कर्ता और इन्द्रियों को करण कहा।

यः परिणमति स कर्त्ता।

ध्यान रखना, भिन्न कारक भी हैं, अभिन्न कारक भी हैं। अभिन्न कारक में हम कथन करेंगे तो आत्मा ने ही यह पाप किया। आत्मा की पापी है। आत्मा में, आत्मा से पाप किया, आत्मा के लिए पाप किया। अभिन्न कारक है। जब भिन्न कारक आयेंगे तो द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, बंध-अपेक्षा एकत्व है। पर स्वभाव-अपेक्षा भिन्नत्व है। जब भिन्नत्वभाव से हम द्रव्येन्द्रिय को देखेंगे, तो इस आत्मा ने द्रव्येन्द्रिय का आलंबन लेकरके कर्म को किया। पर वास्तव में आत्मा ने आत्मा से देखा। यहाँ ऐसा कथन क्यों किया? ये ज्ञानी, आत्म को, शरीर से भिन्न मानते हुए भी पाप का कर्ता शरीर को मानते हैं। एक का चैतन्य स्वभाव, एक का जड़ स्वभाव, लेकिन आप बड़े-बड़े ज्ञानियों से सुनना, जो द्रव्यानुयोग को नय विवक्षा शून्य होकर समझ रहे हैं, तत्त्व को समझ नहीं रहे हैं, वे धीरे-से कह देंगे कि यह तो पुद्गल की अवस्था है, शरीर कर रहा है, आत्मा तो भिन्न त्रैकालिक शुद्ध है। पर हे ज्ञानी! जब शरीर से पाप कर रहा होगा, तत्काल में आत्मा भी पापी ही होग। यह भ्रम न हो जाए- कि मैं तो शरीर से भिन्न हूँ इसलिए मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, जो कर रहा है, शरीर कर रहा है। बंधदृष्टि यह कि मोह आत्मा से रहित होता ही नहीं। यदि रहित होगा, तो मोह होगा कहाँ पर? दोनों अपेक्षा से देखो। कर्मोपाधिक सापेक्ष

अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से आत्मा राग-द्वेषरूप है।

कर्मोपाधि-निरपेक्षः शुद्ध द्रव्यार्थिकः
यथा संसारी जीवः सिद्ध सदृक् शुद्धात्मा।। 47 आ.प.।।

कर्म-निरपेक्ष नय से सब संसारी जीव सिद्ध सदृश शुद्धात्मा हैं। समान हैं। जब जीव की स्वतंत्र धारा में देखेंगे तो आत्मा की परिणाति ही कर्ता है, आत्मा का परिणाम ही कर्ता है, आत्मा की परिणति ही क्रिया है। वही कर्ता, कर्म, करण है। जो कर्म है, वह सापेक्ष है। क्योंकि आत्मा की परिणति शुद्ध अवस्था में भी चलती है, अशुद्ध अवस्था में भी चलती है। जो सिद्ध भगवान हैं उनमें भी कर्ता, कर्म, क्रियाभूत परिणति है। जो अशुद्ध आत्मा है, उसमें भी है। अशुद्धात्मा कर्मसापेक्ष है। यदि उसे कर्मसापेक्ष नहीं मानेंगे तो शुद्धात्मा को अशुद्धात्मा रूप परिणत होना मानना पड़ेगा। ऐसा है, कथंचित् ऐसा है। ऐसा कहना पड़ेगा।

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता तत्फलानां स एव तु।
बहिरंतरुपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि।। 10 स्व.सं.।।

कर्म का कर्ता-भोक्ता आत्मा स्वयं है। और जब मुक्त होगा, तो बहिरंग-अंतरंग उपायों से यह आत्मा ही मुक्त होगा। वास्तव में कहा यह जाता है कि कर्मों का और आत्मा का मोक्ष हो गया। परंतु वास्तव में न कर्मों का मोक्ष हुआ न आत्मा का मोक्ष हुआ। कर्म अपने स्वरूप में हो गए, आत्मा अपने स्वरूप में हो गई। और व्यवहार में क्या-क्या बोलते हो? आत्मा ने कर्म नष्ट किए। ज्ञानी! कर्म भी नष्ट होते हैं क्या? नष्ट हो जायेंगे तो द्रव्य का नाश हो जाएगा। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है, परंतु वास्तव में सिद्ध भगवान कर्म नष्ट नहीं करते, कर्म से पृथक् होते हैं पृथकीकरण की क्रिया है।

ध्याना रखना! पाप शरीर ने ही किया, शरीर से आत्मा ने किया। मैं द्वेष नहीं, मैं राग नहीं। मैं तो चित्-शक्ति-स्वरूप हूँ। स्वभावभाव से युक्त मैं तो भगवानात्मा हूँ। अन्य नहीं, अन्यथा नहीं। यह शब्दजाल नहीं, शब्दब्रह्म है आत्मब्रह्म का ज्ञान कराने के लिए।

यद् किलः खलु एकः

जो निश्चय से एक है, वह सम्पूर्ण द्रव्यों से परस्पर, साधारण अवगाहना से, आँखों से न दिखे तो क्या है नहीं? क्या तूने नंगी आँखों से दूध में घुली शक्कर को देखा? कहाँ गई? मुख में रखो, स्वाद कैसा है? अज्ञानी जीव इस देह में विराजी भगवानात्मा को समझ नहीं रहा है, पर आचार्यभगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं- अशक्य है निमग्न होने के कारण।

माताओं! श्रीखण्ड बनाना जानती हो क्या? उसमें दधि है, शर्करा, इलायची आदि-आदि हैं। पर ये सब घुले-मिले हैं, तो क्या आप इन्हें एक-एक करके दिखायेंगे? तो एक-एक नहीं हैं क्या? श्रीखण्ड संज्ञा एक हो गई, फिर भी श्रीखण्ड का धर्म शक्करभूत ही है, दधि का दही रूप ही है। ऐसे-ही भगवानात्मा तो भगवानात्मा ही है। यदि ज्ञानी कोई वैद्य हो तो किसी विशेषज्ञ को श्रीखण्ड बनाकर खिलाना और इलायची मत डालना तो वह बता सकता है कि इसमें इलायची नहीं है। एक-एक द्रव्य का स्वाद लेते हुए अनुभूति ले रहा है। खट्-मिट्ठा है। खट्ठा कौन? दही। मीठा कौन? शक्कर। प्रसिद्ध है श्रीखण्ड। आगमग्रंथों में वही उदाहरण दिए जाते हैं जो प्रसिद्ध हों। वह विषय अलग है कि अशुद्ध पेय पीना शुरू कर दिया हो तो लस्सी व श्रीखण्ड भूल गए हो। पर ध्यान रखना, वे राग के कारण ही हैं और ये लस्सी व श्रीखण्ड निरोगता के साधन हैं, व्यवहार दृष्टि से। लेकिन ज्ञानी! सभी रोग हैं। खाना ही रोग है, तो ये निरोग कैसे? एक-एक अंगुल में 96-96 रोग हैं। यह निरोग होने की बात छोड़ो, कर्म से रहित होने की बात करो। अलग-अलग स्वाद नहीं बात सकते श्रीखण्ड में, परंतु मुख में रखकर स्वानुभूति से स्वाद को जाना जा सकता है। कोई कहे भेदविज्ञान करो, तो उल्टा मत समझ लेना, कि आत्मा को शरीर से निकाल रहा हूँ, तो छुरी लेकर बैठ गया, स्वयं के शरीर का भेदन करने बैठ गया, बोले भेदविज्ञान कर रहा हूँ।

अरे मुमुक्षु! जैसे श्रीखण्ड से शक्कर को अलग नहीं किया जा सकता, फिर भी शक्कर भिन्न है, दही भिन्न है; इस शरीर को छिन्न-भिन्न मत करना। स्वानुभव से जानना कि देह भिन्न है और आत्मा भिन्न है। बहुत अच्छा हुआ आचार्य महाराज ने स्पष्ट कर दिया, नहीं-तो अज्ञानी लोग शरीर को नष्ट करने बैठ जाते।

मैं मोह से निवृत्त होता हूँ, इसलिए सदा आत्म एकत्व रूप से, आत्मा में स्थित होकर, भावक-भाव विवेकभूत होना चाहिए, जानना चाहिए। यह भावकभावभूत अवस्था ही ज्ञानी! तेरे स्वभाव को कहने की दशा है। अब चिंतन करना कि जब मोह मेरा नहीं, तो मोह के साधन मेरे कैसे हो सकते हैं?

चिंतन कर लिया करो, कम-से-कम दो मिनिट ही चिंतन कर लिया करो।

आज गहरे में बैठकर चिंतन करना-

जब मोह ही मेरा नहीं, तो मोह के साधन मेरे कैसे? और सत्य तो यह है कि जीव मोह के साधन में ही अपनी आत्मा की विडम्बना कर रहा है, पर के राग में स्वयं के भगवान को खो रहा है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी परमागम 'समयसार' जी में प्रत्याख्यान का स्वरूप समझाते हुए कह रहे हैं- जो प्रारंभ अवस्था है, प्रारंभ अवस्था में व्यवहार दृष्टि से अणुव्रत महाव्रत आदि को जीव धारण करता है और पाँच-इन्द्रिय के विषयों की पुष्टि से साधनों का परित्याग करता है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ ये जो पाँच-इन्द्रिय के विषय हैं, इन सब से राग-द्वेष का त्याग करता है। परमार्थ से निज ज्ञान की लीनता ही प्रत्याख्यान है। वह प्रत्याख्यान जैसा आख्यात् है, वैसी ही प्रीति जिसकी निज में है, वही सत्यार्थ प्रत्याख्यान है। जैसो अर्हंतदेव ने आख्यान किया, उसके प्रति प्रीति जिसकी है, वही भूतार्थ प्रत्याख्यान है। जैसा आख्यात् निज आत्मा का स्वरूप है, निजात्मा के स्वरूप में प्रीति होना ही सत्यार्थ प्रत्याख्यान है। जिसे व्यवहारनय से कर्मबंध कहते हैं। अथवा अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा रागादि भावों से युक्त है। उन रागादिक भावों का अभाव करना प्रत्याख्यान है। लेकिन परमार्थ दृष्टि से, ये जो मोह है, वह मैं नहीं हूँ। मोह करते स्पष्ट दिखाई दे रहा है, फिर भी महाराज! आप कह रहे हो, कि मोह मैं नहीं हूँ? समझो। मोह मैं होता, तो मोह मेरे में त्रैकालिक होता। जो मैं होता हूँ, वह त्रैकालिक होता है। जो मैं नहीं होता हूँ, वह तात्कालिक होता है।

यह भव्यजीव की मोह दशा त्रैकालिक नहीं है। यह भव्यजीव का असंयम त्रैकालिक नहीं है। यह भव्य जीव का मिथ्यात्व व अविरति त्रैकालिक नहीं है। अहो! भव्यजीव का चिद्रुप स्वभाव अखण्ड त्रैकालिक है। विभाव तो विभाव है, विभाव तो बारिश के बादल हैं। यह काली घटा तभी तक है जब तक आषाढ़-सावन का महीना है। काली घटा नष्ट नियम से होगी, पर आकाश अखण्ड है। आकाश में मेघ हो सकते हैं, पर आकाश मेघ नहीं है। आत्मा में मोह हो सकता है, पर आत्मा मोह नहीं है। मोह 'कर्म' है, आत्मस 'निज धर्म' है। कोई जगत का ध्यान करने की जरूरत नहीं। कोई सम्पूर्ण ध्यान की ध्येता है, मोह से निज को हटा लेना ही ध्यान का फल है। मोह से निज को नहीं हटा सका तो वह ध्यान मोक्ष का साधन नहीं है, संसार का साधन हो सकता है। आर्त्त-रौद्र ध्यान हो सकता है।

जो व्याख्यान चल रहा है, ज्ञानी! इसे ही ध्येय बनाइए। आत्मा को ध्याता बनाओ और निज में बैठ जाओ, यही ध्यान है। जहाँ ध्येय-ध्याता का भेद न हो, वही परम ध्यान है। जहाँ संकल्प-विकल्प की लीलावलियाँ चल रही हैं, वह ध्यान मोक्षमार्ग में कारणभूत नहीं है। ध्यान हट जाए, यही तो ध्यान है। ध्यान लग जाए, यही तो ध्यान है। परभावों से ध्यान हट जाए, यही तो ध्यान है। निजभावों में ध्यान

लग जाए, यही तो ध्यान है। स्वभाव में लीन हो जाए, यही तो परम ध्यान है। यही प्रत्याख्यान है।

इस विषय को इसलिए नहीं समझना कि व्रत-संयम करना ही छोड़ दिए। इसलिए समझना कि तुम्हारे व्रत-संयम से ऊपर भी कुछ-और है। समयसार इसलिए नहीं सुनना की व्रत-संयम छोड़ दें। नींव खोद देना मंजिल नहीं है, नींव भर देना मंजिल नहीं है; पर नींव खोदे बिना मंजिल बनती नहीं है। पर नींव खोदने-भरने में संतुष्ट मत हो जाना, क्योंकि अभी सबकुछ हुआ नहीं है। जब-तक कलश न रख जाए, ध्वजा न चढ़ जाए, तब-तक मंदिर पूरा नहीं है। तो श्रावकाचार ने नींव खोद ली, मूलाचार ने नींव भर दी, समयसार कलशारोहण करेगा। आचार्यभगवन् कह रहे हैं-

मोह जो है, वह मैं नहीं हूँ। मैं जो होता है, वह मुझे पीड़ित नहीं करता। पराये कष्ट देते हैं। जो अपने होते हैं, वे कष्ट नहीं देते। यथार्थ बोलना, मोह ने आपको सुख कितना दिया? जहाँ कभी सोचना भी नहीं चाहिए था, जिसका कभी नाम भी नहीं लेना चाहिए था, वह मोह सुचवा भी देता है और नाम भी लिवा देता है। मोह की दशा सत्यार्थ को जानते हुए भी आँख बंद करा देती है और असत्यार्थ की पुष्टि कराने में मोह बड़ा प्रबल होता है। ऐसा मोह भला है, तो जो भला नहीं है तो अपना कैसे? तेरा वंश, कुटुम्ब, स्त्री-पुत्रादि तेरे ही थे न? तेरे ही हैं न? त्रैकालिक नही है न? तो तू क्यों चिपका है? जितनी पर्यायें निकल गईं तेरी, उतनी पर्याय और हैं क्या? जितना द्रव्य वर्तमान पर्याय में जोड़ा है, उसे वर्तमान पर्याय में भोगेगा क्या? फिर भी संचय में दृष्टि क्यों लगी है? तेरा पेट भरने के लिए अब तू नहीं कमा रहा। तू मोह भरने के लिए कमा रहा है। परंतु वह मोह भरा जाएगा नहीं क्योंकि उसका गड्ढ़ा विशाल है, वह कभी भरा जाएगा नहीं। कभी सागर नदियों से तृप्त हो भी जाए, लेकिन इच्छायें कभी शांत नहीं होंगी। उस परम दशा का ध्यान करो जो निर्ममत्व/निर्मोही मेरी आत्मा की दशा है।

निर्ममत्वस्वरूपोऽहम्।

ममत्वभावरहितोऽहम्

करो ध्यान-

अहो! शत्रु से भी मोह, मित्र से भी मोह। उससे बोलते नहीं, क्यों? मेरा शत्रु है। उसमें भी मेरा पन। धिक्कार हो। यदि आप भ्रमित न हों तो एक बात कहूँ- जिस सारे जगत ने श्रेष्ठ कहा, उसे समयसार अश्रेष्ठ कहता है। पूरे जगत से राग करके तू जगत के राग को प्राप्त तो हो सकता है, पर जगत के लिए कर कुछ नहीं सकता। जो तेरी दया-परिणति चल रही है वह तेरी अदया-परिणति है। जब तू पर पर दया कर रहा था, तब तू नियम से रागरूप था, तो तब तू बंधभूत था। जब तू बंधभूत था, तो तेरी आत्मा कष्ट में थी। हे मुमुक्षु! निज चिद्रूप में चला जाता तो निज की दया निज को हो जाती तो निर्बंध दशा

को प्राप्त कर लेता। यह परम वीतराग दशा है। हे योगीश्वर! पर की दया भी तुम्हें अदया लगती है, क्योंकि निज का बंध करानेवाली दया कैसी? लेकिन जब-तक वीतरागता को प्राप्त नहीं किए, तब-तक दयाधर्म छोड़ नहीं देना। पंचमकाल के जीव है, इन्हें दोनों बातें बताकर चलना पड़ता है। दया को छोड़ मत देना, लेकिन हृदय में यही बनाकर चलना कि मोक्ष तेरा तभी होगा जब जगत की दया से भी दया हट जाएगी, तब तेरी निज की दया प्रारंभ होगी। ये सब व्यवहार की बातें हैं, बंध दशा की बातें हैं। जब मोह ही मेरा नहीं है, तो मोह के साधन मेरे कैसे? पुत्र तेरा है, कि मोह का साधन है? भवन तेरा है, कि मोह का साधन है? घबराना नहीं। यह शिष्य मेरा है, कि मोह का साधन है? यह चेला-चेली मेरे हैं, कि मोह के साधन हैं? ये मात्र मोह के साधन हैं। जब मोही नहीं बचेगा, तो ये मेरे कैसे होंगे? देखा! यह शब्द मन में लाना नहीं महाराज! गृहस्थी का क्या होगा? यह समयसार गृहस्थी के लिए नहीं चल रहा है। गृहस्थियाँ कल मिटती थी तो आज मिट जायें। यह गृहस्थी बढ़ाने का ग्रंथ नहीं। ज्ञानी! यह गृहस्थी मिटाने का ग्रंथ है। इसलिए ध्रुव सत्य है, यह ग्रंथ गृहस्थों के लिए नहीं है, निर्ग्रंथो के लिए है। दोनों मोह (दर्शन-चारित्र मोह) मेरे नहीं है। मेरे में मोह हो सकता है, फिर भी मोह मेरा नहीं है, यानि नहीं है। यह दृढ़ श्रद्धान जब-तक नहीं आएगा, अंदर का राग आपको सत्यार्थ तत्त्व को कहने भी नहीं देता, कि ऐसा कथन कर दूँगा तो भ्रम खड़े न हो जाएँ। ज्ञानी। तुमने भ्रम खड़ा कर दिया। स्पष्ट समझाओ। स्पष्ट समझाओ कि मोह 'कर्म' हैं, कर्म में समझौता किस बात का? यह लेखनी मोह कर्म है, कि उसका विषय है? ये जगत के द्रव्य मोहकर्म हैं, कि मोह के विषय हैं? जब मोह कर्म ही मेरा नहीं है, जब प्रधान ही मेरे नहीं हैं, तो अप्रधान मेरे कैसे हो सकते हैं।

पर के विषय की पुष्टि तू कब-तक करेगा? जब मोहकर्म मेरा नहीं, जिसका आत्मा में संश्लेष संबंध है ये राग-द्वेष विभाव-परिणति है, आत्मा की स्वभाव-परिणति नहीं है। यह राग-द्वेष परद्रव्य नहीं आत्मा की विभाव-परिणति है। परद्रव्य में विभाव नहीं है मेरा। परद्रव्य से विभाव नहीं है मेरा। मेरा विभाव तो मेरे ही विभाव भाव से है। उसका निमित्त-साधन द्रव्यकर्म ही है, ये भी ध्यान रखना। यहाँ भूल चल रही है। 'जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रांति रही मेरी।'

यह पंक्ति आधी सत्य है, पूरी सत्य नहीं है। गाथा संख्या 80 समझ में आ जाएगी तो यह लाइन तुम्हारी पूरी समझ में आ जाएगी-

जीव के परिणाम हेतु हैं, यह भावकर्म है। पौद्गलिक कर्मों के आने में निमित्त-कारण क्या है? क्या आत्मा में सहज ही कर्म आते है? यदि आत्मा में सहज कर्म आयेंगे, तो सिद्ध भगवान के भी कर्म आयेंगे। 'पुद्गल-आत्मा, पुद्गल-आत्मा' इतना कह देना तत्त्व का विषय नहीं है। जैसे करणानुयोग (कर्म की प्रकृतियों को लगाना) कठिन होता है ऐसे-ही द्रव्यानुयोग का विषय भी लगाना कठिन है।

करणानुयोग की सीमा एक पक्ष मात्र है, द्रव्यानुयोग असीम है। छहों द्रव्य द्रव्यानुयोग है। करणानुयोग भी इसमें समाहित है। 'कर्मप्रकृतियाँ पुद्गल द्रव्य हैं कि नहीं? खगोल की चर्चा करोगे, द्वीप-समुद्र की बात करोगे, वे छह द्रव्य से रहित होंगे क्या? द्रव्यानुयोग असीम है। यदि कर्म सहज आते, तो सिद्धों के भी कर्म आते। कर्म सहज नहीं आते, आत्मा के विभाव परिणामों के कारण कर्मवर्गणाऐं आती हैं। बिना द्रव्यकर्म के आत्मा में रागादिभाव नहीं आते।

पुग्गल कम्म निमित्तं

जीव भी परिणमन करता है। हल्दी ने चूने का रंग बदला, कि चूने ने हल्दी का रंग बदला? हे मुमुक्षु! एक ही काल में दोनों एक दूसरे के निमित्त बने, तब तीसरी पर्याय प्राप्त हुई है। यही मुमुक्षुओं को भ्रम है। जब-तक 'अष्ट सहस्री' जैसे ग्रंथ का अध्ययन नहीं करेंगे तब-तक समयसार में भ्रम ही रहेगा। अष्टसहस्री, न्याय दीपिका, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक इन ग्रंथों का अध्ययन अनिवार्य है इस ग्रंथ को समझने के लिए।

यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध चल रहा है, परंतु हे मुमुक्षु! जब तू चाहेगा तो तू शुद्ध भी हो सकता है, जब तू नहीं चाहेगा तो ऐसे ही भूल करता रहेगा। तू चाहेगा तो तू सुधार भी कर सकता है और नहीं चाहता है तो ऐसे-ही बिगाड़ करते रहना, तो ऐसे-ही प्रेम से संसार मिलता रहेगा। भूल किसी अन्य की नहीं है। भूल मोह की नहीं, मोह तो कर्म है। भूल मोही की है। मदिरा की भूल नहीं, मद्यपायी की भूल है। मदिरा को पिया क्यों? जब घोड़े पर बैठकर गए थे तो भूल गए थे कि इसका फल क्या होगा? आज देखो, वृद्धावस्था आ रही है, फिर भी मोह बूढ़ा नहीं हो रहा है। तुमने एक दिन टीका क्या लगवा लिया, ऐसा लग गया कि छूट ही नहीं रहा है। देह छूट जाएगी, पर टीका नहीं छूट रहा। आपके बेटे की शादी हो रही है, और नट नृत्य कर रहा है। शादी आपकी नहीं, बेटे की। नृत्य नट कर रहा है। वधु न तेरी होगी, न नट की होगी, पर सबसे ज्यादा पसीना नट को ही आ रहा है। नृत्य कर रहा है, किसके पीछे? हे रागी! तुझे नोटों का राग है। हे रागी! तू नृत्य करवा रहा है क्योंकि तुझे बेटे का राग है, पर जिसकी वधु बनने वाली है, उसे नट का नृत्य नहीं दिख रहा, पिता भी नहीं दिख रहा, उसे पत्नी नजर आ रहा है। श्रेष्ठ कौन है? जिसे मात्र पत्नी नजर आ रही है। तुम दोनों पागल हो। जिस दिन पत्नी घर पहुँच जायेगी, उस दिन तू बेटे का 'पड़ौसी' हो जाएगा। ये किस पिता को मालूम नहीं है? और जिस दिन बेटे का बेटा हो जाएगा, उस दिन तुम 'बाबा' हो जाओगे।

बताइए, ये सब किसके लिए किया? श्वास खिंचने लगी, यह मोह की श्वास नहीं खिंच रही है। जब मोह मेरा नहीं है, तो मोह के साधन मेरे कैसे हो सकते हैं? ऐसा चिंतन जब-तक योगी नहीं करता,

तब-तक निज भाव में लीन नहीं होते, उन्हें पर भाव में रहना पड़ता है। भक्त को भगवान की भावना भानी पड़ती है। यह स्वरूप दशा है। आप कब पहुँचेंगे? उसके लिए पसीना नहीं बहाना पड़ेगा। परभावों से मस्तिष्क को हटना पड़ेगा। लेकिन इतना निर्णय तो कर लो कि मोहनीय कर्म आत्मा का धर्म नहीं है। संसार की वस्तुओं को मैं-मैं कह रहा है, यह तू कह रहा है या मोहनीय कर्म कह रहा है? ये सब साधन मोहनीय कर्म के बन रहे हैं न? हे मुमुक्षु! क्यों अज्ञानी बन रहा है? जब मोहनीय कर्म मेरा नहीं, तो मोहनीय कर्म के कारण मेरे कैसे हो सकते है? ऐसा जब चिंतन करता है योगी, फिर बरसें ओले, बरसे पानी, गिरे आज, अग्नि के गोले भी। ज्ञानी! छोटी-मोटी साधना से सिर की सिगड़ी सहन नहीं होती। कपड़े उतारकर पिच्छि-कमण्डल ले लो, सिर पर सिगड़ी रखो, वह साधना है। जो यहाँ पहुँच जाता है, फिर ईंट-चूने में नहीं जाता। वह तो छोड़कर ही आया हूँ।

हे वर्द्धमान! आप राज्य छोड़कर निकल पड़े, पर आपने अपने नाम की पत्रिका भी नहीं छपवाई। क्योंकि पत्रिका में धर्म होता तो निज के परिचय का क्या होता? रंग-बिरंगी पत्रिकाएँ, ये मेरी आत्मा का धर्म किंचित भी नहीं हैं। पत्रिकाओं का द्रव्य जिनवाणी के प्रकाशन में लग जाए तो अर्हंत की वाणी घर-घर में पहुँच जाए। तत्त्व की बात में मिलावट मत करना। भक्त भगवान को खोज लेता है, उन्हें पत्रिकाओं की आवश्यकता नहीं पड़ती और जिन्हें नहीं आना होता है, तो सोने में जड़कर पत्रिका भेजना, एक नहीं आएगा। कभी सम्मेद-शिखर की वंदना करने गए? पार्श्वनाथ की टोंक देखी? चन्द्राप्रभु की टोंक देखी? मनीषियों! जब तीर्थंकर होंगे तब कितना घना जंगल होगा। जो जगत से छुपकर रहता है, वह जगत में प्रकट हो जाता है और जो जगत में प्रकट होकर रहता है, वह छुप जाता है। यह ध्रुवधाम की चर्चा है, यह कागजों की नौकाओं की बात नहीं है। कागज की नौकाएँ चलती भी दिखती हैं, पर गलती भी दिखती हैं। देखा कभी? चलती दिखती हैं, पर बिठा नहीं पाती किसी को। इन चर्चाओं से लगता है कि कुछ व्यवहार का लोप होते तो दिखाई देता है, परन्तु सत्यार्थ यह है कि सत्य स्वरूप की प्राप्ति यही है।

पत्रिका में नाम नहीं गया। एक का नहीं आया तो उथल-पुथल मच गई। वहाँ समता रखना ही धर्म था। कागज ने अंदर की सफेदी को नष्ट कर दिया। जबकि पर्याय की पर्याय का राग था। पर्याय की पर्याय के राग में साक्षात् भगवान नहीं दिखते, धन्य हो तेरा राग। जब-तक योगी बनने के साथ, समयसार का अध्ययन नहीं होगा, तो भेष का तो रहेगा, भाव का रह नहीं पायेगा। जीव यही मान बैठा कि खिंचे रहो, खिंचवाते रहो, यही धर्म है। जबकि अभी धर्म के पास पहुँचे भी नहीं। आत्मस्वभाव की चर्चा करनेवाले भी पुद्गल में लिप्त हो गए।

जब मोह मेरा नहीं, तो मोह के साधन मेरे कैसे? धन्य हो, योगीश्वर! धरती के देवता! ग्रंथ बाद

में पढ़ूँगा, पहले आपको नमोस्तु। इसलिए नहीं कि आप निर्गंथ हैं, इसलिए नमोस्तु कर रहा हूँ कि आपने मोह के साधनों को ही (कारणों को ही) नहीं छोड़ा बल्कि मोह को भी मोह मानकर धक्का दे दिया। इसलिए आपको नमोस्तु। शरीर झुलसाया जा रहा हो, तब क्या सोच रहे होंगे? यह मोह नहीं है, यह मोह के साधन हैं और मैं मोह को ही नाश करने बैठा हूँ तो मोह के साधन की रक्षा क्या करूँ? धन्य हैं योगी।

आप कुछ भी सोचो, मैं तो आनंद लूट रहा हूँ और उस भूमि का आनंद लूट रहा हूँ जहाँ एक निर्विकल्प योगी बैठा हो। जिस पर धनुष-बाण छोड़े गए हों। हे ज्ञानी! तू तन को तो भेद सकता है, पर चेतन को नहीं भेद सकता। तू उसे भी भेद रह है जिस में भेदन करना चाहता हूँ। जिसे मैं छोड़ने बैठा हूँ, तू उसे ही तो छुड़ा रहा है।

घर से राग छोड़ पाओ या न छोड़ पाओ, चिंता मत करना, पर देह से राग छोड़ना शुरू कर देना। सबसे खोटा कोई राग है तो देह का राग है। घर का राग तो छूट जाता है। बेटा धक्का मारे सो तुरंत पिताजी खिसक जाता है। घर का राग छूट सकता है, माता-पिता का राग छूटने में देर नहीं लगती, पर देह का राग छूटने में अनंत भव लग जाते हैं। जंगल में रहनेवाले वनचरों के पास कौन घर हैं? कौन भवन हैं? कौन माता-पिता के संबंध हैं? जंगल के जानवर बड़े हुए, पता नहीं कौन माता कौन पिता। तो उनका संसार क्यों नहीं छूट रहा? देह के राग के कारण। 87 शक्तियों में सम्प्रदान शक्ति का ध्यान करो, यह सब किसके लिए? भवन किसके लिए, देह किसके लिए? जो कुछ कर रहे, किसके लिए? समय ही नहीं है आपके पास कि हम 'समय' को समझ सकें। यह सारा जगत का परिणमन किसके लिए?

ध्यान रखना, मोह ही तेरा नहीं है, तो मोह के निमित्त तेरे कैसे हो जायेंगे? आज से आँखों में आँसू बहाने का त्याग करो। व्यर्थ के ढोंगो से काम नहीं चलेगा। यह मायाचारी बंद करो। असातावेदनीय कर्म का आस्रव बन्द करो। कोई मर जाए तो रोते हो, रोने से जी जाएगा क्या? ज्ञानी! कोई अनहोनी नहीं हुई, हमारे साथ भी ऐसा होगा। इसलिए व्यर्थ की बातें बन्द करो, वैराग्य की बातें कर सको तो करो। समता रखो। कोई लाख बुराइयाँ कर जाए तो यही सोचना कि मेरे पूर्व के कर्म मेरे देखते-देखते फलित हो रहे हैं। हँसना या रोना नहीं।

''ज्ञाता-दृष्टा-स्वरूपोऽहम्''

निर्बंध होना है तो जैसे वंदनीय विराजे जिनायल में, नासाग्र दृष्टि। आँखें बन्द करें तो भी बंध, आँख खोलें तो भी बंध, इसलिये नासाग्र दृष्टि है। नीचे इसलिए कि दिखे न। ऊपर इसलिए नहीं कि देख न लूँ।

टंकोत्कीर्ण, परम भाव से भावित हुये, ज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा है। परभाव से भावित, जो मोह है, वह मोह किंचित भी मेरा नहीं है। यह आत्मा विश्वप्रकाशी केवलज्ञान स्वरूप है। पर से नहीं, स्व से है। अविकार स्वरूप है। अनवरत् प्रताप की सम्पदा से युक्त, चित् शक्ति है। इसे ही अज्ञानी भूल गया।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। निर्ममत्व का स्वरूप ।।

उत्थानिका - आगे इस अनुभूति से परभाव का भेदभाव किस तरह हुआ, ऐसी आशंका कर प्रथम भावक जो मोहकर्म के उदयरूप, उनके भेदज्ञान का प्रकार कहते हैं-

गाथा - **णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।**
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति।। 36।।

अन्वयार्थ - **(बुध्यते)** जो ऐसा जाने कि **(मोहः मम कोऽपि नास्ति)** मोह मेरा कोई भी सम्बन्धी नहीं है **(एकः उपयोग एव अहम्)** एक उपयोग ही है वही मैं हूँ **(तम्)** ऐसे जानने को **(समयस्य)** सिद्धान्त के अथवा आप परस्वरूप के **(विज्ञायकाः)** जाननेवाले **(मोहनिर्ममत्वम्)** मोह से निर्ममत्व **(विदन्ति)** समझते हैं- कहते हैं।

संस्कृत छाया - **नास्ति मम कोऽपि मोहो बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।**
तं मोहनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायकाः विदन्ति।।

समय देशना

आत्मा के ध्रुव अखण्ड स्वभाव का कथन करते हुए समझाया है कि परभाव तो परभाव है। यह आत्मा मोह के वशीभूत हुआ, परभाव का भावक अनंत काल से रहा। परंतु ज्ञानी आत्मा निज भाव का ही भावक है। यह परमार्थ दृष्टि है। जहाँ परद्रव्य के प्रति ममत्व की धारा है वहाँ बंध धारा है। जहाँ निर्ममत्व धारा है, वही निर्बंध धारा है। राग ही कर पाएगा, पर अन्य द्रव्य को निज में रंगित नहीं कर पाएगा। मोह ही कर पाएगा, पर किसके प्रति मोह है उसे अपने रूप नहीं बना सकेगा। जब मोह ही तेरा धर्म नहीं है, तो जिस पर मोह किया जा रहा है, वह तेरा धर्म कैसे हो सकता है? मूल बात समझना। फिर भी, अज्ञानी जीव सुनता है, समझता है, जानता है, पर मान नहीं पा रहा है, यही मोह के मद का प्रभाव है। आज-तक जीव स्वयं के कारण संसार में दुःखित नहीं हुआ। जो भी दुःख हुआ है, पर निमित्त से हुआ है। कर्म-सापेक्षता बिना के कोई दुःखी नहीं हुआ। ऐसे भी अज्ञानी जीव मिल जाएँगे जो लोगों से उपेक्षित हैं, फिर भी पर से अपेक्षा करते मिल जायेंगे। उन्हें दुत्कारा जा रहा है, फिर भी उसके पीछे पड़े हैं।

हे अज्ञ! इन कर्मों ने तेरी अपेक्षा कब की है? कर्मों ने तुझे उपेक्षित ही कराया है, फिर भी तू कर्म के ही सम्मान में लगा है। ये देह का सम्मान, नोकर्म का सम्मान। नो कर्म के सम्मान में हुआ राग भाव, कर्म का सम्मान। भवाभिनंदी हुआ भव का अभिनंदन कराता रहा। जीर्ण भव के छोड़ने के पहले अभिनंदन अभिनव भव का कर लिया। अल्पधी समझता ही नहीं है कि यह अभिनंदन किसका हो रहा है? तत्त्व स्वतंत्रता का निर्णय करना, यह घी खाने वालों का विषय नहीं है, यह घी न-खाने वालों का विषय है। तत्त्वनिर्णय वही कर सकेगा जो स्वानुभूति पर लक्ष्य रखेगा। एक ध्याता, एक वैरागी, उसका चेहरा हर समय चमकता रहेगा, प्रशस्त रहेगा। साधक/आराधक का चेहरा सदा चमकता रहता है, क्यों? जब एक विषय की अनुभूति लेने वाला मुस्कुराता हो, जो आत्मा की अनुभूति लेता हो, उसका चेहरा फीका हो, कभी संभव नहीं होता। यदि पुराने मकान की नींव खोदते-खोदते मटका मिल जाए तो ज्ञानी! तू किसी मुमुक्षु से कहने जाएगा कि आओ, भैया! मेरे घर में धन निकला है। धन्य हो उस धन को, जड़ होकर भी चेतन के चेहरे पर मुस्कान दे रहा है। जड़ अनुभूति दे रहा है। पौर से निकला, चबूतरे का बैठा, कोई न भी दिखे फिर भी मुस्कुरा रहा है। यह चमक बाहर की नहीं, जो अंदर भरा घड़ा निकलता है उसकी चमक है। ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु जीव के अंदर में चारित्र की निर्दोषता, सम्यक्त्व की अनुभूति, ज्ञान का आनंद है वह चेहरे पर झलकता है। यदि चेहरा मलीन है, मतलब चारित्र का (संयम का) आनंद आ नहीं रहा है। दर्पण देखा कभी? दर्पण पर तेल का हाथ फेर देना, फिर चेहरा देखना। जब स्नेह लगे दर्पण में बाहर का चेहरा नहीं दिखता, तो मोही के हृदय में आत्मा का चेहरा क्या दिखेगा? धिक्कार उस अग्नि को, अग्नि जलायेगी मात्र सामने रखे ईंधन को। अग्नि तो ईंधन के संयोग से जलती है, ईंधन के अभाव में अग्नि नहीं जलती। पर धिक्कार हो इस मोह-अग्नि को, जो सद्भाव में भी जानती है, अभाव में भी जलाती है। जितनों की विडम्बना हुई, हो रही है, मोहाग्नि में हो रही है।

यह जिनशासन है। यहाँ कोई किसी को सुखी-दुःखी कर नहीं सकता। तुम्हारा सोच पवित्र है, वही सुख है और तुम्हारा सोच अपवित्र है, वही दुःख है। कष्ट देनेवाला कष्ट देने की तो सोच सकता है, पर जिसे कष्ट में डालना चाहता है, उसे कष्ट स्वीकार नहीं तो कष्ट नहीं हो सकता। हे कमठ! तू नाना उपसर्ग ही कर सकता है, पर तू योगी की कषाय को नहीं भड़का सकता। यह है समयसार, अनुभूति का समयसार। योगी के तन से रक्त भी निकाला जा सकता है। कार्तिकेय स्वामी से पूछो, सगे बहनोई ने वसूले से तन छीला हो। योगी क्या कह रहे थे? जिसे तू छील रहा है, वह तो छिलेगा ही। जिसे तू छीलना चाहता है, उसे छील नहीं पायेगा। आज हमारी दृष्टि द्रव्य पर है कहाँ? पर्याय का राग इतना दृढ़ हो रहा है कि पर्याय में ही द्रव्य झलक रहा है। जबकि मनुष्यादि आसमान जाति पर्याय है, इसे समान जाति मत मान लेना। मेरी निज की असमान जाति पर्याय मेरा साथ नहीं दे पाएगी, तो पर की असमान

जाति पर्याय मेरा साथ नहीं दे पाएगी, तो पर की असमान जाति पर्याय मेरा क्या साथ देगी?

तू तो चिद्रूप देवता है। पुद्गल पिण्ड पर दृष्टि क्यों? हे राम! बलभद्र जैसी पर्याय को 6 महीने राग में कैसा खोया? क्षायिक सम्यग्दृष्टि का बोध कहाँ गया? जब-तक चारित्र-मोहनीय की प्रबलता है, तब-तक कुछ सूझता नहीं जीव को। कितने की समझानेवाले आ जाएँ, वे निमित्त ही बन पायेंगे, वह भी तभी जब तेरे उपादान की योग्यता होगी। जब-तक स्वयं का मोह हल्का नहीं होगा, कोई किसी को समझा नहीं सकता। कर्म के क्षयोपशम की योग्यता होनी चाहिए। जब कषाय का वेग कम होता है, तो पर का उपदेश कार्यकारी हो जाता है। जब मोह तीव्र होता है, तो परमात्मा का उपदेश भी कार्यकारी नहीं होता। मारीचि से पूछो। धन्य हो, जिसे भगवान समझाने बैठे हों, फिर भी नहीं समझ सका। माँ जिनवाणी से कह देना, है माँ भगवती! सुन आज रहा हूँ, पर उस दिन समझ में आ जाए जब अंतिम श्वास लूँ। किसी रागी के चरणों से राग करके मेरे प्राण न निकल जाएँ। कुंदकुंद स्वामी ने एक-एक गाथा अनुभव कर-करके लिखी हैं और साक्षात् श्रुतकेवली भगवन् भद्रबाहु स्वामी से प्राप्त की है।

प्राचीन आचार्यों पर दृष्टिपात कर लिया करो। जिन्होंने धवला, षटखण्डागम् जैसे ग्रंथ दिए हों, उन्हें भूल गए तो कुछ प्राप्त नहीं। आपको तो परोसा थाल मिल रहा है। तत्त्व का कैसा गंभीर निर्णय होगा उस बालक का। जब अकलंक बालक था, भाई के राग में लिपट जाता तो आज राजवार्तिक, स्वरूप संबोधन जैसे ग्रंथ तुम्हारे सामने नहीं होते। कठोर निर्णय रहा होगा तत्त्व का। भवितव्यता जिसकी जैसी होगी, वैसा होगा। भाई को खोकर भी जिनवाणी की रक्षा न कर सका तो भाई को खोना व्यर्थ है। मेरा किसी से मोह नहीं है। कठोर निर्णय है। एक सूत्रीय कार्यक्रम 'पर से भिन्न होकर कैसे रह पाऊँ?

ज्ञानी! पर की पर्यायों के राग का परित्याग कर दो और पर की पर्याय के द्वेष का भी त्याग करो। मुमुक्षु! तेरी स्वयं की पर्याय भी तेरे लिए कार्यभूत नहीं है। अभी 'शव' मिले हैं, अब मिलना तो 'शिव' बनकर मिलना। ऐसे शव बनकर तो अनेक बार मिल गए, अब शिव बनकर मिलो। 'एक मांहि अनेक राजे।'

बहिरंग तप के साथ अंतरंग तप पर बल दे रहा हूँ, क्योंकि बहिरंग की साधना करने वाले कोटि-कोटि जीव हैं, परंतु कषाय का उपशमन करने वाले बहुत कम हैं। ध्यान रखना, मासोपवास करने वाला जीव कहीं राग में उलझ गया तो शरीर को तो कृश-कृश कर लेगा, पर कषाय को कृश नहीं कर पायेगा। संयम की साधना करते हुए अपना संतुलन बनाकर रखना। बाह्य साधना, बाह्य प्रभावना, वाह-वाह की लूट में अंतरंग छूट गया। कहने को शक्ति चाहिए। लोग समयसार क्यों छोड़ रहे हैं? अंतरंग पर दृष्टि नहीं है। मैंने योगियों से भी बात की, लेकिन समयसार सुनेंगे, समयसार बोलेंगे, समयसार में रहेंगे तो

पर का कुछ नहीं पायेंगे। और पर का करने जायेंगे तो समयसार में रह नहीं पायेंगे। समय उतना ही है, चाहे समयसार में लगा दो चाहे पर-समय में लगा दो।

भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कलश में कह रहे हैं कि हे मुमुक्षु! अब तुम पर भावों से निज स्वभाव की रक्षा में लग ही जाओ। अनादि अविद्या के वश हुआ अज्ञ प्राणी, उसने स्वप्न में भी सोचा नहीं कि मैं जीव हूँ। सौभाग्य मानिये कि तुम अपने को जीव मान रहे हो। एक ट्रक चलाने वाला भी चलाते-चलाते रोक देता है कि मशीन गर्म हो जाएगी। पर धिक्कार हो, तू कैसा जीव है जो अपने चिंतन की धारा को स्वप्न में भी बन्द करके नहीं रखता? मशीन, यंत्रों, मंत्रों को बन्द कर लिया जाता है, लेकिन अंतरंग की परिणति, कर्म के आस्रव की धारा और परिणामों की परिणति कभी बन्द नहीं होती। 24 घण्टे चल हरी है। श्रुत सुनते भी श्रुत नहीं होता। सुनते यहाँ और होते कहाँ हैं। श्रमण संस्कृति में श्रमणाचार के अनुसार जीनेवाला कभी तनाव में जी नहीं सकता। यह परम सत्य है। और किंचित् भी तनाव है, तो तुम्हारे श्रमणाचार में कहीं-न-कहीं कमी है। कठोर शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। जो मैं कहना चाह रहा हूँ, उसके लिए शब्द ही दिखाई नहीं दे रहे। ऐसा निज का स्वरूप है।

अण्णोणं परिसंता, देंता ओगारू मण्ण मण्णस्स।
मेलंता वि णिच्चं, सगं सहावं ण विजहंति।।

अष्ट धातु की प्रतिमा है। आठ धातुएँ एक दूसरे में मिली हैं, पर आठ धातुएँ एकरूप नहीं हैं। हे रागी! जब द्रव्य का स्वभाव ऐसा है, तो क्या तू किसी द्रव्य के स्वभाव को बदल भी सकता है? यदि नहीं बदल सकता, तो भावों को क्यों बदल रहा है परभावों में? कुंदकुंद स्वामी ने बहुत अच्छी बात लिखी है-

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति।। 36 स.सा.।।

जिनमुद्रा, अरिहंत प्रतिमा की प्रतिष्ठा, प्रतिमा पूर्व से भग्न है तो कौन अज्ञानी प्रतिष्ठाचार्य होगा जो खण्डित प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायेगा? दुर्गति हो जाएगी, नरक जाएगा। किंचित भी सदोष प्रतिमा की प्रतिष्ठा की, तो यजमान का भी अकल्याण हो गया और सूरिमंत्र देने वाले आचार्य का भी अकल्याण हो गया। जैसे सुंदर अखण्ड प्रतिमा को देखकर ही प्रतिष्ठा की जाती है, तो आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि जैसे प्रतिष्ठा के पूर्व प्रतिमा को बहुत अच्छे से निहारा जाता है, ऐसे-ही जिनमुद्रा दी जाए किसी जीव को तो उसको निहार लेना कि इसकी परिणति/प्रवृति कैसी है? पूर्व से ही भग्न है, उसे भगवान की मुद्रा मत दे देना।

कितने सुन्दर शब्द का प्रयोग किया-

'कल्याण अंगे'-अर्थात् निरोग शरीर

शुभ मुह-सुन्दर मुख।

सोलापुर में अरहनाथ भगवान की प्रतिमा है, देखते-देखते तृप्ति नहीं होती। जैसी अशोकनगर में इस जिनालय में बाहुबली स्वामी की प्रतिमा है।

साधु के मुखमण्डल को देखकरके असाधु के साधु बनने के भाव हो जाएँ, यह साधु का मुख है। अंदर का आह्लाद होगा। घट में पानी हो और घट गीला न दिखे, यह संभव नहीं है। भीतर आनंद हो, चेहरे पर न दिखे, ऐसा हो नहीं सकता। मटके में नमक भर दो, ऊपर रूखा न दिखे, ऐसा हो नहीं सकता।

इसलिए अलौकिक कलश लिख रहे हैं। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी का स्तोत्ररूप कलश हो और तुम्हारा रत्नत्रयरूप कलश हो।

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि।।30।।

ज्ञानियों! भगवन् अमृतचंद्र स्वामी कह रहे हैं कि वे परम योगीश्वर, निजानंद में लीन, नहीं निहार रहे किसी रमण को, नहीं निहार रहे किसी रमणी को, निज में ही रमण भाव है। कोई सरोवर की शीतलता नहीं, कोई चंदन की सुगंध नहीं, यह तो पुद्गलमयी है। हे ज्ञानी! चंदन घिसता-घिसता भी अपनी सुगंध नहीं छोड़ता। चंदन की सुगंध को जलाया नहीं जा सकता। योगी को छीला जा सकता है, पर योगी के धर्म को छीला नहीं जा सकता। ऐसा है जैन साधु का समरसी भाव। कठिन है कि नहीं? सरल है कि नहीं? कषायिक भावों को परभावों की आवश्यकता पड़ती है, लेकिन शांत भावों के लिए परभावों की आवश्यकता नहीं पड़ती। बस मूंछ और पूंछ को छोड़ दो। 22 परीषह में एक परीषह है दिगम्बर मुनि का, 'सत्कार-पुरुस्कार।' मैं ज्येष्ठ हूँ फिर भी लोग मेरा सम्मान क्यों नहीं करते? ऐसे भाव भी जो नहीं लाते, उन योगीश्वर के चरणों में नमोस्तु। सबसे घोर परीषह है। वृद्धावस्था में सब कुछ हो, फिर भी कोई न-पूछे, तो समता रख पाओ।

राग हरा मत करो, णमो अरिहंताणं पढ़ो। अपनी तैयारी बनाकर चलना। मैंने तो अपना सोच रखा है कि मैं प्रवचन करने का भी त्याग करूँगा। अभी नहीं, लेकिन अभी से विचार बनाकर चलना पड़ेगा। यदि प्रवचन का राग लगा रहा, तो वह मेरे अंदर के प्रवचन को समाप्त कर देगा। सल्लेखना के लिए प्रवचन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, प्रवचन सुनने की आवश्यकता है। यह अंदर के विषय हैं।

अपना-अपना चुन लो। कोई व्यक्ति साग मण्डी में जाए तो सागवाले से मोलभाव करता है। वहाँ आयुकर्म नष्ट हो रहा था कि नहीं? धिक्कार हो। चिंतन करेगा तो तू स्वयं पर हँसेगा, कि मैंने अपनी आयु के इतने निषेक कूँजड़े की दुकान पर नष्ट किए थे। सोच, दर्पण देखते-देखते, परके चेहरे देखते-देखते कितनी उम्र नष्ट कर डाली? जबकि मैं स्वयं स्वरस से युक्त, निर्मल भाव युक्त, मैं अकेला हूँ। सर्वथा नास्ति-नास्ति यही है। नहीं है, किंचित् भी मोह मेरा नहीं है, नहीं है।

मैं तो आनंदकंद हूँ। ज्ञायकभाव ही मेरा भाव है। ज्ञेयभाव मेरा स्वभाव नहीं है। लगता है कि कोटि-कोटि वर्ष कैसे साधना करते थे मुनिराज। दीक्षा लेते ही साधना में लीन हो जाते थे। अव्रतियों से कभी ज्ञान की बात नहीं करनी चाहिए। पहले व्रत लेने की बात कहनी चाहिए, फिर व्रती बनकर क्या कहोगे? वे अज्ञानी हैं जो कहते हैं कि पहले ज्ञान अर्जित कर लूँ फिर दीक्षा लूँगा। नहीं, आगम पर ध्यान दो-

अव्रती व्रतं आदाय, व्रती ज्ञानपरायणः

ज्ञानी! शब्दज्ञान भिन्न है, आत्मज्ञान भिन्न है। आत्मपाण्डित्य से सभी पाण्डित्य छोटे हैं। शास्त्र/वेद पाण्डित से मोक्ष नहीं मिलता, उससे तो अभिमान भी हो सकता है, कि मैं ज्ञानी। ज्ञानी! तू है घोर अज्ञानी। ज्ञानी वही है जो-

'अहमिक्को'

ज्ञानी! बहुत समय इस भेष में नहीं भटकना। जिनभेष ही श्रेष्ठ है निज की प्राप्ति के लिए, पर जिन के अनुरूप चल सको। अनुरूप न चल सको तो रूप की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें राग में नहीं डाल रहा, राग से बचा रहा हूँ। जिनमुद्रा का मोह भी तुम्हें मोक्ष नहीं दिला सकता। इससे आगे क्या बोलूँ? किसी के भाव आ रहे हैं मुनि बनूँ, मुनि बनूँ, तो जब-तक नहीं बना, तब-तक कर्मों की निर्जरा तो कर रहा है और मुनि बनकर राग-द्वेष में लग गया, तो उभय लोक से गया।

जिसका व्यवहार ही विपरीत है, तो उसका परमार्थ सम्यक् कैसे हो सकता है? पग में कांय हो तो रास्ते पर पैर अच्छे से नहीं रखा जा सकता, जिसके हृदय में काँटा हो तो मोक्षमार्ग में पग कैसे रखा जा सकता है? ध्यान रखना, विपर्यास का काँटा जिन्हें लगा है, वे बाहर से हँसेंगे, अंदर से पाता है कि मैं गलत कर रहा हूँ। इसका निर्णय समाधि का काल करायेगा। निर्मल समाधि हो जाए तो काँटा एक भी नहीं था और समाधि न हो मतलब कहीं विपर्यास का काँटा लगा है। आज समझ लो। अपन तो करुणबुद्धि से कह रहे हैं, बुरा मत मानना। वह समाधि मरण हो जाए, इसी का नाम समाधिमरण है। प्रभु से प्रार्थना करो- जैसे परिणाम आज हैं, ऐसे परिणाम अंत समय हो जाएँ, बस, हो गई समाधि।

'नास्ति-नास्ति', अद्‌भुत कलश लिखा आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने। नहीं है, नहीं है, मोह मेरा किंचित् भी नहीं है। मैं क्या हूँ? महाशुद्ध चैतन्यघन का समुद्र हूँ, सर्वस्व से निर्भर हूँ। जो पर से निर्भर होते हैं, वे स्वरस का पान नहीं कर पाते। जो सर्वथा स्व से निर्भर होते हैं, वे स्वरस का पान करते हैं। इसलिए किसी से चिपक कर मत रहना। स्वरस में लीन रहना। इसे कहना करुणाबुद्धि। किसी को मृदुल चर्या में लगा देना, यह करुणा नहीं, वह तो कषाई है, उससे बड़ा शत्रु और-कोई नहीं है। जो वीतराग मार्ग को सत्यार्थ बतला दे, वही मेरा परम मित्र है।

मन की कहने वाले करोड़ों मिल जायेंगे, जिन की बात कहने वाले 1-2 मिलेंगे। इस मोह पद के कहने से 16 सूत्र लगाना। इन सोलह की व्याख्या पूर्व में ही चुकी है। ये सभी परभाव हैं, निज स्वभाव नहीं है। पर्याय देहजन्य है, पुरुष तो पुरुष है। वेद तो वेद है, वेद वेदकभाव नहीं है। इस वेद को वेद ही रहने दो, वेदकभाव को पुरुष ही निहारो-

अस्ति पुरुषश्चिदात्मा।

जो चैतन्य आत्मा है, वही पुरुष है। जब-तक स्त्री-पुरुष वेद को देखेगा, तब-तक ब्रह्मचारी होता ही नहीं। तुझे तीन वेद दिख रहे हैं, मतलब कहीं-न-कहीं राग-द्वेष है। मनीषियों! जब वेदों को गौण करके 'अस्ति पुरुष चिदात्मा' दिखे, वह ब्रह्मचारी है। अन्यथा भ्रमचारी है। ज्ञानी! ब्रह्मचारी बनना है तो ब्रह्मस्वरूप का लक्ष्य रखना ही पड़ेगा। मानता हूँ कठिन, पर अभ्यास तो करना ही पड़ेगा। देह का धर्म तो बहुत पहले प्राप्त हो चुका है, अब आत्मधर्म पर लक्ष्य करो। पर्याय निकल जायेगी, परिणामों को सँभालना। इन सोलह का व्याख्यान करना चाहिए। अन्य को भी यहाँ लगाना चाहिए। अर्थात् उपयोग इसमें भी लगाना चाहिए।

जयसेन स्वामी की टीका देखो। शिष्य प्रश्न करे प्रभु! शुद्धात्मा की अनुभूति कैसे करें? मोहादि का परित्याग नहीं करेगा तो शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं होगी, नहीं होगी। जब मोह की सामग्री ही नहीं छोड़ पा रहे हो, तो मोह को क्या छोड़ पाओगे? भूतार्थ दृष्टि। मोहसामग्री नहीं छूट रही तो मोहकर्म कैसे छूटेगा? तुम भवन पर भवन पर भवन बना रहे और कहो कि ममत्वभाव रहितोऽहम्, नहीं, ज्ञानी! मुझे तो उन पर भी दया आती है जो धन-धरती को छोड़ बैठे, फिर भी धरती खरीदने में लगे हैं। यह तो समयसार है। श्रावके के लिए धर्म है-दान, पूजा और साधु का धर्म है ध्यान-अध्ययन। श्रावक दान-पूजा नहीं करता तो श्रावक कहलाने का पात्र नहीं। साधु ध्यान-अध्ययन नहीं करता तो साधु कहलाने का पात्र नहीं। साधु के दो ही कार्य हैं-

साधु कार्यं तपः श्रुतः

तप और श्रुत की आराधना करना, साधु के ये ही दो कार्य हैं। बनो साधु, लेकिन कुछ बनाना हो तो पहले बना लेना। यह दिगम्बर भेष अयाचक वृत्ति है।

शुद्ध निश्चयनय से टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभावती होने पर भी जीव रागादिक भाव में रंजित होकर, कश्चित् द्रव्य-भाव मोह का कर्त्ता जानता है, वह कौन करता है? रागादि का कर्ता पुद्गल नहीं। जो शरीर को कर्ता माने वह घोर मिथ्यादृष्टि। यह मत मान लेना कि शरीर अपना काम कर रहा है, आत्मा अपना काम कर रही है। वह ऐसे लगाना कि शरीर का उत्पाद-व्यय शरीर में चल रहा है, आत्मा का उत्पाद-व्यय आत्मा में चल रहा है; लेकिन जो करने रूप प्रवृत्ति है, वह शरीर नहीं, आत्मा के निमित्त से चल रही है। योग की परिभाषा क्या? मन वचन काय के नियोग से आत्मा के प्रदेशों का जो परिस्पंदन है, वह योग है। और योग कौन कर रहा है? आत्मा। तो शरीर से जो पाप-पुण्य होगा, वह आत्मकृत होगा। शरीर निमित्त होगा। हे जीव! कर्ता कौन है? आत्मा। दोष शरीर में हैं कि आत्मा में है?

आनंद नहीं आ रहा। आ रहा है तो कहाँ है? कौन जाने? आत्मा ही जाने। मैं एक हूँ, इसलिए मोह के प्रति निर्ममत्व हूँ। दिगम्बर मुनि प्रतिक्रमण में भी 'ममत्वं बोस्सरामि, निर्ममत्वं उपसंपज्जामि।' बृहद् प्रतिक्रमण में अनेक रहस्य भरे हैं।

मैं निर्ममत्व को प्राप्त होता हूँ। मैं विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वरूप हूँ। ऐसे शुद्धात्मा की भावना-स्वरूप निर्ममत्व को जानता है जो पुरुष, वही स्वसंवदेन ज्ञान मात्र ही प्रत्याख्यान है। इसलिए यह निर्ममत्व का विशेष व्याख्यान है। इस प्रकार इन 16 सूत्रों को भी कहना चाहिए, यानि ये मेरी आत्मा का वास्तविक स्वभाव नहीं है, विभावभाव है। इतने ही नहीं, असंख्यातलोक प्रमाण विभावभाव हैं, वे मेरी आत्मा का स्वभावभाव नहीं हैं। उन्हें विभाव रूप ही जानना चाहिए है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

।। निर्ममत्व का स्वरूप ।।

उत्थानिका - आगे ज्ञेयभाव से भेदज्ञान करने की रीति बतलाते हैं-

गाथा - **णत्थि मम धम्म आदि बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।**
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति।। 37।।

अन्वयार्थ - **(बुध्यते)** ऐसा जाने कि **(धर्मादयः)** ये धर्म आदि द्रव्य **(मम न सन्ति)** मेरे कुछ भी नहीं लगते मैं ऐसा जानता हूँ कि **(एक उपयोग एव)** एक उपयोग ही है वही **(अहम्)** मैं हूँ **(तम्)** ऐसा जानने को **(समयस्य विज्ञायकाः)** सिद्धान्त वा स्व-पर-समयरूप समय के जानने वाले **(धर्मनिर्ममत्वम्)** धर्मद्रव्य से निर्ममता **(विदन्ति)** कहते हैं।

संस्कृत छाया - **न सन्ति मम धर्मादयो बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।**
तं धर्मनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायका विदन्ति।।

समय देशना

अब ध्यान रखना, हे भोली आत्मा! नरक के नारकी से तू ईर्ष्या नहीं करता और सगे भाई से तू ईर्ष्या करता है, बता तू नरक जाना चाहता है क्या? अब पकड़ो वस्तुस्वरूप को। सगे संबंधी के विषय में क्या चिंतन चल रहा है? तू किसी के विषय में अशुभ सोच रहा है, उसका अशुभ हो अथवा न हो, तेरे पुण्य की मृत्यु अवश्य हो रही है। शुद्ध चरणानुयोग को कहने वाला कोई ग्रंथ है तो उसका नाम है समयसार। भेष को दुनियाँ बना सकती है। भाव बनाओ। भव का नाश भावों से होगा और भावों की शुद्धि तभी होगी जब द्रव्यसंयम होगा। भटक मत जाना, द्रव्यसंयम बिना परिणामों में शुद्धि आती नहीं। पकड़ो! अभी व्यवहार धर्म नहीं आ रहा तो निश्चय धर्म कैसे आएगा? ज्ञानी! शुद्धोऽहम् बुद्धोऽहम् यह तुम्हारी चर्चा का विषय है, इसे चर्या में लाओ। पूछो इनसे पंचमकाल की लीला। लड़की काली थी, पड़ोसी की लड़की दिखा दी और काली लकड़ी से शादी कर दी और कह रहे शुद्धोऽहम्। ज्ञानी! पहले ईमानदार तो बन जाओ। सामायिक कर रहे, चारों ओर देखकर माला चल रही और कोई आने लगा तो आँखें बन्द कर लीं। माया धर्म हुआ कि नहीं। शुद्ध मायाचारी है। जब व्यवहार इतना कठिन है, तो

निश्चय कितना कठिन होगा। हे मुमुक्षु! व्यवहार के द्वार पर जाए बिना निश्चय में जाओगो कैसे? ध्रुव सत्य को समझो। ज्ञानी! यथार्थ बताऊँ-जब मैं आठ वर्ष का था, एक वृद्ध बब्वा आए। मैं आदिपुराण का स्वाध्याय करता था। बोले, क्या पढ़ रहे हो? मैंने कहा, आदिपुराण। बोले, 'आदिपुराण? आपको तो समयसार पढ़ना चाहिए। मैं भेज दूँगा समयसार तेरे लिए।' और भेज भी दिया। मैं सोचता रहा कि इतने छोटे में मुझे समयसार पकड़ा दिया है। पर मुझे मुनिदीक्षा के समय समझ में आया। यानि समयसार पढ़ो, असमय में मत जाना। समयसार ऐसा पढ़ो कि परसमय में मत जाना। सोलापुर में एक पण्डित जी बोले-मैंने 200 बार समयसार पढ़ा। मैंने कहा, ज्ञानी! मैंने एक बार पढ़ा सो ऐसा हो गया और तुमने 200 बार कैसे पढ़ा? जब कभी चिंतन में जाता हूँ तो लगता है कि अपने ज्ञान को पूर्ण नहीं मानना चाहिए। पूर्ण ज्ञानी तब-तक नहीं, जब-तक केवली न बन जाऊँ।

जिन द्रव्यों के श्रद्धान से जो यह कहा जाता है कि 7 तत्त्वों और 6 द्रव्यों पर श्रद्धान करना सम्यक्त्व है, यहाँ आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहने वाले हैं कि यह 6 द्रव्य 7 तत्त्व मेरे मोह के कारण नहीं हैं, इनमें राग मत करो। राग के कारण नहीं है, श्रद्धा के कारण हैं। जैसे ऊपर विराजे चन्दाप्रभु स्वामी श्रद्धा के केन्द्र हैं, राग के केन्द्र नहीं है। श्रद्धा करोगे तो सम्यक्त्व है, निर्जरा होगी और चन्द्राप्रभु स्वामी की प्रतिमा में राग करोगे तो बंध ही होगा। यह समयसार ग्रंथ है, अध्ययन करोगे तो निर्जरा होगी। और यह कह बैठे कि नहीं, हम तो समयसार ग्रंथ ही पढ़ते हैं, बाकी कोई जिनवाणी नहीं है, तो यह मिथ्यात्व है। निर्ग्रंथों के ग्रंथ तो पढ़ना, पर ग्रंथों की ग्रंथि बांधकर मत बैठ जाना। नहीं-तो सुनो, बरसात का मौसम है, शास्त्रों पर भी छोटे-छोटे जीव हो जाते हैं। मालूम है वे कौन हैं? जिन्हें कागज के पृष्ठों पर राग था, वे वहीं आ गए। ग्रंथों और निर्ग्रंथों में राग नहीं करना, श्रद्धान करना, अन्यथा सब गड़बड़ हो जाएगा। कठोर, कठोर अवश्य है, पर भूतार्थ है। आचार्यश्री हमसे कहते थे विनोद-विनोद में, क्या विशुद्धसागर! तुम किताब के कीड़े बने रहते हो? समझ में आता था उनका उद्देश्य कि थोड़ा चिंतन भी तो किया करो। जब सम्यक्त्व के साधनों को स्वभाव नहीं कहा जा रहा, तो राग के साधनों को स्वभाव कैसे कहा जा सकता है? ये धर्मादि सम्यक्त्व के साधन हैं न?

तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। (त.सू.)

लेकिन इन्हें भी राग के साधन मत बनाना।

णत्थि मम धम्म आदि बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति।। 37 स.सा.।।

उपकारी हो सकते हैं, परंतु उपकारी स्वभाव नहीं हो सकते हैं। यह व्याख्या एकांत से लगाओगे

तो विपरीत लगेगी। ज्ञानी! यह ग्रंथ विपर्यास के लिए नहीं है, यह ग्रंथ सम्यक् मार्ग दिखाता है।

आप प्यासे थे, किसी ने पानी पिला दिया, उपकार कर दिया, तो जिसने पानी पिलाकर उपकार किया। उसकी अष्टद्रव्य से पूजा करोगे पकड़ो वस्तुस्वरूप को। उपकारी है, पूज्य नहीं है। जिसका जैसा उपकार है, उसका वैसा सत्कार है। जिसने मोक्षमार्ग पर लगाया है और स्वयं मोक्षमार्ग पर लगा है, वह उपकारी भी है और पूज्य भी है। लेकिन उपकारी पूज्य हो जाएगा तो ऐसे भी टीचर हैं जिनको शर्म नहीं आती, बच्चों के बीच में सिगरेट पीते हैं और बहुत सुन्दर पढ़ाते हैं, कि उनके समान कोई पढ़ाता नहीं। तो क्या करोगे आप? उनसे ज्ञान तो ले लेना, पर उनकी पूजा नहीं करना। व्यसनी की पूजा नहीं होती। व्यसनी की प्रशंसा भी नहीं होती। उस व्यक्ति की प्रशंसा भी नहीं करना मुझे जिसके चारित्र में विपर्यास हो। पर निंदा भी मत करना। प्रशंसा करोगे तो चारित्र का विपर्यास बढ़ जाएगा और निंदा करोगे तो नीच गोत्र का आस्रव होगा। तो क्या करें?

'विपरीत वृत्तौ माध्यस्थ भावं'

धर्म, अधर्म आदि छह द्रव्य मेरे नहीं हैं। यही नहीं, मेरे से भिन्न जो जीवद्रव्य है वह भी मेरा नहीं है। हे ज्ञानी! तू भूल जा इस बात को कि तेरे पिता ने तुझे जन्म दिया है। यह व्यवहार की भाषा है। सत्य यही है कि हे जनक, हे जननी! तुम मेरे कर्ता नहीं हो। आयु कर्म का बंध मैंने किया है। माता-पिता इस अहंकार को भूल जायें कि मैंने बेटे को जन्म दिया है। तुम वासनाओं मात्र के जनक तो हो, पर मेरी आत्मा के जनक नहीं हो। अपनी इच्छाओं की पूर्ति तो तुमने की है, पर मुझे जन्म कहाँ दिया? मेरा लघु भाव है कि मैं फिर भी आपको पिता मानता हूँ। उपकार किस बात का? अब तो घबरा गए सारे। ज्ञानी! एकांत नहीं, 'अनेकांतश्च।'

उसमें भी अनेकांत है। सत्य बोलो- तुम्हारे सोचने से बेटा होता, तो जगत में कोई बेटे के पाने के लिए यहाँ-वहाँ रोता न होता। तुम्हारे सोचने से बेटे नहीं हुए, बेटे ने भी आयु पुरुष पर्याय, उच्च गोत्र का बंध किया, तब कहीं तुम्हारे घर में बेटे का जन्म हुआ। आप बेटे के जनक नहीं हो। हाँ, तुम अपने काम-विकार के जनक हो, इस यथार्थ को इस तुम टाल नहीं सकते। तुम बेटे के जनक होते-होते, तो भ्रूण हत्या क्यों होती?

सत्यता यही है कि बूढ़ेपन का सम्मान तो रखा जा सकता है, लेकिन आपकी वासना का कोई सम्मान नहीं है। आप अपने मुख से कह पाओ या न कह पाओ, लेकिन मैं कह रहा हूँ कि यह सत्य है। हे जनक, हे जननी! इस कर्तृत्व भाव को भूल जाएँ कि मैंने बेटे को जन्म दिया। पाप के बाद भी तुमको सुख मिलता है। जिसके बेटे सुबह उठकर माता-पिता के पैर छुएँ, उससे कहना, 'वाह तेरा पुण्य,

पाप करने पर भी तेरे पैर छुए जा रहे हैं, तू शादी नहीं करता और योगी होता तो कितना पुण्य लेकर आता। पाप करने के बाद भी संतान पूज रही है, मतलब कितना पुण्यात्मा है।

ज्ञानी! अब जाने का समय हो गया। जाते समय दीपक भी अच्छा प्रकाश देने लगता है। बची पर्याय में ऐसा करके जाओ जिससे परमात्मा बनने के संस्कार पड़ जायें। पक्ष/पंथ कोई काम में नहीं आयेंगे। मुझे किसी पक्ष से एलर्जी (द्वेष)नहीं है। मैं दिगम्बर मुनियों को मानने वाला हूँ और दिगम्बर मुनि हूँ। कोई कहे निश्चय वाले, व्यवहार वाले? नहीं, हमारे आगम में दोनों का व्याख्यान है। जब-तक विशाल दृष्टि नहीं होगी, तब-तक सम्यग्दृष्टि तो बन ही नहीं सकते। ज्ञानी! क्रूरपरिणामी जीव तड़पता दिख जाए तो णमोकार सुनायेगा कि नहीं? 'अरे! वह हिंसक है।' तू तो नहीं है न? कोई मृदुल चर्या वाले मुनि मिल जाएँ, स्वास्थ्य खराब हो, तो उपचार करेगा कि नहीं? ज्ञानी! शिथिलाचार उनकी चर्या में है, तेरे सम्यक्त्व में तो शिथिलाचार नहीं आना चाहिए। जब मरते बैल, कुत्ते को णमोकार सुनाया जा सकता है, तो साधु की समाधि नहीं करा सकते क्या? इसलिए ध्यान रखो, यह तुम्हारा सौभाग्य है कि 2000 लोग समयसार सुन रहे हैं। पिच्छि-कमण्डल जिसने लिया होगा प्रथम दिन, उस दिन तो विशुद्ध परिणाम हुए ही होंगे। इसलिए धर्मादि द्रव्य मेरे नहीं हैं, मैं तो एकमात्र उपयोग मयी हूँ। इसलिए धर्म के निमित्त भी राग/मोह मत करो। वही सम्पूर्ण समय का ज्ञाता है। जो धर्मादि द्रव्यों में राग करता हो, वह धर्म नहीं है। कहो, पर पाओगे क्या? हे मुमुक्षु! मुश्किल अवश्य हो, परंतु असाध्य नहीं है, कष्टसाध्य अवश्य है। आप स्वयं निर्णय कर लो। 'होता स्वयं जगत परिणाम' इतना कहो और पकड़ो पिच्छि। अहो! आत्मस्वभाव भिन्नं-भिन्नं।

अब तो हो गया भिन्न। अब छोड़ दो। जाओ अपने घर, आप पिच्छि नहीं ले रहे, फिर भी मुझे दुःख नहीं, प्रसन्नता है। सुन भी रहा है तो किसी-न-किसी पर्याय में धक्का लगेगा और नियम से पिच्छि-कमण्डलु लेगा।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

शुद्ध समयसार की व्याख्या कर रहे हैं, परभावों से घिरे होने पर भी परभाव रूप नहीं हुआ जाता। परभावों से युक्त होने पर भी द्रव्य परभाव रूप नहीं होता। यह लोक छह द्रव्यों का समूह है। पर छह द्रव्यमयी लोक का जाननहार कहनेवाले तो लोक में बहुत जीव हैं, लेकिन इस बात को जीव भूल ही गया कि आकाश का नाम लोक है कि छह द्रव्यों का नाम लोक है? यथार्थ में 6 द्रव्यों के समूह का नाम लोक है। छह द्रव्यों में तू एक द्रव्य है कि नहीं? तो तू भी ज्ञानी! एक स्वतंत्र लोक है। चिंतन को जिनागम में लगाइये, परम्परा में मत जाओ। व्यवहारनय से यह जीव लोकाकाश में रहता है लेकिन निश्चयनय से यह जीव आत्मलोक में ही रहता है। स्वप्रतिष्ठित है। यदि लोक को स्वप्रतिष्ठित नहीं स्वीकारोगे तो अनवस्था नाम का दोष आता है। तीन वातवलय से युक्त है लोकाकाश। वातवलय किसमें हैं? आकाश में। आकाश किसमें है? ज्ञानी! आकाश स्वप्रतिष्ठित है। यदि स्वप्रतिष्ठित नहीं मानोगे तो अनवस्था दोष हो जाएगा। इसी प्रकार, यह भगवानात्मा स्वप्रतिष्ठित है। व्यवहारनय से इसका आधार आकाश है, आधेय आत्म द्रव्य है। निश्चयनय से, मैं ही आधेय हूँ, मैं ही आधार हूँ। पर का आधार-आधेय भाव व्यवहार है।

इसलिए, जो लोक है उसमें छहों द्रव्य अवस्थित हैं, पर प्रत्येक द्रव्य स्व में अवस्थित है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप हो जाएगा तो द्रव्य की स्वतंत्रता का नाश हो जाएगा और संकर नाम का दोष आ जाएगा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न हुआ, न होता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को प्रभावित करता है, इस दृष्टि से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का निमित्तकर्ता तो हो सकता है, लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपादानकर्ता किंचित् भी नहीं है। यदि भिन्न द्रव्य से भिन्न द्रव्य की उत्पत्ति हो जाएगी, तो 'सद् द्रव्य-लक्षणम्' विपरीत हो जाएगा। व्यवहार या निश्चय पक्ष का जीव यह नहीं समझता। यदि यह कहे कि एक द्रव्य के बिना दूसरे द्रव्य का कुछ होता ही नहीं, अहो व्यवहारियों! तुम वस्तुतत्त्व को नष्ट कर दोगे और यह कहे कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। अहो निश्चयाभासियो! आप निमित्त-नैमित्तिक व्यवस्था को ही नष्ट कर दोगे। वस्तुव्यवस्था इतनी निर्मल है कि किसी जीव द्वारा तत्त्व को विपरीत समझने मात्र से तत्त्व विपरीत नहीं होता, लेकिन उसका श्रद्धान विपरीत अवश्य होता है। यदि कोई गाय को भैंस कहने लग जाए, तो क्या गाय भैंस हो जायेगी? नहीं

न? कहनेवाले का निजी अभिप्राय विपरीत हो सकता है, लेकिन वस्तुव्यवस्था गलत नहीं हो सकती। वस्तु का किंचित् भी विपर्यास होता नहीं, निजी सोच का विपर्यास हो सकता है।

तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। (त.सू.)

जो प्रयोजनभूत तत्त्व है, उन पर यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस लोक में सर्वाधिक संख्या मिथ्यादृष्टियों की है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रियों में भी थोड़े-से सम्यग्दृष्टि हैं। आजकल बहुमत का जमाना है। ज्ञानी! तुम्हारे लोकतंत्र में भले ही बहुमत कार्यकारी हो जाए, लेकिन वस्तुस्वरूप में बहुमत कार्यकारी नहीं होता, सत्-स्वरूप कार्यकारी होता है। बहुमत मिथ्यादृष्टियों का है। बहुमत से कोई गाय को भैंस कहने लग जाए तो तुम गाय को भैंस कहोगे क्या? कोई अज्ञानी अपनी माँ को पत्नी कहने लग जाए बहुमत से, तो क्या माँ को पत्नी बनाया जा सकता है इससे कठोर कोई दृष्टांत नहीं हो सकता। ऐसे-ही मनीषियों! मिथ्यात्व के बहुमत से सत् को असत् नहीं बनाया जा सकता। आज जितने बिलख रहे हैं, यह सब अल्पधी जीव 'सद् द्रव्य-लक्षणम्' सूत्र से शून्य हैं। ज्ञानी! यदि मेरी मृत्यु होती है और यह जीव त्रस बनता है, तो त्रस नाड़ी के बाहर जाएगा क्या? यदि कोई जीव स्थावर पर्याय को प्राप्त होता है, तो तीनलोक के बाहर जाएगा क्या? नहीं। सत्य बताना, मरण करके जीव जाएगा कहाँ? नष्ट हो जाएगा, कि पर्याय को प्राप्त हो जाएगा? मात्र दो ही पर्याय हैं, संसार मोक्ष।

त्रस और स्थावर, दो ही भेद हैं, शेष प्रभेद हैं। विश्वास रखना, सम्यग्दृष्टि होने का अर्थ मात्र देवपूजा करना नहीं है; लेकिन जो सम्यग्दृष्टि होगा, वह नियम से देवपूजा करेगा। लेकिन जो देवपूजा करता है, वह सम्यग्दृष्टि हो, यह नियम नहीं है; क्योंकि जितने मिथ्यादृष्टि देव हैं, वे अरिहंत देव की पूजा भी करते हैं उनके अपने भवनों में। छोटे-मोटे नहीं, 500-500 धनुष ऊँचे जिनबिंब हैं। लेकिन कुलदेवता मानकर पूज रहे हैं। बड़े सरल भाव से समझना।

द्रव्य के दस सामान्य गुण हैं। किसी भी जीव को अज्ञानी मत कह देना। आपको कितना भी ज्ञान हो जाए, पर किसी अज्ञानी जीव के सामने आपका ज्ञान नहीं झलकना चाहिए। हम अहिंसक हैं। आपने ज्ञान के क्षयोपशम के कारण तुमने दूसरे को बार-बार टोका, तो विश्वास रखना, अज्ञानता में जो दुःख है वह जगत में कहीं नहीं है। उसे क्लेश होगा। कोई पूछे तो उत्तर देना, अन्यथा अज्ञानी के सामने ज्ञान मत दिखाना। वह तो आप लोग कहते हो इसलिए मैं प्रवचन कर देता हूँ, शेष समय अपने में रहना। सामान्य लोगों के बीच में सरल बनकर रहना। किसी को मालूम न चले महाराज ज्ञानी हैं। आपने ज्ञान बिखेरना शुरू किया बार-बार, तो मंदबुद्धि जीव आपके पास बैठ नहीं पायेगा, वह घबरायेगा कि ज्ञानी

के पास कैसे जाऊँ? स्कूल में अपने आप टोली बन जाती है। सुनो, अपना ज्ञान नहीं दिखाना।

मूल विषय पर आओ। आज आवश्यकता है अस्तित्व गुण पर व्याख्यान करने की। और ''सद् द्रव्य-लक्षण्म्।'' हम लोगों ने क्या मान लिया है कि जहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय का व्याख्यान हुआ वहाँ समझ लिया कि यह तो मुमुक्षुमण्डली की भाषा हो गई। हे ज्ञानियो! तुम भाषा को मुमुक्षुमण्डल की बोल दोगे तो तुम कहाँ जाओगे? ये मुमुक्षुमण्डल की भाषा नहीं, जिनेन्द्रदेव की भाषा है। इस भाषा के बिना तत्त्व का निर्णय होता ही नहीं है।

जैसे किसी जीव ने चुटकुले कहानियों में जीवन निकाला हो, उससे कहना, ''सद् द्रव्य-लक्षण्म्।'' तो एक व्यवहार शब्द सुनते भाग जाता है, एक निश्चय शब्द सुनते भाग जाता है, जबकि वस्तुस्वरूप को समझने की आवश्यकता है। यदि मेरी मृत्यु होती है, यदि में सिद्ध बनता हूँ, तो लोक के बाहर जायेंगे क्या? नहीं जायेंगे न?

हे ज्ञानी! इतना दृढ़ श्रद्धान तेरे पास नहीं है। कोई जन्म ले रहा है तो मुस्कुराने की आवश्यकता नहीं, सहज पालन कीजिए। कोई मरण को प्राप्त हो रहा है तो रोने की आवश्यकता नहीं है, सहज संस्कार कीजिए। क्योंकि यह परिणमन है। यह शोक, हास्य, वेदनीय कर्म के बंध के साधन मत बनाइये। जन्म हो तो कहना एक धर्मात्मा की वृद्धि हो गई। मरण हुआ तो एक जीव को नवीन शरीर मिलेगा, तीनलोक से बाहर जाएगा नहीं। छह द्रव्य त्रैकालिक हैं कि तात्कालिक? छह द्रव्य में तेरा संबंधी आता है कि नहीं? सम्यग्दृष्टि जीव, धर्म-धर्मात्मा को देखकर, हर्ष में, प्रमोद में अश्रुपात तो कर सकता है, पर सम्यग्दृष्टि जीव जन्म-मृत्यु पर रुदन नहीं करता। यदि रुदन करता भी है तो चारित्रमोहनीय ही कराता है, दर्शनमोहनीय से नहीं करता। दर्शनमोहनीय की तीव्रता में रो रहा है तो सम्यग्दृष्टि कैसा?

अस्तित्व गुण पर दृष्टिपात करिये। छह द्रव्यों के विषय में आज आचार्यभगवन् व्याख्यान कर रहे हैं। भूमिका को समझो-

जो जाणदि अरहंत, दव्वत्त-गुणत्त-पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं।। प्र.सा.।।

जो जीव अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, वह स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, उसका मोह विलय को प्राप्त होता है। इसलिए आत्मा को जानो, आत्मा को देखो। यानि अनुभूति को जानो, अनुभूति को देखो। अरूपी आत्मा को तू कह रहा है कि मुझे नजर आ रही है आत्मा। अरे! तूने आत्मा को ज्योतिर्मय कह कर पुद्गलमय कह दिया। ज्योति से ज्ञान-ज्योति स्वीकार करना। ध्यान

रखना, वस्तुस्वरूप में भ्रम मत करना। प्रकाश आदि पुद्गल की पर्यायें हैं, इनमें आत्मा को देखने मत लग जाना। आत्मा तो- 'जो सो दु सो चैव।'

अस्तित्व गुण पर ध्यान दो। द्रव्य स्वाश्रित है। जो स्वाश्रित नहीं मानेगा, तो छह द्रव्यों में से एक का लोप हो जाएगा। आत्मा आकाश में अवस्थित अवश्य है, पर आत्मा आकाश नहीं है। आकाश में छह द्रव्य अवश्य हैं, पर प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। यदि आत्मा को पर से स्थित मान लिया, तो तेरी आत्मा शुद्ध तत्त्व के प्रकट होने का पुरुषार्थ ही नहीं करेगी।

'सद् द्रव्य-लक्षणम्।' (त.सू.)

द्रव्य त्रैकालिक है। उसका लक्षण ही सत् है। ऐसा कोई क्षण नहीं जाता कि जिसमें द्रव्य का विनाश होता हो अथवा न होता हो। स्याद्वाद अद्भूत है। ऐसा कोई क्षण नहीं जिसमें द्रव्य का विनाश होता हो, ऐसा कोई क्षण नहीं जिसमें द्रव्य का विनाश न होता हो। परिणनशीलता की अपेक्षा द्रव्य विनाशी है अपरिणमनशीलता की अपेक्षा द्रव्य त्रैकालिक है। परभावरूप नहीं होता, इसलिए अवनाशी है और स्वभाव में परिणमन करता है, इसलिए विनाशी है। भव्यत्व, अभव्यत्व भाव द्रव्य का स्वभाव है। यह 'आलापपद्धति' का भव्यत्व-अभव्यत्व भाव है।

जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका विनाश नियम से होता है। यह परिणमन की अपेक्षा से समझना, द्रव्यत्व का विनाश मत कर देना। अनित्य भावना पढ़ते हो न? यह बारह भावना। पर्याय ये संसार है। किसी ने प्रकृति को जन्म नहीं दिया, किसी ने पुरुष को जन्म नहीं दिया। जो पुरुष है, वह चैतन्यभूत है, पर स्वयं को नहीं जान रहा है। जो स्वयं को नहीं जाने, वह ज्ञाता कैसे? जगत को जाने और स्वयं को न जाने, वह ज्ञाता कैसा? जो स्वयं को नहीं जान रहा है, तो कैसे मानूँ कि जगत को जान पा रहा है? कुंदकुंद देव कह रहे हैं कि वह पुरुष जो चैतन्य आत्मा है, वह स्वयं ही ज्ञेय है, स्वयं ही ज्ञाता है। ज्ञानानंदस्वभावी है। आनंद ज्ञान में ही है। पर सांख्य दर्शन आत्मा को आत्मा तो मानता है आत्मा को आनंद नहीं मानता। आत्मा आनंदस्वभावी है। आनंद न होता तो पुरुषार्थ किसका करते? सारे लोक में जो कुछ कर रहे हैं आप, वह आनंद है। पुत्र को जन्म दे रहे, उसमें भी आनंद है। विषयानंद, रागानंद, परमानंद ये सब आनंद हैं। जब-तक रागानंद, विषयानंद, परमानंद हैं, ये सब संसार के ही कारण हैं। एकमात्र यदि आनंद है, उसका नाम ज्ञानानंद है। यानि जीव की राग दशा देखो।

प्रथम अधिकार में आचार्य महाराज ने वर्णन किया चौदह गाथा प्रमाण, अमृतचन्द्र स्वामी की दृष्टि में 12 गाथा प्रमाण। इसके उपरांत प्रथम अधिकार पूर्ण हुआ। द्वितीय खण्ड यहाँ प्रारंभ हो रहा है। जैसे नाटक का पर्दा खिंचता है तो पात्र अपना रूप बनाकर आते हैं, ऐसे-ही समयसार ग्रंथ में तत्त्व की

प्ररूपणा आचार्य महाराज कर रहे हैं। पात्र बनकर आता है जीवाजीव। आप गुना से अशोकनगर आ रहे थे, रास्ते में पानी का फिल्टर मिला था न? गुना के लिए पानी जा रहा था। ओ हो, ज्ञानी! जैसे निर्मली डाल करके, मछलियों के माध्यम से, पानी के विकार को भिन्न कर देते हो और शुद्ध पानी को शेष रख लेते हो, ऐसे-ही निज चित्त में निज स्वानुभव से, हे ज्ञानी! निज ज्ञान की निर्मली से अपने ज्ञान को निर्मल करो। कामना/वासना की ओर जा रहा है ज्ञान। पर के राग में जा रहा है ज्ञान। निजके वैराग्य से दूर हो रहा है ज्ञान। भटकना नहीं। हे ज्ञाता! ज्ञान का दोष नहीं है। ज्ञान सविकल्प है, ज्ञान सतरंग है। ज्ञान में तरंगें उठेंगी, ज्ञाता सँभाल। ज्ञान को ही सँभाल ले, ज्ञाता! तू विश्वज्ञाता केवली भगवान बनेगा। न मन की बात करना, न वचन की बात करना, न तन की बात करना, हे ज्ञाता! ज्ञान को ही सँभालना है। सँभालता ज्ञान ही है और सँभालता ज्ञान ही है। कहाँ तू मूढ़ होता है पर के सँभालने में? अपने को क्यों भूल रहा है? तत्त्व की खोज करो।

धन्य हैं वे मुनिराज कि जिन्होंने इन्हें पाला हो, बड़ा किया हो, उन्हें भी अपना नहीं मानते हैं। इनके राग में अपनी विरागीभूत आत्मा को रंजित नहीं करूँगा। क्या तेरी धर्मपत्नी तुझे भगवान बनायेगी? ये संबंध राग की बढ़ायेंगे। इसलिए, ज्ञानानंद में निमग्न हो जाओ। ज्ञान से ज्ञान का निर्णय कीजिए। आश्चर्य देखो, पानी की सफाई भी पानी से हो रही थी।

देखो, मस्तिष्क काम कर रहा है तब तक सून लो। राग की तीव्रता में, मोह की तीव्रता में द्वेष करता है।

बंध दशा का दोष नहीं है, दोष तेरे बंध भाव का है। कर्मबंध तो बन्द हो जायेंगे यदि भाव बन्द हो गए तो। भाव बन्द नहीं हुए तब-तक कर्मबंध बन्द नहीं हुए। बंध को बन्द करने के लिए परिणाम तो किए हैं, पर पापों को बन्द करने के परिणाम किए कि नहीं किए? बंध बन्द हो जाए, यह तो केवली के ज्ञान का विषय है। द्रव्यकर्म तो तेरा विषय नहीं है, लेकिन निज भाव तो तेरे अनुभव में आ रहे कि नहीं आ रहे? नैनों से द्रव्यकर्म दिखाई नहीं देते, लेकिन परिणामों से भावकर्म समझ में आते कि नहीं? भावकर्म की दशा तेरी जैसी होगी, भाव कर्म-नोकर्म का परिणमन तेरा वैसा होगा। इसलिए पुरुषार्थ भावकर्म पर होना चाहिए। जब भी द्रव्यकर्म आत्मा से पृथक् होंगे, तो भावकर्म के पुरुषार्थ से ही होंगे। शरीर से भी साधना करेगा, तब भी परिणामों को सँभालना पड़ेगा। यदि देहाश्रित संयम को धारण भी कर लिया, आत्माश्रित परिणाम संयमित नही हैं, तो ज्ञानी! स्वर्ग तो जा सकते हो, लेकिन मोक्ष नहीं जा सकते। देहाश्रित संयम एक अभव्य जीव भी धारण कर लेता है। लेकिन वह देहाश्रित संयम भी निष्फल नहीं जाता। एक सम्यग्दृष्टि श्रावक भी सम्यक्त्व सहित 12 व्रतों का पालन करे तो 16वें स्वर्ग से ऊपर

नहीं जा सकता, पर एक भद्र, अभव्य मिथ्यादृष्टि द्रवयसंयम का पालन करे तो ग्रैवेयक तक की यात्रा कर सकता है। यह द्रव्यसंयम के पुण्य का प्रभाव है। पर द्रव्यसंयम स्वर्ग तक ही भेज पायेगा, संसारातीत नहीं होने देगा। अल्प भावसंयम भी धारण किया जीव ने, तो भी अधिक-से-अधिक 32 भव तक ही संसार में रहेगा। उससे अधिक जीव को रोक नहीं पायेगा। यदि सल्लेखना सहित मरण किया, तो 2-3 भव अथवा अधिक-से-अधिक 7-8 भव में मोक्ष हो जायेगा। यह परिणामों की दशा है। भावलिंग-द्रव्यलिंग यह तो जगत में प्रसिद्ध है। द्रव्यसंयम, भावसंयम। सम्यक्त्व रहित जो जीव संयम पालन कर रहा है, मतलब द्रव्यलिंग/द्रव्यसंयम। सम्यग्दर्शन सहित जो 28 मूलगुणों का पालन कर रहा है, वह भावसंयम है एक अपेक्षा। सम्यक्त्व सहित कोई मुनिराज हैं और छटवें-सातवें गुणस्थान में होना चाहिए था उनको, परिणति कहीं पाँचवे गुणस्थान की चल रही है, तो सम्यक्त्व तो नहीं गया, पर फिर भी उनका द्रव्यसंयम कहलायेगा, क्योंकि परिणाम पंचम गुणस्थानजन्य हैं। जो जीव जिस गुणस्थान की पात्रता रखता है उसके परिणाम उस गुणस्थान रूप ही होने चाहिए। यह भावसंयम है, द्रव्य सहित भावलिंग है। जैसे द्रव्यलिंगी/भावलिंगी साधु, ऐसे-ही द्रव्यलिंगी/भावलिंगी श्रावक भी होते हैं। तू जिनेन्द्रदेव के चरणों में खड़ा पूजन कर रहा है और तेरी परिणति कहीं- और जा रही है, तो द्रव्यपूजा है, भावपूजा नहीं है। जिस गुणस्थान की साधना कर रहा है, उस गुणस्थानजन्य अनुभूति होना चाहिए, संवेदन होना चाहिए। यदि संवेदनशून्य साधना है, तो द्रव्यसाधना है।

'यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।' (कल्याण मंदिर स्तोत्र)

जो क्रिया भावशून्य है, वह फलवती नहीं होती। जो करणानुयोग का मुनि है, उसे कोई मना नहीं कर पायेगा। जो है, सो है। यदि कोई अभव्य जीव दिगम्बर दीक्षा लेकर 28 मूलगुणों का निर्दोष पालन भी नहीं कर रहा है, तो द्रव्यभेष है, द्रव्यलिंग भी नहीं है। यही चित्र-मुनि है। जैसे तस्वीर में न द्रव्यलिंग है न भावलिंग है। ऐसे-ही जिससे द्रव्यसंयम ने पले, भावसंयम भी न पले, वह रूप मात्र है, ज्ञानी! द्रव्यलिंगी तो फिर भी पुण्य-संचय करता है, ग्रैवेयक तक जाता है। भावलिंगी सिद्धालय की यात्रा करता है। लेकिन द्रव्यभेषी न स्वर्ग जाता है, न सिद्ध बनता है। और-गहरी बात समझो। मुनि कभी निगोद नहीं जाता, चित्र-मुनि जा सकता है। मुनिराज निगोद नहीं जाते। अल्प संयमी भी होगा, तब भी निगोद नही जायेगा। अपनी श्रद्धा को निर्मल रखना, परिणामों को सँभाल कर रखना।

जब ऐसी मुनि की दशा है, किंचित कार्य करने में सावद्य होता है। जब सावद्य क्रिया होती है, तो परिणामों में अशुद्धि आती है। मन की अशुद्धि में शुद्धात्मा की अनुभूति संभव नहीं है। आर्त्त-रौद्र ध्यान जहाँ रहेंगे, वहाँ शांतचित्ता नहीं है। यही कारण है कि परम तत्त्व को समझने के लिए अंतरंग-बहिरंग

परिग्रह से हटना पड़ेगा। यानि कि आपकी भाषा में कहो तनावमुक्त जीवन। यदि तनावमुक्त जीवन है, तो भगवान का नाम लेने में अच्छा लगता है और तनावयुक्त जीवन है, तो ज्ञानी! माला तो फेर सकते हो, पर मन निर्मल नहीं होता। यह पूरा विषय मन की विशुद्धि का विषय है। आत्म-आह्लाद, आत्मप्रसाद/आत्मानंद-यह तभी संभव है जब विकल्पों से शून्य होगा। आप जब घर से बाहर चले जाते हो, तब यदि घर की स्मृतियाँ आयेंगी, तो भजन करते-करते भाव बिगड़ जायेंगे। यदि घर की स्मृतियाँ भूल जायेगा, तो तन्मय होकर भगवान का भजन करेगा।

आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने कल आपको दृष्टांत दिया था कि पर के वस्त्र को देखकरके जीव तुरंत छोड़ देता है। ऐसे-ही आपने स्थूल-स्थूल बातें सुनी अभी तक। अब चलिए-कहाँ मठ, कहाँ भवन, कहाँ मंदिर। जिस मछली को स्थल ही जला रहा हो, उस मछली को अग्नि का स्पर्श जीवंत रखेगा क्या? जब योगी को शुभोपयोग ही झुलसाता हो, उस योगी को अशुभोपयोग कहाँ जीवित रखेगा। ज्ञानियों! अरिहंत की मुद्रा का ज्ञान तो हमने अनंत बार किया है, पर अरिहंत की मुद्रा की परिणति का नाम समयसार है। आँखों के मुनि 'मूलाचार' में हैं, आत्मा के मुनि 'समयसार' में हैं। काँच तो काँच है, नंबर तो नंबर है, पारा तो पारा है। थर्मामीटर एक है। न काँच न नंबर ऊपर-नीचे चढ़ते हैं, पारा ही ऊपर-नीचे जाता है। ज्ञानी! भेष न ऊपर जाता है, न नीचे जाता है। परिणाम ही ऊपर जाते हैं, परिणाम ही नीचे जाते हैं। इसी का नाम गुणस्थान है। निहारो कि स्वयं भवातीत होने के परिणाम हैं, अपनी निजकी भावना को देखो।

यथार्थ मानना, समयसार कठिन नहीं है समझना, समयसार कठिन है समझना और समयसार कठिन है सँभलना। ग्रंथभूत समयसार तो सग्रंथ भी समझ लेते हैं, पर निर्ग्रंथभूत समयसार निर्ग्रंथ ही समझ पाते हैं। ग्रंथभूत समयसार यानि द्रव्य समयसार, द्रव्यश्रुत। और निर्ग्रंथभूत समयसार अर्थात् भावश्रुत। भावलिंग की अनुभूति ग्रंथों में नहीं होगी, वह निर्ग्रंथता में ही होगी। धन्य हो आचार्य कुंदकुंद स्वामी, जिन्होंने 'अष्ट पाहुड़' में लिखा-

धण्णा ते भयवंता

अहो निर्ग्रंथों! तुम्हारे लिए धन्य कह रहे हैं कुंदकुंद स्वामी।

व्रतियों! ध्यान दो। जो भावव्रती हैं, वही व्रती हैं। द्रव्यव्रती की सुगति नहीं होगी। देव गति हो जाए तो वो कौन सुगति है? यदि कोई सुगति है, तो मात्र सिद्धगति है। देवगति भी तो संसार ही है।

जहाँ से वापस न आना पड़े, वही सुगति। इसलिए जो विषय-उद्यान में लोलुपी मन-हस्तिरमण

कर रहा है, उसे ज्ञान-अंकुश से वश कर लो, ज्ञानी! तब तो सुरक्षित हो अन्यथा उभय लोक से भ्रष्ट हो जायेगा। वर्तमान के सुख तूने बुद्धिपूर्वक छोड़े, भविष्य में कुछ दिखाई दे नहीं रहा, क्योंकि साधना कर नहीं रहा, विषयों को छोड़ दिया, पर विषयों से छूटा नहीं, तो उभय लोक से च्युम हो गया। क्या करें, भाग्यहीन से निर्दोष संयम भी तो नहीं पलता। निर्दोष संयम भी तभी पलता है जब पुण्य है। तीव्र पापी के ही तो तीव्र पाप परिणाम होंगे। चित्त से पूछिए, चारित्र नहीं गया, चित्त ही तो गया। चित्त ही तो गया। चित्त न जाता तो चारित्र क्यों जाता? चारित्र को वश मत करो, चित्त को वश करो। इस चित्त को चित्रों से बचाकर रखो। यह चित्त पहले चित्रों में जाता है, फिर अपने चारित्र को खो देता है। इसलिए साधक को दृष्टि नीची रखनी चाहिए। विषमलिंगियों से दूर रहना चाहिए। प्रभावना हो तो एक किनारे रख देना, पर आत्मा की अप्रभावना मत कर देना। समझते चलो। सँभलते चलो।

रत्नत्रय के तेज से आत्मा की प्रभावना करो। श्रावक! दान-पूजा करो। साधु से कहेंगे निज को निज से प्रभावित कर लेना। यही प्रभावना अंग है। निज को प्रभावित किए बिना पर को प्रभावित करेगा तो ध्यान रखना- फूलता अवश्य है, पर फलता नहीं है टेसु का फूल। सुगंध रहित है। केली देखी? केली में फूल ही आते हैं, फल नहीं आते। जो बाहर से सुंदर दिखे और अंदर कुछ न हो, तो फूल तो फूल ही है। Fool ही है। बस, मत फूलो। परभाव में क्या फूलना? और जो परभाव में फूले, वह Fool ही है। आज भगवान जयसेन स्वामी उन्हीं दृष्टांतों का पुष्टिकरण कर रहे हैं,

जैसे प्रत्याख्यान के विषय में दृष्टांत कहा- जैसे कोई पुरुष, वस्त्र-आभूषण आदि परद्रव्यों को जानकरके छोड़ देता है, वैसे ही ज्ञानी परभावों को जानकरके छोड़ देता है। पर्यायों को स्वसंवेदन ज्ञान के बल से, तीन शुद्धिपूर्वक (मन वचन काय शुद्धि) छोड़ता है।

कोई देवदत्त नाम का पुरुष परके चादरे को, यह मेरा है, ऐसा मानकरके रजक के घर से लाकरके उसे ओढ़कर के सो गया, पश्चात्-जिसका वस्त्र था, उस वस्त्र का स्वामी आया और वस्त्र के छोर को पकड़करके खींचता है, उसको उघाड़ दिया और वस्त्र का चिह्न दिखाकर कहता है, 'देख यह वस्त्र तेरा नहीं, मेरा है।' वस्त्र के चिह्न को देखकर कि यह वस्त्र पर का है, वह शीघ्र ही उस वस्त्र को छोड़ देता है। उसी प्रकार यहाँ पर ज्ञानीजीव निर्ग्रन्थ गुरु के माध्यम से मिथ्यात्व-रागादि भावों को निजस्वभाव न जानकर, छोड़ देता है। सच्चा मुमुक्षु, रागभाव को छोड़ने में समय नहीं लगाता। क्यों ज्ञानी! रागभाव बंध का कारण है, तो द्वेषभाव क्या अबंध का कारण है?

बहुत बड़ी साधना कर पाओ या न कर पाओ परंतु सब जीवों पर साम्यभाव रखना सीख जाओ। है माँ! रूठे बालक को कैसे मनाती है? हे जनक, हे जननी! रूठे बालक मनें या न मनें, अपने रूठे मन

को तुरंत मना लेना। रूठे मन को कब-कब मनाया? कभी इधर भागता, कभी उधर भागता है। निज मन के लाल को कब मनोओगे? बच्चे तो कभी मनेंगे नहीं, मना सको तो मन के लाल को मनालो। विभाव भाव के आँगन में बैठा और काम भाव से क्रीड़ा करना चाहता है। ऐसा रूठा मन-बच्चा। ज्ञानी! कब काम में आएगा वह मन बच्चा? सँभलो, क्षण-क्षण में निषेक निकल रहे हें। एक निमेष में असंख्यात समय और एक समय में समय-प्रबद्ध कर्म का आस्रव-बंध कर रहा है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी समयसार जी में ज्ञानीजीव की पहचान को समझा रहे हैं दृष्टांत के माध्यम से-

अज्ञानी तभी-तक है, जब-तक शुद्ध का ज्ञान नहीं है। ज्ञान होते ही अज्ञानता का नाश होता है। एक गहरी बात यह समझना कि परवस्तु के भिन्नत्व का ज्ञान होते ही निज वस्तु की अनुभूति प्रारंभ हो जाती है। जैसे-यह वस्तु मेरी नहीं है, इन शब्दों के अंतस् में आते ही निजवस्तु झलकना प्रारंभ हो जाती है। वह वस्तु छोड़ ही रहे थे, निजवस्तु का ज्ञान प्रारंभ हो चुका है।

भद्र मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्व के सन्मुख होता है, उसका मिथ्यात्व छूटा ही नहीं अभी, और जैसे-ही एकाऐक अनुभूति होती है कि अहो धिक्कार मुझ अज्ञानी को हो, मैंने अनादि से मिथ्यात्व का सेवन किया' ये पश्चात्ताप प्रारंभ हो गया। उधर मिथ्यात्व विगलित होना शुरू हुआ ही नहीं, यहाँ सम्यक्त्व का वेदन होना प्रारंभ हो गया कि मेरा द्रव्य तो ऐसा है।

एक जीव निर्ग्रंथ दशा को प्राप्त होने वाला है। एक अन्तर्मुहूर्त बाद उसकी दीक्षा होने वाली है। दीक्षा के परिणाम उसने किए, वस्त्र छोड़ने के परिणाम उसने किए ही हैं, उसे अपनी निर्ग्रंथ दशा का ज्ञान होना प्रारंभ हो गया है, कि मैं निर्ग्रंथ मुनि होऊँगा। उधर वस्त्र ऊपर रहे हैं, वासनाएँ छिल रही हैं, स्वानुभूति हो रही है।

दूसरे दृष्टांत से समझो।

माता-पिता ने बेटे की शादी की चर्चा आपस में की, 'बेटा सयाना हो गया है, अब इसकी शादी कर देनी चाहिए।' ये शब्द बेटे के कान में पड़ गए, बेटे को शादी का अनुभवन होना शुरू हो गया कि मेरी शादी होगी। और पता नहीं कितनी भावनाएँ बनाना प्रारंभ हो गयीं। जितने प्रकार के विकल्प प्रारंभ हो गए थे, उतने प्रकार का आस्रव प्रारंभ हो चुका था। और उस आस्रव की धारा में बंध भी प्रांरभ हो चुका।

जिनमुद्रा की प्राप्ति की बात होते ही जिनमुद्रा की अनुभूति नहीं कर रहा है, तो जिनमुद्रा की प्राप्ति का पात्र ही नहीं है। भान प्रारंभ होना चाहिए कि कैसे होते हैं धरती के देवता। कैसे केशलुंचन करते हैं, कैसे पाणिपात्र में आहार लेते हैं, कैसे ईयापथ से गमन करते हैं। और जो मुनि बन चुके हैं, वे जब

चर्या को जायें, कभी-कभी भाव आता है, हे वर्द्धमान! आप ऐसे ही चर्या को जाते होंगे क्या? दुनियाँ देखे महाराज आहार को जा रहे हैं, पर महाराज चलते-चलते भी महावीर को देख रहे थे। मुमुक्षु ध्यान दो। मुनि का आहार को जाना भी सम्यक्त्व का कारण है, प्रभावना अंग है। आहार करना भी कर्मनिर्जरा है। किसी अज्ञानी जीव को नहीं मालूम था अरिहंत की वृत्ति कैसी होती होगी, और एक निर्ग्रंथ योगी निकल पड़े, अचानक हाथ जुड़ गए, अनेकानेक अज्ञानियों के। ज्ञानी! यही तो प्रभावना अंग है। महावीर दिख गए। जैन साधु जहाँ से निकल गया, समझो जिनशासन निकल गया।

निर्ग्रंथ दशा धारण करने के परिणाम हुए, वस्त्र उतारने के परिणाम हुए, तो निर्वस्त्ररूप वस्तु की अनुभूति प्रारंभ हो जाना चाहिए। यदि अनुभूति प्रारंभ नहीं होती, तो नंगे तो हो जायेंगे, पर नगनत्व नहीं होगा। यह जिनशासन नंगों का नहीं, नगनत्व का शासन है। नंगे तो दरिद्री कहलाते हैं। जो वासना सहित नंगे हो जायें, कपड़े उतर जायें, वे तो नंगे ही हैं। जो वासना का विसर्जन करके वसन उतार दें, वे नंगे नहीं, नगनत्वशील होते हैं। अध्यात्म, द्रव्य की परिधियों में नहीं घूमता, भावों की परिधियों में चलता है। अध्यात्म, द्रव्य में प्रवेश करता है, परंतु भाव में गमन करता है। मूल विषय पर आओ-

अनुभूति ही आनंद है। आनंद द्रव्य में नहीं, अनुभूति में आनंद है। आम का फल यहाँ रख दिया जाए, आनंद आयेगा क्या? आनंद किसे आयेगा? जो चखेगा उसे ही आनंद आयेगा। तो चख नहीं रहा, उसे ज्ञान तो हा रहा है कि आम हैं, परंतु अनुभूति नहीं ले रहा। अहो श्रावकों! ऐसे-ही तत्त्व का ज्ञान तो आपको है, पर चख नहीं पा रहे हो, इसलिए आनंद नही है। आनंद जड़द्रव्य का धर्म है, कि आत्मा का धर्म है? आनंद तो आत्मा का धर्म है।

''सच्चिदानंद स्वरूपोऽहम्''

तो फिर, यदि आमफल में आनंद होता, तो असाता के काल में वही आम खाओ तो मीठा क्यों नहीं लगता? जब घर में कोई अनिष्ट हो जाता है, तो वे ही द्रव्य होते हैं, वो ही घर होता है, पर अच्छे क्यों नहीं लगते? क्योंकि आत्मा में असाता का उदय चल रहा है। आनंद-गुण परद्रव्य का नहीं है। आप समयसार सुन रहे हो। विश्व का गुरु है यह ग्रंथ अध्यात्म में। जो लिखेगा, इसी का पिष्टप्रेषण करेगा। द्रव्यानुयोग में इसी ग्रंथ के इर्द-गिर्द ही सारे ग्रंथ लिखे गए हैं। गाथायें बदल गईं, पर विषय बदल कोई कर नहीं सकता। विषय बदल दोगे तो वह अध्यात्म बचेगा नहीं।

अनुभूति ही आनंद है। आनंद जड़ का धर्म नहीं, आत्मा का धर्म है। वह आत्मा से रहित होता नहीं, क्योंकि सुख आत्मा का गुण है। सुख से रहित आत्मा होती नहीं। इन्द्रियसुख भी सुख है। इन्द्रियसुख को सुख नहीं स्वीकारोगे तो ज्ञानी! नरक का दुःख क्या है? तो तिर्यंच का दुःख क्या है?

इन्द्रियसुख को सुख नहीं मानोगे तो देवगति का सुख क्या है? मनुष्यगति का आनंद क्या है? इन्द्रियसुख नहीं मानोगे तो ऊँच-नीच का भेद क्या है? इन्द्रियसुख को सुख नहीं मानोगे तो आपके दु:ख की परिभाषा क्या होगी? एक दिन को घर में क्लेश हो जाए तो कैसा महसूस होता है? इन्द्रियसुख भी सुख है। इन्द्रियसुख में इतना तन्मय हो गया कि घर में एक दिन भी क्लेश नहीं देखना चाहता। इन्द्रियसुख में तूने अनादि समय व्यतीत किया है।

पर जो इन्द्रियसुख हैं, वे सब पराधीन ही हैं। रसना का सुख चाहिए तो पुद्‌गल पिण्ड को खाना पड़ेगा। पराधीन है। सभी इन्द्रियसुख पराधीन हैं। तपे तवे पर जैसे पानी की बूँद झुलसती है, ऐसे-ही कामी भी कामिनी के अभाव में झुलसता है, मृत्यु भी हो जाती है। इन्द्रियसुख पराधीन है। सर्प डसे तो 9 वेग आते हैं और काम डसे तो 10 वेग आते हैं।

जिनशासन की अंतिम विद्या अंतिम शैली जैनी भूल गए। तुम सब क्रियाकाण्ड में उलझ गए हो। जिनशासन की अंतिम साधना है समाधि और समाधि की प्राप्ति का कोई उपाय है तो उसका नाम है ध्यान। उस पर किसी का लक्ष्य ही नहीं जा रहा है। पूजन/विधान छोड़ मत देना, करना, परंतु ध्यान पर भी ध्यान देना। गीत-संगीत से आत्मा का कल्याण नहीं होगा, समयसार संगीत से आत्मा का कल्याण होगा। नकल की इतनी महिमा हो चुकी है कि जिन पाण्डालों में जिनवाणी होनी चाहिए थी वहाँ लोग लाठी लेकर डांडिया खेल रहे हैं। उनकी गलती नहीं, गलती वक्ताओं की है। तत्त्व नहीं जानते और कहने आ जाते हैं तो यहाँ-वहाँ के काम करवाते हैं। ज्ञानी! वो दिन कब आए जब वचन समाप्त हो जाएँ, प्रवचन समाप्त हो जायें। यह भी एक आनंद है।

वस्तु हटाई और अनुभूति नहीं आई, तो कुछ नहीं हुआ। एक सिक्का भी गोलक में डालता है तो वेदन होता है कि नहीं? कि मैंने दान किया। और वही सिक्का फोन वाले डिब्बे में डालकर आता है तो बातों में पैसा बर्बाद करके आ गया। बातों-बातों में कितने नोट बर्बाद कर दिये? यदि वही पैसा मंदिर की गोलक में डाल देता तो कितने पुण्य का संचय करता। जिन श्वासों को तूने भोगों के डिब्बे में नष्ट किया है, उन स्वासों को स्वअनुभूति में लगा देता तो तू आज स्वयं समयसार होता। कुछ को समय नहीं मिला, तो कुछ समय तो समझ नहीं पा रहे। मैं जब संघ में नहीं आया तब से मालूम था कि समाज का खाना मतलब तिर्यंच बनना। जब-तक घर से संबंध रहे, समाज का नहीं खाना और समाज का आहार कर रहे हैं तो साधना उतनी करने का कि उनका (समाज) चुक भी जाए और मेरे पलड़े में रहे। इतनी साधना होनी चाहिए।

हे नाथ! हमने आपको शरीर का भोजन दे दिया, अब इस भोजन से तुम आत्मा के भोजन का पान

करो। शरीर का भोजन पराधीन है, आत्मा का भोजन स्वाधीन है। इसलिए ज्ञानी! अकषाय भाव को प्राप्त करो। यह अपना सौभाग्य है जो इतनी प्यारी-प्यारी समाज तुम्हें मिली है, जो तुम्हारा इतना ध्यान रखती है। विश्वास रखना, आपकी चर्या से सबकी श्रद्धा उमड़ती है। जगत के बड़े-बड़े तपस्वी हमारा एक छोटा-सा बालक- श्रावक अधिक ज्ञानी है। क्योंकि जो सम्यक् श्रद्धा है, वही तो साधना है। श्रद्धा नहीं, तो कोटि-कोटि वर्ष की साधना कार्यकारी नहीं। वही त्याग है जहाँ अनुभूति है।

ज्ञानी! वस्तु में नहीं, अनुभूति में है आनंद। अब अमृतचंद्र स्वामी से पृच्छना करना, प्रभु! आप अनुभूति को कैसे कहना चाहते हो? आचार्य कुंदकुंद के सूत्रों पर ऐसी अलौकिक टीका, भूत में किसी ने की नहीं। सूत्रों से गहनतम टीका हो गई। आत्मा का विषय आँखों से दिखा दिया। महान आश्चर्य, अद्‌भूत कार्य।

ज्ञानी! हर युग में कोई ऐसा महान योगी होता है जो परम तत्त्व का व्याख्यान करके अरिहंत वाणी को आगे ले जाता है।

माताओं! पंचमकाल में तुम अरिहंत को जन्म नहीं दे सकती हो, पर हर घर के एक बेटे को मुनि बनाओ। ये भी एक आनंद है। जो-जो मैं कह रहा हूँ, सब सुन रहे हो, सब में आनंद आ रहा है। ओहो! एक ऐसी बात भी है जिसमें परमानंद है। वह परमज्ञायक-स्वभाव है।

जब परद्रव्य का त्याग करे, तब स्वद्रव्य की अनुभूति होगी। 18 वर्ष के नवयुवक ने ब्रह्मचर्य व्रत लिया, पिच्छि ली। मित्र बोला, मुझसे क्यों नहीं कहा? मैं भी व्रत ले लेता। मैंने कहा, इधर आओ, पिच्छि में हाथ लगा लो। वह प्रसन्न हो गया, 'महाराज! इतने दिन का व्रत लेता हूँ।' और प्रसन्नता में विवेक खो बैठा, नाचने लगा। मैंने सोचा कि क्या हो गया इसको। कहता है 'मुझे आनंद आ रहा है। ऐसा आनंद पहले नहीं आया था।' ज्ञानी! पर को छोड़ते ही, विषय को छोड़ते ही, ब्रह्म का आनंद आना चाहिए था। यही तो ब्रह्मचर्य है।

तेरे व्रतीपने का आनंद तुझे आना चाहिए। भोजन की थाली पर पहुँचने में उतना आनंद नहीं आना चाहिए। जितना भोजन की थाली से कोई सामग्री त्याग स्वरूप निकाल देने में आना चाहिए। देखा। गया था खाने को, पर गया था त्यागने को। क्योंकि प्रत्याख्यान विषय चल रहा है। जब आचार्यभगवन चिंतन करते हैं, तो चित्त की गहराई को परिपूर्ण चिंतवन में लगा देते हैं।

सुन ज्ञानी! साग बनाते-बनाते, रोटी पकाते-पकाते हाथ जलते हैं न? पर न तुम लड़ने गए, न कोर्ट-कचहरी गए, न पंचायत में गए, न शोर किया, चुपचाप भोजन बनाती रही। सबको भोजन करा

दिया, स्वयं भोजन कर लिया और जब बर्तन माँजने बैठी तो दर्द होने लगा। ऐसा क्यों हो गया? अभी तक उपयोग कहीं-और था। बाजार में किसी के भी जूठे बर्तन में खाकर आ जाते हो और घर में कोई कहे कि जूठा गिलास है, तो कहते हो कि दूसरा लाओ। यानि जितना घोर-घोर पाप करते हो, सब अज्ञानता में करते हो। और ज्ञानी! जो भी आनंद है, सब ज्ञान में है। उसे परके वस्त्र में दुर्गंध नहीं आई क्योंकि अपना मान लिया था।

यदि समयसार सुनने आए हो तो परिवर्तन तो लाना पड़ेगा।

'किं सुन्दरं किं असुन्दरम्'

तो धोबी ने वस्त्र दिया, उसने ओढ़ लिया, सो गया। स्वयं अज्ञानी था, सो ओढ़ लिया। ज्ञानी आया और वस्त्र को खींच कर उसे उखाड़ दिया- अहो ज्ञानी! उठ, जाग। अच्छे से देखो, ये वस्त्र मेरा है। वह ये शब्द सुनता है। गुरु बार-बार कह रहे हैं- ज्ञानी! ये वस्त्र तेरे नहीं हैं। वह जाग गया कि यह वस्त्र मेरा नहीं है।

त्यागी-व्रतियों को दूसरे के वस्त्रों का इस्तेमाल कभी नहीं करना चाहिए। राजमार्ग तो ये है कि रिश्तेदारी में भी जाओ तो स्वयं के ओढ़ने-बिछाने तक के वस्त्र लेकर आओ। अन्यथा पता नहीं कौन-कौन से रोग लेकर जा गए। यदि सभी जिनशासन के अनुसार चलने लगें तो डॉक्टर की जरूरत ही न पड़े। जब नहीं चलते, तो जाओ वैद्य के घर। नहीं, ज्ञानी! नहीं जाना, जिनवाणी के पास रहना है।

तो जब वस्त्र को देखा, सम्पूर्ण चिह्नों को अच्छी तरह परीक्षण करके। लोग कहते हैं कि आचार्य महाराज की टीका बहुत कठिन है। कहाँ कठिन है? आप लगा रहे कि नहीं? तो जैसे-ही जाना कि कंबल मेरा नहीं, पर का है, तो शीघ्र ही छोड़ देता है। फिर गंध आने लगती है कि दूसरे का है। हटाओ-हटाओ। ऐसे-ही परभावों को परभाव जानकर तू क्यों नहीं छोड़ देता? ये परद्रव्य तेरा स्वद्रव्य नहीं है, परभाव है। इन्हें अपना कब-तक कहता रहेगा?

तथा उसी प्रकार, परकीय भावों को न समझकरके आत्मीय भाव मानता हुआ, सो रहा है, अज्ञानी। गुरु आते हैं, परभाव का ज्ञान करा करके कहते हैं- जाग जा, प्रतिबोध को प्राप्त हो। तू निश्चय से एकमात्र आत्मा ही है। ऐसा अनेक बार सुना। तू भिन्न है- तू भिन्न है, ऐसा अनेक बार सुना, तो फिर अपने चिह्न से अच्छी तरह जानता है- अरे! काम, क्रोध, मान, माया, लोभ तो परभाव हैं। आज जाना। अनादि से इन्हें अपना मानता रहा। पर निश्चय से ये सब परभाव हैं। ऐसा जानकर, ज्ञानी होता हुआ, परभाव को छोड़ देता है।

आज के विषय का चिंतन घर में बैठकर करना-

आत्मस्वभावं परभाव भिन्न

जैसे उस ज्ञानी ने पर के चद्दर को पहचान कर शीघ्र ही छोड़ दिया, हम पर के चद्दर को कब तक ओढ़े रहेंगे?

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

आत्मा के ध्रुव ज्ञायकस्वभाव का व्याख्यान कर रहे हैं। प्रत्याख्यान अधिकार में बहुत सुन्दर बात कह रहे हैं। अहो ज्ञानी! जब परवस्तु तेरी है ही नहीं, तो त्याग किसका, ग्रहण किसका? न त्याग है न ग्रहण है। प्रत्याख्यान ध्रुव आत्मा का ही स्वभाव है। ग्रहण उसका करे जो हो। त्याग करे जिसे ग्रहण किया जा सके। अज्ञ दशा की विडम्बना तो देखो, जो आत्मा का स्वभाव, किंचित् भी नहीं है, उस पर कैसे जीव झुलस रहा है। लाईट के कीड़े को देखकर तुम मुस्कुरा लेते हो कि कैसे अज्ञानी जल गया। पर तुझे ज्ञात होना चाहिए कि अपने जीवन को विषयों के प्रकाश में कितना झुलसा लिया। वो तो असंज्ञी था, अज्ञानी था, पर आप तो ज्ञानी हैं। तुमको तो ज्ञान है। अशुभ करने से अशुभ नहीं होता क्या? ज्ञान होना भिन्न है, भेदविज्ञान भिन्न है।

जितने बंध को प्राप्त हुए हैं, वे भेदविज्ञान के अभाव में हुए हैं और जितने निर्वाण को प्राप्त हुए हैं, वे भेदविज्ञान के सद्भाव में हुए हैं। इसलिए गहरे में जाकर अंतस् में बैठो। अहम् को समाप्त कीजिए। यह अहम् तुझे शुचिता से दूर कर रहा है।

'मैं त्यागी,' हे त्यागी! तू ये तो बता कि किसका त्यागी? अपने ज्ञान को अपने ज्ञान में रख लेना, इसका नाम ही तो त्याग है। यही तो निश्चय प्रत्याख्यान है। जो ज्ञान पर में जा रहा है, उसे रोक लीजिए, यही तो त्याग है। कोई वस्तु किसी से मिलने नहीं आती। ज्ञानी! तूने ही अपने ज्ञान को मिलाया है। न पाप विडम्बना स्व पर के परिणामों की है। जिसके शरीर में राग करता था, वह मुर्दा पड़ा है। जिस शरीर से तू राग करता था, वह भी मुर्दा पड़ा है। यदि दोनों में राग होता, तो दोनों को साथ मिलकर रहना चाहिए था। यह राग पुद्गल का परिणमन नहीं, यह राग आत्मा की विभाव दशा है। पुद्गलों में पुद्गलों का राग होता तो श्मशान में मुर्दों की राख न होती, वे आपस में क्रीड़ा करते मिलते। देह में राग है, कि देही को देह का राग है? आत्म को ही देह का राग है।

सारी दुनियाँ कहती है- मैं कर्मों से छूट जाऊँ, कर्म से छूट जाऊँ। यह सब अज्ञानियों की भाषा है। ज्ञानी! कर्म से कब छूटेगा? पहले ये बता कि दूसरे के नोकर्म को देखने से छूटा कि नहीं? तेरा सुन्दर मन किसी के सुन्दर तन को देखकर असुंदर हो चुका है। अहो! किसी का शरीर सुन्दर नहीं, यदि सुन्दर कोई था तो तेरा शीलस्वभाव सुन्दर था। वह खो चुका। जितना आँखों ने भोगों का भोग किया, उतना

किसी इन्द्रिय ने नहीं किया। पंचेन्द्रिय विषयों का सेवन कर लेती हैं ये आँखें। धिक्कार हो। कर्म से रहित होने की बात कर रहा है और नोकर्म पर राग कर रहा है। शुद्ध मायाचारी है। शुद्ध छल है, पर के साथ नहीं, स्वयं की आत्मा के साथ। क्यों भैया! देह से कितना त्याग किया और देही से कितना त्याग किया? मुमुक्षु! लगता है अभी धर्म बहुत दूर है। मन से पूछो कितने महान हो? दुनियाँ की प्रशंसा से अपने आपको प्रशंसनीय मानना ही महान भूल है। जगत तेरी प्रशंसा कर देगा। तू ये बता कि तू प्रशंसनीय है कि नहीं? दूसरे तेरी प्रशंसा तो शरीर की प्रवृत्ति की कर पायेंगे, पर तू जो प्रशंसा करेगा वह अपनी निज की परिणति की प्रशंसा कर पायेगा। शरीर के धर्मात्मा को सभी पहचान सकते हैं, लेकिन भीतर का परमात्मा भीतर का ही जानता है। इसलिए कल एक सूत्र कहा था आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने-

परवस्तु का ज्ञान होते ही निज वस्तु का ज्ञान हो जाता है। और परवस्तु को छोड़ते-छोड़ते निज वस्तु की अनुभूति प्रारंभ हो जाती है।

समझो। यह समयसार है। इसमें न भेदाभेद विपर्यास, न कारण-कार्य विपर्यास, न स्वरूप विपर्यास है। जो है, सो है।

जिस दिन तुझे विषय-भोग (पंचेन्द्रिय विषय) पर लगने लग जायेंगे, उस दिन तुझे नियम से निजात्मा का ध्रुव ज्ञान हो जायेगा। अभी लग नहीं रहे हैं, जान रहे हो। जब विषय 'पर' दिखेंगे, जब लगे कि अब्रह्म भाव 'पर' है, ऐसा कहते ही-

ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम्, परमानंद स्वरूपोऽहम्।

'मैं ब्रह्मानंद हूँ, मैं परमानंद हूँ, यह झलक प्रारंभ हो जाएगी। अब्रह्म भाव के लिये मलरूप ग्लानि जिस दिन प्रारंभ हो जाएगी, उस दिन ब्रह्मभाव का आनंद प्रारंभ हो जायेगा। कुशील भाव जाते ही शील भाव का आनंद आयेगा कि नहीं आयेगा? संवेदन नहीं है, विश्वास रखना, प्रवृत्ति नहीं है।

नैयायिक दर्शन में स्व-संवेदन को स्वीकार नहीं किया। आत्मा परसंवेदी कहा है, लेकिन जैनदर्शन में आत्मा स्व पर संवेदी है।

'इष्टोपदेश' की 21वीं कारिका में इसका विशेष वर्णन किया है-

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्त सौख्यवानात्मा लोकालोक विलोकनः।।

इस श्लोक में बड़ा गहरा सिद्धांत है। आत्मा स्वसंवेदी है। ऐसा कोई आत्मद्रव्य होता नहीं जो स्वसंवेदी न हो। जब भी संवेदन होता है, तो स्वसंवेदन ही होता है। परवस्तु का भी संवेदन होगा तो

स्वयं को होगा।

आप मुझे सुन रहे हो, कि शब्दों को सुन रहे हो, कि विषय को सुन रहे हो? मैं भी गया, शब्द भी गए; जो बचा वह सत्यार्थ है। कल्पना कीजिए-लोग चटनी बनाते हैं सिल बट्टे पर, कैसे खटाई बनाते हैं? तो क्या सीधे-सीधे जीरा, धनिया, खटाई खाने से स्वाद आता है? वही सब सिल-बट्टे पर पीस दो, संज्ञा बदल गई। जैसे पीस-पीस कर आपने उसमें से भिन्न स्वभाव निकाल दिया, यानि कि पुद्गल से पुद्गल का पिष्टप्रेषण करके, तो स्वाद बदल गया। जो तत्त्व की पिसाई-घुटाई करता है, तो निज ध्रुव ज्ञायकभाव का स्वाद बदलता दिखाई देता है।

यदि विषय सुनने आए हो तो इस लोक में विषय असंख्यातलोकप्रमाण हैं, क्या उन सब विषयों को इतनी ही शांति से सुनते हो? सभी विषयों को नहीं सुना जाता।

आत्मा के हित का उपाय तो 'मूलाचार' में लिखा है। आत्मा का हित हो तो समयसार है। 'समयसार' आत्मा के हित का उपाय नहीं, समयसार आत्मा का हित है। कारण समयसार, कार्य समयसार।

जो कारण समयसार है, वो आत्मा के हित का उपाय है।

जो कार्य समयसार है, वह आत्मा का हित ही है।

अभी तक शब्दब्रह्म को सुन रहे हो, यह आत्मब्रह्म नहीं है। आत्मब्रह्म शब्दातीत है।

ज्ञानी! जब तू शिशु था, तो स्त्री था कि पुरुष था? पुरुष था। लेकिन कोई तुझे पुरुष नहीं, शिशु बोलते थे। यदि उस समय पुरुष थे, तो क्या संतान को भी जन्म देते थे? पुरुष-वेद था, परंतु पुरुषकर्म का उदय अभी नहीं हुआ है। अब माँ तुझे गोद में नहीं बिठाती।

बिना पुरुषार्थ के, बिना उपादान के, बिना निमित्त के और बिना काललब्धि के कार्यसिद्धि होती नहीं। इस सभी की आवश्यकता है।

आप विषय सुन रहे हो। वो विषय 'विषय' है, कि पर का निर्विषय है? समयसार की शब्दावलि भिन्न है। जो स्वसंवेदन है, उसे ही आप सुन रहे हो। जो विषय बन रहा है, यह आत्मा परविषय बनाकर सुन रही है, कि स्वविषय बनाकर सुन रही है? मैं भाषा बोल रहा हूँ, यह कहनेवाला जीवद्रव्य है और जो निकल रही हैं, वे शब्दवर्गणाएँ हैं, पर तेरे कानों में जा रही हैं। जैसे मैं भाव बनाता हूँ, श्रोता मुझे वैसा ऊपर-नीचे दिखाई देता है। आप कहोगे कि वक्ता का प्रभाव है, यह वक्ता का प्रभाव नहीं, ज्ञानी! यह शब्दवर्गणाओं की समन्वय की शैली से ऊँचे-नीचे भावों का उतार-चढ़ाव चल रहा है। एक द्रव्य दूसरे

द्रव्य को प्रभावित कर रहा है। यही रसायनशास्त्र है।

ज्ञेय से ज्ञान होता नहीं। व्यवहार से, ज्ञेय के बिना ज्ञान होता नहीं। पर निश्चय से ज्ञेय से ज्ञान होता नहीं। ज्ञेय में ज्ञान होता नहीं। ज्ञानी 'ज्ञेय' नहीं, ज्ञानी तो ज्ञाता है। ज्ञाता ज्ञेय से ज्ञान नहीं करता, ज्ञाता स्वसंवेदन से ज्ञान करता है। ज्ञाता ज्ञान को ज्ञानभूत ही जानता है, ज्ञेयभूत नहीं जानता। पर इतनी सूक्ष्म व्यवस्था है कि जगत के लोग जान नहीं पाते। वे ज्ञेय से ज्ञान को मानते हैं। पर ज्ञानियों! यदि ज्ञेय से ज्ञान होता, तो अलमारियों में रखी जिनवाणी से अलमारी को ज्ञानवान हो जाना चाहिए?

द्रव्य-आगम तो भाव-आगम का सहकारी कारण हो सकता है, परंतु द्रव्य-आगम ज्ञान नहीं है। द्रव्य-आगम भी ज्ञेय भी है। यह जो समयसार हमारे सामने विराजमान है, यह भी ज्ञेय ही है, ज्ञान नहीं है। यदि यह ज्ञान हो जाएगा, तो जितने-जितने जिनवाणी को हाथ में लेंगे, वे ज्ञानी हो जायेंगे। जिनवाणी से अभ्यास तो होता है, जिनवाणी से ज्ञान की आराधना तो होती है, पर ज्ञान तो आत्मभूत ही होता है। इसलिए निज ज्ञान में निज का रमण करा देना, यही प्रत्याख्यान है। परमार्थ यही है।

यह पूरी चर्चा 29वें कलश की भूमिका है। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं- वेग है।

क्षीणता-लीनता व बंधदशा युगपद् चल रही है। वेग है। हे ज्ञानी! अब्रह्म-सेवी से पूछना-विष्य-वेग आया, शरीर से धातु का क्षरण होना, भोग की वृत्ति में तन्मय होना और शरीर का क्षीण होना युगपद् चल रहा है। क्षीणता, क्षरणता, लीनता वेग है। पकड़ नहीं पाता, कार्य भिन्न-भिन्न है पर समय एक है।

उत्पाद्, व्यय, ध्रौव्य-कार्य तीन हैं, पर समय एक है। दृष्टांत आपके अनुभव का दिया है, इसलिए गहरे में जाइए। ऐसे-ही योगी के वेग हैं, स्वानुभूति वेग, स्वात्मलीनता, कर्म क्षीणता, आस्रव, दुर्बलता एकसाथ है। वेग है। जब योगी समरस में लीन होगा, तब सारे जगत का त्यागी हो जाएगा। जो समरस निज में रिस रहा है, वही रस मेरी आत्मा का स्वभाव है। वह आनंदकंदस्वरूप है।

अवतरति न यावद् वृत्तिमत्यन्तवेगादनवम परभावत्यागदृष्टान्तदृष्टि:।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव।। 29 अ.अ.क.।।

धन्य हो। भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी! तुम्हारी जय हो। भगवन् कुंदकुंद स्वामी ने जो कहा से कहा ही है, पर अमृतचन्द्र स्वामी के कलश तो 'कलश' ही हैं।

परभाव का त्याग यह तो दृष्टांत दृष्टि है, परंतु शीघ्र ही अन्य भावों से विमुक्त हो जाता है। जैसे-ही अन्य भावों से दृष्टि हटती है, वैसे-ही स्वभाव में प्रवृत्ति होती है। यदि अन्य भाव से दृष्टि हटे और

स्वभाव में प्रवृत्ति न हो, तो ज्ञानी गया कहाँ? क्या कालिया नाग नहीं देखा आपने? वह टोकरी से निकलेगा तो वामी में जायेगा। वामी में जाएगा तो टोकरी से नहीं निकलेगा क्या? दीपक का जलना और अंधकार का जाना, तो पहले दीपक जलेगा कि अंधकार जायेगा? जैसे दीपक का जलना और अंधकार का जाना, यह कार्यकारण भाव तो है, पर समयभेद नहीं है। साँप का टोकरी से निकलना, वामी में जाना। जब स्वसंवेदन करने लगे और परवेदन से हट जाए, अथवा परवेदन से हटे न और स्वसंवेदन में चला जाए, यह संभव नहीं है। पर का वेदन करेगा तो स्व का वेदन करेगा, व्यवहार से कह रहा हूँ। जब परमार्थ दृष्टि से कथन करूँगा तो जो-जो ज्ञेय हैं, वे गौण हो जाते हैं। ज्ञान-ज्ञान का ही संवेदन करता है। इस बात को पकड़ने के लिये बहुत श्रम करना पड़ेगा। दर्पण में प्रतिबिम्ब है, तो जो चेहरा दिख रहा था, वह पुरुष प्रवेश किया कि दर्पण ही प्रतिबिम्ब हो रहा था? आपके जाए बिना स्वरूप परिणमन करेगा नहीं पर, स्वरूप परिणमन हुए बिना प्रतिबिम्ब बनेगा नहीं। आपका जाना व्यवहार है और प्रतिबिम्बित होना निश्चय है। यदि दर्पण तेरे रूप परिणमन कर जाए, तो दर्पणरूप बचेगा नहीं। वह तो स्वचतुष्टय में है। आपके परिणमन से उसमें परिणमन नहीं हो रहा है। ऐसे-ही ज्ञान जो है वह स्वभाव से, ज्ञान की परिणमित होता है। क्योंकि अंदर तो ज्ञान है, अंदर ज्ञेय नहीं है। और निज ज्ञान ही निज ज्ञेयभूत होकरके इस आत्मा को ज्ञान कराता है। जैसे श्वान सूखी हड्डी को चबाता है तो उसके जबड़े से खून निकलता है, सोचता है कि हड्डी में स्वाद है। स्वाद स्वयं के अंदर है, कि हड्डी के अंदर है? जो-जो ज्ञेय दिखाई दे रहे हैं, ज्ञान ज्ञेयों से भिन्न है। ज्ञेय तो जड़भूत भी है और भिन्न चेतन भी मेरे लिए भिन्न ही है, मात्र निज चेतन ही मेरे लिए अभिन्न है। मेरा पर का अत्यंताभाव है। एक बात पूछें-आपको हमसे राग है? अच्छा हमारी छोड़ो, आपको अपने घर से राग है? विश्वास रखना, आपको घर से किंचित् भी राग नहीं है। यदि वो घर बिक जाए, नोटों की गड्डी हाथ लगी, रजिस्ट्री हुई, फिर छत गिर गई तो उस घर के गिरने का कितना दुःख होगा? बोले, क्या भाग्य है, पैसा मिला, अब जो हो सो हो। राग था क्या? हे मुमुक्षु! ध्रुव सत्य यह है कि तेरी राग की पुष्टि जहाँ हो रही है, उस राग में ही राग है। राग का ही राग है। जिस दिन बेटा कहे कि हिस्सा दे दो, उस दिन पूछना कैसा लग रहा है बेटा? जिस दिन पत्नी कहे तलाक दे दो और कोर्ट में खड़ा कर दे, फिर कहना कितनी सुन्दर लग रही है? चन्द्रमुखी कि ज्वालामुखी? कहाँ गया वह राग? सब व्यर्थ की बातें हैं। सब असत्यार्थ है। भूतार्थ तो ज्ञायकभाव है।

तो स्वयं की अनुभूति होते ही परभाव भिन्न हो जाते हैं।

भावकभाव विवेक को यहाँ कहते हैं-

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोणिणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति।। 36 स.सा.।।

भगवन् कुंदकुंद स्वामी कह रहे हैं कि कोई भी मोह मेरा नहीं है, क्योंकि जो मेरा होता है, वह त्रैकालिक होता हैं और जो मेरा नहीं होता, वह तात्कालिक होता है। पर अभागे जीव तात्कालिक के पीछे त्रैकालिक को खो बैठे। तात्कालिक पर्याय की अनुभूति के पीछे त्रैकालिक भगवानात्मा की विडम्बना क्यों कर रहा है?

ज्ञानी! मैं तो एक, उपयोगमयी हूँ। मैं मोहभूत नहीं है। मोह सावरण दशा है। मोह सोपादिक दशा है। उपयोग मेरी आत्मा की स्वभाव दशा है। मोह आत्मा का लक्षण नहीं है।

'उपयोगो लक्षणम्।' (त.सू.)

मोह तो सावरण दशा है। मोह न हो तो कर्म का आस्रव-बंध न हो, और कर्म का आस्रव-बंध न हो, तो मोह क्यों हो? अन्वय-व्यतिरक। इसलिए मैं मोह से निवृत्त होता हूँ। वही आत्मा स्व को जानने वाला है जो मोह से निवृत्त है।

जो आत्मा का एकत्व-विभक्त स्वरूप है, वही लोक में सबसे सुन्दर है। एकत्व-विभक्त से हटकर जो भी है, वह सब विसंवाद का कारण है। जहाँ द्वैतवभाव है, वहाँ विसंवाद है। अद्वैत भाव ही अविसंवादी है। जहाँ द्वैत भाव है, वहाँ बंध है। जहाँ दो हैं, वहीं बंध है। एक कभी बंध को प्राप्त नहीं होता। इसलिए योगी, अनेके के बीच होकर भी, एक को निहारता है।

मोह अद्वैत नहीं, द्वैत है। अद्वैत दशा परमब्रह्म दशा है। लोक में सबसे कठिन अद्वैत साधना है। जगत के अद्वैत को एकांत से मानना, वह मिथ्यात्व है। जिनशासन में स्यात् द्वैत, स्यात् अद्वैत। हम द्वैतवादी भी हैं, हम अद्वैतवादी भी हैं; लेकिन एकांत से न द्वैतवादी हैं न अद्वैतवादी हैं। जहाँ निज स्वरूपलीनता है, वहाँ अद्वैतभाव है। जहाँ पंचपरमेष्ठी की आराधना है वहाँ द्वैतभाव है। शुभोपयोग द्वैतभाव, शुद्धोपयोग अद्वैतभाव। शुभोपयोग में जाए बिना अद्वैत दशा नहीं होगी। अहो! यह पंचपरमेष्ठी भी निज आत्मा का स्वभाव नहीं है। मेरी निज की आत्मा को छोड़कर पर की आत्मा अत्यंत भिन्न है।

जो अज्ञानी भक्ति के अतिरेक में, मोह में कहें कि शरीर भिन्न हैं, पर आत्मा एक है, वे घोर मिथ्यादृष्टि हैं। परमात्मा और मुझमें आराध्य-आराधक भाव है, परंतु मुझमे और मेरे परमात्मा में साध्य भाव नहीं है। भगवान और तुझमें साध्य-साधक भाव नहीं, आराध्य-आराधक भाव है, श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध है। साध्य-साधक भाव मेरे रत्नत्रय के परिणामों की परिणति है। साधक भाव मेरा द्रव्य-भाव संयम है और साध्य भाव मेरी स्वात्मोपलब्धि सिद्धि अशरीर भगवानात्मा है। कभी गुलाब का फूल देखा? कमल, केतकी देखा? सब एकेन्द्रिय वनस्पति है। बबूल भी एकेन्द्रिय वनस्पति है। दोनों में अंतर है। जो फूल हैं, वे सीधे अशुभ गति से नहीं आए। उनसे पूछ लेना, वे कहेंगे मैं शुभ गति से आया हूँ।

तह तें चय थावर तन धरें

वे स्वर्ग से आकर अग्निकायक/वायुकायिक नहीं बनते, सुन्दर पुष्प ही बनते हैं। जिसने कभी देव पर्याय में जिनेन्द्र का अभिषेक किया होगा, इस अज्ञानी ने क्या किया?

'धम्मं भोग निमित्त'

वह पुष्प स्वर्ग का देव था, अशुभ भाव किए और स्थावर पर्य्याय को प्राप्त कर लिया।

ज्ञानी? एक फूल को भी मत तोड़ना। वह भी भावी भगवान है।

माँ! एक फूल को तोड़ने में हिंसा होती है और अपने लाल के टुकड़े कराने में क्या तुमको पाप नहीं पड़ता? यह समयसार है। द्रव्यदृष्टि का प्रयोग तुम मंदिर मात्र में करते हो। घर के बाथरूम में जब 50 रुपये का साबुन लाकर नहा रहा था, नाली में कीड़े मर रहे थे, तब तेरी द्रव्य-दृष्टि कहाँ चली गई थी? मंच पर आने के लिए सज रहा था और नाली के कीड़े झुलस रहे थे तेरे साबुन के क्षार से, तब तेरी द्रव्यदृष्टि कहाँ चली गई थी? तुमसे अच्छा तो वह जीव है जो कुछ नहीं जानता, मात्र 'आलोचना पाठ' पढ़ना जानता है। वह कह रहा था-

'नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये'

यह था द्रव्यदृष्टि वाला। यह सम्यग्दृष्टि जो भगवान की पूजा करने के लिए शुद्धि करने हेतु बाल्टी पानी लेकर सूखी छत पर जाता है, वह है सच्चा द्रव्यदृष्टि युक्त व्यक्ति। पानी की एक बूंद में भी भगवानात्मा है कि नहीं? जिस दिन द्रव्यदृष्टि आ जाएगी, उस दिन करुणादृष्टि नियम से होगी ही। आपकी कथनशैली हटकर हो रही है क्योंकि आप द्रव्य को शुद्ध कहकरके चारित्र का लोप कर रहे हो। जबकि द्रव्यदृष्टि कह रही है कि नाली के कीड़े में भी भगवानात्मा को देखिए, उसे कष्ट मत दीजिए। द्रव्यदृष्टि चारित्र की ओर ले जा रही है। ये कथनशैली आपकी बदल रही है। यही कारण है कि अखण्ड दिगम्बर जैन समाज में भेद हो रहा है। आप कथन जो कर रहे हो, वह मस्तिष्क को गर्म करके कर रहे हो। मस्तिष्क को ठण्डा करो, तब समयसार की द्रव्यदृष्टि समझ आएगी।

'द्रव्यदृष्टि महेश्वराः'

जब द्रव्यदृष्टि आएगी, तो हर द्रव्य में महेश्वर दिखेगा। द्रव्यदृष्टि से सब भगवानात्मा हैं।

'पर्याय-दृष्टि नरकेश्वराः'

धन्य हो मुनि दशा। मल विसर्जन में भी कर्मनिर्जरा करते हैं। धिक्कार हो भोगी की दशा, जो पूजा

करते हुए भी कर्मबंध करता है। ज्ञानी! दृष्टि को समझो।

यह स्याद्वाद वाणी अपूर्व-अपूर्व है। द्रव्य का स्वभाव परिणामी है, द्रव्य का स्वभाव अपरिणामी है। स्वचतुष्टय अपेक्षा में परिणमनशील हूँ। स्वचतुष्टय अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य सत् स्वरूप है। पर-चतुष्टय अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य असत् स्वरूप ही है। इसलिए मैं अस्ति भी हूँ, मैं नास्ति भी हूँ। पर मैं तो मैं ही हूँ। जहाँ-जहाँ प्रवृत्ति होगी, वहाँ-वहाँ नियम से निवृत्ति होगी। जहाँ-जहाँ निवृत्ति होगी, वहाँ-वहाँ नियम से प्रवृत्ति होगी।

श्रुत अपूर्व है। वे सिद्ध परमेश्वर, निज की प्रमाता हैं, निज ही प्रमेय, निज की प्रमिति हैं। निज ही ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञये हैं। प्रमेश किंचित भी नया नहीं है। प्रमेय सभी पुराने हैं। जब तक प्रमाता के ज्ञान में नहीं आया, तब-तक नया है। यथार्थ बताऊँ- मुझसे ज्यादा पुण्यात्मा आप हैं। जब मैं आप जैसा था, ऐसा गहरा तत्त्व बतानेवाला नहीं मिला। यह प्रमेय, प्रमाता, यह तो न्यायग्रंथों की भाषा है। को ज्ञानी! तू सम्पूर्ण प्रमेयों को समझता जा। सिर्फ समझना नहीं, धारण करता जा। प्रमेय को प्रमिति का विषय तो बना लेना, परंतु पर प्रमेय को निज स्वरूप मत बना लेना। निज प्रमेय प्रमिति भी है, प्रमाता भी है। निज प्रमिति ही मेरा निज का स्वरूप है। प्रमाण, प्रमिति, प्रमेय। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय। ध्यान, ध्याता, ध्येय। इनका भी विकल्प जाल नहीं है, वही शुद्ध समयसार है।

पता नहीं आप कहाँ उलझे हो? एक झटके में निर्णय होता है। स्वयं को स्वतंत्र मानो। यदि सुगति चाहते हो तो पर को पर मानो, स्व मत मानो। बड़ी स्वतंत्र धारा है। कोलाहल का आनंद तो अनंत लेते हैं, पर एकत्व-विभक्त भगवानात्मा का आनंद बिरले निर्ग्रन्थ लेते हैं। यह श्रमणधारा है। कोलाहल में शांति नहीं है।

अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं 6 महीने ध्यान करो एकांत में। यहाँ एकांत से मतलब जो तुम्हारे चित्त में अपने विकल्प बैठे हैं, उनसे हटिए। कोई मित्र-शत्रु बैठे हैं मस्तिष्क में, इनसे तुम हट नहीं पाए और एकांत में गए तो वे हावी हो जायेंगे। साधना भी करो तो किसी गुरु से मिल लेना। कभी एकल-विहार मत कर लेना अन्यथा सर्वस्व लुट जाएगा, कुछ नहीं बचेगा। जैसे एरण्ड का वृक्ष मोटा दिखता है पर अंदर से खोखला होता है, ऐसे-ही साधुओं के साथ से हटकर एकल-विहारी होकर चले जाओगे तो एरण्ड के वृक्ष समान खोखला हो जाओगे। पंचमकाल में संगति ही सर्वश्रेष्ठ है। उत्तम संहनन के अभाव में एकल-विहार तो होना नहीं चाहिए। मुझे किंचित् भी नहीं लगता कि आपको समयसार नहीं सुनाना चाहिए। समयसार सुनने योग्य सभी जीव हैं, क्योंकि निजसमय समझ आएगा, तभी तो हम परसमय से हट पायेंगे। सोने के आभूषण चाहेगा तो स्वर्णधातु खरीदेगा कि नहीं? लोके के स्वर्ण आभूषण नहीं

बनते। विभाव की चर्चाओं से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। स्वभाव प्राप्ति के लिए स्वभाव की चर्चा ही करनी पड़ेगी।

सोने की दुकान पर मिर्ची की बात नहीं होती। यदि मिर्च चाहिए तो मिर्च की दुकान पर जाना पड़ेगा। ऐसे-ही जिसे शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति का लक्ष्य है, उसे स्वरूप की चर्चा करनी ही होगी। बिना चर्चा के व्यवसाय भी तो नहीं होता।

यह कथन निमित्त-निरपेक्ष चल रहा है। निमित्त-सापेक्ष कथन करोगे तो छहों द्रव्यों की आपको आवश्यकता है-

परस्परोपग्रहो जीवानाम् (त.सू.)।

व्यवहार है।

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और निज जीवद्रव्य से भिन्न जीव। जैसे इस कलम में मेरा अत्यंताभाव है, ऐसे-ही आपमें मेरा अत्यंताभाव है। सभी द्रव्य मुझसे भिन्न हैं।

यह जो धर्म, अधर्म आदि द्रव्य मुझसे भिन्न हैं, कैसे? मेरे स्व स्वभाव से भिन्न। पर जब राग की तीव्रता में निवारण नहीं होता, तो प्रचण्ड शक्ति से कवलित किया है जिसको, अत्यंत निमग्न हुआ। सुनो, क्या कह रहे हैं? प्रचण्ड राग की तीव्रता में यह जीव जगत के सम्पूर्ण द्रव्यों को आत्मीभूत किए है। परंतु सत्यार्थ यह है कि परद्रव्य आत्मीभूत नहीं है, निज द्रव्य ही आत्मीभूत है। परंतु जो मेरा टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभाव है, उससे जो पर तत्त्व हैं, उसे छोड़ना। संश्लेषित होने पर भी बाह्य तत्त्व मेरा नहीं होता, अंतस् तत्त्व ही मेरा है। इसलिए स्वयं ही, नित्य ही, अपने उपयोग से मैं भगवानात्मा हूँ, ऐसा ही जानना। संवेद्य-संवेदक भाव का आलंबन लेने पर भी, जो प्रस्फुटित हुआ है, स्वभाव है, तो परद्रव्य के प्रति मैं निर्ममत्व होता हूँ। इस प्रकार यह ज्ञेय-भाव के विवेक से युक्त होकर मैं निजात्मा में स्थित होता हूँ। कैसे? निर्ममत्व भाव से।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका - आगे इस दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप परिणत हुए आत्मा के स्वरूप का अनुभव कैसा होता है? ऐसा कहते हुए आचार्य इस कथन का उपसंहार करते हैं- जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप परिणत हुआ आत्मा ऐसा जानता है कि-

गाथा - **अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।**
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणु-मित्तंणि।। 38।।

संस्कृत छाया - **अहमेकः खलु शुद्धो दर्शनज्ञानमयः सदाऽरूपी।**
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि।। 38।।

अन्वयार्थ - (**अहम्**) मैं (**एकः**) एक हूँ (**शुद्धः**) शुद्ध हूँ (**सदा अरूपी खलु**) निश्चयकर सदाकाल अरूपी हूँ (**अन्यत्**) अन्य परद्रव्य (**परमाणुमात्रमपि**) परमाणुमात्र भी (**मम किंचित्**) मेरा कुछ (**नापि अस्ति**) भी नहीं लगता है, यह निश्चय है।

समय देशना

आत्मा की विभुत्व दशा का वर्णन कर रहे हैं। निज ज्ञायकभाव ही मेरा ध्रुव-धाम है। परभाव में मेरा किंचित् भी स्थान नहीं है। जब मोह ही मेरा धर्म नहीं है, तो मोह के साधन मेरे कैसे हो सकते है? 148 कर्मप्रकृतियों में एक मोहनीय कर्म है। जो परद्रव्य मुझे अपने दिखाई दे रहे हैं, यह मोहकर्म की ही देन है। तो आप जो कुछ भी कर रहे हो, कर्म की ही पुष्टि कर रहे हो। धिक्कार हो। द्रव्य कर्म और भाव कर्म, इन दो कर्मों के पोषण में स्वभाव धर्म को भूल रहा है। स्वयं के द्रव्य और भाव कर्म और पर के नोकर्म के पीछे निजात्मा को भूल रहा है। पर के नोकर्म के राग में तू भावकर्म को विकृत कर रहा है और द्रव्य कर्म को आमंत्रित कर रहा है। सोच रहा था कि आनंद आ रहा है, आनंद आ रहा है। हे ज्ञानी कषाय भी कभी आनंद होती है? जब ठण्डी होती है तब पूछना, अपना चेहरा किसी को दिखाने का पात्र है क्या?

क्या विसंवाद के काल में आयु कर्म के निषेक नष्ट नहीं होंगे। क्या वीर्यान्तराय कर्म का क्षय नहीं

होगा? क्या ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम विपरीत नहीं होगा? क्यों व्यर्थ में अपनी अमूल्य द्रव्य को नष्ट कर रहे हो?

दूसरे के मुख के विकास को सुनकरके अपना मुख विकृत करना, यह महा-अज्ञानी का लक्षण है। धन्य हो, दर्पण! तेरे सामने काले-कलूटे लोग, पर तूने अपनी स्वच्छता को नहीं छोड़ा। सम्यग्दृष्टि जीव नाना रूपों को अपने चारों ओर देखता है, पर अपने स्वरूप में जैसा था, वैसा ही रहता है। जो है, सो है।

कर्मकलंक मिटाना मेरा स्वयं का पुरुषार्थ है, पर लोककलंक मिटाना मेरे पुरुषार्थ के बाहर है। 148 कर्मप्रकृतियों को मैं नष्ट कर लूँगा, परंतु याद रखना, कलंक का टीका लग गया तो उसे मेरी अनंत तपस्या भी समाप्त नहीं कर पायेगी।

समयसार सुनना है तो लोकनीति, राजनीति, धर्मनीति इन तीन से अपने आप को स्वच्छ करके आना। क्योंकि समयसार में राजनीति देखोगे तो जगत अज्ञानी कहेगा। लोकनीति में धर्मनीति देखो, तो-भी अज्ञानी है- समयसार तो मात्र शुद्धात्म तत्त्व के लिए रूढ़ है। समयसार में शुद्ध आत्मतत्त्व का व्याख्यान है, परमदशा का व्याख्यान है। समयसार में अपने घर की व्यवस्था मत देखना।

मैं मोह-कर्म का भाव्य-भावक नहीं हूँ? और घर मोहकर्म के बिना होता नहीं है। जहाँ-जहाँ घर है, वहाँ-वहाँ मोहकर्म है। जहाँ राग का परिपूर्ण अभाव है, वे बेघर से भी बेघर हैं। हे रागियों! तुम अब हमसे कुछ कह नहीं पाओगे। राग की भाषा है। यह व्यवस्थित करने की भाषा नहीं है। प्रत्येक जीव को संसार में कोई व्यवस्थित करने वाला है तो कर्म है।

कभी किसी पुरुष को फावड़े से मिट्टी खोदते देखा क्या मुझे आश्चर्य हैं उन लोगों पर जो पीड़ित करने वाले तो पीड़ित करने का विचार रखते हैं। जो पीड़ित हुआ है, वह कर्म-बंध को प्राप्त हुआ है, कि जिसने पीड़ित किया है वह कर्मबंध को प्राप्त हुआ है? निर्णय करो। जो पीड़ित हुआ है, उसने समता से सहन कर लिया, वह कर्मबंध को प्राप्त होगा क्या? जो पीड़ित कर रहा है, उसे कर्मबंध होगा कि नहीं? हे मुमुक्षु! जब कर्म की व्यवस्था इतनी सुन्दर है, तो उसका विपाक आयेगा कि नहीं? जब कर्म स्वयं बैठा है, तो क्यों किसी के बारे में गलत सोचते हो? ध्यान दो, जो फावड़े को हाथ में लेकर जमीन पर पटकेगा, ज्ञानियों! विश्वास रखना, फावड़ा जब भी जमीन पर गिरेगा, कमर को टेढ़ा करेगा। जो दूसरों को सतायेगा, उसकी कमर पहले झुकती है। यह है ज्ञानी की भाषा। देखनहार देख रहा है, तुम क्यों व्यर्थ का कर्म-बंध करते हो?

'कर्म कर्महिताऽऽबंधि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्व-स्व प्रभाव भूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वांछति।। 31 इष्टो.।।

आप परेशान मत होइये। धन्य हो, ऐसा चिंतन करने वाले योगी को नमोस्तु। घोर उपसर्ग सहने के बाद भी जिसका मन आशीर्वाद दे, उस मन को नमोस्तु। जो शत्रु को भी आशीर्वाद दे रहा हो, उसके परिणामों को तो निहारो। यही तो निश्चय वंदना है। दो गोरे दो साँवले, यह तो पर्याय की वंदना है। हे वीतरागी वर्द्धमान नाम से शून्य जो भगवानात्मा हैं, उसको नमस्कार है। ज्ञानी! इसलिए जब-तक शुद्धात्मा को प्राप्त नहीं हुए, तब-तक करो पर्याय की वंदना, परंतु ध्रुव सत्य यही है कि निर्बंध तभी होगे जब पर्यायातीत की करोगे वन्दना। निजानंद की लीनता ही पर्यायातीत की वन्दना है। दो गोरे दो साँवले यह द्रव्य-पर्याय की वंदना है, भावों की वंदना नहीं है। 'वीतरागाय नमो नमः' यह भावों की वन्दना है। भ्रमित मत होना।

व्यवहार भी सत्य है, निश्चय भी सत्य है; परंतु निश्चय ही परम सत्य है। उदाहरण का अभाव हो जाए, यही निश्चय है। उदाहरण कहते रहोगे, यही व्यवहार है। उस परम सत्ता को समझिए जिसे जीव ने अनादि से असत्य माना, पर थी सत्य। मान्यता ही बदलना है। मोक्षमार्ग कहीं नहीं है, मात्र मान्यता ही बदलना है। विषयों की मान्यता को, कषाय की मान्यता को स्वरूप में लगा दो, बस, यही तो धर्म है। अनुभूति का नाश नहीं होता; लेकिन जो विषयानुभूति है, उसे स्वात्मानुभूति में लगा दो, अनुभूति वही है। अनुभूति तो त्रैकालिक है। विषय बदलता है तो अनुभूति बदलती रहती है, परंतु अनुभूतित्व का विनाश नहीं होता। ज्ञान की धारा विषयों में होगी तो अनुभूति विषयरूप होगी, बंधरूप होगी और ज्ञान की धारा स्वमुखी होगी तो आत्मानुभूति स्वात्मानुभूति होगी। अबंध धारा होगी। अनुभूति का कभी विनाश नहीं होता। विकारी भाव की लाली झलक रही है, यानि कि तेरे जीवन की गाड़ी में खतरा है। हरा काँच प्रकाशित है, यानि कि मार्ग माफ है। ज्ञानी! चारित्र की हरियाली है, यानि कि मार्ग साफ है।

हे जीव! भावकर्म भी इस आत्मा का धर्म नहीं है। भावकर्म भी, बंध अपेक्षा से, धर्म है। ज्ञान/अज्ञान, ये संज्ञायें कर्म-सापेक्ष हैं। सम्यग्ज्ञान/मिथ्याज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है। सम्यग्ज्ञान को आत्मा का धर्म कहोगे तो मिथ्यादृष्टि अनात्मा हो जायेगा। और यदि अज्ञान को आत्मा कहोगे तो सम्पूर्ण सम्यग्दृष्टि अनात्मा हो जायेंगे। आत्मा का धर्म चेतना मात्र है। जो मात्र ज्ञान सामान्य रूप से है, वह आत्मा का धर्म है।

केवलज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है। मति, श्रुत आदि में से एक भी आत्मा का त्रैकालिक धर्म हो गया तो हम कौन-से ज्ञान को आत्मा का त्रैकालिक धर्म कहेंगे? धर्म वह होता है जो

कभी धर्मी से अलग नहीं होता है। मति, श्रुत आदि ज्ञान-गुण की पर्याय है। ज्ञान तो ज्ञायकस्वरूप भगवानात्मा है। आत्मा का धर्म जानना-देखना मात्र है।

मति-श्रुतावधि-मन:पर्यय-केवलानि ज्ञानम्। (त.सू.)।

यह जो प्रथम चार ज्ञान हैं, क्षायोपशमिक हैं। केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। परंतु जो त्रैकालिक ज्ञान है, वह न क्षायिक है, न क्षायोपशमिक है। वह तो 'जो है सो है।' इस अपेक्षा से समझना।

ज्ञानी! जो भी अनुभूति होगी, वह पुद्गल का धर्म नहीं है।

संवेदन धर्म जो है वह पुद्गल का नहीं, आत्मा का धर्म है। यदि हम आत्मा को संवेदन से रहित कर देंगे, तो आत्म ज्ञान से शून्य हो जायेगी। फिर ऐसे ही मानना, जैसे अग्नि तो है, पर उष्णता नहीं है। अग्नि हो, उष्णता न हो, ऐसा नहीं होता। ऐसा कभी नहीं होता कि गुण गुणी से पृथक् हो जाए। ऐसा मानने वाला कि गुण-गुणी पृथक् होते हैं ,मात्र वैशेषिक दर्शन है। वैशेषिक दर्शन क्या बोलता है, ध्यान दो। ज्ञान निज को नहीं जानता, ज्ञान पर को जानता है। पर के ज्ञान से हम निज को जानते हैं। और वे क्या कहते हैं? अहो! ऐसा कोई व्यक्ति देखा क्या जो अपने कंधे पर बैठकर भी खेल दिखाये? ऐसे-ही, क्या स्वयं का ज्ञान स्वयं को जान सकता है? ज्ञानी! वक्ता तुमको कैसे भ्रमित कर सकता है, सीखो कुछ। सुनो, उत्तर दीजिए। नट अपने कंधे पर बैठकर खेल दिख सकता है क्या? ऐसे-ही ज्ञान स्वयं को नहीं जान सकता। यह मैं वैशेषिक मत से कह रहा हूँ। 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' में आचार्य अकलंक स्वामी कह रहे हैं वैशेषिक मत से। हे वैशेषिक! आपको मालूम होना चाहिए कि तुम्हारा दृष्टांत दृष्टांताभास है। ज्ञानी! ज्ञान कोई नट का खेल नहीं है। ज्ञान तो प्रदीपवत् है। देखो, अंधेरे कमरे में रखी एक पेटी को उठाने के लिए आप दीप जलाकर ले गए, और पेटी उठा लाए, अब दीप उठाकर लाने के लिए दूसरा दीप जलाकर ले जाओगे क्या? नहीं। हे ज्ञानी! जैसे दीपक पर को भी प्रकाशित करता है और स्वयं को भी प्रकाशित करता है, ऐसे-ही ज्ञान पर को भी प्रकाशित करता है स्व को भी प्रकाशित करता है। दीपवत् स्व पर प्रकाशित है। ज्ञान स्व पर प्रकाशित है। इस आत्मा में चेतन गुण हैं तो दो ही हैं।

भगवान को कर्ता नहीं बनाइये। ये कर्तृत्व वाली संस्कृति नहीं, स्वरूप संस्कृति है। निज का ही मैं कर्ता, निज का ही भोक्ता हूँ।

द्रव्यानुयोग का सम्यग्दृष्टि तुम्हारे ज्ञान का विषय नहीं है, परंतु क्या चरणानुयोग का सम्यग्दृष्टि तुम्हारे ज्ञान का विषय नहीं है?

हिंसारहिये धम्मे अट्ठारहदोखवज्जिये देवे
निग्गंथे पावयणे सद्दहणं होई स्मम्त्तं।।90 मो.पा.।।

हिंसा रहित धर्म है, अठारह दोषों से रहित देव और निर्ग्रंथ गुरु में जो श्रद्धा है, वह सम्यग्दर्शन है। यदि इतना तुम्हारे अंदर है तो व्यवहार सम्यक्त्व है, चरणानुयोग का सम्यग्दृष्टि है। और जब चरणानुयोग का सम्यग्दृष्टि हो जाएगा, तो कषाय परिणाम मंद होंगे तो करणानुयोग का सम्यग्दृष्टि भी हो जाएगा। और फिर निजस्वरूप में लीन होगा तो फिर द्रव्यानुयोग का भी हो जायेगा। जो जीव पंचमकाल में किसी जीव को सम्यग्दृष्टि न माने, मिथ्यादृष्टि स्वयं है बेचारा। पहला मिथ्यादृष्टि वह स्वयं है। वह स्वयं का विनाश कर लेगा, पर मोक्षमार्ग का विनाश नहीं कर सकता। पाँचों अंगुलियाँ एक-जैसी दिख रहीं है क्या? नहीं। तो क्या पाँच अंगुलियाँ नहीं हैं? ऐसे-ही, ज्ञानी! सभी साधु सभी श्रावक एक-से होते हैं क्या? नहीं। तो क्या वे योगी नहीं हैं? श्रावक नहीं है क्या? तो फिर व्यर्थ का विसंवाद किसका?

पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, स्नातक। (त.सू.)

ये पाँच प्रकार के भावमुनि हैं। 'सर्वार्थसिद्धि' पढ़ लेना। जब-तक आगम नहीं पढ़ोगे, श्रद्धा नहीं बनेगी; पर अपनी आत्मा को अश्रद्धान की अग्नि में मत डाल देना। हे योगियो! तीन कम नौ कोटि मुनियों में मैं 'भी' एक मुनि हूँ, यह तो कह लेना, पर तीन कम नौ कोटि मुनियों में मैं 'ही' एक मुनि हूँ तो हे अभागे! तू कहाँ से आ गया?

अब सुनो समयसार।

दर्शन, ज्ञान और चारित्र से सहित जो आत्मा है, वह कैसा है? चेतन रूप है, जड़ रूप नहीं है।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणभइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंणि।। 38 स.सा.।।

सात तत्त्वों में स्वगत तत्त्व मैं मात्र हूँ। शेष सभी परगत तत्त्व हैं। जब परमात्मा परगत है, तो तेरी स्त्री व तेरा पुत्र तेरा स्वगत कैसे? पक्ष-विपक्ष सब परगत, मिथ्याभाव। समयसार नहीं है। जो पक्षपात से मुक्त हो चुका, वही समयसार है। जिसको निश्चय का पक्ष है, वह बहिरात्मा और जिसको व्यवहार का पक्ष है, वह भी बहिरात्मा। जो निश्चय-व्यवहार पक्ष से हटकर स्वात्मपक्ष को जाने, वह है अंतरात्मा। मन करता है कि अखण्ड दिगम्बर समाज में समयसार चले। समयसार को खण्ड-खण्ड में न बाँटा जाए। समयसार खण्ड-खण्ड नहीं, समयसार अखण्ड है। उसका नाम है भगवानात्मा।

पर की भूल को लेकर ग्रंथराज की निंदा क्यों? पर की भूल को भूल मानो। समयसार ने भ्रम खड़ा नहीं किया, समयसार न-समझने वालों ने भ्रम खड़ा किया है। जब-तक मैं का सूत्र बैठा रहेगा, तब-

तक 'अहमिक्को' सूत्र नहीं आ पायेगा। मिथ्यादृष्टि जीव को भी मैं हेय दृष्टि से नहीं देखता। मैं जैन हूँ, गली में घूमते श्वान को भी मैं भगवानात्मा मानता हूँ। यह उसके परिणामों का दोष है जो उसे श्वान की पर्याय मिली। वह भी कभी भगवानात्मा बनेगी, जैसे कि भगवान महावीर स्वामी जिन्होंने वेश्या के भव धारण किए। मालूम कितनी बार? 60 हजार बार। वे निर्ग्रंथ जंगलों में कैसे रहते होंगे? 'अहमिक्को खलु शुद्धो।' अमृतचंद्र स्वामी ने रत्नत्रय से मण्डित आत्मा को ही समयसार कहा है। अध्यात्म की दृष्टि से, श्रावकों! आपका बहुत सुन्दर नाम है- समयसार का उपासक। यह मुनिराज श्रमण संस्कृति में श्रमण हैं और आप श्रमणोपासक हैं। धन्य हो, श्रावको! यदि आप न होते तो ये श्रमण कैसे होते और यदि श्रमण न होते तो आप श्रमणोपासक कैसे कहलाते? यह तीर्थंकर-संस्कृति नहीं, श्रमण-संस्कृति है। श्रमण न होते तो तीर्थंकर कैसे होते?

मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी हूँ। इस लोक में परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।

जब परमाणु मात्र भी तेरा नहीं है, तो क्यों जगत का बोझ ढो रहे हो?

'स्वरूप संबोधन' ग्रंथ में जब बंध शून्य लिखा है, वह कलम किसी की नहीं चली। बंध दृष्टि से आत्मा को अचेतन तो अनेक आचार्यों ने कहा, लेकिन सद्‌भूत व्यवहारनय से आत्मा अचेतन है क्या? यदि आप आत्मा को सिर्फ चेतन मानते और अचेतन नहीं मानते, तो आत्मा के अस्तित्व गुण का नाश हो जायेगा। अस्तित्व गुण का ही नाश हो जाएगा, तो चेतन गुण किसका?

ज्ञान-दर्शन गुण की अपेक्षा आत्मा चेतन है। प्रमेयत्व अस्तित्व, वस्तुत्व आदि की अपेक्षा ये आत्मा अचेतन है। यह उपचरित नहीं है, असद्‌भूत नहीं है। यह स्वभाव है, अतद्‌भाव है। जब-तक जिनवाणी को सबके साथ बैठकर नहीं सुनते, तब-तक ऐसे रहस्य खुलते कहाँ हैं। सिद्ध परमेश्वर मुक्त ही नहीं, अमुक्त भी हैं। कर्म से मुक्त हैं, ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य की अपेक्षा अमुक्त हैं। भगवान मुक्तामुक्त हैं।

भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि इस प्रकार से ऐसा होने पर यह जो भगवती आत्मा है, वह कैसी है? अन्य भावों से भिन्न है। मात्र मेरी आत्मा का कोई धर्म है, 'उपयोगो लक्षणम्'।

आत्मा कैसा है? उपयोगमयी है। परभावों से भिन्न है। आत्मा एक है। प्रकट कैसे होगी? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों के माध्यम से। इसलिए आचार्यभगवन् कह रहे हैं रत्नत्रय के परिणाम कोई तन नहीं है, आत्मा है। रत्नत्रय से परिणत जो आत्म-उद्यान है, उसमें रमण करता है यह

भगवानात्मा। निज आत्मा ही सुन्दर बगीचा है, क्रीड़ा कर रहा है निजात्मा। जो दिख रहे हैं, वे देखनहार नहीं हैं जो देखनहार है, वह आँख से दिख नहीं रहा है। आनंद आता नहीं, आनंद होता है। जो आनंद नहीं है, उसको हटा दो, वह आनंद है। संज्वलन कषाय के मंद उदय में परम आत्मा की अनुभूति होती है, जिसे शुद्धात्मा की अनुभूति कहते हैं-

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगोत्ति।। 14 प्र.सार.।।

यह है शुद्धात्मा की परिभाषा।

आत्मा की अनुभूति किस प्रकार करते हैं, ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं-

मोहादि का चारों प्रकार से त्याग करेगा। जब-तक मोहादि का त्याग नहीं है, तब-तक शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है।

धर्मास्तिकाय आदि पदार्थ भी ज्ञेय हैं, पर आत्मा के स्वरूप नहीं हैं। मेरे निजात्म द्रव्य को छोड़कर पर आत्मा भी मेरी आत्मा का सत्यार्थ स्वभाव नहीं है। यहाँ कहता है कि नहीं है। घर में बेटे का सिर दर्द करे तो तेरा ज्यादा सिर दर्द करता है। तेरा स्वभाव कैसा है? मैं तो मात्र शुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभावी हूँ। 'न्यायदीपिका' में विशाल वर्णन है। सौभाग्य जम जाए तो जीवन की अंतिम श्वासों के निकलने से पहले एक बार 'अष्ट सहस्री' जरूर पढ़ लेना। आत्मा के उपयोग का अभेद लक्षण है, आत्मा के उपयोग का भेद लक्षण नहीं है। मेरी आत्मा ज्ञान-दर्शन से भिन्न नहीं होगी। यह अभेदवृत्ति है। शरीर व आत्मा की भेद वृत्ति है, ज्ञान-दर्शन आत्मा की अभेदवृत्ति है। दही और शक्कर मिला दो तो श्रीखण्ड बन गया। व्यवहारनय से श्रीखण्ड है, पर निश्चयनय से शक्कर शक्कर है, दही-दही है और इलायची-इलायची है। मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ, ज्ञानी! यह श्रीखण्ड है। वास्तव में देवगति भिन्न है, मनुष्यगति भिन्न है, मैं भगवानात्मा एक हूँ। आत्मा में मोह नहीं है। निश्चयनय से यह मेरा स्वरूप नहीं है। जो ऐसा शुद्धात्मा का जानने वाला पुरुष है वह कहता है। तो स्वसंवेदन ज्ञान ही प्रत्याख्यान है। उसी का व्याख्यान जानना चाहिए।

शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उस आत्मा को जानना है सम्यग्ज्ञान और अपनी आत्मा में वीतराग निश्चय सम्यक् अनुभूति है, वह ही सम्यग्चारित्र है। यह निश्चय रत्नत्रय है। ऐसी ही है शुद्धात्मा।

यह सारा जगत जैनेन्द्र मुद्रा से युक्त है। ये नीले-पीले, सफेद हटा दो तो सारा जगत जैनेन्द्र मुद्रा

से युक्त है। अन्य लिंगों को बनाया जाता है, जिनलिंग होता ही है। इस प्रकृति में

'नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्र मुद्रांकितम्'

आचार्य अकलंक स्वामी सुगत मत से कह रहे हैं- तुम जिसकी सिद्धि कर रहे हो, वह असत्य ही है, क्योंकि लपेट की वस्तु सिद्धि होती कब है? एकांत की नील के वस्त्र तभी-तक सुन्दर लगते हैं जब-तक स्याद्वाद का नीर नहीं गिरा। जैसे-ही स्याद्वाद का पानी गिरता है, सारा जगत जैनेन्द्र मुद्रा से युक्त है।

वस्तु स्वतंत्र है, यह स्वभावदृष्टि है। वस्तु परतंत्र भी है, यह विभाव दृष्टि है। इस जीव की क्रियावती शक्ति से गमन होता है, यह उपादान दृष्टि है। धर्मास्तिकाय के निमित्त से जीव का गमन होता है, यह निमित्त दृष्टि है। यदि दोनों में से एक का भी अभाव करोगे तो वस्तुव्यवस्था नष्ट हो जायेगी, शुद्धआत्मद्रव्य, अशरीरी सिद्ध भगवान, वे ऊर्ध्वगमन-स्वभावी हैं। फिर भी सिद्धालय में क्यों विराजते हैं? आगे गमन क्यों नहीं होता? धर्मद्रव्य का अभाव है। विश्वास रखना, जीव के हृदय में किंचित् भी पक्ष का राग हो, तो वह सम्यग्कथन नहीं कर पायेगा। हम लोगों ने वस्तु को उतारने के साथ-साथ सबसे पहले पक्ष को उतारा है। यदि मैं वस्त्र उतारके और पक्ष को ओढ़ कर बैठता, तो आप मेरे पास आ नहीं सकते थे। आप तो जिनशासन व जिनेन्द्र को माननेवाले हो। इस सभा में ऐसे लोग भी आए जिनका जिनशासन से कोई संबंध नहीं था। जैनियों को समझ नहीं आता, तो उनको क्या समझ आता होगा? पर वे भी कह रहे थे कि सुनता हूँ तो लगता है अपनी वस्तु है।

जिनवाणी जो है, वह प्राणिमात्र को सत्यार्थ ज्ञान कराने वाली है। स्वतंत्र होने पर भी विभाव में परतंत्र है। विभाव में परतंत्र होने पर स्वभाव में स्वतंत्र है। यदि विभाव में परतंत्र नहीं मानोगे, तो पुरुषार्थ किसका करोगे? और स्वभाव में स्वतंत्र नहीं मानोगे, तो पुरुषार्थ किसके लिए? कर्म कर्म में है। आत्मा आत्मस्वरूप में है, फिर भी 148 कर्म प्रकृतियों के बीच में फँसी है। स्वतंत्रता में भी परतंत्रता है, परतंत्रता में भी स्वतंत्रता है।

'मैं स्वतंत्र हूँ' तो फिर परद्रव्यों में क्यों लिप्त हो रहा है? स्वभाव पर दृष्टि डाल। मैं स्वतंत्र हूँ- ऐसा मेरा स्वरूप होने पर मैं परद्रव्यों में लिप्त कैसे हो गया? नाली में सिक्का गिर जाए तो फिर कीचड़ नहीं दिखती, हाथ डालकर उठा लेता है। हे सिक्का! मैं स्वतंत्र हूँ, पर धन्य है तेरी महिमा, मेरी स्वतंत्रता को कैसे छीन लिया। मैं तो विभुत्व-शक्ति-संपन्न हूँ। हे चेतनात्मा! तू विभुत्व शक्ति से सम्पन्न होते हुए भी सम्प्रदान शक्ति को क्यों नहीं बुला रहा है? सम्प्रदान शक्ति को जीव बुला नहीं रहा। यदि यह सम्प्रदान शक्ति को बुला ले, तो विभुत्व शक्ति प्रकट हो जाए।

हे ज्ञानी! सिक्के को नाली में हाथ डालकर निकाल लिया, सम्प्रदान शक्ति बोल पड़ी-किसके लिए? तूने अपने चैतन्य धर्म के शरीर के साथ आत्मा के ब्रह्म स्वभाव को भोगों की नाली में कैसे फेंका धिक्कार हो कीड़े! अपनी स्वतंत्रता को खो बैठा। शरीर की सात धातुओं में सारभूत कोई धातु है, हे कीड़े! भोगों की नाली में कैसे छोड़ दिया? तब ध्यान करना था 'मैं स्वतंत्र हूँ।' समयसार का ब्रह्मभाव यदि चाहते हो तो सबसे पहले करो पशुवृत्ति का त्याग। और चिंतन करो।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

भगवान महावीर स्वामी की जय।

नमोस्तु शासन जयवन्त हो

संदर्भ ग्रन्थ सूची

नाम	लेखक	संकेत
समयसार	आचार्य कुंदकुंद	स.सा.
अध्यात्म-अमृत-कलश	आचार्य अमृतचन्द्र	अ.अ.क.
तात्पर्यवृत्ति	आचार्य जयसेन	ता.वृ.
आप्त मीमांसा	आचार्य समन्तभ्रद	आ.मी.
स्वयंभू स्तोत्र	आचार्य समन्तभ्रद	स्व.स्तो.
तत्त्वार्थ सूत्र	आचार्य उमास्वामी	त.सू.
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय	आचार्य अमृतचन्द्र	त.सू.
तत्त्वसार	आचार्य देवसेन	त.सा.
पंचास्तिकाय	आचार्य कुंदकुंद देव	पं.का.
प्रवचनसार	आचार्य कुंदकुंद देव	प्र.सा.
रयणसार	आचार्य कुंदकुंद देव	र.सा.
परीक्षामुख	आचार्य माणिक्यनंदि	प.मु.
इष्टोपदेश	आचार्य पूज्यवाद (देवनन्दि)	इष्टो.
छहढ़ाला	पं. दौलतराम	छहढाला
स्वरूप संबोधन	आचार्य अकलंकदेव	स्व.सं.
द्रव्यसग्रंह	नेमिचंद्राचार्य सिद्धांतदेव	द्र.सं.

जैनेन्द्र व्याकरण	आचार्य पूज्यपाद (देवनन्दि)	जै.व्या.
कार्तिकेय अनुप्रेक्षा	आ.कुमार स्वामी कार्तिकेय	का.अनु.
गोम्मटसार जीवकाण्ड	नेमिचंद्राचार्य सिद्धांतचक्रवर्ती	गो.जी.
आलाप पद्धति	आचार्य देवसेन	आ.प.
सम्मईसुत्तं	आचार्य सिद्धसेन	स.सु.
भावसंग्रह	आचार्य देवसेन	भा.सं.
परमात्माप्रकाश	आचार्य योगिन्दुदेव	प.प्र.
कातंत्र रूपमाला	श्रीशर्ववर्म का.रू.	
मूलाचार	आचार्य वट्टकेर स्वामी	मूला.
कातंत्र रूपमाला	--------	का.रू.
रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्य समन्तभद्र	र.क.श्रा.

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री किशोर पहाड़े (माँगीलाल-रमेश कुमार पहाड़े), हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर,
श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,
श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर
श्री टी.के. वेद जी, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर
श्री हेमचंद मीना जैन (सिरमोर), इंदौर

संरक्षक

श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,
श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर
श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर
श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा
श्री कमलकुमारजी कमलांकुर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा
श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा
श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा
श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा
श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल
श्री मनोजजी प्रधान, भोपाल
श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल
श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल
श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल
श्री हरीशकुमार प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल
श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल
श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल
डॉ. सुभाषजी जैन (जखारिया), भोपाल

श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा
श्री राजकुमार बाकलीवाल, भीलवाड़ा
श्री संजय राजू जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री किशोर अमित जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री वेदप्रकाश भाईजी, मनोरमागंज, सागर
श्री धनकुमार संजय गंगवाल, वैशाली नगर, भिलाई
श्री मनोज, अनिल, जयकुमार जैन, राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री मुकेश शिल्पी पंचोली, तिलक नगर, इन्दौर

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी कासलीवाल, भिलाई
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री मुकेश शिल्पी पंचोली, तिलक नगर, इन्दौर
सकल दिगम्बर जैन समाज, महेश्वर

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर

श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्दौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर
श्री प्रदीपकुमार विमलचन्द डोषी, छावनी, इन्दौर
श्री कैलाश जी वैद्य, छावनी, इन्दौर

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन
श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा...
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर....
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन (नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोमितजी जैन, ग्यासपुर
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा
श्री संजय कुमार सिंघई, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री अनिमेष जैन, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री वैभव चौधरी पुत्र श्री सुभाष चौधरी, नवापारा राजिम
श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी श्री निर्मल कुमार चौधरी, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)